Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3.6
२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२.४
१०

३८८२१

विज्ञान महाविद्यालय पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी

१. पुस्तक केवल १४ दिन को वितरित की जाती है

२. १४ दिन के अन्दर पुस्तक न लौटाने पर ५ पै० प्रतिदिन अर्थ दण्ड लगेगा।

३. पुस्तक पर निशान लगाना पृष्ट, फाड़ना सर्वथा मना है। ऐसा करना दण्डनीय है।

४. पुस्तक को साफ तथा सुन्दर रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या - 3·6 / ९० आगत संख्या २०७४३

पुस्तक - वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा 10 पैसे के हिसाब से विलम्ब - दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ

[६ अप्रैल, १९५८]

R80,BHI-R
37751

सम्पादक—
भीमसेन विद्यालंकार
प्रधान मन्त्री, पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :—
भीमसेन विद्यालंकार
प्रधान मंत्री, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन
निकलसन रोड, अम्बाला छावनी।

पुस्तक सं० 3.4
आगत सं० 20
36,642
R
80
BH2-R

★

मूल्य : ६ रुपये

★

मुद्रक—
भीमसेन विद्यालंकार
आर्य प्रिंटिंग प्रैस, अम्बाला छावनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन
की रजत जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष्य
में संकलित यह ग्रन्थ भारतीय
लोकसभा के अध्यक्ष भारतीय
गणतन्त्र के प्रजाराज
सूय-यज्ञ के ब्रह्मा

श्री अनन्त शयनम् आयंगर

की सेवा में

सादर समर्पित है।

आप के तत्वावधान में
भारतीय संविधान की छत्र-छाया
में हिन्दी राष्ट्र-भाषा राज-भाषा के
सिंहासन पर आसीन हो सुशोभित है।

भवदीय:—

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के अधिकारी:—

श्री रलाराम जी एम. एल. ए., प्रधान
श्री भीमसेन विद्यालंकार, प्रधान मन्त्री
श्री गणपतराय जी, कोषाध्यक्ष
श्री अमरनाथ जी शास्त्री, उपप्रधान
श्री प्रो० संसारचन्द जी, उपप्रधान
श्री हरबंश लाल जी, उपप्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभार प्रदर्शन तथा धन्यवाद

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती महोत्सव की स्मृति में यह स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। इसके लिये लेख कविता संस्मरण तथा चित्र भेजकर जिन महानुभावों ने सहयोग दिया है; उनका मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूं, उनके साहित्यिक सहयोग के बिना यह कार्य दुष्कर था। बार बार पत्र द्वारा निवेदन करने पर भी जिन लोगों ने संस्मरण लेख नहीं भेजे उनका भी धन्यवाद करता हूं क्यों कि स्मृति ग्रन्थ के द्वितीय भाग के लिये उनकी सेवा तथा योग्यता सुरक्षित रहेगी। संभवतः लेख न भेजने के अनेक कारणों में से एक कारण मेरी प्रेरणा करने की अयोग्यता भी हो, उसके लिये उनसे क्षमा मांगता हुआ; पुनः सब सहयोगियों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

× × × ×

इस पुस्तक के प्रकाशन में पंजाब सरकार द्वारा प्राप्त २५००) की अनुदान राशि के बड़े भाग का प्रयोग किया गया है। इस अनुदान राशि से हिन्दी सम्मेलन के मुख्य पत्र, "हिन्दी-सन्देश" के विशेषांक प्रकाशन में भी सहायता ली गई है। इस आर्थिक सहयोग के लिये पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से पंजाब सरकार का भी धन्यवाद करता हूं और आशा है कि भविष्य में भी वह पंजाब हिन्दी सम्मेलन को आर्थिक अनुदान देकर हिन्दी साहित्य निर्माण कार्य के लिये सहयोग देती रहेगी।

भीमसेन विद्यालंकार
सम्पादक रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ
प्रधान मन्त्री, पंजाब हिन्दी सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

सं०	नाम	पृष्ठ
१.	श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास जी टण्डन	२
२.	अबोहर हिन्दी सम्मेलन की स्वागत समिति तथा कार्यकर्ता : महात्मा हंसराज जी मध्य में	३
३.	स्वर्गीय स० भगतसिंह तथा उनके साथी "भारत दुर्दशा नाटक" के अभिनय में	४
४.	श्री स्वामी सत्यदेव जी सत्यज्ञान निकेतन, श्री स्वामी गणेशदत्त जी प्रो० श्री वसिष्ठ जी	१४
५.	श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, आचार्य विश्वबन्धु जी, श्री महाशय कृष्ण जी, श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार, श्री जयचन्द जी विद्यालंकार	१५
६.	श्री सन्तराम जी हिन्दी महारथी	६३
७.	श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति एम. पी.	७०
८.	श्री प्रो० जयनाथ जी नलिन एम. ए.	७४
९.	श्री नन्दकिशोर जी हरगोलाल एण्ड सन्स अम्बाला छावनी	७८
१०.	आचार्या लज्जावती जी कन्या महाविद्यालय जालन्धर	८८
११.	सेठ महेशचन्द जी, श्री दीवान आनन्दकुमार जी, श्री जगन्नाथ पुच्छरत, श्री इन्द्रनाथ जी मदान, श्री प्रेमप्रकाश सिंह जी एम. ए.	९०
१२.	श्री दीवान अलखधारी जी, श्री. रा. ब. सोहनलाल जी, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, श्रीमती सुदर्शन बाहरी एम. ए., श्रीमती पुष्पा महाजन	९१
१३.	श्री प्रो० संसारचन्द जी एम. ए.	१०५
१४.	स्वर्गीय श्रीमती पुरुषार्थवती	१३५
१५.	श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी, श्री यश जी एम. एल. सी.	१३७
१६.	श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा भूतपूर्व प्रधान पंजाब हिन्दी सम्मेलन	१४९
१७.	श्री स्व० १००८ स्वामी श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वर	१६५
१८.	पूर्वी पंजाब के ५ शिक्षामन्त्री—श्री गुरबचनसिंह जी, श्री डा० गोपीचन्द भार्गव, श्री जगत्नारायण जी, श्री अमरनाथ जी वि० लं०, श्री प्रो० शेरसिंह जी M.L.A.	१९०
१९.	श्री पं० अमरनाथ जी शास्त्री, श्री प्रिंसिपल रलाराम जी, भीमसेन वि० लं० श्री पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार	१९२
२०.	श्री रणदेव पंडित कपूरथला	१९२
२१.	भोजकवि दरबार का दृश्य, श्री हरबंशलाल जोशी, श्री सत्यपाल गुप्त	१९४
२२.	श्री स्वामी केशवानन्द जी साहित्य सदन अबोहर, श्री तेगराम जी भू० पू० एम. एल. ए., श्री स्वर्गीय मावलंकर जी तथा स्व० श्री डा० सत्यपाल जी श्रीमती शन्नोदेवी जी, श्री सुनामराय एम. ए.	१९५
२३.	श्री देवराज दिनेश, कवि सम्मेलन में कविता पढ़ते हुए	१९९
२४.	आचार्य नरदेव जी शास्त्री ज्वालापुर	२०२
२५.	गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का विशाल भवन	२१९
२६.	महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतराय जी	२२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	धन्यवाद समर्पण		
२.	देवनागरी हिन्दी की आराधना में	भीमसेन विद्यालंकार	१
३.	कुछ याद आये तब तो !!	श्री राणा जंग बहादुर सिंह न्यू दिल्ली	६
४.	हिन्दी साहित्य सम्बन्धी मेरे संस्मरण	श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक	१३
५.	पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना	श्रीमती सुमित्रा देवी जी	२७
६.	श्री जयचन्द्र वि० लं० की ऐतिहासिक कृति	श्री पृथ्वीसिंह जी महता	३४
७.	लाहौर में हिन्दी प्रकाशन के अनुभव	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	४५
८.	कुछ संस्मरण :	श्री रामकृष्ण भारती एम० ए० बी० टी०	५१
९.	२८ साल पूर्व के लाहौर व पंजाब में हिन्दी	श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार, दिल्ली	५९
१०.	मुझे हिन्दी पर क्यों और कैसे प्रेम हुआ?	श्री सन्तराम जी पुरानी बसी हुशियारपुर	६६
११.	सद्धर्म प्रचारक और हिन्दी	,, प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति एम० पी०	७०
१२.	लाहौर का साहित्यिक वातावरण	,, प्रो० जयनाथ नलिन	७४
१३.	मेरी पहली कहानी की जन्म कथा	,, नन्द किशोर जी हरगुलाल एण्ड सन्स	७८
१४.	कन्या म०वि० जालंधर का हिंदी-सेवा-कार्य	आचार्या लज्जावती जी जालन्धर	८८
१५.	पंजाब में हिन्दी की स्वतंत्र दशाब्दि	श्री प्रेम प्रकाश सिंह जी एम० ए०	९०
१६.	पंजाब का छिपा हुआ हिन्दी साहित्य	श्री प्रेमप्रकाश शर्मा एम० ए०	९६
१७.	कौमी कालेज लाहौर की राष्ट्र भाषा हिन्दी को देन	स० यशवन्त सिंह जी नेशनल न्यू दिल्ली	१००

पंजाब में पद्य गद्य साहित्य का क्रमिक विकास विवरण

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१८.	अलबेला पंजाब (कविता)	पं० बुद्धदेव विद्यालंकार	१०४
१९.	जय जगदीश हरे (कविता)	श्रद्धाराम फिलौरी	१०४
२०.	आज मिल सब (कविता)	अमीचन्द	१०४
२१.	हिन्दी गद्य के निर्माण और विकास में पंजाब का योग-दान	प्रो० संसारचन्द्र एम० ए०	१०५
२२.	हिन्दी कवि भाई रामसिंह पंजाबी	श्री शमशेर सिंह जी अशोक पटियाला	१०९
२३.	त्रैगर्त के राजा	,, अमरनाथ जी शास्त्री	११३
२४.	डाकू मामा (कहानी)	श्रीमती पुष्पा महाजन	११६
२५.	ज़िला हिसार के हिन्दी सेवी	श्री रमेशचन्द्र जी शान्त	१२३
२६.	पटियाला डिविजन के हिन्दी प्रेमी	,, सत्यपाल गुप्त	१२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४७ से पूर्व : पंजाब से प्रकाशित हिन्दी समाचार पत्र

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
२७.	पंजाब केसरी:—		
	भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध	श्रीयुत राजाराम शास्त्री	१२९
२८.	भारतीय स्वातन्त्रता युद्ध का प्रथम बलिदान—	भीमसेन विद्यालंकार	१३०
२९.	हिन्दीसन्देश—नाट्य कला का अभाव	श्री गोपाल कृष्ण	१३३
३०.	अन्तर्वेदना की समालोचना	पारखी	१३५
३१.	हिन्दी मिलाप :—हिन्दी आजादी की भाषा		१३७
३२.	दैनिक शक्ति लाहौर :—कालिदास और भवभूति		१४१
३३.	साप्ताहिक आर्य—		
	ऋषि दयानन्द की बिरादरी	स्व० श्री पं० चमूपति एम० ए०	१४३
३४.	जोगी की कुटिया में (कविता)	पं० बुद्धदेव विद्यालंकार	१४८
३४	साप्ताहिक विश्वबन्धु:—शेर का बच्चा	श्री केदार बी० ए०	१४९
३५.	न्यायमन्त्री (कहानी)	,, सुदर्शन जी	१५६
३७	हिन्दी और पंजाब का जैन समाज	,, पृथ्वीराज जैन कालेज अम्बाला	१६४
३८.	तरुण साहित्यकार सुरेश	,, रामरत्न जी शर्मा	१६८
३९.	पंजाब के सन्त कवि अमीचन्द	,, स्व० पंडित चमूपति जी	१४२
४०.	सखियो ! प्राण नाथ से कहियो (कविता)	,, अमीचन्द जी	१७४
४१.	दातारपुर के वीर क्षत्रिय	,, टिक्का उदय भानुचन्द्र जी दातारपुर	१७८
४२.	पंजाब में हिन्दी उर्दू का संघर्ष	स्व० लाला लाजपत राय	१८३
४३.	हिन्दी उर्दू की अपील	स्व० बाल मुकन्द जी गुप्त	१८४
४४.	श्री रणदेव पंडित (परिचय)	आचार्य श्रीवरानन्द जी	१८६
४५.	कौन खे सके भारत नैय्या (कविता)	श्री चेतराम जी शर्मा	१८८
४६.	हँसना रोना (कविता)	कुमारी प्रभा कमालिया	१८९
४७.	आकाश वाणी	श्री धर्म भानु जी	१९०
४८.	गीत-चेतावनी (कविता)	श्री रणदेव पंडित	१९२ १९३
४९.	आंसू स्मिति का द्रव हो जाना (कविता)	सत्य भूषण योगी	१९३
५०.	शीश चढ़ाने कौन चलेगा (कविता)	श्रीमती सुदर्शन बाहरी एम. ए. नीलोखेड़ी	१९४
५१.	श्री हरि कृष्ण प्रेमी (परिचय तथा कविता)	संगृहीत	१९५
५२.	श्री उदय शंकर भट्ट (परिचय तथा कविता)	संगृहीत	१९७
५३.	मैंने वह दीपक देखे हैं (कविता)	श्री देवराज दिनेश संगृहीत	१९९
५४.	कितनी रंगीली है	श्री प्रो० जयनाथ नलिन	२००
५५.	हिन्दी के संस्मरण	आचार्य नरदेव जी ज्वालापुर	२०१
५६.	हिन्दी परीक्षाओं का प्रारम्भिक रूप तथा पाठ विधि	श्री जगन्नाथ पुच्छरन	२०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
५७.	How to End Language Controversy 1941 Tribune	*Sir Sikandar Hayat Khan*	२०६
५८.	'अरुण' की कविता :	श्री श्यामसुन्दर एम. ए. अम्बाला छावनी	२११
५६.	पंजाब यूनिवर्सिटी और हिन्दी परीक्षाएं	,, जगन्नाथ पुच्छरत सारस्वत अमृतसर	२१६
६०.	गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का संक्षिप्त परिचय		२१६
६१.	देव समाज और उसके संस्थापक द्वारा पंजाब में हिन्दी साहित्य की सेवा	श्रीयुत आचार्य प्रेमबल देव समाज, गर्ल्स कालेज अम्बाला शहर	२२१
६२.	पंजाब में हिन्दी का उन्नायक डी० ए० वी० आन्दोलन	श्री कृष्ण कुमार धवन, अध्यक्ष हिन्दी विभाग डी. ए. वी. कालिज अम्बाला शहर	२२३
६३.	हिन्दी में इंडियन प्रेस का स्थान	विश्वमित्र बैद, अम्बाला छावनी	२२५
६४.	साहित्यिक-समालोचना-आलोक	भीमसेन विद्यालंकार	२२८
६५.	श्री परमानन्द जी शर्मा एम० ए० (परिचय तथा कविता)	संगृहीत	२३२
६६.	पंजाब के हिन्दी प्रेमी साधु महात्मा साहित्यकार		२३४
६७.	पं० भगवद्दत्त जी तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा की गई हिन्दी सेवा	श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु काशी	२३६
६८.	आत्मकथा	श्री राय बहादुर लाला सोहनलाल जी	२३७
७६.	विविध संस्मरण तथा लेख :		२४० से

पंजाब की महिलाओं की हिन्दी साहित्य को देन

चंद बरदाई की मृत्यु के बाद मुसलमानी शासन काल में पंजाब की राजभाषा फारसी हो गई और हिन्दी उपेक्षित रही। श्री गुरु नानक देव श्री गुरु तेगबहादुर, श्री गुरुगोविन्द सिंह तथा महाराजा रणजीत सिंह ने यथावसर हिन्दी कवियों को आश्रय दिया। साधारण जनता ने राजनैतिक दबाव के कारण हिन्दी को तिलांजलि दी। इसी प्रकार से अंग्रेजों के शासन काल में भी अंग्रेजी उर्दू फारसी के समर्थकों ने हिन्दी को पनपने न दिया। इस विपरीत प्रतिकूल वातावरण में पंजाब-पंचनद की मातृ शक्ति सावित्री, मद्राधिपति अश्वपति तथा महारानी मालवी की पुत्री और माद्री (मद्रदेश) की उत्तराधिकारिणी महिलाओं ने, देवनागरी हिन्दी-शास्त्री को, साधन हीन होते हुए भी अपने घरों में अपनाकर सुरक्षित रखा। परिणामतः अंग्रेजी काल में कटाक्ष-व्यंग रूप से अंग्रेजी पढ़े लिखे सज्जन तथा राज्याधिकारी इसे पत्नी भाषा-स्त्री भाषा कह कर उपेक्षित भी करते रहे। परन्तु पंचनदीय सती नारियों ने इसे अपदस्थ न होने दिया। मातृ शक्ति द्वारा अपनाकर इसे पंचनद वासी जनता की मातृभाषा का स्थान दिलाए रखा। इसकी रक्षा के लिये पंजाब में कन्या पाठशालाओं फिरोजपुर तथा जालन्धर कन्या महाविद्यालय जैसी संस्थाओं की स्थापना की।

इनकी इस निष्काम तपस्या की सफलता में हम इनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन एम. पी.

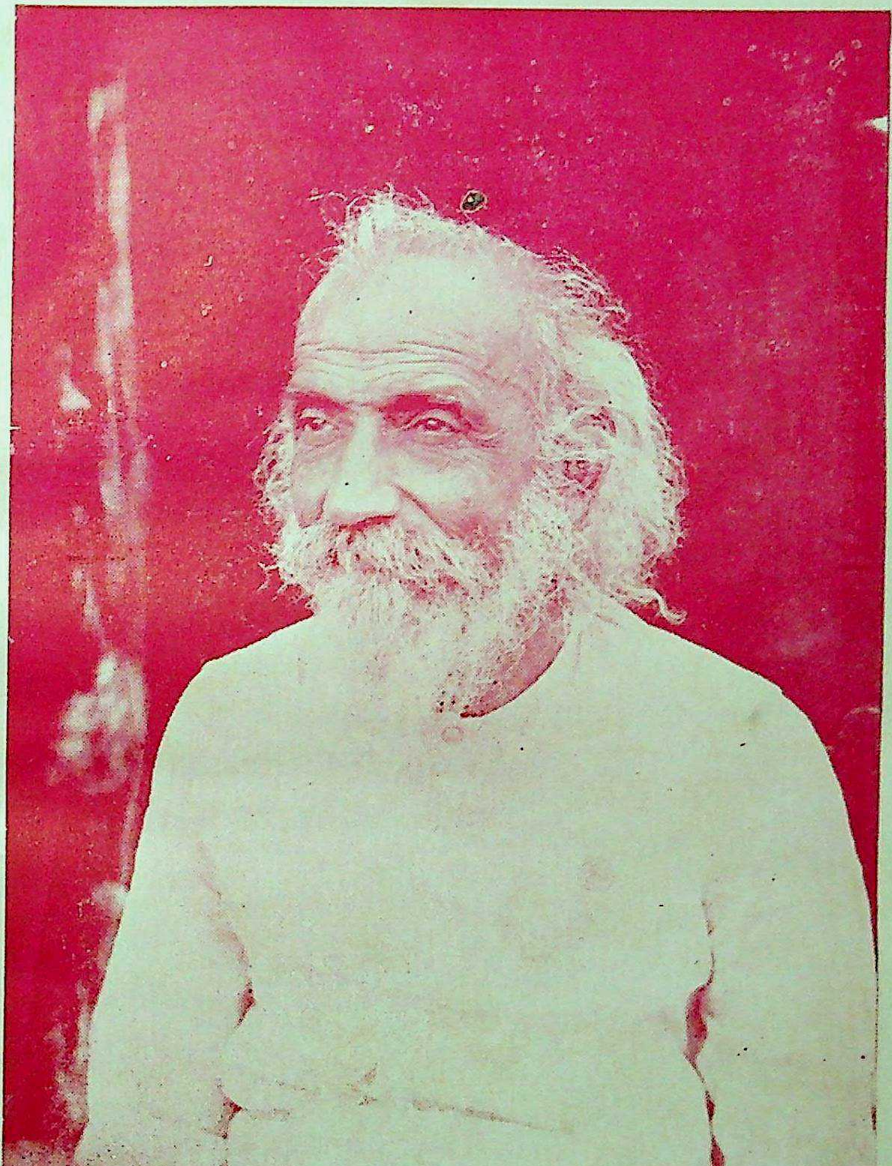

हिन्दी को राजभाषा राष्ट्रभाषा का सिंहासन प्राप्त कराने वालों में
अग्रणी, हिन्दी के प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज से २५ वर्ष पूर्व अबोहर में हुये पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दृश्य

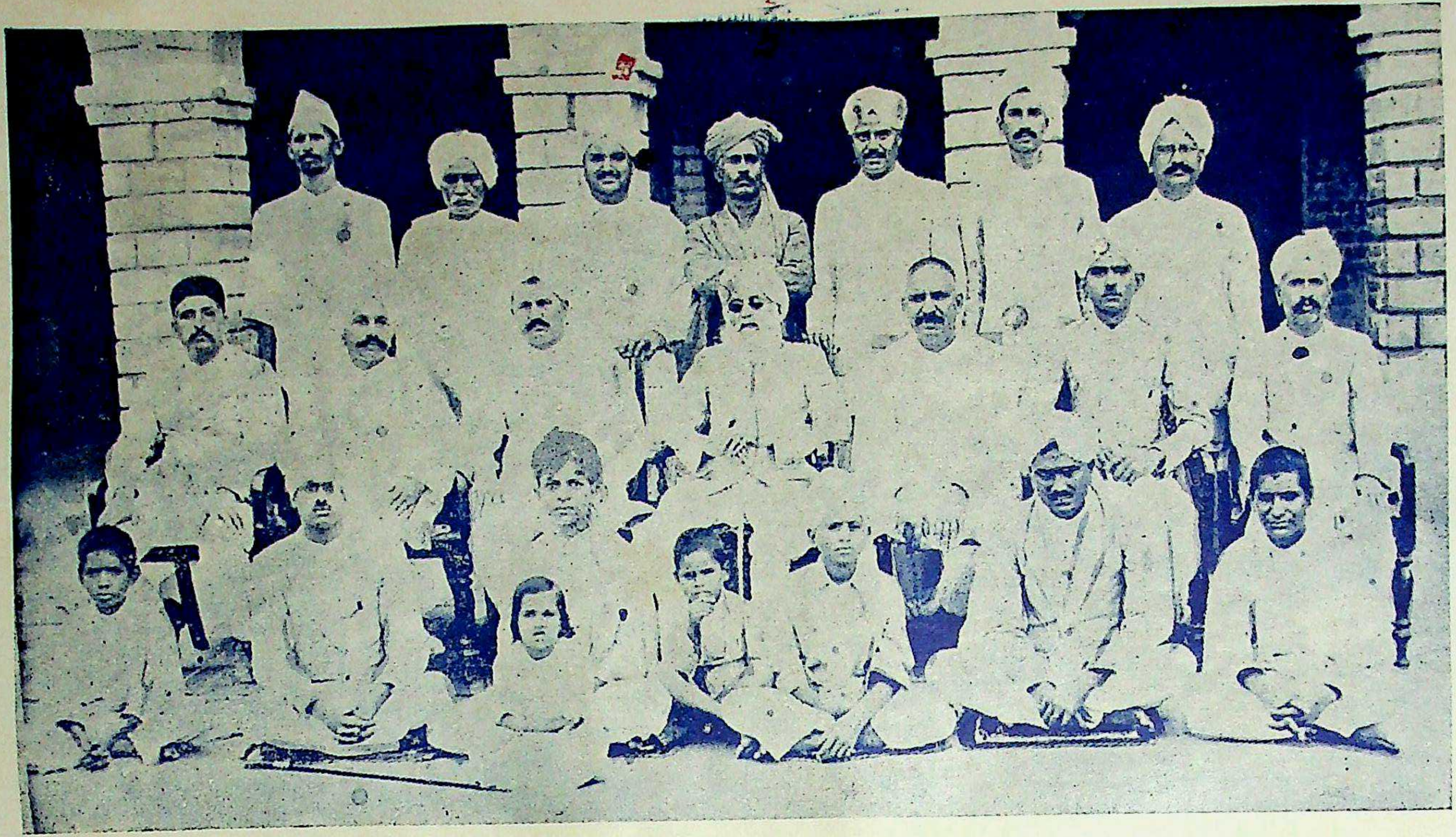

सभापति स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी

अबोहर और फाजिलका के अन्य हिन्दी प्रेमियों और स्वागत समिति के सदस्यों के साथ स्वागताध्यक्ष श्री सुनामराय जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय पं० चमूपति जी के हृदयोद्गार !

मस्ताने का गीत !!

जो माने नहीं मनाए से, उसको कर जोर मनाना क्या ?
जो जान-बूझ कर बधिर हुआ, उसको हित-अहित सुनाना क्या ?
उस बिन-छवि, छैल-छबीले की छवि देख आँख झपकाना क्या ?
बिन-जीभ 'अनाहत' नाद हुआ, कर आहत जीभ थकाना क्या ?
जब घर से बाहर निकल पड़े, तब बस्ती क्या, वीराना क्या ?
मन ही मन अपना न रहा अब तो, जन अपना क्या, बेगाना क्या ?
कहती है, कहे बुरा दुनिया, इस कुलटा को पतियाना क्या ?
जब प्रेम गली में पाँव धरा, तब अपयश से घबराना क्या ?
मत चेत, हृदय, हो मस्ताना—चेता, तो फिर मस्ताना क्या ?
रह अपनी धुन में मस्त, न सुन है कहता तुझे जमाना क्या ?

रणचण्डी !

रणचण्डी ! जाग !
कि फिर वैरी वैरानल-कोप जगाते हैं;
हम घर घर धैर्य अधीर हुये,
फिर धूर्त्त दाँत दिखलाते हैं।
आ खड्ग गहे रण आंगन में—
फिर झन झन हो तलवारों की;
इत हाथ बढ़ें, उत सीस कटें,
सुर मिले विजय झनकारों को !
पी बैर वारुणी, वीर बढ़ें—
बैरी दल का विध्वंस करें;
तन परिमल रण भू-धूलि मलें,
सिर घोर-घाव अवतंस धरें !
रिपु-जेता ही बन कर आने का,
बहिन तिलक दे भाई को,
फिर पत्नी-पूजा प्रस्तुत हो,
रणवीर-चिता पर आई को !
घुट्टी में मारण मरण मिला,
फिर धन्य-धयन माताएँ हों;
रजपूत-भुजा पर राखी बन,
बसती कुल की ललनाएँ हों !
फिर दुन्दुभि-नाद गुंजारें हों,
भेरी-रव की भरमारें हों,
हाथों में किर्च-कटारें हों,
भूतल पर शोणित धारें हों !

दण्डी की दुनिया

जय जय जय ऋषि-प्रसव सुहागिन,
कुटि-मुनि-अनुरागिन, बड़ भागिन !

किस शुभ दिन की स्मृति उर धारे,
खड़ी-वियोग-विकल, बैरागिन ?
वे, ऋषि बन, जग पाप झाड़ते;
तुझे फंसाती ममता-नागिन !

धर्म-मेघ बन, वे बरस रहे;
सरित-स्नान की तू अनुरागिन !
'दण्डी' गुरु की कड़ी कचहरी—
वे अघताड़, बनी अपराधिन।

लौटा दी लोगों की थाली !
—लोभिन कहूँ, तुझे या त्यागिन ?
मुग्ध खड़ी किन खण्डरों पर ?
—अति-अनुरागिन, अति-बैरागिन !

लाखों झुक-झुक सीस नवाते,
—मैया तेरी कोख सुहागिन !
गौरव-गीत गुँजाती गलियां,
मथुरा रति-राती रस-रागिन !

(मथुरा की विरजानन्द कुटी को लक्ष्य में रख कर लिखी गई)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी के कर्णधार :

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती :-

लेखक—
प्रो० दुर्गादत्त मेनन एम० ए०

वाणी में रस, ओजपूर्ण, लेखनी में प्रवाह, तर्कशील स्वभाव में शीतलता, विवेकयुक्त जीवन, सरल साधारण-आदर्शरूप, कर्त्तव्यपरायणता, मर्यादित-निश्चित, उत्साह अपरिमित-संयत, शक्ति, अथाह-गंभीर, अनेकों गुणों के एक पुंज, जीवन के पहले चरणों में खुशहालचन्द के नाम से खुशहालीबखेरते रहे तो संन्यास लेने के बाद आनन्द स्वामी बनकर आनन्द की वर्षा कर रहे हैं।

पंजाब के हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के साथ उनका इतना गहरा सम्बन्ध है कि इतिहास के हर पन्ने पर उनकी कर्मशीलता और कर्त्तव्य-परायणता की छाप अमिट है। जिला गुजरात (पाकिस्तान) के छोटे से गांव जलालपुर जट्टां में जन्म लेने के बाद जिस व्यक्ति ने जुराबें बनाने की एक छोटी-मोटी मशीन को जीवन का धुरा बना कर अपनी नौका लहरों को सौंप दी हो, उसके सम्बन्ध में यह संभवतः संभावना भी न की गई थी कि वही एक दिन समाज का एक प्रमुख अंग ही नहीं, अपितुराष्ट्र का सफल नायक भी बन जाएगा। परन्तु महात्मा हंसराज जी की निगाहों की परख निराली थी। आर्यसमाज के एक उत्सव पर वह जलालपुर गये तो खुशहालचन्द जी को साथ ले आये और 'आर्यगज़ट' का संपादन-भार उन को सौंप दिया। "आर्यगज़ट" आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा का साप्ताहिक पत्र था। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, लाला रामप्रशाद आदि महापुरुषों ने उस पत्र का संपादन किया था। खुशहालचंद जी के लिये यह एक अप्रत्याशित सम्मान था उनके मन में संकोच अवश्य था कि इतना भारी दायित्व सभाल भी सकेंगे या नहीं? परन्तु आत्म-विश्वास और ईश्वरविश्वास के भरोसे उन्होंने कुछ ही वर्षों में इस क्षेत्र में अपूर्व सफलता प्राप्त की। उनकी गणना प्रमुख पत्रकारों में होने लगी और उन्होंने दैनिक "मिलाप" का प्रकाशन आरंभ कर दिया।

दैनिक 'मिलाप' के प्रकाशन के साथ साथ उन्होंने आर्यसमाज और समाजसेवा के क्षेत्र में काम आरम्भ कर दिया। इन क्षेत्रों में उन की सेवाओं का इतिहास काफ़ी लम्बा और उज्ज्वल है। कई स्थानों पर तो उन्होंने अपने प्राणों को जोखम में डाल कर भी पीड़ित और पददलित मानवता के रिसते घावों पर मरहम का लेप किया। मालाबार के मोपलों ने जब विद्रोह कर दिया और हिन्दुओं को मौत के घाट उतारा जाने लगा तो श्री खुशहालचन्द जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उनकी सहायता को पहुँचे थे। कोहाट में जब साम्प्रदायिकता का दानव निस्सहाय और निरपराध हिन्दुओं को निगल रहा था, तब उसके जबड़ों में घुस कर अपने स्व-जातियों को बचाने का साहस भी उन्होंने ही किया था। साहसी आत्मा के साथ उन के भाषणों में सुनने वालों के दिल हिला देने की शक्ति थी। भूकम्प-पीड़ितों और दुर्भिक्ष-ग्रस्त मानवों के दुःख में दुखी होना उनकी प्रकृति थी। उन सब घटनाओं का वर्णन न संभव है और न अभीष्ट जब कि खुशहालचन्द जी किसी भी बात की परवाह न करते हुए कर्त्तव्य-क्षेत्र में कूद न पड़े हों।

पंजाब में हिन्दी के कर्णधार

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

आर्यसमाज की सेवा तो उन के जीवन का उद्देश्य ही रहा है। आर्यसमाज ने जब हैदराबाद में अन्याय के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया तो पंजाब से सब से पहले वही सर्वाधिकारी नियुक्त हो कर आगे बढ़े थे। उन के इस साहस और त्याग ने औरों को भी प्रेरणा दी। उसके बाद जब कभी भी आर्यसमाज ने एक सैनिक के रूप में उन्हें पुकारा, उन्होंने अपने आप को पेश कर दिया। कठोर कारावास की यातनाएं उन्होंने केवल आर्यसमाज आंदोलनों के अवसरों पर ही नहीं सहीं, अपितु देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में भी उन्होंने भाग लिया। पत्रकार के नाते भी उन पर ब्रिटिश साम्राज्य-वाद ने कई बार किये और कई बार उन्हें कारावास का अतिथि बनना पड़ा।

अपने जीवन की गाड़ी को सफलता से चलाते हुये जब वे लगभग साठ वर्ष के हुये तो एक सच्चे आर्य की तरह उन्होंने संन्यास ले लिया। भरा-पूरा घर, आज्ञाकारी बेटे, लाखों का कारोबार, सन्तुष्ट पारिवारिक जीवन सब को छोड़ कर वे इस तरह अलग हो गये, जैसे इनके साथ उनका कभी कोई सम्बन्ध ही न रहा हो।

'मैं परिवार की इच्छा त्याग करता हूँ।'
'मैं धन की इच्छा का त्याग करता हूँ।'
'मैं यश की इच्छा का त्याग करता हूँ।''

ये तीन प्रतिज्ञाएँ अपने गुरु श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती महाराज के चरणों में कर के वे लोककल्याण के मार्ग पर चल पड़े। अपनी पत्नी को 'मां' कह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके चरण छुए और उससे आशीर्वाद मांग कर संसार के दुःख हरने, एक कठिन मार्ग के ऐसे यात्री बन गये जिस की यात्रा कभी समाप्त ही नहीं होती। आजकल अपने स्वास्थ्य की भी चिन्ता न करते हुए वे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक शांति और सन्तोष का सन्देश देते रहते हैं।

इन में से एक एक बात पर कोई भी मानव गर्व कर सकता है, परन्तु जिस बात ने खुशहालचन्द जी को महात्मा और पंजाब में हिन्दी का कर्णधार बना दिया, वह था-हिन्दी मिलाप का प्रकाशन। यह सन् १९२९ की बात है आर्यसमाज के प्रचार के कारण पंजाब में हिन्दी का नाम तो लिया जाने लगा था, परन्तु पंजाब के माथे पर एक कलंक बराबर लगा हुआ था। अनेकों हिन्दी प्रेमियों ने पंजाब से हिन्दी में दैनिक पत्र जारी किये परन्तु अल्प काल में ही उन्हें प्रकाशन बंद कर देना पड़ा। किन्तु सन १९२९ में श्री खुशहालचंद जी ने इस कलंक को मेट डाला और उर्दू के गढ़ पंजाब में हिन्दी की पताका लहरा दी। इन तीस वर्षों में श्री खुशहालचन्द जी ने हिन्दी-मिलाप "में लगभग पांच लाख रुपये का घाटा सहा। हिन्दीमिलाप के पहले अंक में उन्होंने लिखा था कि "मैं अथाह सागर में छलांग लगा रहा हूं।" यह बात असत्य नहीं थी, परन्तु हिन्दी के प्रति उनका सच्चा प्यार और दृढ़-निष्ठा उन्हें इस अथाह सागर से भी किनारे पर ले आई। श्री खुशहालचन्द जी के संन्यास ले कर आनन्द स्वामी बन जाने के बाद उन के सुपुत्रों श्री रणवीर और श्री यश ने उन की लहराई हुई पताका को बराबर उठाये रखा। बटवारे के तुरन्त उपरांत अनेकों आर्थिक कठिनाइयां होते हुए उन्होंने "हिन्दीमिलाप" का प्रकाशन जारी रखा। आज "हिन्दीमिलाप" न केवल पंजाब का सर्व-प्रिय प्रमुख दैनिक है, अपितु हिन्दी मिलाप की कहानी पंजाब के पिछले ३० वर्ष के हिन्दी-आंदोलन के इतिहास की कहानी है। हिन्दीमिलाप हिन्दी साहित्यिकों के लिये एक प्रेरणा-स्रोत है।

पूज्य आनन्द स्वामी जी की हिन्दी साहित्य को केवल इतनी ही देन नहीं, उन्होंने अनेकों पुस्तकें भी लिखी हैं, जिन में से 'महात्मा हंसराज' की जीवनी 'प्रभु-भक्ति', 'प्रभुदर्शन' "तत्वज्ञान", "आनन्द गायत्री कथा," "एक ही रास्ता," "प्यारा ऋषि आदि प्रमुख हैं।

पंजाब महात्मा आनन्द स्वामी जी का ऋणी है। उन्होंने अपने तप, त्याग और सेवा से समूचे देश के लिए एक आदर्श उपस्थित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी हिन्दी की आराधना में :

साधक की तुच्छ भेंट

लेखक:—
भीमसेन विद्यालंकार, अम्बाला छावनी

स्रोतस्विनी—पैन-लोहलेखिनी-से, सीसाक्षरों में शुभ्र स्निग्ध कागज पर मुद्रित किये जाने के लिये लिखे जा रहे इस लेख को, लिखते समय सहसा मानसपटल पर, बचपन में अपने आपको किन्हीं के पास बैठा हुआ किसी हस्पताल के सामने के स्कूल के रेतीले—प्रांगन में अंगुलियों से भूमि पर रेखाएं खीचते हुए देखता हूं।

श्री हरगोविन्दपुर के बाहर हस्पताल के सामने के स्कूल के मैदान में पण्डित भगतराम जी मुझे तथा राजाकिशन कोट के सुपुत्र ठाकुर सुरेन्द्रसिंह जी को रेतीली भूमि पर अंगुलियों से देवनागरी वर्णमाला सिखाया करते थे। उस समय के–१६०५ ई०–उर्दू फारसी प्रधान पंचनद में देवनागरी को कौन पूछता था। परन्तु राजा-किशन कोट जी जन्म के ब्राह्मण थे। इनके यहां धार्मिक कर्तव्य के रूप में देवनागरी वर्णमाला सीखना आवश्यक था। इस लिये उन्होंने अपनी संतानों को हिन्दी देवनागरी सिखाई।

उन्हीं दिनों आर्यसमाज के संस्थापक ऋषिदयानन्द के संदेशहर, महात्मा मुन्शीराम जी स्वामी श्रद्धानन्द ने पंजाब में आर्यसमाजों के आन्दोलन को चलाते हुए, गुरुकुल स्थापित करने की आवाज उठाई और पंजाब की आर्य-जनता को गुरुकुल में अपनी संतानें भेजने को निमंत्रित किया। ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में निर्दिष्ट आदेशानुसार, माता पिता को गुरुकुल या विद्यालय में अपनी सन्तानें भेजने से पहले घर में देवनागरी वर्णमाला पढ़ानी चाहिए। इसी भावना से मेरे पूजनीय पिता श्री स्व० विशनदास जी ने जो स्वयं चौथी श्रेणी तक उर्दू पढ़े थे; मुझे भी भूमि की रेतीली तख्ती पर पं० भगतराम जी से देवनागरी वर्णमाला सीखने के लिये बैठाया। बुजुर्गों की बातचीत में कहे गये गुरुकुल शब्द को मैं तुतलाती बोली में 'गुरुटुल जाऊंगा' कह कर देवनागरी की वर्णमाला सीखने लगा।

१६०६ ई० में गंगापार-गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट हो गया। १४-१५ साल वहीं रह कर, हिन्दी में ही सब कुछ पढ़ा। संस्कृत अंग्रेज़ी भी हिन्दी माध्यम से पढ़ी। अर्थशास्त्र इतिहास भी हिन्दी माध्यम से इन विषयों की उपलभ्यमान अंग्रेज़ी पुस्तकों की सहायता से पढ़े। गुरुकुल माता की गोद में संस्कृतमयी—हिन्दी को मातृभाषा के रूप में पढ़ा। ६वीं श्रेणी में गोसाई तुलसीदास जी की रामायण का अयोध्याकांड, कुछ समय महात्मा मुन्शीराम जी से पढ़ा। महाविद्यालय विभाग में, सब विषयों का शिक्षा माध्यम हिन्दी भाषा होने से तथा पढ़ाने वाले अध्यापक उपाध्यायों (योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, धरणीधर वैद्य, दत्तात्रेय, आप्पा जी, लक्ष्मण शास्त्री, एय्यर जी, ठाकुर छेदीलाल जी, सेवाराम जी फेरवानी, ताराचन्द गाजरा; टीकमदास जी, डा० बालकृष्ण जी) के बंगाली, महाराष्ट्रीय, मद्रासी, सी. पी., यू. पी. सिंधी तथा पंजाब वासी होते हुये भी, हिन्दी माध्यम द्वारा पढ़ाने से, विविध प्रान्तीय पुटों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकृत हिन्दी का राष्ट्र भाषा वाला रूप हमें इसी समय प्रत्यक्ष हो गया, और हिन्दी भाषा को पृथक् स्वतन्त्र विषय के रूप में पढ़ने पढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। नवीं-दसवीं श्रेणियों में साहित्यचन्द्रिका, राजहंस, साप्ताहिक देवदूत तथा अर्ध-साप्ताहिक 'आजकल' के हस्तलिखित समाचार पत्रों के सम्पादन संचालन से तथाकथित हिन्दी विषय को पृथक् पढ़ने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। कालिज विभाग में अर्थशास्त्र-इतिहास के विषयों के प्रश्न पत्रों के हिन्दी में उत्तर लिखे। इस वातावरण ने विदेशी अंग्रेज़ी के लिये प्रतिकूल पैदा हुई भावनाओं के साथ साथ, अंग्रेज़ों की भाषा अंग्रेज़ी के जादू को मन पर अंकित न होने दिया।

सन् १९२१ ई० में स्नातक बन कर गुरुकुलभूमि से विदा हुआ। बाहर की दुनियां में आया। अपनी अभिजन भूमि श्री हरगोबिन्दपुर गया। वहां की उर्दू प्रधान पंजाबी को मैं न समझ सका। मेरी संस्कृत प्रधान हिन्दी को वे न समझ सके। गुरुकुल के आदर्शवादी स्वाधीनता-पूर्ण वातावरण में, यही संकल्प पनपा था कि बड़े होकर सम्पादक के रूप में देश व समाज की सेवा करूँगा। इसी धुन में सम्पादन कला में दीक्षित होने के लिये स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से--१९२१ ई० में कलकत्ता के देशभक्त स्व० श्यामसुन्दर चक्रवर्ती के 'सर्वेंट दैनिक' में उनकी छत्र छाया में दो महीने काम सीखा। उन दिनों महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन ज़ोरों पर था। बड़े बड़े शहरों में विदेशी वस्त्रों की होली हो रही थी। एक दिन श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने कलकत्ता की सार्वजनिक सभा में भाषण देना था। विदेशी वस्त्रों की होली होनी थी।

कलकत्तेमें मारवाड़ियों पंजाबियों और बिहार तथा उत्तरप्रदेश के अनेक धन्धे वालों के कारण, वहां की सार्वजनिक सभाओं में राष्ट्रभाषा हिन्दी में भाषण होते थे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती स्व० अरविन्द के क्रान्तिकारी साथियों में थे। देवनागरी वर्णमाला तो जानते थे परन्तु हिन्दी में भाषण न दे सकते थे। उन्होंने मुझे अंग्रेज़ी भाषण का देवनागरी हिन्दी में अनुवाद करने का आदेश दिया। उस दिन के अंग्रेज़ी दैनिक सर्वेंट का मुख्य लेख ही, उनका भाषण होना था। वह अपने सह-सम्पादक को अंग्रेज़ी में लेख लिखा रहे थे और इधर उसी मेज पर बैठा मैं उनके भाषण का तत्काल देवनागरी हिन्दी में अनुवाद कर रहा था। सह-सम्पादक को अंग्रेज़ी लेख लिखाने के बाद उन्होंने मुझे इसका देवनागरी हिन्दी में अनुवाद करने को कहा—मैंने कहा—वह तो मैं आपके अंग्रेज़ी लेख लिखाने के साथ साथ कर चुका हूं। आप सुन लीजिये। सुन कर वह आश्चर्यचकित हो गये और उनके पास से विदा होते समय उन्होंने मुझे निम्न-लिखित प्रमाण-पत्र दियाः—

Shriman, Bhim Sen Vidyalankar, is a promising journalist. I have been very fond of him. He is so well up in Hindi, that he took me by surprise, on one occassion, when he did in Hindi a speech in English, I happened to dictate to him. He is highly intelligent youngman with industrious habits. His manners are too charming. With a few days more of application he is bound to make a journalist.

Sham Sunder Chakravaty

Calcutta—18-7-1921.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रमाणपत्र मेरी व्यक्तिगत योग्यता का सूचक नहीं, अपितु गुरुकुल कांगड़ी के हिन्दीमय वातावरण की विशेषता को सूचित करता है। सम्पादन कला में अभिरुचि रखने वाले गुरुकुल के स्नातक स्वभावत: हिन्दी में सराहनीय योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इसका मूलकारण गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा का (कैमिस्ट्री भौतिकी इतिहास अर्थशास्त्र अंग्रेज़ी शिक्षण) हिन्दी माध्यम द्वारा होना ही है। सैडलर—कमीशन तथा श्री निवास शास्त्री को भी गुरुकुल महाविद्यालय के विद्यार्थियों की इन विषयों की योग्यता को देख कर कहना पड़ा था कि "हिन्दी माध्यम से इन विषयों की शिक्षा नहीं हो सकती" की धारणा हमें यहां आकर बदलनी पड़ी है। गुरुकुल में अधिकांश पंजाब के विद्यार्थी होते थे, और गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर पंजाबी जनता भारी संख्या में आती थी। इस सम्पर्क से गुरुकुल के कारण पंजाब के सार्वजनिक जीवन में संस्कृत प्रधान हिन्दी को विशेष स्थान मिला। हिन्दी पंजाब के सार्वजनिक सभाओं की भाषा बन गई। इसके बाद घटनाक्रम के फेर से मैं दो महीने बंगलौर, मैसूर में, स्वामी श्रद्धानन्द जी के आदेश से आर्य समाज की ओर से हिंदी पढ़ाने का कार्य कर, एक डेढ़ साल गुरुकुल में इतिहास, अर्थशास्त्र तथा राजनीति अध्यापन का अवैतनिक कार्य कर दिल्ली से प्रकाशित दैनिक अर्जुन के सम्पादक रूप में दिल्ली रहा। पं० इन्द्र जी विद्यावचस्पति इसके मुख्य सम्पादक तथा व्यवस्थापक थे। पता नहीं किन भावनाओं से प्रेरित होकर, पंजाब में हिन्दी का सन्देश सुनाने का संकल्प हृदय में उभरा। दिल्ली के दैनिक अर्जुन के सर्वथा अनुकूल, साहित्यिक भ्रातृ-भाव प्रधान वातावरण को छोड़ कर उर्दू के गढ़ लाहौर की ओर प्रस्थित हुआ। लाहौर से हिन्दी का साप्ताहिक सत्यवादी निकालने का संकल्प किया। इसी समय स्वर्गीय नरसिंह चिन्तामणि केलकर की भूमिका के साथ हिन्दी में 'वीर मराठे' नाम की 'नवयुग ग्रंथमाला' की प्रथम साहित्यिक रचना अर्जुन प्रेस से प्रकाशितकी। सत्यवादी के प्रथम अंक के लिये स्वामी श्रद्धानन्द जी का आशीर्वाद, कबीर के इस दोहे के साथ प्राप्त किया—

सिंहों के नहिं लहँडे, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चले जमात॥

लाहौर में दलबन्दी से पृथक् रह कर, कबीर आदि सन्तों की भाषा—हिन्दी की सेवा में, उर्दू प्रधान वातावरण में अकेला ही जुट गया। दिल्ली में महात्मा गांधी जी से इसी सत्यवादी के लिये सन्देश आशीर्वाद लेने गया, तो कहने लगे देखता हूं गुरुकुल के स्नातक गुरुकुल से बाहर आकर पंजाब में काम नहीं करते, क्योंकि वहां उर्दू भाषा होने से उन्हें हिन्दी द्वारा काम करने में सुविधा नहीं होती। असल में पंजाब में हिन्दी प्रचार का काम ही ठीक ढंग से नहीं हुआ। मैं तो इसके लिये स्वयं हिन्दी अध्यापक बन कर जनता को हिन्दी पढ़ाने का काम करना चाहूंगा—और कहा कि मुझे तो अब इसके लिये फ़ुर्सत नहीं—मेरा आशीर्वाद तो है ही।

मैं सत्यवादी हिन्दी साप्ताहिक निकालने की धुन से लाहौर में आया था। उन दिनों लाहौर में हिन्दी के एक-दो ही प्रेस थे। विद्याप्रकाश प्रेस में सत्यवादी छपाना आरम्भ किया। इसी प्रेस को सत्यवादी के लिये खरीदने का सौदा मालिक से हो गया। परन्तु मालिक को किसी ज्योतिषी ने नियत शुभ मुहूर्त न होने से सौदा न करने की सलाह दी। पुराने ढंग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर जी अड़ गये। अपना प्रेस न होने पर भी सत्यवादी कुछ महीने चला और फिर बन्द हो गया। प्रारम्भ में चार ग्राहक थे, ३-४ महीने में भ्रमण कर ६०० ग्राहक बनाये। इसमें साहित्यिक राजनैतिक लेखों की प्रधानता रहती थी। श्री सावरकर की आत्मकथा, डा. सत्यपाल भाई परमानन्द जी, सरदार भगतसिंह, भगवती चरण जी के लेखों के साथ साथ पंजाबी कवियों, तथा जालन्धर महा विद्यालय की छात्राओं, स्नातिकाओं की रचनाएँ छपती थीं।

इन दिनों लाहौर में हिन्दी का समाचार पत्र निकालना आर्थिक घाटे का काम था। हिन्दी प्रकाशक और हिन्दी प्रेस नाम मात्र के कहीं कहीं दिखाई देते थे।

❀ ❀ ❀

इसके बाद, हिन्दी आकाशवाणी के संचालक सम्पादक स्वर्गीय भाई परमानन्द जी की प्रेरणा से कुछ समय कौमी कालेज लाहौर में हिन्दी उपाध्याय का काम किया। इस कालेज में पं० चेतराम जी की छत्रछाया में राष्ट्रीय भावना प्रधान हिन्दी के अनुकूल वातावरण पैदा हो चुका था। इसी कालेज के छात्रों ने प्रथमबार लाहौर में 'भारत दुर्दशा' नाटक का अभिनय किया। इसका सचित्र उल्लेख इसी स्मृतिग्रंथ में अन्यत्र प्रकाशित किया गया है।

इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में लोकमत संगठित कर, फारसी उर्दू अंग्रेजी प्रेमियों के विरोध में, आर्थिक घाटे की दुहाई देने के बावजूद भी, मासिक आर्य को साप्ताहिक आर्य के रूप में प्रकाशित कराया। उसमें कुछ समय अवैतनिक सम्पादन कार्य करते हुये पंजाब के मुख्य मुख्य शहरों में घूम घूमकर जनता को सार्वजनिक भाषा के रूप में हिन्दी अपनाने की प्रेरणा की। सन्तोष की बात है कि वह आर्य अभी तक साप्ताहिक रूप में चल रहा है।

इन्हीं दिनों पंजाब के सौभाग्य से स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी की प्रेरणा से श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन लाहौर में पंजाब नेशनल बैंक में मुख्य प्रबन्धक होकर आए। उनके आने से पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को विशेष बल मिला। श्री सन्तराम ग्रोवर, स्व० डा० लक्ष्मण स्वरूप जी, श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी तथा लेखक ने श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की छत्रछाया में सम्मेलन को संगठित किया। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने स्वयं हिन्दी प्रचार का कार्य बैंक से आने के बाद प्रभाकर परीक्षा के छात्रों को हिन्दी पढ़ाने के रूप में किया। उन दिनों प्रभाकर परीक्षा में नियत सतसई आदि की कुञ्जियां नहीं बनी थीं। मूल ग्रंथ की व्याख्या करने वाले विरले थे। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन ने गोपालदेवी जी आदि जालंधर महाविद्यालय की छात्राओं स्नातिकाओं को हिन्दी पढ़ाई। कुछ समय अपने सुपुत्र गुरुप्रसाद जी को भी इस कार्य पर नियत किया था। इसी सिलसिले के अनुकरण में सम्मेलन की ओर से परीमहल में दुकानदारों को हिन्दी पढ़ाने का काम लेखक ने भी किया। साथ ही हिन्दी को साम्प्रदायिकता रहित राष्ट्रीयता का सूचक बनाने के लिये श्री टण्डन जी ने स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी की स्मृति में पंजाब केसरी नाम से राष्ट्रीय राजनैतिक साप्ताहिक पत्र निकाला। इसने राजनैतिक रुचि वाली जनता को हिन्दी की ओर आकृष्ट किया। स्वर्गीय भगवतीचरण वर्मा, भगतसिंह सुखदेव जी आदि इस पत्र से सम्बद्ध हो गये। बटुकेश्वरदत्त तथा भगतसिंह के एसम्बली में बम फेंकने की घटना का, सचित्र रोमांचकारी समाचार, लाहौर में सब से पहले पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमी कालेज लाहौर के छात्रों द्वारा हिन्दी नाटक समाज की ओर से खेले गये, 'भारत दुर्दशा' नाटक का एक दृश्य

इसी कौमी कालेज के श्री यशपाल जी, स्व० स० भगतसिंह के सहाध्यायी आज कल लखनऊ में विप्लव प्रकाशन नाम से हिन्दी में कहानी उपन्यास साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। पेप्सु सरकार ने इन्हें अभिनन्दन भेंट किया था।

बाईं ओर से खड़े हुए—पञ्चमचन्द्र, स० जसवन्त सिंह, बलदेव, कुञ्जविहारी, शोरीलाल, (राजेन्द्रकुमार) जगदीश्वर नाथ, गंगाराम, स्व० स० भगतसिंह हुतात्मा रामचन्द्र, जयदेव, हवेलीराम (प्रेमचन्द)

,, ,, कुर्सियों पर—स्व० भारतभूषण, पूर्णचन्द्र (इन्स्पैक्टर), आचार्य युगलकिशोर, पं० उदयवीर सिंह, स्व० धर्माभिलाषी, हरिबंशलाल

,, ,, भूमि पर—जगमोहन, भगवती स्वरूप, ओंकारनाथ, सत्यदेव, केदारनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केसरी में ही छपा। पंजाब केसरी लाहौर में सफलता पूर्वक निकला और १६२६ ई० की लाहौर कांग्रेस के दिनों में दैनिक रूप में पंजाब के प्रथम हिन्दी दैनिक होने का सौभाग्य प्राप्त किया।

इसी अवसर पर स्वर्गीय सरदार बलभभाई पटेल के सभापतित्व में रावी के तट पर, राष्ट्रीयमहासभा कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन १६२६ ई० में २६ दिसम्बर को किया गया। डा० खानसाहब तथा खां अब्दुल गफ्फार खां ने भी इसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाने की प्रेरणा करनेवाले भाषण दिये। सरदार पटेल ने अपने भाषण में, अपनी शिमला यात्रा का वर्णन करते हुये शिमला नगरी में रहने वाली शिक्षित पंजाबी पुरुषों तथा महिलाओं के परस्पर अंग्रेजी भाषा में बात चीत करने के फैशन पर आश्चर्य प्रकट किया, और पंजाबियों को राष्ट्रभाषा हिन्दी अपनाने पर जोर दिया।

राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के बाद, पंजाब में विशेषतः लाहौर में, राजनैतिक आन्दोलन की तीव्रता के साथ साथ हिन्दी राष्ट्रभाषा–प्रचार–आन्दोलन विशेष रूप से चमका। राजनैतिक क्रान्तिकारी आन्दोलन सम्बन्धी साहित्य प्रायः हिन्दी में अधिक ही मात्रा में मिलता था। अतः लाहौर में राजनैतिक क्रान्तिकारी युवकों में हिन्दी विशेषप्रिय हुई। परिणामतः हिन्दी मुद्रणालयों, हिन्दी पुस्तक प्रकाशकों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी रत्न, भूषण परीक्षाओं ने भी हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के धन्धे को घाटे वाला होने के स्थान पर, अर्थोपार्जन का सफल साधन बना दिया। परिणाम यह हुआ कि जहां १६२४ में नाममात्र के दो तीन हिन्दी प्रेस तथा एक दो हिन्दीप्रकाशक अंगुलियों पर गिने जा सकते थे यहां १६४७ ई. में देशविभाजन के समय, गणपतराय रोड, मोहनलाल रोड, हस्पताल रोड, ग्वालमण्डी कृष्णागली, तथा निस्बत रोड हिन्दी प्रैस तथा हिन्दी प्रकाशकों के मुख्य केन्द्र बन गये। नवयुग प्रैस, सरस्वती भवन, भारती भवन, पंजाब पुस्तक भण्डार सूरी ब्रदर्स, व्रतीभ्राता हिन्दी भवन, राजपाल एण्ड सन्स, इंडियन प्रेस आदि प्रकाशन संस्थाएँ जगह-जगह पर दिखाई देने लगीं।

लाहौर की साधारण जनता में हिन्दी प्रचार के लिये श्री वितस्ता प्रसाद जी फिदा ने जो उर्दू के कवि थे—हिन्दी प्रेम के कारण हिन्दी में कविता करनी शुरू कर दी। श्री रामगोपाल जी वैद्यशास्त्री; तथा कविराज जयगोपाल जी (इन्होंने दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश का हिन्दी दोहा चौपाई में उलथा किया) आदि ने लाहौर के शाहलमी दरवाज़े केमुहल्लों, दूकानदारों में हिन्दी प्रचारिणी सभा द्वारा काम किया; और हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था की। इस दिशा में बादशाह अकबर के 'दीन इलाही' के जन्मस्थान धर्मपुरा की नई बस्ती में स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा ने घूम घूम कर लोगों के नामपट्ट हिन्दी में लिखाये। वाचनालय पुस्तकालय खोल कर हिन्दी आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बनाया। इसी प्रकार लाहौर छावनी में स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा ने रा० साहब नवल किशोर जी तथा प्रसिद्ध गोभक्त भगवानदास जी रईस की सहायता से इस दिशा में रचनात्मक ढंग से विशेष कार्य किया। इसके इलावा लाहौर के प्रसिद्ध शीतला-मन्दिर के महन्त बलदेव गिरि जी को भी स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा लाहौर का प्रधान निर्वाचित कर उनके द्वारा शीतला मन्दिर को भी हिन्दी—रत्न, भूषण, प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षाओं का केन्द्र बनाया गया। लाहौर में हिन्दी साहित्यकारों की प्रगतियों का जीता जागता विवरण-चित्रण स्मृतिग्रंथ के संस्मरण सम्बन्धी लेखों में अनेक लेखकों द्वारा अंकित किया गया है। यही नहीं काशीनागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक श्री रामनारायण मिश्र ने भी समय समय पर लाहौर पधार कर इस दिशा में विशेष उत्साह प्रदर्शन किया और लाहौर की नागरिक जनता में हिन्दी के लिये रुचि पैदा की। सनातनधर्म कालेज व स्कूल, डी. ए. वी. कालेज व स्कूल तथा गवर्नमैंट कालेज और दयालसिंह कालेजों के हिन्दी विद्यार्थियों की सभाएँ तथा उपाध्याय श्री विश्ववन्धु जी, श्री भगवद्दत्त जी बी. ए., श्री डा० रघुवीर जी श्री प्रो० जयचन्द जी एम. ए. श्री डा० लक्ष्मण स्वरूप जी, श्री गुलबहार सिंह जी, धर्मवीर जी एम. ए. आदि पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्वान् भी ओरियण्टल कालेज द्वारा हिन्दी को पंजाब की साहित्यिक भाषा बनाने में लगे रहे; और पर्याप्त अंश में सफल हुये। इसके इलावा श्रीनगर-कश्मीर के वयोवृद्ध पं० मुकन्दराम जी, (पं० लोकनाथ जी एडवोकेट के पिता) ने हजारों की संख्या में देव नागरी वर्णमाला चित्रपट-चार्ट निःशुल्क बांटकर हिन्दी देवनागरी का पंजाब काश्मीर में प्रचार किया।

इन संस्मरणों को समाप्त करते हुये सहसा एक दो संस्मरण मानस पटल पर तरंगित हो रहे हैं।

एक बार मैं हिन्दी प्रचार की धुन में मौलाना जफ़र अली के पास, उनके अख़बार जमींदार के कार्यालय में गया और उनसे भेंट मुलाकात में हिन्दी पढ़ने तथा अपनाने को कहा। मेरी बात सुनते ही कहने लगे कि क्या आप पंजाब से उर्दू को निकालना चाहते हैं। मैंने कहा नहीं Live and let live "स्वयं जीवो और दूसरों को जीने दो" की नीति के अनुसार दोनों तरक्की करें। और इसी भावना से यदि आप कहें तो मैं आपको हिन्दी पढ़ाने आ सकता हूं। इसके बाद फिर उनसे मिलने का मौका न मिला। पंजाब की कांग्रेस में हिन्दी को स्थान न मिल सका। उर्दू का ही दौर दौरा रहा। मैंने एक दो बार परीमहल कांग्रेस कमेटी का सदस्य बन कर हिन्दी में प्रस्ताव आदि पेश करने चाहे परन्तु सफल न हुआ।

* * *

एक बार श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी टण्डन सम्भवतः डी. ए. वी. कालेज या स्कूल में पारितोषिक वितरण करने गये। पारितोषक रूप में वितरण की जाने वाली पुस्तकों में ग़लती से उर्दु का एक सत्यार्थप्रकाश रखा गया। पारितोषक देते हुये अचानक टण्डन जी ने पूछा यह कौन सी पुस्तक है? देखने पर पता चला उर्दू का सत्यार्थप्रकाश है। उन्होंने पुस्तक को भरी सभा में जमीन पर पटकते हुये कहा—यह क्या तमाशा है। मूल पुस्तक हिन्दी में हो उसका उर्दू अनुवाद विद्यार्थियों को पारितोषक में दिया जाय। क्या मज़ाक है। राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार ऐसे नहीं होगा।

* * *

मौडर्न रिव्यू के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गीय रामानन्द जी चैटर्जी ने एक बार लाहौर में वच्छोवाली आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर किसी सभा में भाषण करते हुये कहा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यद्यपि मैं ब्रह्मसमाजी हूँ, तो भी मुझे यह मानने में संकोच नहीं कि ऋषि दयानन्द ने स्वयं गुजराती होते हुये उर्दू प्रधान पंजाब को:—जो कभी आर्य संस्कृति का मूलस्रोत था; सदियों से मुसलमानों के राजनैतिक आधिपत्य के कारण भारत से सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वथा पृथक् हो चुका था—फिर से आर्यसमाजों के व्यापक संगठन द्वारा संस्कृत हिन्दी पाठशालाएँ खुलवा कर, भारतवर्ष का अंग बना दिया था। ऋषि दयानन्द की यह सांस्कृतिक विजय किसी भी राजनैतिक विजय से कम महत्व की नहीं है। इस सदी में पेशावर तथा कोटा आदि सीमावर्ती मुसलिम प्रधान स्थानों को भाषा संस्कृति की दृष्टि से भारत का अविभाज्य अंग बनाने वाला ऋषि दयानन्द ही है। इसी लिये आर्यसमाज के नेता लाला लाजपतराय तथा डा० सत्यपाल, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री म० हंसराज जी राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाते रहे। डा० सत्यपाल जी समय समय पर हिन्दी पत्रों में स्वयं देवनागरी लिपि में लेख भी लिखते थे।

अमृतसर में १९१९ ई० के इंडियन नैशनल कांग्रेस के रंगमंच से स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रथमबार राष्ट्रभाषा हिन्दी में स्वागत भाषण पढ़ा था।

❀ ❀ ❀

१९४७ ई० में देश विभाजन या पंजाब विभाजन के समय, पंजाब की राजधानी लाहौर, हिन्दी का गढ़ बन चुका था। उत्तर प्रदेश—राजस्थान आदि हिन्दी भाषा भाषी विविध प्रान्तों के अनेक कवि लेखक, पत्रकार पंजाबी न होते हुये भी; पंजाबी जनता के उग्र हिन्दी प्रेम पर भरोसा रख कर केवल साहित्य सेवा नहीं अपितु, 'काव्यं यशसे ऽथकृते' के अनुसार हिन्दी सेवा द्वारा अर्थोपार्जन के लिये भी पंजाब में आकर बसे। कई विवाह सम्बन्धों द्वारा पंजाबी बने। कई कविताओं द्वारा पंजाबी बने। कई स्कूलों कालेजों में अध्यापक बन कर हिन्दी सेवी पंजाबी बने। १९२७ ई० से लेकर १९४७ ई० तक २० साल में, उर्दू की नगरी, हिन्दी की रसीली कविताओं से गुञ्जायमान नगरी बन गई।

अनेक निष्काम, सकाम हिन्दी प्रेमियों के यत्नों तथा साधनाओं से, हिन्दी के आदि कवि चन्दवरदाई की जन्म भूमि लाहौर, फिर से यथार्थ में प्रथम हिन्दी कवि चन्दवरदाई की प्रिय भूमि बन गई। इस साधना युग में—प्रचार युग में—श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, श्री स्वामीकेशवानन्द जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, तथा अन्य हिन्दी माता के सेवकों की रस भरी ओजस्विनी कथाओं ने पंजाब के वातावरण को साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से हिन्दीमय बना दिया। इस लेखक ने भी इस काल में संगठन सामग्री को जुटाते हुये, वर्तमान युग के संजय व नारद के प्रतिनिधि हिन्दी समाचार पत्रों द्वारा हिन्दी प्रचार करते हुये, जनवरी १९४७ ई० में हिन्दु मुसलमानों के दंगों की नरमेधाग्नि की ज्वालाओं से उत्तप्त-प्रदीप्त लाहौर में 'शिवाजी' और 'वीर पंजाबी' ग्रन्थों को लिखकर पंजाब के हुतात्मा वीरों की आत्माओं की सेवा में साहित्यिक भेंट अर्पित की और १९२७ ई० के हिन्दी शून्य वातावरण को १९४७ ई० में हिन्दीमय हुआ देखकर अपने आप को किसी अंश में हिन्दी का तुच्छ सफल सेवक समझा; और जीवन का शेष समय भी हिन्दी साहित्य रचना में लगाने का संकल्प किया। परन्तु किसी को क्या पता था कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा! हन्त!! हन्त!!! नलिनीं कलि रुज्जहार॥

के अनुसार, हिन्दी कविताओं से गूँज रही लाहौर नगरी—ब्रिटिश सिंह द्वारा परस्पर लड़ाये जा रहे हिन्दु-मुसलमानों के गज-मगरमच्छ व सुन्दोपसुन्द के आत्मघाती द्वन्द्वयुद्ध में मथी जायगी, और हिन्दी साधकों के अधखिले हृदय कमल कलह के अग्निकणों से भस्मसात् हो जायेंगे। आज उस लाहौर नगरी में—देव नागरी हिन्दी का नामोनिशान भी नहीं; परन्तु निराशा में आशा—अमावस में पूर्णिमा, निशान्त में उषा की झलक; अब भी भारत के आकाश में चमक रही है। मुसलमानों, पठानों, मुगलों और उर्दू दानों की नगरी दिल्ली में—राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमी साधकों ने भारतीय संसद् में, देवनागरी हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के, स्वर्ण सिंहासन पर आसीन कर—हिन्दी को भारतमाता की सौभाग्य विन्दी बना दिया है।

परन्तु पंचनद के राजनैतिक नेता परम्परागत परस्परसंघर्षशील झगड़ालू स्वभाव के कारण सामुदायिक राजनैतिक स्वार्थ साधना में जूझे हुये; फारसी उर्दू और रोमन अंग्रेजी को अपना रहे हैं, और देवनागरी गुरुमुखी संघर्ष को जन्म देकर, राजभाषा राष्ट्रभाषा—हिन्दी भाषा के साथ द्रोह कर रहे हैं। चन्दबरदाई, गुरुनानक, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोबिन्दसिंह, और ऋषि दयानन्द द्वारा सेवित देवनागरी छिन्न-भिन्न पंजाब में, विशेष रूप से तथाकथित पंजाबी क्षेत्र में अन्तर्वेदना की पीड़ा से कराह रही है। क्या कोई इस कराह को सुनेगा !!! ❀

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन तथा उनके सभापति

पं० जयचन्द जी के पंजाब छोड़ने के बाद श्री डा० लक्ष्मण स्वरूप जी सम्मेलन के प्रधानमन्त्री १९२९ ई० तक रहे। १९३० ई० जालन्धर में श्रीमती कमला बाई किवे; १९३१ ई० ३१ मई अमृतसर में श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज; १९३२ ई० ४ जून गुजरांवाला में श्री स्व० भाई परमानन्द जी; १९३३ ई० ५ मई जम्मू में श्री स्व० देवराज जी संस्थापक कन्या महाविद्यालय जालन्धर; १९३४ ई० अप्रैल में अबोहर में महात्मा हंसराज जी सभापति बने।

१९३५ ई० अप्रैल में लायलपुर अधिवेशन में सभापति श्री डा० लक्ष्मण स्वरूप जी थे। १९३०—३५ तक भीमसेन विद्यालंकार पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के प्रधानमन्त्री रहे। इसके बाद श्रीयुत प्रो० वशिष्ठ जी, वायस प्रिंसिपल सनातन धर्म कालेज पठानकोट; १९४७ ई० तक प्रधानमन्त्री रहे। कुछ ऐसा भान होता है कि बीच के कुछेक वर्षों में श्री माधव जी तथा श्री भानुदत्त जी मुलतानी भी प्रधानमन्त्री रहे। वार्षिक अधिवेशन पंजाब के मुख्य २ शहरों में होते रहे। १९४७ ई० का वार्षिक अधिवेशन अम्बाला छावनी में श्री राणा जंगबहादुर सिंह जी के सभापतित्व में होना था, परन्तु पंजाब विभाजन से सब सिलसिला टूट गया।

१९४७ के बाद—१९५० ई० में अम्बाला छावनी में श्री सीतादेवी जी एम. एल. ए.; १९५२ में हिसार में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी; १९५४ में अमृतसर में श्री स्व० डा० सत्यपाल जी स्पीकर पंजाब एसम्बली; १९५५ अक्टूबर में जालन्धर में श्री प्रिंसिपल रलाराम जी डी. ए. वी. कालेज हुशियारपुर सभापति बने। सम्मेलन के आगामी वार्षिक अधिवेशन के लिये श्री यश जी एम. एल. सी सम्पादक हिन्दीमिलाप सभापति निर्वाचित हुये हैं। १९५० से आज तक श्री भीमसेन जी विद्यालंकार प्रधानमन्त्री हैं। १८-१२-१९५७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ याद आये तब तो !

लेखक—श्री राणा जंगबहादुर सिंह जी (भूतपूर्व सम्पादक 'ट्रिब्यून' और टाइम्ज़ आफ़ इण्डिया तथा नव भारत न्यूनैस्ट न्यू दिल्ली।

भीमसेन जी दो-तीन महीने से इसरार कर रहे हैं; देश-विभाजन के पूर्व काल की पंजाब के हिन्दी-प्रसार सम्बन्धी कथा कहिए, कहिए, अवश्य चाहे कितनी ही संक्षिप्त हो। टालने के लिए मैंने अपनी एक विदेश-यात्रा की कहानी, जो पहले से लिखी रखी थी, भेज दी। परन्तु मित्रवर नहीं टले। बराबर यही लिखते रहे; संस्मरण वाला लेख भेजिए। और मजा यह कि मेरे सफ़र की दास्तान उन्होंने घाते में ही हथिया ली, छाप दिया तपाक से, परन्तु गिन्ती में बिलकुल न लाए। मुझे संस्मरण के ढंग का लेख लिखने से इंकार नहीं है। लेकिन कुछ याद आए तब तो ! ऐसा लेख ऐसी डायरियों या परचिओं के सहारे ही लिखा जाता है, जिनमें कभी कुछ टीप लिया और कभी कुछ टाँक लिया हो। पहले तो ऐसी कोई खास याद दानियां रखी नहीं। और जो साधारण सी रखीं वह पंजाब के उथल-पुथल में लुप्त हो गईं। जिस प्रदेश के पारों में अपना रोयां रोयां समाया हुआ था, उसके खंडित होने से स्मृति-पट में दरारें पड़नी ही थीं पड़ीं। स्मृति-पट चिटखा ही नहीं है, उस पर अंकित रेखाएँ भी अधमिटी हो गईं। उसे बांच कर हिन्दी की पुरानी पंजाबी कहानी कहना टेढ़ी खीर है।

फिर यह मेरी चेष्टा भी तो अनधिकार चेष्टा होगी। हिन्दी के क्षेत्र में मैं तो टुटूसवारों, में था। यह बात दूसरी है कि भीमसेन जी ऐसे दोस्तों ने यूँ ही ठोंक पीठ कर मुझे शहसवार बना रखा था और मौका बेमौका मुझे साहित्यिक सभा-सोसयिटियों में ऊँची जगह बिठा देते थे। लेकिन सोलहों आने (नए सिक्कों के अनुसार नया मुहावरा होना चाहिए, सौवों पैसे) उन पर क्यों दोषारोपण करूं। कुछ अपना भी अपराध था वह नत मस्तक ओढ़ता हूँ। कुछ घटिया किताबें लिख कर, कुछ रद्दी लेख घसीट कर, और कुछ अपनी वातुलता का प्रदर्शन करके, लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रखा था। उसी से शामत आई। शामत आती है तो फिर आती रहती है। एक बात और है। अंग्रेजी के अखबार में काम करने वाला कोई जीव यदि हिन्दी के मैदान में कलम के हाथ दिखाने का प्रयत्न करता है, तो वह एक विचित्र जन्तु समझा जाने लगता है। विचित्रता के सिर अक्सर सेहरा बँधता है। कुछ हिन्दी सम्मेलनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे सहृदय यारों ने मान पत्र दे दिए थे। किस्मत की मार देखिए, जो थोड़ी बहुत चीजें लाहौर से निकल आईं उनमें वह मुद्रित और फ्रेमित (फ्रेम में लगी हुई) स्तुतियां भी हैं। उन्हें देखता हूँ, तो पुरानी मुरझाई ग़लतफ़हमी, हरी हो जाती है। ख्याल आता है, हाँ. कुछ हूं। यह तो अवश्य विचार होता है, हाँ. कुछ होता था। कमाल की है उस विचार की पेंग। नशा आ गया। उसी नशे में भीमसेन जी के अनुरोध को शिरोधार्य समझकर यह चिंघारें खींच रहा हूं।

प्रारम्भ भीमसेन जी से ही करता हूं। वह कहते रहें, मुझे कांटों में न घसीटिए, मैं उनकी हाय दुहाई कतई नहीं सुनूंगा। वह निस्सन्देह उन खूंटों में से एक थे जिनके सहारे हिन्दी आन्दोलन संयुक्त पंजाब में नाचता था। उनका 'हिन्दी-सन्देश'' तब लाहौर में अमर मशाल की तरह अखंडित, प्रदेश में प्रकाश फैलाता था और अब अम्बाले से खंडित प्रदेश को रोशनी देता है। उनका सरल और मृदुल व्यक्तित्व टूटे पंजाब में हिन्दी सेवियों के लिए ऐसी पूंजी है, जिसके बल पर वह बढ़ चढ़ कर दाँव सकते हैं। लाहौर में केवल पत्रिका निकालना और लेख लिखना ही उनका काम नहीं था, उन्हें बैठकें और गोष्ठियों का संगठन करने की भी धुन थी। उनके इस स्वभाव का प्रसाद, अब इधर लोगों को खूब प्राप्त है।

संयुक्त पंजाब में तीन मुख्य शक्तियां हिन्दी के प्रचार में जुटी हुई थीं—एक आर्य समाजी, दूसरी सनातनी, तीसरी साहित्य सम्मेलनी। साहित्य सम्मेलनी शक्ति में बहुधा समाजी और सनातनी शक्ति का समावेश होता था। ऐसा तो भग्न पंजाब में भी होता है। लेकिन जो विशालता और उदारता संयुक्त काल की त्रिवेणी में थी, वह भग्न काल की त्रिवेणी में नहीं रही। भीमसेन जी आर्य समाज से सम्बन्ध रखते थे। परन्तु साहित्य सम्मेलन में उनका व्यक्तित्व और उनके समान अन्य समाजियों के व्यक्तित्व सनातन धर्मियों के व्यक्तित्व में ऐसे मिल जाते थे जैसे मक्खन मिश्री। और वातावरण ऐसा था कि सभी पंजाबी संस्कृतियां इससे प्रसन्न होती थीं। बल्कि ऐसी शुभ स्थिति के वरदान में उन सब का भाग था। रत्न, भूषण, प्रभाकर, ज्ञानी, बुद्धिमान, विद्वान एक ही इंद्रधनुष के भिन्न २ रंग थे जिनसे हमारा जीवन गगन सजा हुआ था। अब तो भाषा-वैमनस्य और लिपि संकीर्णता का बाज़ार गरम है। उस में संयुक्त पंजाब के अनेक पुराने हिन्दी प्रेमी तमाशाई के रूप में जाने का भी साहस नहीं कर सकते।

लाहौर हिन्दी प्रेमियों, साहित्य सेवियों रथियों और महारथियों का केन्द्र था। गोस्वामी जी वहां से, वशिष्ट जी और माधव जी ऐसे प्रचंड साथियों को साथ लेकर प्रचारार्थ ऐसे हल्ला बोला करते थे जैसे तीव्रवात फूल, फलों के बीज समेट कर दूर-दूर तक समृद्धि-दुंदुभि बजाता है। मुझे गुजरांवाला के एक हिन्दी सम्मेलन की याद आ रही है, जिसके कर्णधार वशिष्ट जी थे। जितना भीड़ का डील डौल उतना ही उसका रंग रूप इस बात का साक्षी था कि हिन्दी-प्रेम व्यापी है। कार्यवाही इतनी देर तक चलती रही कि रात भीग गई परन्तु जन साधारण डटा रहा। साहित्य-संयम के साथ भाषा-भम्भड़ भी था। भाषा-भड़भड़ न होता, तो मुझे चौधरी क्यों बनाया जाता। अपनी चौधरीपन की चटक याद के साथ, उस मेले की जो धुंधली याद बनी है, वह याद इन साहित्यिक अशिष्टता के दिनों में मेरी सांस्कृतिक आशावादिता का आधार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौधरीपन के व्यापार में मुझे अबोहर भी दो तीन बार जाना पड़ा था। वहां स्वामी केशवानन्द जी ने तेगराम जी ऐसे त्यागी हिन्दीसेवियों की सहायता से रेत में बीज बोकर उससे ऐसा बटकाय वृक्ष बनाया है जिसकी दूर तक फैली छाया से सुरक्षित और पोषित हिन्दी भाषा अनवरत फैल रही है। अबोहर के आश्रम से एक सुन्दर मैगज़ीन प्रकाशित होती थी। उसको स्वावलम्बी बनाने के लिए एक छोटा मोटा प्रेस लगाने की तैयारी हो रही थी। मुझे बुलाया गया था चलता फिरता पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिए। पहिए लगे हुए किताबों की फेरी उस इलाके के लिए एक अनोखी बात थी। स्वामी जी की अलबेली सूझ ने अबोहर में और अबोहर के आसपास हिन्दी के हित में कई बढ़िया कौतुक किए थे। मोती चुनने की वृत्ति वाले साहित्य-हंस काका कालेलकर जी से पहली बार मेरी भेंट अबोहर में ही हुई, जहां मेरी तरह वह भी केशव कौतुक देखने आए थे। रामायण पाठ का मुझे चस्का है। उस चस्के के कारण उस भाषा-भाव-विचार की कान से कुछ ग्रहण कर लिया है उसी के कुछ एक विन्दु पर काका जी से बात चीत का आनन्द उठाया। अबोहर एक साहित्यिक तीर्थ स्थान है। वहाँ अब भी और नहीं तो, नन्हें मुन्ने मेले लगते ही होंगे। वह तो उस पंजाबी भू-भाग में है, जो सौभाग्य से अपने पास रह गया है।

लाहौर में हिन्दी के महान नेता टण्डन जी बरसों रहे। कुछ लोग उन्हें हिन्दी का ऐसा घोर पक्षपाती समझते हैं, कि उनके द्वारा अन्य भाषाओं के प्रति अन्याय होने की सम्भावना मान बैठते हैं। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि उनके हृदय की नभवत् उदारता में सभी भाषाएं समा सकती हैं। इस शोचनीय संघर्ष काल में पंजाबी के प्रति उन्होंने जो स्नेह दर्शाया है, वह उसका ज्वलंत उदाहरण है। यह कोई अचम्भे की बात नहीं कि उनके विलक्षण व्यक्तित्व की प्रेरणा से हर तरह के प्राणियों ने संयुक्त पंजाब में हिन्दी के प्रचार और प्रसार में योग दिया। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जैसी हस्तियों ने भी, जो ऐसे मामलात में तटस्थता पसंद करती है, निस्संकोच हिन्दी के क्षेत्र में काम किया। जगदीश प्रसाद जी चतुर्वेदी दक्ष हिन्दी पत्रकार—जो आजकल जर्नलिस्ट्स फ़िडरेशन के प्रेजिडण्ट हैं—पंजाब में खिंचे चले आए। लाहौर में हिन्दी की बहार आई। न जाने कितनी संस्थाओं में हिन्दी पढ़ाई और पढ़ी जाती थी। अनेक ऐसे प्रेस थे जिनका काम हिन्दी के भण्डार को प्रगल्भ छपे अक्षरों से भरना था। हिन्दी-भवन यथा नाम तथा गुण का प्रमाण। इसकी सहायता से प्रेमी जी और मिलिन्द जी ने मिल कर एक उच्च कोटि की "भारती" नामक पत्रिका निकाली। पत्रिका गुणवती और रूपवती थी—जितने उसके नक्श—नयन आकर्षक थे उतना ही उसका मनन—कथन था। मनमोहक परन्तु सच्ची नज़र और गुण-ग्राहकता की कमी के कारण वह कुछ समय के बाद रंगमंच छोड़ गई। फिर भी प्रेमी जी ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने "भारती" की याद पक्की करने के लिए भारती प्रेस खोल दिया और उस प्रेस से उम्दा साहित्य निकालने का आयोजन किया। विजयवर्गी जी की निपुण देख-रेख में वह प्रेस दो-तीन साल चला, फिर रह गया।

लेकिन साहित्यिकों का जनून कभी हार नहीं खाता। प्रेमी जी ने त्रिवेदी जी से मिल कर सामयिक साहित्य सदन खोला। वह सदन तब तक उन्नत ललाट लिए खड़ा रहा, जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह ऐतिहासिक भूकम्प नहीं आया जिसने उत्तर-पश्चिमी हिन्दुस्तान की छाती फाड़ दी। उस भयंकर ग़ार में, जो पंजाब के दो भाग करके उसकी सीमा बन गया, अगणित उस पार वाली हिन्दी की संस्थाएं ग़र्क होकर सदा के लिए ग़ायब हो गईं। जात पात तोड़क मंडल के प्राण, सिद्ध हस्त लेखक संतराम जी के 'युगान्तर' के लिए ऐसा युगान्तर हुआ कि उसके नाम की स्मृति भर रह गई। गोस्वामी जी का "विश्व वन्धु" जो सन् १६३३ में साप्ताहिक के रूप में उदय हुआ था और जिसने सन् १६४२ में माधव जी के सम्पादकत्व में दैनिक का आकार प्रकार धारण कर लिया था, विश्व वन्धुत्व तो विश्ववन्धुत्व, पंजाबबंधुत्व की भी विजय न करा सका। पंजाब-बंधुत्व की पराजय क साथ विश्व बन्धु समाप्त हो गया। याद नहीं आता कि वीरेन्द्र जी के प्रभात की रात कब हुई। लेकिन हुई उधर ही, यह स्मरण है। यश जी अपना "मिलाप" इधर ले आए। यह अच्छा हुआ। "मिलाप" की तान मेल-मिलाप की तान है। जिसकी इधर बड़ी जरूरत है। राष्ट्र भाषा और राज भाषा हिन्दी की शान इसी में है कि वह अपने सारे साधनों का प्रयोग प्रादेशिक भाषाओं के मेल मिलाप और उनकी मानवृद्धि क लिए करे।

पेन्सिल घिस गई है। धैर्य पतला हो गया है। परन्तु इति लिखने के पहले उन चार-पाँच कवियों का उल्लेख कर देना चाहता हूँ जिनकी कविताएँ लाहौर में बड़े चाव से सुना करता था। प्रेमी जी, भट्ट जी, दिनेश जी, मधु जी, करुण जी प्रेमी जी और भट्ट जी रेडियो के खटराग में खो गए हैं। दिनेश जी ने दिल्ली में डेरा लगाया है। कभी कभी मिलते हैं। आज उनकी "चंदन में लपटे भुजंग" वाली कविता याद आ रही है। अब जब मिलेंगे तो कहूँगा, वह फिर सुनाइए—हैं ऐसे भुजंग जो चंदन में विष भर देते हैं। उस चंदन को सूँघो तो मर जाओ। पता नहीं मधु जी कहां हैं। और कई कवियों की स्मृति उनकी मुखाकृति साथ लेकर आंखों के सामने नाच रही है। उनके नाम जबान पर आते-आते रह जाते हैं। करुण जी हम सबके दिल्ली आने के पहले ही दिल्ली आ गए थे और उसके पहले उस पार चले गए जिस पार न जाने क्या है! वह कांग्रेस की कई नीतियों के अदम्य विरोधी थे। देश के विभाजन के रूप में उन नीतियों का जो घातक फल निकला, उसे देखने की पीड़ा से वह बच गये। चर्खा अहिंसा थ्योरी का तो वह बड़ा कटु मज़ाक उड़ाया करते थे। उनकी इसी विषय पर व्यंग भरी एक कविता की दो-तीन पंक्तियां याद आ रही हैं:—

खैबर के दर्रे में देखा, हमने एक अचम्भा भारी।
कानों में तकली लटकाए, कहते थे गोपालाचारी।
"इधर न आना, इधर न आना; इधर बना है, वार्ड जनाना……" इत्यादि
खैबर का दर्रा तो अब हिन्दुस्तान में रहा नहीं।
जनाना वार्ड शायद है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य-सम्बन्धी मेरे संस्मरण :

ले०—श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
सत्य-ज्ञान-निकेतन ज्वालापुर
पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुलतान में
हुए प्रथम वार्षिक अधिवेशन के प्रधान

ईसा की बीसवीं शताब्दी अपना सिंहनाद करती हुई चली आ रही है और मैं अपने जीवन का भावी प्रोग्राम बनाने के लिये विश्वनाथ पुरी में प्रवेश करने लगा हूं। हिन्दी की जननी संस्कृत माता का यह जगत्-प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र है। मैं संस्कृत का अध्ययन करने के लिये लाहौर से काशी गया था। यहां सन् १८९४ में कुछ उत्साही नव-युवकों ने नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना की थी, जो किराये का मकान लेकर अपना काम चला रहे थे। आर्यसमाज हिन्दी प्रचार का प्रचण्ड गढ़ था, जिसे महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने स्थापित किया था। उसी आर्यसमाज ने मुझे भी हिन्दी-सेवा का अमृत-पान कराया था, इसलिये स्वाभाविक ही मेरा आकर्षण सभा के कार्यकर्ताओं की ओर हो गया और मैं उनसे मिलने-जुलने लगा। स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दरदास सभा के सर्वेसर्वा थे और नियमपूर्वक बड़ी तत्परता से अपना अवकाश का समय उसके लिये खर्च करते थे, इस कारण काशी के नागरिक उनका बड़ा आदर-सन्मान करते थे। पं० रामनारायण मिश्र, बाबू माधोप्रसाद खन्ना, श्री शिवकुमार जी और बाबू वेणी-प्रसाद जी आदि सज्जन बड़े उत्साह से बाबू श्यामसुन्दरदास जी से सहयोग करते थे। मेरी इन सब लोगों से घनिष्ठता बढ़ गई और मैं अपने संस्कृत पढ़ने के कार्य में इन लोगों से सहायता लेने लगा।

"हिन्दी-प्रचार था तो एक साहित्यिक कार्य, लेकिन इसमें राजनीतिक दामिनी भी दमकती थी। सरकारी नौकर भी निर्भय होकर राष्ट्र के कार्य में भाग ले सकते थे और उनके अंग्रेज अधिकारी उन्हें मना नहीं कर सकते थे। इसीलिये इस संस्था के अन्दर देशभक्त लोग भी अपनी मनोकामना पूरी करने लगे। परन्तु दुःख की बात यह हुई कि निष्कामभाव से सेवा करने वाले नागरी-भक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसके प्रारम्भ काल में नहीं मिले, इसी लिये हिन्दी प्रचार कार्य में जो तेजस्विता आनी चाहिये थी, वह आ न सकी। काशीनागरीप्रचारिणी सभा में जो लोग आगे चल कर नेता बने, उन्होंने अपना अर्थ-साधन इसे बना लिया और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपाटी काशीनागरीप्रचारिणी सभा की निश्चित नीति सी हो गई। इसी कारण इसका अपना भवन तो बन गया, किन्तु इसके द्वारा छपने वाली पुस्तकों के लिये न तो कोई प्रेस ही उस समय बन सका और न इस प्रकार की साहित्य-रचना ही हुई जो देश के लोगों में देश-भक्ति और क्रान्ति के भाव लाती। इसके विपरीत जिन्होंने आर्यसमाज से हिन्दी का प्रेम पाया, उनमें बलिदान और क्रान्ति की तरंगें लहरें मारती थीं।

मैं ऐसे ही साहित्यिक जीवन में पला था। मुझे लेख लिखते समय उन्हीं बातों का ध्यान रहता था, जिनके वर्णन करने से पाठकों के दिलों में देश का प्राचीन गौरव और उसके प्रति निष्कामभाव की सेवा-भावना उत्पन्न हो। अब हिन्दी साहित्य क्षेत्र में दो प्रकार की धाराएँ हो गईं—एक विशुद्ध राष्ट्रीय हिन्दी साहित्यिक धारा, जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मस्तिष्क से निकली, जिन्होंने गुजराती भाषा में जन्म लेकर हिन्दी को अपनाया और उसके लिये सर्वस्व बलिदान किया। दूसरा स्रोत था हिन्दीभाषाभाषियों का, जो पुराने हिन्दी साहित्य की गोद में खेले थे, उसी से जिन्होंने प्रेरणा पाई थी—इसलिये उनमें वह स्वार्थत्याग, वह विशुद्ध बलिदान, देश को उठाने की वह उच्च आकांक्षाएँ पनप न सकीं, जो आर्यसमाज के द्वारा हिन्दी प्रचार करने वालों में उत्पन्न हुईं। ज्यों-ज्यों देश-भक्ति के विचार देश में फैलते गए त्यों-त्यों हिन्दीभाषाभाषियों ने हिन्दी के द्वारा अपनी अर्थ-सिद्धि का जीवन भी विस्तृत कर लिया। यही कारण हुआ कि आगे चलकर देश के स्वाधीन होने पर जो स्थान अंग्रेजी को अमरीका में सहज ही में मिल गया, वह हमारे अर्ध शताब्दी प्रचार करने के बाद भी हिन्दी को भारतवर्ष में न मिल सका।

अब हम अपने हिन्दीसाहित्यिक जीवन के संस्मरणों पर दृष्टि डालते हैं। पहला पहला संपर्क हमारा बाबू श्यामसुन्दर दास जी से हुआ। वे हिन्दी के भक्त ज़रूर थे, किंतु हिन्दी की ख़ातिर कोई ख़तरा मोल नहीं ले सकते थे। मैंने अपने चार वर्षों के विद्यार्थी जीवन में उन्हें अच्छी तरह से परख लिया था और आगे चलकर जब मैं सन् १९१८ ई० में मद्रास हिन्दी प्रचार के लिये महात्मा गांधी जी की ओर से भेजा गया तो काशीनागरीप्रचारिणी सभा से हमें किसी प्रकार की सहायता उस काम के लिये नहीं मिली। जब हमने कुछ हिन्दी प्रचारक भेजने के लिये सभावालों को लिखा तो उनकी मांग यही थी—"आप वेतन क्या देंगे?" मैं यह मांग सुन कर विस्मित सा रह गया। लेकिन उनका यह रुख कोई नई बात न थी। इसी शताब्दी के मेरे हिन्दी साहित्यिक जीवन ने मुझे यही दिखलाया कि जितने हिन्दी के कवि और लेखक साहित्यिक क्षेत्र में आये, उनमें से अधिकांश गुटबन्दी करके अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते रहे, इसी लिये हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में हमें बड़ी-बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है।

काशी से मैं संयुक्तराज्य अमरीका चला गया और वहीं शिकागो से मेरा सम्बंध प्रयाग की "सरस्वती" मासिकपत्रिका से हुआ। मैं, पं० महाबीर प्रसाद जी द्विवेदी, का बड़ा प्रशंसक हूँ। उनमें हिन्दी के प्रति बड़ी भक्ति थी और उनके द्वारा कई प्रसिद्ध हिन्दीलेखक और कवि हमारे साहित्य को मिले। द्विवेदी जी बड़े परिश्रमी और स्वार्थ-त्यागी व्यक्ति थे, किन्तु थे पार्टी बाज़ और क्रोधी। निस्सन्देह उनके द्वारा हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ। मैंने जब पं० कृष्णकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी सत्यदेव जी द्वारा संस्थापित तथा काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा संचालित
सत्यज्ञान निकेतन ज्वालापुर

श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन
मुलतान अधिवेशन के प्रथम सभापति

श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी भू० पू० प्रधान अखिल भारतीय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा श्री शिवराम सेवक

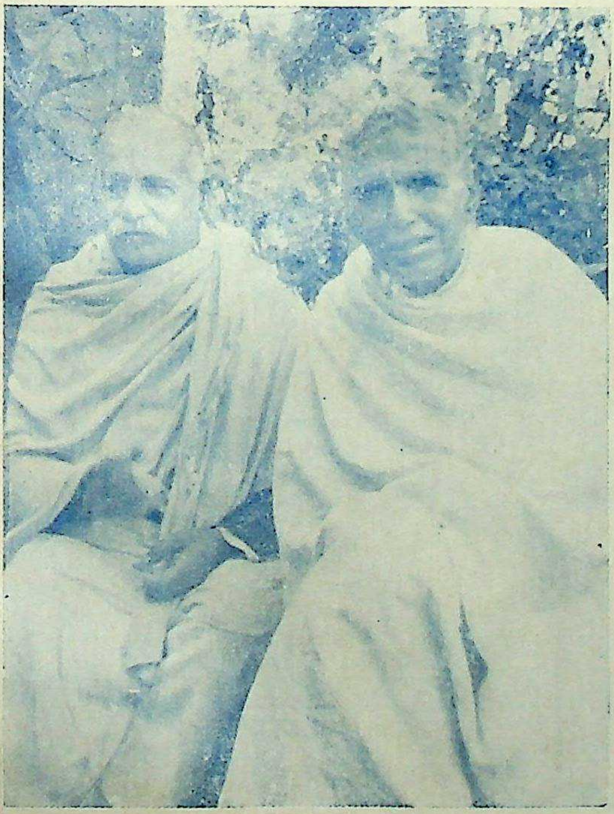

प्रो०. वसिष्ठ जी, एम. ए.

श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी के पट्ट शिष्य
तथा हिन्दी प्रचार के कार्य में उनके
दाएँ हाथ। पंजाब प्रान्तीय हिन्दी
साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व
प्रधान मन्त्री.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० स्वामी श्रद्धानन्द जी

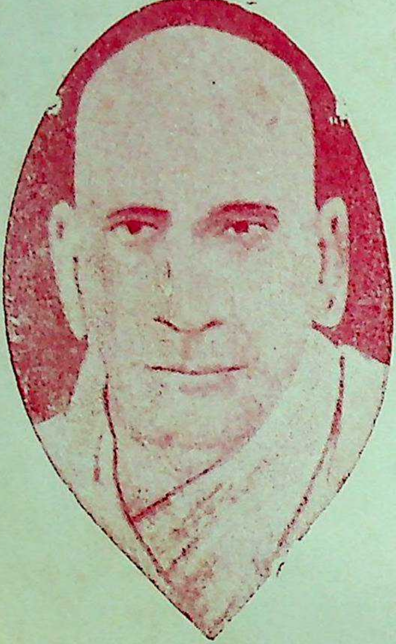

प्रत्येक क्रान्ति आन्दोलन में सब से आगे और सब से पहले।

गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालय में हिन्दी माध्यम से वर्तमान विज्ञानों की उच्च शिक्षा दिलाने का सफल परीक्षण सर्वप्रथम आपने ही किया।

श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार

यशस्वी हिन्दी पत्रकार—स्व० स्वामी श्रद्धानन्द तथा स्व० देवराज जी संस्थापक कन्या महाविद्यालय की महत्वपूर्ण जीवनियों के लेखक।

महाशय कृष्ण जी

दैनिक वीर अर्जुन के सञ्चालक आपने लाहौर से हिन्दी दैनिक प्रभात निकालने का सराहनीय प्रयत्न किया था।

आचार्य विश्वबन्धु जी हुशियारपुर

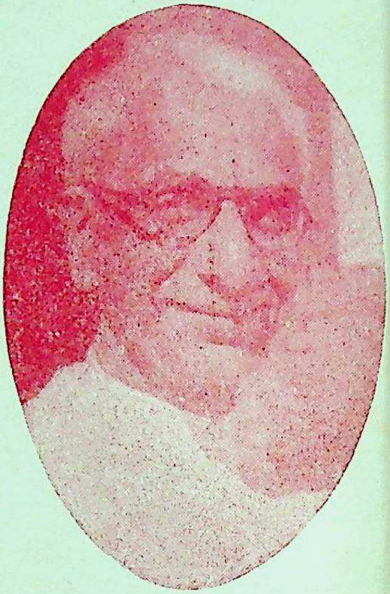

विश्वज्योति के संचालक तथा सम्पादक विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धान संस्थान के व्यवस्थापक

आप ने वैदिक वाङ्मय को हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

श्री पं० जयचन्द्र जी विद्यालंकार विद्यामार्त्तण्ड

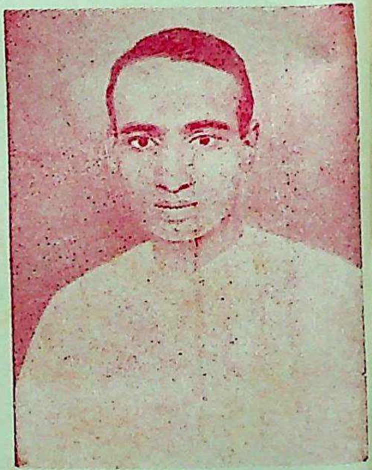

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम प्रधान मंत्री, भारतवर्ष के अग्रगण्य ऐतिहासिकों में लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी में मौलिक रचनाएँ लिखने वाले मंगलाप्रसाद पुरस्कार विजेता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवीय द्वारा चलाई हुई मर्यादा में लेख लिखने प्रारम्भ किये तो वे मुझसे बड़े रुष्ट हो गये। अमरीका से लौट कर, ज्यों ही कानपुर जाकर मैंने उनसे बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु वे राजी न हुए। मैं अपने पुस्तक प्रकाशन कार्य में लगा रहा। कई वर्षों के बाद वे बीमार होकर जब जुही (कानपुर) में फिर आये तो मैं उनसे श्रद्धावश मिला। उन्होंने मेरी प्रशंसा में एक श्लोक बना कर मुझे दे दिया, जिससे मुझे पता चला कि उन्होंने मेरा मर्यादा वाला अपराध क्षमा कर दिया है। मैं अपनी प्रशंसा के लेख अथवा चिट्ठियां प्रायः सम्भाला नहीं करता, इस लिये वह श्लोक भी कहीं इधर उधर हो गया। लेकिन यह बात निर्विवाद है कि पं० महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी के द्वारा हिन्दी की महती सेवा हुई है और वे तत्कालीन हिन्दी-प्रेमियों की अपेक्षा उच्चतर मानव थे, जिन्होंने अन्त में अपना सर्वस्व देश के लिये दे डाला।

* * *

सन् १९११ ई० के जौलाई मास में अमरीका से लौट कर आया था। पांच वर्षों के अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने अमरीका से हिन्दी-प्रेमी पाठकों के लिये, सुन्दर रोचक सामग्री से भरपूर लेख अमरीका से 'सरस्वती' मासिक तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छपने के लिये भेजे थे। जब मैं अमरीका में २३०० मील पैदल यात्रा के लिये निकला था, तब भी अमरीका भ्रमण के वे अत्यन्त मनोरंजक और उपदेशपूर्ण निबन्ध सरस्वती में छपते रहे। परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्य सेवा की मेरी पृष्ठभूमि पहिले से ही तैयार हो गई और हिन्दी जगत् मुझे पहचानने लगा। अब जब मैं विदेश से लौट कर आया तो स्वाभाविक ही सरस्वती के पाठकों में मेरे विषय में अधिक जानने, मेरी पुस्तकें पढ़ने और मेरे व्याख्यान सुनने की उत्सुकता जाग उठी थी। पहला वर्ष मैंने बनारस में खर्च किया और वहीं सत्य-ग्रंथ-माला की पुस्तकें छपनी आरम्भ हुईं। पं० लक्ष्मीनारायण जी गर्दे के साथ मेरा सम्बन्ध उसी समय से हुआ। उनकी सरलता और देश-भक्ति ने मुझ पर उसी समय से प्रभाव डाला और मुझे पता लग गया कि गर्दे जी के द्वारा हिन्दी की अच्छी सेवा होने वाली है। काशी से मैंने अपनी माला की कई पुस्तकें निकलवाईं और अगले वर्ष मैं कानपुर में अपना कार्यालय ले गया। बाबू नारायण प्रसाद जी अरोड़ा तथा श्री गणेश शंकर जी विद्यार्थी 'पटकापुर' मुहल्ले में निवास करते थे। उनका क्रान्तिकारी साप्ताहिक पत्र प्रताप निकलने ही लगा था। इन्हीं के आकर्षण से मैं कानपुर में आ गया और यहीं से मेरा प्रसिद्ध ट्रैक्ट "राष्ट्रीय-सन्ध्या" निकला। हिन्दी के इन दो महानुभावों द्वारा कानपुर में मुझे प्रचार करने की बड़ी सहूलियत रही। मेरी उस समय एक नीति यह थी—"कहीं जम कर न बैठा जाय। स्वाधीनता का प्रचार करने के लिये भिन्न-भिन्न स्थानों में केन्द्र बनाने से ब्रिटिश सरकार को आसानी से चकमा दिया जा सकता था और उसका खुफिया विभाग भी मुझ पर अपना आक्रमण आसानी से नहीं कर सकता था।" मेरा उद्देश्य उस समय स्वाधीनता के प्रति प्रेम और दासता के प्रति घृणा—ऐसा प्रचार जनता में करने का था। वह समय ऐसा था कि 'वन्दे मातरम्' कहना भी एक प्रकार का जुर्म समझा जाता था। हिन्दी प्रचार तो देश-प्रेम सिखलाने का मेरा एक मात्र साधन था, जिसकी बदौलत मैं नाना प्रकार के अमरीकन उदाहरण देकर प्रजा में देश-भक्ति का प्रचार करता था। मैं अपनी पुस्तकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रचार स्वयं करता था–पुस्तकविक्रेता के रूप में नहीं–मिशनरी के तौर पर मैं अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा स्वाधीनता की भावनाएँ भारतीय जनता में फैलाता था। मैंने कभी किसी दूसरे की पुस्तकें लेकर नहीं बेचीं और न दूकानदार के तौर पर एक जगह दूकान बनाकर अपनी दूकानदारी को ही आगे बढ़ाया। मेरी आवाज़ देश के कोने-कोने में फैल जाय और मेरी पुस्तकों का अनुवाद दूसरी प्रान्तीय भाषाओं में होने लग जाय। अमरीका पथ-प्रदर्शक मेरी पुस्तक माला का पहला ग्रंथ था, जिसका अनुवाद उर्दू में कर एक पंजाबी पुस्तक प्रकाशक ने हज़ारों रुपये पैदा कर लिये और मुझसे पूछा तक नहीं।

सन् १९१३ ई० का वर्ष आया और वह मेरे लिये बड़ा मंगलकारी हुआ। मेरी भेंट बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन से हुई। वे प्रयाग में अपना हिन्दी साहित्य सम्मेलन चला रहे थे। उनके आग्रह पर मैं अपना सत्य-ग्रन्थमाला कार्यालय जान्सेन गंज प्रयाग में ले गया। टण्डन जी यहीं वकालत करते थे और उन्हीं के दफ़्तर के साथ ही मैंने भी मकान किराये पर ले लिया। अब मुझे हिन्दी का एक सच्चा सेवक मिल गया, जो निष्काम भाव से देश को स्वाधीन करने में लगा हुआ था। हमारी दोनों की पटड़ी बैठ गई और मैं कुछ वर्षों तक इलाहाबाद में ही रह गया। यहां से मेरी कई प्रसिद्ध पुस्तकें निकलीं और मुझे सम्मेलन की बदौलत हिन्दी प्रचार करने की सुविधाएँ भी प्राप्त हुईं। टण्डन जी मित्रों के मित्र थे और सदा स्वार्थत्याग कर उनकी सहायता करने पर तत्पर रहते थे। यहां से मैं सम्मेलन के आदेश से पंजाब में हिन्दी प्रचारार्थ भेजा गया। पंजाब इस समय नौकरशाही के शिकंजे में जकड़ा हुआ था और पंजाबी जनता स्वाधीनता की बातें करती हुई घबराती थी। मुझे पंजाब में व्याख्यानों के लिये स्थान देने वाला कोई बहादुर न मिला। जनता संस्थाएँ मुझसे प्रायः डरती थीं और व्याख्यान कराने से घबराती थीं। हिन्दी के नाते में आर्यसमाजियों के द्वारा पंजाब के नगरों में कठिनाई से व्याख्यान दे सका और स्वाधीनता का संदेश सुना सका। मुझे अच्छी तरह याद है कि अपने विद्यार्थी जीवन का एक बड़ा पुराना मित्र–अर्जुननाथ कौल मेरी शक्ल देख कर भयभीत हो गया था और मुझे अपने घर में रात को ठहराया तक नहीं था। ऐसे दिन वे थे !!!

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के द्वारा मेरा परिचय इलाहाबाद के प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों से हुआ, जिनमें मैंने वही बीमारी पाई, जो काशी की नागरीप्रचारिणी सभा में देखी थी। हिन्दी के ये भक्त भी सम्मेलन के द्वारा अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे और कोई न कोई गुट बना कर सम्मेलन पर कब्ज़ा करने की धुन में रहते थे। जब स्वर्गीय बाबूराव पराड़कर पहली बार कलकत्ते में गवर्नमैंट के क्रोध का शिकार हुये तो प्रयाग के वे हिन्दीप्रेमी उनके साथ सहानुभूति का प्रस्ताव पास करते हुये घबराते थे और उनकी इस कायरता को देख कर मैंने सम्मेलन से त्याग-पत्र दे दिया था। बेचारे टण्डन जी ही एक ऐसे निर्भीक व्यक्ति थे, जो मेरे जैसे लोगों को सदा सहारा देते थे। प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन टण्डन जी की बदौलत ही फूला फला। उनके सात्विक व्यक्तित्व के कारण ही सम्मेलन को आसानी से धन मिल जाता था। परन्तु टण्डन जी में शरीर के बीमार अंग को काट डालने की ताकत न थी, इस कारण उनकी इस कमजोरी ने सम्मेलन को बड़ी हानि पहुंचाई और आगे चल कर भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सरकार द्वारा ताले लग गये। मैं इन बातों को आनेवाले इतिहासकारों के लिये लिख रहा हूँ, जिससे उन्हें पता लगे कि भारत जैसे विशाल देश में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनने में कठिनाइयों का सामना क्यों करना पड़ा। जिस प्रान्त की अपनी भाषा हिन्दी थी, यदि उसके प्रचार करने वाले बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन जी की तरह स्वार्थत्यागी होते तो हिंदी का सारे भारत में फैल जाना आसान हो जाता और यह भी अमरीका की तरह पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक सारे देश की राष्ट्र भाषा हो जाती। स्वार्थ से स्वार्थ पैदा होता है और एक को देख कर दूसरा स्वार्थी बन जाता है। हिंदी के साथ यही सलूक हुआ है।

सन् १९१८ ई० में प्रयाग का कुम्भ आया और गाँधी जी इस समय तक देश में कुछ प्रसिद्धि पा चुके थे। मैं कुम्भ से निवृत्त होकर विहार चला गया और अपने प्रोग्राम के अनुसार वहां प्रचार करने लगा। सन १९११ से लेकर सन् १९१८ तक मैं निरन्तर विहार में प्रचार करता रहा और वहां के हिंदी साहित्य सेवी भी मुझे भली प्रकार पहचानते थे। महात्मा गांधी जी के आदेश से मुझे हिंदी प्रचारार्थ मद्रास जाने की आज्ञा हुई और मैं गुजरात में गांधी जी से मिल कर सीधा मद्रास की ओर रवाना हुआ, जहां महात्मा जी का सब से छोटा बेटा देवदास गांधी मुझसे पहिले पहुँच चुका था। मदरास में हिंदी प्रचार के ये महीने मेरे जीवन में एक विशेष स्थान रखते हैं, यहां मेरी घनिष्टता गांधी पुत्र से हुई, जो तन्मय होकर हिंदी की सेवा कर रहा था। बापू जी ने जिस काम में हाथ डाला, उसी को कुन्दन बना दिया। मैं अपने एक प्रेमी से ५००) प्रचारार्थ लाया था, बाद में बापू जी ने हम लोगों की सब प्रकार से सहायता की और उस काम को सिरे चढ़ाया। इस समय प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन में एक ऐसा मनहूस गुट था, जो गांधी जी को कुछ समझता ही न था और चाहता यह था कि मदरास में हिन्दी प्रचार का श्रेय इसी गुट को मिल जाय। जब हम लोगों के कार्य में प्रयाग हिन्दी सम्मेलन वाले रोड़े अटकाने लगे तो गांधी जी ने यही श्रेयस्कर समझा कि मदरास के हिन्दी प्रचार कार्य को स्वतन्त्र कर दिया जाय, जिससे हिन्दी वाले हम लोगों को सता न सकें। मदरास हिन्दी प्रचार का कार्य मैंने एक वर्ष किया। बड़ा अच्छा होता, यदि मैं उसी कार्य में वर्षों लगा रहता, परन्तु प्रभु के खेल न्यारे हैं।

* * *

आंखों के कष्ट के कारण मेरे साहित्यिक जीवन में बड़ी-बड़ी बाधायें पड़ गईं, मगर तो भी मैंने हिम्मत नहीं हारी। चूंकि मेरा सम्बन्ध राजनीति के साथ मुख्य था। मैं देश की स्वाधीनता के साथ-साथ अपने साहित्य की धारा बहाता था, इस लिये मुझे भिन्न-भिन्न विषयों पर ग्रंथ लिखने पड़े। विद्यार्थियों को आवश्यकताओं को सामने रखकर मैंने संजीवनी बूटी और शिक्षा का आदर्श नामक ग्रंथ लिखे, जिनका खूब प्रचार हुआ। जब हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े प्रारम्भ हुए और मैंने यह समझ लिया कि हिन्दू संगठन के बिना देश स्वतंत्र नहीं हो सकेगा तो मैंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "संगठन का बिगुल" लिखी, जिसने देश में धूम मचादी और इसकी हजारों प्रतियां का प्रचार बहुत शीघ्र हो गया। सन् १९२५ में जब कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो श्री गणेश शंकर जी विद्यार्थी ने मेरे साथ बड़ा प्रेम व्यवहार किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस के अवसर पर मैं अपना संदेश देशवासियों को सुना सका। मेरे लिये अलग एक स्थान निश्चित था, जिस में कुछ विदेशी सज्जन भी मेरे पास आकर ठहरे। हिन्दी के कई योग्य लेखक धीरे-धीरे मेरे संपर्क में आये। टंडन जी के द्वारा मेरा परिचय वियोगी हरि जी से हुआ, जिनके व्यक्तित्व को देख कर मेरा मन बड़ा पुलकित हो उठा। उनमें भी टंडन जी जैसा स्वार्थ-त्याग, निश्छलता और देश प्रेम मैंने पाया। गाँधी जी के साथ जब उनका संबंध हुआ तो उनके जीवन की धारा ही बदल गई और वे कवि से कर्मवीर बन गये। प्राय: हमारे हिन्दी साहित्य सेवी शब्दों के धनी हैं। इधर-उधर से उपमायें, अलंकार और शब्द विन्यास कर कवितायें लिखना और गद्य काव्य बनाना वे जानते हैं, किन्तु जीवन में उन आदर्शों का ढालना उन्होंने नहीं सीखा। बहुत से हिन्दी के लेखक और कवि इसी लिये दुख पाते हैं कि उन्होंने साहित्य का असली मर्म नहीं समझा। मुझे अपने जीवन में पिछले ४५ वर्षों में कभी धन का संकट नहीं रहा। कारण यह था कि मैंने खूब भ्रमण किया, अच्छी तरह से निरीक्षण किया, वस्तुओं से सीधा संपर्क स्थापित किया, तब अपने ग्रंथ लिखे, जिन्हें पढ़कर लोग नाच उठते थे। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने एक बार मुझ से कहा था—आपका अमरीका भ्रमण जीती-जागती तसवीरें दिखलाता है और सिनेमा के फिल्म की तरह पाठक का हृदय प्रसन्न करता है।

असल में साहित्य मानवसमाज के हृदय और मस्तिष्क का फोटो है। जब किसी देश में ऊँचे दर्जे के साहित्य की रचना होती है तो वहाँ के नागरिकों का जीवन-स्तर उत्थान की ओर जाने लगता है। महारानी ऐलिजबेथ के समय इंग्लैंड में ऊँचे दर्जे के कवि और लेखक पैदा हुए, जिनके साहित्य ने जाति में नवजीवन का संचार किया और अंग्रेज लोग अपने चरित्र के कारण संसार पर प्रभुता पाने लगे। हिन्दी के कवि और लेखकों ने घर से बाहर निकल कर नया अनुभव प्राप्त नहीं किया—वे या तो प्रान्तीय भाषाओं से अनुवाद करते रहे अथवा शासन करने वालों की प्रशंसा में कवितायें और लेख लिखते रहे। मौलिकता की ओर उन्होंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। श्री प्रेमचन्द जी हमारे अत्यन्त प्रसिद्ध उपन्यासकार और कहानी लेखक थे। सन् १९३४ में मैं उन्हें काशी में मिला था। मैंने उनसे पूछा—"क्यों प्रेमचन्द जी, क्या आप कभी कलकत्ता गये हैं?" वे मुसकरा कर बोले नहीं। "मैंने व्यंग्य से उन्हें कहा तभी तो आपने अपने "गबन" उपन्यास में कलकत्ते में कड़कड़ाते जाड़े की बात लिखी है। मेरे प्यारे कलकत्ते में तो ऐसा जाड़ा पड़ता ही नहीं।" अपने स्वाभाविक भोलेपन से उन्होंने उत्तर दिया-स्वामी जी ऐसी भूलें आप ही पकड़ सकते हैं। आप मेरी पुस्तकों में जहाँ-जहाँ ऐसी गल्तियाँ पायें, कृपया उन्हें मुझे सुझादें, जिससे अगले संस्करणों में मैं उनको दूर कर सकूं।"

अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि ऐसी ही बात है तो फिर प्रेमचन्द जी को कहानियाँ और उपन्यास लिखने की ऐसी सामग्री कहाँ से मिली, क्योंकि उन्होंने तो भ्रमण किया ही नहीं था? उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि वे नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में नौकरी करते थे। उर्दू के जगत विख्यात लेखक पं० रतननाथ ने अपना अमरग्रंथ "फसाना आज़ाद" लिखा है, जिसकी चार मोटी-मोटी जिल्दें हैं। श्री प्रेमचन्द जी द्वारा उनका हिन्दी अनुवाद उस प्रेस ने करवाया था। वह अनमोल खज़ाना श्री प्रेमचन्द जी के हाथ लग गया और उसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहारे वे हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध हुये। महर्षि वाल्मीकि जी ने भारत भ्रमण करने के बाद ही अपना अलौकिक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा था। यदि वे ऐसा न करते तो कभी भी उस अनुभव पूर्ण सरल संस्कृत भाषा में वह ग्रंथ "रामायण" न लिखा जाता। इसलिये भ्रमण करने वालों को सीधा ज्ञान प्राप्त होता है। मुझे जो कुछ थोड़ी बहुत सामग्री मिली है, उसका श्रेय मेरे भ्रमण को ही है। मैंने नेत्रों की निर्बलता के कारण इतना अध्ययन नहीं किया। जो कुछ स्कूल, कालिज और विश्वविद्यालयों में मैं आवश्यक ग्रंथ पढ़ सका, बस वे ही पढ़े गये। पढ़ने का समय मुझे बहुत मिला, किन्तु खराब आंखों ने उसका उपयोग नहीं करने दिया। अलबत्ता यह बात अवश्य है कि मुझे मनन और निदिध्यासन करने का पुष्कल अवसर मिला, इसीलिये मेरे विचार धीरे-धीरे मँज गये और मुझे धारा प्रवाह लिखवाने की सहूलियत हो गई। व्याख्यान देते समय भी मुझे कुछ अधिक सोचना नहीं पड़ता और न शब्दों अथवा सामग्री की कमी रहती है।

हमारे बहुत से ऐसे कवि और लेखक बन्धु हैं, जिन्होंने ब्रिटिश शासन काल में मल्का विक्टोरिया, बादशाह जार्ज पंचम और उसकी बेगम की प्रशंसा में टेक्स्ट बुकों के लिये कविताएँ लिखीं और जब उन्होंने देखा कि लोग स्वाधीनता प्रेमी होते जा रहे हैं तो झट पैंतरा बदल कर भारतीयता के गीत गाने लगे। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं। हमारे हिन्दी-भाषा भाषियों में हिन्दी पुस्तकों द्वारा पैसा कमाने की बीमारी रहने के कारण वे अच्छा साहित्य निर्माण नहीं कर सके। टेक्स्ट बुकों की होड़ लगी रहती है। सब यही चाहते हैं कि उनकी पुस्तकें स्कूलों में पढ़ाई जांय, जिससे जल्दी से जल्दी उनके पास पैसा आ जाय। इसी कारण भ्रष्टाचार का बाजार भी गर्म रहता है और निर्धन विद्यार्थियों का नई रद्दी टेक्स्ट बुकों के कारण दिवाला निकला रहता है।

लेकिन इस प्रकार की पुस्तकें किसी राष्ट्र के साहित्यका मुख उज्ज्वल नहीं किया करतीं। साहित्य का उद्देश्य मानव समाज का अभ्युदय करना है। जो लोग बिना आदर्श के ग्रंथ लिखते हैं और समझते हैं कि वे यथार्थवाद का स्तर ऊँचा कर रहे हैं। और जैसी वस्तु हो उसको वैसा ही रूप दिखलाते हैं वे मानव समाज को गर्त की ओर ले जाते हैं। मनुष्य के अन्दर गन्दगी भरी है और वह स्वार्थान्ध होकर उस गन्दगी को फैलाता फिरता है। संसार में उनके द्वारा फैलाया हुआ विष नाना प्रकार की भयंकर व्याधियों, झगड़ों और उत्पातों के बीज बोता रहता है। महापुरुष उस विष को पीकर अमृत उगलते हैं। इसीलिये महादेव जी के विषय में यह कहा गया है कि वे हलाहल विष पी लेते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। जितने भी महापुरुष संसार में आते हैं, उनका उद्देश्य यही होता है कि वे मानव समाज के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाएँ, क्योंकि कलाओं का नाम लेकर उसके बहाने विष-वमन करने वाले तो दुनियां में बहुत ही हैं, वे सिनेमाओं, नाटकों, नृत्यों और कला के स्वांगों द्वारा मानव समाज को विषय वासना की खाई में घसीट ले जाते हैं। उन्हें खूब पैसा मिलता है, उनकी अश्लील पुस्तकें हजारों की संख्या में बिकती हैं—मालामाल हो जाते हैं। उन्हें इस प्रकार जीवन में आर्थिक सफलता प्राप्त करने पर मूर्ख जनता यह समझने लगती है कि सच्चे साहित्य का मार्ग यही है। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने अनुभव से उच्च स्वर द्वारा पुकार-पुकार कर यह कहना चाहता हूं कि मानव में स्वार्थ और विषय वासना ही सब दुःखों का मूल है। जो लेखक और कवि अपनी रचनाओं द्वारा इन्हें उत्तेजना देते हैं, वे समाज के साथ घोर शत्रुता करते हैं। निस्संदेह उनकी पुस्तकें बिक जाती हैं, किन्तु वे अपने पीछे बीमारी के कीटाणुओं का तांता लगा जाते हैं। अतएव हमारा निवेदन यह है कि सच्चा साहित्यिक वही है' जो मानव जाति को सात्विकता की ओर ले जाने वाले ग्रंथों की रचना करे। श्रीमद्भगवद्गीता छोटा सा ग्रंथ है, किन्तु उसने करोड़ों आत्माओं का उपकार किया है। बड़ी संख्या में ग्रन्थ लिखने से श्रेष्ठतम लेखक नहीं बना करते। यदि एक ही ग्रंथ प्रेरणा देने वाला लिखा जाय तो मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है और लोग उसकी लेखनी को चूमने लगते हैं।

हाँ, मैं तो हिन्दी साहित्य की बात कर रहा था। हम जब राष्ट्रीय धर्म प्रचार करने के लिये कमर कस कर तैयार हुए तो ऐसे ग्रन्थों की तलाश इधर-उधर घूम कर करने लगे, पर वहाँ तो थी "चन्द्रकान्ता और उसकी संतति।" उसके लेखक खूब पैसा पैदा कर रहे थे। उन्होंने राष्ट्र से कुछ मतलब था और न उसके धर्म से। दूसरी ओर 'दारोगा दफ्तर' के पुलिन्दे निकल रहे थे। जब मैंने अपने लेखों और व्याख्यानों में इनकी धज्जियां उड़ाई तो वे सब हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गये। हिन्दी में ऐसा गुट लेखकों का बना रहा, जो अपनी दूकान चलाने के लिये अच्छे साहित्य के प्रचार में बाधा डालता था। मेरी मुठभेड़ इन सब से हुई। कई तो ऐसे थे, योग्य लेखकों को नौकर रख कर उनकी रचनाओं को अपने नाम से छपवाते थे और पैसा बटोरते थे। इन सब का विरोध करने के कारण इन हिन्दी साहित्य सेवियों ने मेरी उपेक्षा करने की नीति अपना ली और जहां तक हो सकता था, मेरा नाम साहित्य में कहीं नहीं आने देते थे। कई तो ऐसे थे, जिन्होंने मेरी पुस्तकों में से निबन्ध लेकर अपने संग्रहों में प्रकाशित करवा दिये, पर मुझ से पूछा तक नहीं। मैंने कभी भी उनके इन कुकृत्यों की कानूनी ढंग से शिकायत नहीं की—क्यों करता, मुझे तो प्रचार से मतलब था।

*   *   *

पण्डित श्रीधर पाठक जी हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि और लेखक हुये हैं। उनकी मुझ पर विशेष कृपा थी। जिन दिनों मैं इलाहाबाद जाँन्सगंज में रहता था, वे मेरे कार्यालय में बराबर आया करते थे।

मोतीहारी के मेरे किसी प्रशंसक ने मुझे शेर की खाल दी थी, जिसे मैंने अपने कमरे में बिछा रक्खा था। एक बार दोपहर के समय जब पाठक जी आये तो उन्होंने उस खाल को देख कर उसकी बड़ी तारीफ़ की। मैंने झट उनसे कह दिया—'आपको पसन्द हो तो ले जाइए।' वे मेरे मुँह की ओर देखने लगे—उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि स्वामी जी सचमुच दे रहे हैं। जब मैंने हँस कर उन्हें विश्वास दिला दिया तो वे बड़े हर्षित हुये और खाल उठा कर लपेट ली। मेरा चित्त भी उन्हें ऐसी चीज़ भेंट कर बड़ा प्रसन्न हुआ। वे सन् १६१६ में लखनऊ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उत्सव पर सभापति बनाये गये थे। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०, ३६,६४२

बाबू श्यामसुन्दरदास जी उन दिनों वहां किसी हाई स्कूल के हैडमास्टर थे। उनके पुरुषार्थ से वह सम्मेलन अत्यन्त सफल हुआ और उसने कांग्रेस के महोत्सव का रूप धारण कर लिया था।

हिन्दी और संस्कृत के दिग्गज विद्वान् साहित्याचार्य पंडित रामावतार जी पाण्डे मुझ पर बड़ी कृपादृष्टि रखते थे। जब मैं हिन्दू कालिज बनारस में पढ़ा करता था, तब वे वहां पर अध्यापक थे। वहीं से मेरी उनसे घनिष्ठता हुई। अमरीका से लौट कर मैं प्राय: उनसे मिलने के लिये पटना जाया करता था। वे धोती के ऊपर हैट लगाया करते थे और जब बाईसिकल पर बैठ कर वे निकलते थे तो उनके विद्यार्थी और दर्शक खूब हँसा करते थे। अपने ढंग का ये निराला सरयूपारी ब्राह्मण था जिसने पुराने रूढ़ीवाद को तिलांजलि देकर नवीन युग का आलिंगन किया था। छः दर्शनों की तरह उन्होंने भी सूत्र बद्ध सातवां दर्शन लिखा है। इस विद्वान् की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

हिन्दी के मेरे साहित्यिक जीवन में मेरा चार चतुर्वेदियों से पाला पड़ा—पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और पं० माखनलाल चतुर्वेदी। पहले दो का तो देहावसान हो चुका है, पिछले दो चतुर्वेदी ईश्वर कृपा से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। इन चारों चतुर्वेदियों में श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी का दर्जा सब से उँचा है। और वे हरिद्वार में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी बनाये गये थे। आप बड़े सुशिक्षित, सुसंस्कृत और मार्मिक गद्य-पद्य लेखक हैं। इनकी लेखनी में बड़ा ओज है। भाव पूर्ण भाषा में इनकी पद्य रचना पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। 'भारतीय आत्मा' के नाम से वे पद्य रचना करते हैं। उनका निवास स्थान खंडवा मध्यप्रदेश में हैं, जहां से उनका कर्मवीर नामक साप्ताहिक पत्र वर्षों हिन्दी साहित्य की सेवा करता रहा है।

प्रयाग के दारागंज मोहल्ले के रहनेवाले पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी जी ने भी हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है। वे पूना से प्रेरणा लेकर आये थे। मैं उन दिनों अमरीका से लौटा ही था। सरस्वती में प्रकाशित मेरे लेखों ने उन्हें भी मेरी ओर आकर्षित किया था। वे बड़े उत्साह से मुझसे मिले और वर्षों तक उनकी मेरी मित्रता रही। वे अपनी रचनाओं को बराबर मेरे पास भेजा करते थे। सन् १९२४ के बाद से मेरा उनसे मिलना नहीं हुआ। वे अब संसार में नहीं हैं।

* * *

मैं गांधी जी के विषय में पहले लिख चुका हूँ। जब दक्षिण अफ्रीका से लौट कर गांधी जी भारत आये और उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से देश पर अनोखी छाप डाली तो उसका लाभ हिन्दी को भी मिला। गाँधी जी का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित हो जाने से भारत के सभी प्रान्तों में हिन्दी की चर्चा होने लगी। उच्चकोटि का एक राष्ट्र-धर्म सेवक हिन्दी प्रचार की बात कहता है इस दिव्य उदाहरण से दूसरे प्रान्तों में भी हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न होना प्रारम्भ हुआ। गांधी जी की यह नई हिन्दीप्रचार की धारा प्रारम्भ में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के मस्तिष्क से निकली हुई धारा के साथ मिल कर बहने लगी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने कुछ वर्षों तक भागीरथी के साथ-साथ गंगा सागर की ओर मुँह रखा, किन्तु आगे चलकर जब वह हिन्दू-मुस्लिम-एकता के संगम पर पहुँची तो उसने अपना रुख अरब सागर की ओर कर लिया और अपना नाम "हिन्दुस्तानी" रख कर मटक-मटक कर चलने लगी। जो ऊँचा स्थान उसे गंगा सागर की ओर जाने से मिल जाता, वह उसे प्राप्त न कर सकी। उल्टा ख्याति के इच्छुक कई एक ऐसे हिन्दी लेखक निकल आये, जिन्होंने हिन्दी की लिपि को बिगाड़ कर अपना एक नया आविष्कार हिन्दी वालों को देना चाहा! नवीनता की यह बीमारी हिन्दी साहित्य में शीघ्र फैलने लगी। छन्दों को बिगाड़ कर कवि लोग उनके नये रूप बनाने लगे। इतना ही नहीं श्री राहुल सांकृत्यायन जैसे धुरंधर लेखकों ने भी प्राचीन ऋषियों के आदर्शों की खिल्ली अपने ग्रंथों में उड़ानी शुरू कर दी। उपनिषदों के वैदिक आदर्श, जिन्होंने जगत् में भारत का मुँह उज्ज्वल किया था, हमारे इन सांकृत्यायन जी को "बच्चों का खेल" से बोध होने लगे। "कुछ नई बात कहें" यह व्याधि हमारे साहित्यिकों को लग गई। हिन्दी की कई एक पत्रिकाओं ने वेदों के विरुद्ध ऐसी अनाप-शनाप बातें लिख डालीं, जिन्होंने करोड़ों हिन्दुओं के दिलों को दुःखी किया। यदि वे कुरान के विरुद्ध ऐसी बातें लिख देते तो मुसलमान उन्हें मार ही डालते—लेकिन बेचारा हिन्दू सहनशीलता का पुतला है। साहित्य-रचना और नवीनता के नाते कुछ हिन्दी लेखकों ने देश के लोगों को गुमराह करने में कोई कौर कसर नहीं छोड़ी।

इस प्रकार महात्मा गांधी जी द्वारा चलाई हुई उस "हिन्दुस्तानी" धारा ने देश के कुछ लोगों में भ्रांति सी फैला दी और उन्होंने यह समझ लिया कि वे भी अपनी नवीन धारायें हिन्दी साहित्य क्षेत्र में बहाने की योग्यता रखते हैं, पर अफसोस! उन्होंने महात्मा जी के दूसरे सात्विक गुणों पर दृष्टि नहीं डाली, इसी कारण इनके द्वारा जनता में अनैतिकता फैलती जा रही है और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की बहाई हुई हिन्दी-भागीरथी ने कई एक तीर्थ रूपी गुरुकुल स्थापित कर राष्ट्रभाषा द्वारा प्राचीन आदर्शों का प्रचार कर अच्छे योग्य साहित्यिक उत्पन्न किये, जिन्होंने राष्ट्र धर्म के प्रचार में बड़ी सहायता की और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एक लिपि प्रचार करने के पवित्र कार्य को आगे बढ़ाया। परिणाम यह हुआ कि भारत के स्वाधीन होने पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में प्रत्येक प्रान्त से थोड़ी बहुत सहायता मिल रही है और अब एक ऐसा क्षेत्र तैयार हो गया है, जिसके द्वारा हिन्दी को जनता से बड़े सहयोग की आशा हो रही है। हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक इन गुरुकुलों से निकले, जिन्होंने उपयोगी ग्रंथ लिखकर हिन्दी साहित्य का भंडार भरा और चरित्र संगठन की ऐसी पुस्तकें विद्यार्थियों को दे दीं, जिनके द्वारा विशुद्ध देश-भक्ति नवीन संतति में फैलाई जा सकेगी।

सन् १६३५ में मैंने अपना कार्यक्षेत्र लाहौर से बदल कर ज्वालापुर (हरिद्वार) में बना लिया और साहित्यिक कार्य को आगे बढ़ाने के लिये सत्यज्ञान निकेतन की बुनियाद डाली। अपने पुराने ग्रंथों के नये संस्करण करवाये और नये ग्रंथ भी लिखे। मैंने कुल छोटे बड़े ३२ ग्रंथ भी लिखे हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं।

(१) वैदिक धर्म का महत्त्व और (२) उन्नति का द्वार, ये दो पुस्तिकायें सन् १६५० में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमदाबाद आर्य समाज द्वारा प्रकाशित हुई, (३) राजर्षि भीष्म, (४) अमरीका पथ-प्रदर्शक, (५) अमरीका के स्वावलम्बी विद्यार्थी, (६) मनुष्य के अधिकार, (७) सत्य निबंधावली, (८) जातीय शिक्षा, (९) हिन्दी का संदेश, (१०) वेदान्त का विजय मंत्र, (११) राष्ट्रीय संध्या, (१२) संजीवनी बूटी, (१३) लेखन कला, (१४) मेरी कैलाश यात्रा, (१५) शिक्षा का आदर्श, (१६) अमरीका भ्रमण, (१७) मेरी जर्मनी यात्रा, (१८) देव चतुर्दशी, (१९ हमारी सदियों की गुलामी के कारण, (२०) श्री बुद्ध गीता, (२१) ज्ञान के उद्यान में, (२२) अनुभव, (२३) भारतीय समाजवाद की रूप रेखा, (२४) संगठन का बिगुल, (२५) हिन्दू धर्म की विशेषतायें, (२६) अनन्त की ओर, (२७) स्वतंत्रता की खोज में, (२८) विचार स्वातंत्र्य के प्रांगण में, (२९) पाकिस्तान एक मृग तृष्णा, (३०) नई दुनियां के मेरे अद्भुत संस्मरण, (३१) योरुप की सुखद स्मृतियाँ, (३२) लहसुन बादशाह, ये बत्तीस पुस्तकें मेरे द्वारा लिखी गईं और ३० मैंने अपनी ओर से प्रकाशित कराई हैं। दो पुस्तकों का कापी राइट मैसर्स राजपाल एण्ड सन्स को दे दिया गया, शेष सब का कापी राइट मेरे पास है। मैं चाहता हूं कि मेरा सारा साहित्य किसी ऐसी संस्था के पास जाय, जो उसे निरन्तर प्रकाशित करती रहे, जिससे मेरे विचारों का प्रचार बराबर होता रहे।

सत्य ज्ञाननिकेतन में मैं सन् १९३६ में आकर बैठ गया। दो हजार रुपये से मैंने भूमि खरीदी, जिस पर यह निकेतन खड़ा किया गया। मेरी प्रबल इच्छा थी कि मैं हरिद्वार को अपना प्रचार केन्द्र बना कर देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आई हुई प्रजा को हिन्दी माता का संदेश सुनाऊँ। ऋषिकुल, गुरुकुल कांगड़ी, ज्वालापुर महाविद्यालय आदि संस्थायें निकट होने के कारण मुझे पूरा विश्वास था कि इनके सहयोग के द्वारा मेरी मनोकामना सिद्ध होगी और मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। लेकिन होता वही है जो ईश्वर को मंजूर है—मेरे नेत्रों ने बिलकुल जवाब दे दिया और सन् १९५३ के नवम्बर मास की ३० ता० को मैंने अपना यह निकेतन 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को अर्पणनामा लिखकर दान में दे दिया और इसकी रजिस्ट्री करवा दी। यदि मेरी आंखें अच्छी रहतीं तो मैं हिन्दी साहित्य की महती सेवा करता। और "सत्य ज्ञान निकेतन" को आदर्श विद्या-केन्द्र बना देता। मैं यह चाहता था कि एक ऐसा भाषा शिक्षणालय स्थापित कर दिया जाय, जहाँ विदेशी लोग आकर हिन्दी साहित्य का अध्ययन करें और हमारे सांस्कृतिक आदर्शों को जानने का प्रयत्न करें। पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संम्मिश्रण मैं करना चाहता था, परन्तु मेरी आंखों ने जवाब दे दिया और मैं दूसरों पर निर्भर हो गया। कई एक धनाढ्य पंजाबी-सिन्धी मेरे निकेतन को खरीदना चाहते थे और चालीस से पचास हज़ार रुपये तक कीमत देने को तैयार थे, किन्तु मेरी आत्मा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। अपनी परीक्षा के तौर पर मैंने यही उचित समझा कि अपने जीते जी इस निकेतन को किसी सार्वजनिक संस्था को दान कर दूँ, जो मेरे उद्देश्य की सिद्धि करे। स्वर्गीय पं० राम नारायण जी मिश्र मेरे बड़े पुराने मित्र थे। उन्होंने मुझे हर प्रकार से यह आश्वासन दिया कि वे इस निकेतन को अत्यन्त उपयोगी सांस्कृतिक-केन्द्र बनायेंगे और काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कोई न कोई अधिकारी यहां पर अवश्य रहा करेगा, जो इसकी देख-रेख रखेगा। मैं कानूनी बातों से बिलकुल अनभिज्ञ हूं। मैंने यह समझा कि मुंह से किया हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायदा लिखा-पढ़ी की अपेक्षा अधिक मूल्य रखता है। मैं इसी विश्वास के कारण एक बड़ी भूल कर बैठा। यदि मैं काशी जाकर सभा की अवस्था देख लेता और वहां के सभासदों की सम्मतियाँ निकेतन के सम्बन्ध में जान लेता तो ऐसी भूल कदापि न करता।

* * *

सन् १६४४ में काशीनागरीप्रचारिणीसभा की स्वर्णजयन्ती हुई और पं० रामनारायण जी मिश्र उसके सर्वेसर्वा थे। उन्होंने मुझे उसमें निमंत्रित नहीं किया। न जाने इसका क्या कारण था। जब दस वर्षों के बाद सभा की हीरक जयन्ती हुई तो उसके प्रोग्राम में भी सभा वालों ने मुझे कोई स्थान नहीं दिया। नियत तिथियों से २-३ दिन पहले मुझे तार भेजकर आने की सूचना दी। मैं भला कैसे जा सकता था। उस हीरक-जयन्ती में कांग्रेस सरकार के बड़े-बड़े मिनिस्टर और अधिकारी आए। अपने साहित्यिक जीवन के पिछले पहर में मैं बड़ी बड़ी भूलें कर बैठा। दृष्टिहीनता के कारण लोगों ने मेरी निर्बलता से बड़ा अनुचित लाभ लिया। जिस काशी नागरी प्रचारिणी सभा को मैंने अपनी सारी जायदाद हिन्दी साहित्य की सेवा के लिये दान कर दी थी, उसी को मैं अपना परम हितैषी सहायक समझ बैठा और मन में सोच लिया कि हिन्दी के ये पुराने सेवक मेरे बलिदान की कीमत समझ कर मेरे साथ बड़ा भद्र व्यवहार करेंगे। सन् १६४४ में सभा की स्वर्ण जयन्ती थी और पण्डित रामनारायण मिश्र उस जयन्ती के प्राण थे। सभा को अब तक किसी हिन्दी हितैषी ने ऐसी बड़ी सम्पत्ति दान में नहीं दी थी, इस लिये मैंने स्वाभाविक ही समझा कि मिश्र जी इस स्वर्ण अवसर पर मुझे निमन्त्रित कर काशी वालों से मेरे निकेतन के लिये आवश्यक आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करेंगे, जिससे निकेतन का उद्देश्य शीघ्र सफल हो जाय।

पर अफसोस ! पं० रामनारायण जी ने मुझे निमन्त्रण तक नहीं भेजा, प्रोग्राम में स्थान तो क्या देना था। स्वर्ण जयन्ती खतम हो गई। उसके बाद जो वर्ष आये उनमें मैंने निकेतन में बड़ा कष्ट पाया और मिश्र जी द्वारा प्रयत्न यह किया गया कि मैं निकेतन छोड़ कर चला जाऊँ।

इतना ही नहीं, अर्पणनामे की शर्तों के विरुद्ध सत्य ज्ञान निकेतन की दीवारों पर सीमेंट में 'सत्य ज्ञान निकेतन ज्वालापुर' न खुदवा कर काशी नागरी प्रचारिणी सभा खुदवा दिया गया। हालाँकि अर्पणनामे की पहली शर्त यह है कि इस निकेतन का नाम सत्यज्ञान निकेतन रहेगा। मुझ नेत्रहीन का बड़ा मज़ाक किया गया और मिश्र जी ने अपने साथियों द्वारा मुझे इस प्रकार सताने में कोई कौर कसर न बाकी छोड़ी। साइनबोर्ड पर सत्यज्ञान निकेतन अवश्य लिख दिया जाता और मेरा नाम भी शामिल हो जाता, पर प्रकृति के आंधी तूफानों से वह धुँधला पड़ जाता और पंचपुरी की प्रजा में केवल काशी नागरी प्रचारिणी सभा के नाम का प्रचार बढ़ता रहता।

खैर, इस प्रकार संघर्ष में कई वर्ष बीत गये और मिश्र जी परलोक सिधार गये। तब आई सभा की हीरक जयंती। उसके प्रोग्राम में भी सभा वालों ने मुझे कोई स्थान नहीं दिया—उत्सव के दो दिन पहले मुझे तार भेजकर अपनी तसल्ली कर ली। इस प्रकार हीरक जयंती भी काल का ग्रास हो गई। सत्य ज्ञान निकेतन में केवल एक हिन्दी पुस्तकालय किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी ने बनवाया है। पंडित रामनारायण जी यह चाहते थे कि निकेतन में एक ऐसा मकान बना दिया जाये जिसके कारण स्वामी सत्यदेव इस निकेतन को वापिस न ले सके। मैंने स्वर्गीय मावलंकर जी से इस विषय पर सत्य परामर्श माँगा। उनका पत्र मेरे पास मौजूद है। उन्होंने लिखा कि हिन्दी राष्ट्र भाषा होगई है, देश की स्थिति बदल गई है। इस बदली हुई परिस्थिति में यदि मैं अदालत में जाऊँगा तो अदालत मेरे हक में फ़ैसला देगी। परन्तु सन्यासी होने के नाते अब ऐसा बखेड़ा करना अच्छा प्रतीत नहीं होता। उनका परामर्श सर्वथा उचित था। और मैंने भी समझ लिया कि अब यह संस्था काशी नागरीप्रचारिणी सभा के ही हाथों में रहनी चाहिये। आने वाली पीढ़ियाँ मेरे साथ अवश्य न्याय करेंगी।

पं० रामनारायण जी मिश्र के देहावासान के बाद सभा के ३, ४ भद्र पुरुषों ने यह उचित समझा कि लेखक के पारिश्रमिक के तौर पर स्वामी जी को ४०) प्रत्येक मास दिये जायें, जिससे वे अपना आदमी रख कर सुख से जीवन यापन कर सकें। अच्छा लेखक यदि ४,६ घण्टे लगातार काम करेगा तो कम से कम ७० व ८० रु० लेगा और यदि मैं केवल सेवक रखना चाहूँ तो वह साहित्यिक कार्य नहीं कर सकता। डेढ वर्ष तक मैंने इसका अनुभव करके देख लिया मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हमारे लोगों के दिल बहुत छोटे हैं। वे मुझ पर इस छोटी सी सेवा को बड़ा मानकर अपना अहसान जतायेंगे, इसलिये मैंने सभा को लिख दिया है कि अगले वर्ष से वह मुझे कोई पारिश्रमिक न भेजे। यह सच है कि अब मुझसे पहले की तरह अपनी पुस्तकों का प्रचार नहीं किया जा सकता और पुस्तकों की बिक्री बहुत घट गई है। किसी प्रकार के विज्ञापन के बिना ऐसा होना स्वभाविक था लेकिन जिस प्रभु ने अब तक मेरी बाँह गही है वह मेरे शेष जीवन को भी सफलता पूर्वक पार लगायेगा।

अन्त में मैं अपने सब प्रेमी पाठकों का धन्यवाद करता हूं जो मेरे साहित्य के प्रचार करने में मेरा हाथ बटाते रहे हैं। और काशीनागरी प्रचारिणी सभा के उन भद्र सदस्यों को भी हृदय से आशिर्वाद देता हूँ, जिनकी मेरे साथ सहानुभूति रही है। मेरे पास १०० से अधिक प्रकाशित तथा अप्रकाशित अत्यन्त उपयोगी विषयों पर लेख संभाल कर रक्खे हुये हैं। केवल ६,७ पुस्तकें मेरे द्वारा प्रकाशित मेरे स्टॉक में हैं, शेष पुस्तकें छापने की मुझ में क्षमता नहीं। परमात्मा किसी देश हितैषी साहित्यिक को अवश्य खड़ा कर देगा जो मेरे इस उपयोगी काय को जारी रखने के लिये प्रयत्नशील होगा।

हिन्दी के समाचार पत्र पत्रिकाओं—दैनिक हिन्दुस्तान, हिन्दीमिलाप, वैंकटेश्वर समाचार, नया जीवन और विश्वज्योति—के सम्पादकों का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ जो अपने इन प्रकाशनों को मेरे पास निरंतर भेजते रहते हैं। इनके द्वारा मैं देश की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करता रहता हूँ और अपने लेख प्रकाशनार्थ भेजता रहता हूँ। आशा है हिन्दी के दूसरे पत्र पत्रिकायें भी अपना संदेश मेरे पास भेजा करेंगी और मैं भी समय २ पर उनकी सेवा करता रहूंगा।

अन्त में मैं उस सर्वशक्तिमान जगन्नियन्ता प्रभु को धन्यवाद देकर नत मस्तक हो उसके चरणों में यही निवेदन करता हूं कि व प्रभु दीनदयाल मेरे जीवन को सार्थक करे और मेरे द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा सदा होती रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त परिचय

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का जन्म मई मास १८७९ में लुधियाना नगर के नोघरे मुहल्ले में हुआ था। आपके पिता शिक्षा विभाग में काम करते थे इसलिये आपकी देख रेख इनकी तपस्विनी माता के द्वारा हुई। सात वर्ष की आयु में वे अपने परिवार के साथ लाहौर चले गये और आय समाज बच्छोवाली के स्कूल में भर्ती हुये। हिन्दी के मधुर घूँट इन्होंने यहीं पर पिये और पुरस्कार में सत्यार्थप्रकाश और राबिन सन क्रूसो जैसे ग्रन्थ इन्हें पढ़ने के लिये मिले। ये आर्यसमाज की तरुणाई का समय था जिसके नव जीवन से भरे हुये अमृतमय प्यालों को पान करने का आपको अवसर मिला।

आर्य समाज की शिक्षा दीक्षा इन्हें हिन्दी के प्रसिद्ध केन्द्र काशी नगर में खींच लाई और यहीं इन्हें हिन्दी साहित्य से प्रेम प्राप्त हुआ। वे यहाँ से १५) लेकर अमरीका चले गये और स्वतंत्रता की खोज करते हुये वहाँ के विद्यालयों में पढ़ते रहे। २३०० मील पैदल भ्रमण कर आपने भावी लेखक बनने की भरपूर सामग्री संग्रह की और उसका रसास्वादन सरस्वती मासिक पत्रिका द्वारा देशवासियों को कराया।

सन् १९११ के जौलाई मास में आप प्रयाग लौट आये और देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में अपना कार्य क्षेत्र बनाकर राष्ट्रभाषा की सेवा करनी प्रारम्भ की। देश के कोने-कोने में घूम कर आपने लाखों विद्यार्थियों को व्याख्यानों द्वारा अपना स्वतंत्रता संदेश सुनाया—साथ ही साहित्य की रचना भी करते गये। इनकी पुस्तकों का खूब प्रचार हुआ और प्रान्तीय भाषाओं में उसके अनुवाद भी हुये।

✓ 'स्वामी सत्यदेव जी १९१२–१३ में, लाहौर की रावी नदी के जिस स्थान पर हजारों नगर निवासियों को स्वाधीनता का संदेश सुनाया करते थे उसी स्थान पर १९२९ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया।"

इसी वर्ष श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन की संरक्षा तथा भीमसेन विद्यालंकार के सम्पादकत्व में प्रकाशित पंजाब केसरी के प्रथम अङ्क में आपने जर्मनी से यह संदेश भेजा था :—

"उठ जाग भारत केसरी, अपने नखों को तेज कर अब केसरी"

पर नेत्रों के कष्ट के कारण इनके मार्ग में बड़ी बाधायें आई। ब्रिटिश सरकार पास पोर्ट नहीं देती थी, जिससे वे समय पर इलाज न करवा सके और अपने दोनों नेत्र नौकर शाही के साथ संघर्ष करने में खो दिये। तिस पर भी आपने हिम्मत नहीं हारी और साहित्य रचना करते रहे। ऐसे अनुभवी लेखक से हमने अनुनय विनय कर ये लेख लिखवाया है। आशा है कि हमारे हिन्दी-सन्देश के पाठक इस लेख को बड़े ध्यान से पढ़ेंगे और उससे उचित शिक्षायें ग्रहण करेंगे। इन्होंने ५ बार जर्मना की यात्रा की है। और योरप के अपने अनुभवों पर सविस्तर पुस्तकें लिखी हैं। जिन्होंने आप के ग्रंथ पढ़े हैं वे स्वामी जी की पुस्तकों और लेखों को बराबर तलाश करते रहते हैं। आपने आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी का व्रत धारण किया हुआ है।

——*——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना :

ले०—श्रीमती सुमित्रादेवी जी
C/o श्री प्रो० जयचन्द्र जी विद्यालंकार
होशियारपुर

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना आज से ३४ वर्ष पहले सन् १९२३ में हुई थी। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार उसके पहले मंत्री चुने गये थे। तब से सन् १९२७ में पंजाब को छोड़ कर जाते तक वे इसके मंत्री और मुख्य संचालक रहे। उनके उस कार्य की कहानी संक्षेप में यों है।

महात्मा मुन्शीराम जी उर्फ़ स्वामी श्रद्धानन्द जी के चरणों में बैठकर अपने बचपन और नवयौवन में गुरुकुल कांगड़ी में जयचन्द जी ने जो शिक्षा पाई, उसी ने उनके जीवन का मार्ग बांध दिया। उस ज़माने में जब कि भारत की शिक्षा-संस्थाओं और सामाजिक समागमों में लोग अपने देश के बारे में चूं करते डरते थे, गुरुकुल कांगड़ी में खुलकर देश की स्वतत्रता के प्रश्नों की चर्चा होती थी। दस वर्ष की आयु में—सन १९०८ में—ही जयचन्द्र जी ने अच्छी तरह समझ लिया था कि भारत अंग्रेजों का गुलाम है, और कि उसे उन्होंने भारतीयों की ही सेना और अमलों द्वारा गुलाम बना रक्खा है, जिन्हें अपनी तरफ़ मिलालें तो हम स्वतंत्र हो सकते हैं। यह समझ लेने के बाद से कोई दिन नहीं गया जब कि उन्होंने अपने देश के बारे में कुछ न कुछ चिन्तन न किया हो। भारत की जनता को जगाने का मुख्य और अन्तिम उपाय जनता की भाषाओं में संसार के सब नये ज्ञान को उपस्थित करना है. स्वामी श्रद्धानन्द जी की यह शिक्षा उनके मन में घर कर गई और स्वामी जी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने इस कार्य को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। पिछले ३९ वर्षों से वे बराबर इसी दिशा में प्रयत्न करते रहे हैं।

पंजाब की भाषा-स्थिति का विश्लेषण

सन् १९२१ में वे लाहौर के 'तिलक स्कूल आफ़ पालिटिक्स' तथा कौमी महाविद्यालय में अध्यापक होकर आये। तब पंजाब की भाषा-स्थिति की ओर उनका ध्यान गया। सरकारी कामकाज शिक्षा और सामाजिक जीवन के ऊंचे क्षेत्रों में जैसे अंग्रेजी का बोलबाला था, वैसे ही निचले क्षेत्रों में उर्दू का। पंजाबियों के लिए वे दोनों विदेशी भाषाएँ थीं। लोग अपने घरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बाजारों में पंजाबी बोलते थे। ऊंचे वर्ग के जो पुरुष उर्दू पढ़ते, उनके भी घरों में उनकी स्त्रियां प्रायः नागरी या गुरुमुखी पढ़तीं। यों एक ही घर में भाई और बहन, स्त्री और पुरुष की पढ़ने लिखने की भाषा अलग अलग थी! स्त्रियां जो नागरी या गुरुमुखी पढ़तीं वे अपने पुरुषों के उन लिपियों से अपरिचित रहने के कारण आरम्भिक शिक्षा के बाद कोई ऊंचा साहित्य मुश्किल से पढ़ने को पातीं। धर्म संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाले कुछ हिन्दू और सिक्ख पुरुष भी हिन्दी या पंजाबी पढ़ते। आर्यसमाज सनातनधर्म-सभा और सिक्खों के साम्प्रदायिक शिक्षणालयों में भी यों तो लड़के उर्दू में ही सब शिक्षा पाते, पर उन्हें धर्मशिक्षा के अंश रूप में थोड़ी नागरी हिन्दी या गुरुमुखी-पंजाबी पढ़ाई जाती। यों पंजाब का कोई एक साहित्यिक या सांस्कृतिक माध्यम न था, संप्रदाय और स्त्री-पुरुष भेद के अनुसार लोग अलग-अलग भाषाएँ और लिपियां पढ़ते।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार को यह स्थिति प्रान्त की प्रगति में अत्यन्त बाधक प्रतीत हुई। भारत की बाकी सब भाषाओं की वर्णमाला एक है, उर्दू की इससे भिन्न; बाकी सब की वर्णमाला अत्यन्त पूर्ण और वैज्ञानिक है, उर्दू की अत्यन्त त्रुटिपूर्ण, बाकी सब भाषाएँ संस्कृत से अपनी वैज्ञानिक परिभाषाएँ लेती हैं, उर्दू फ़ारसी अरबी से, इन तथ्यों पर उनका ध्यान विशेष रूप से गया था, और इनकी ओर वे आगे पंजाब के शिक्षितवर्ग का ध्यान बराबर खींचते रहे। उर्दू भारतीय संस्कृति का वाहन नहीं बन सकती, वह भारत की बुनियादी एकता और प्रगति में बाधक है, यह वे बराबर दिखाते रहे। उनका यह विश्लेषण सर्वथा राष्ट्रीय और वैज्ञानिक दृष्टि से था, हिन्दुत्व की साम्प्रदायिक प्रेरणा का इस पर ज़रा भी प्रभाव न हुआ था। सामाजिक और राजनीतिक जीवन में मुसलमानों के साथ उनका बर्त्ताव अत्यन्त खुला था तथा इतिहास में उनकी दृष्टि कितनी निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक है सो तो अब सब जानते हैं। पंजाब की उन्नति के लिए उसका उर्दू से पीछा छुड़ाना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ, और उन्होंने तब यह माना कि पंजाब में हिन्दी को उर्दू की जगह स्थापित करना ही इसका उपाय है।

प्रान्तीय सम्मेलन की स्थापना और पहला वर्ष

सन् १९२२ में कानपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। १९२३ के लिए उसे लाहौर में निमंत्रित किया गया था। लाहौर के उस सम्मेलन में निश्चय किया गया कि पंजाब में प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन की स्थापना की जाय। जयचन्द्र जी ने कानपुर और लाहौर के सम्मेलनों में जिस उत्साह से भाग लिया था, उसे देखते हुए सबका ध्यान कार्य को आगे जारी रखने के लिए उन पर गया और प्रान्तीय सम्मेलन की स्थापना के लिए जो संयोजक समिति १२ अप्रैल १९२३ को बनाई गई, सर्वसम्मति से उसका मंत्री उन्हें चुना गया। डा० गोकुलचन्द नारंग समिति के प्रधान चुने गये। अन्य सदस्यों में पंजाब के पुराने हिन्दी साहित्य सेवी श्री सन्तराम जी भी थे।

बड़े उत्सवों के बाद थोड़े दिनों तक लोगों का उत्साह बना रहता है। सो उस उत्साह की अवधि में प्रान्तीय सम्मेलन की नियमावली तैयार कर संयोजक समिति से स्वीकृत करा ली गई। उसके बाद सदस्य बनाने का सूखा काम था, जिसके आरम्भ होने पर कार्यकर्त्ताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्साह धीरे-धीरे ठंडा पड़ने लगा। इसके अतिरिक्त यह भी दिखाई दिया कि पंजाब के लोगों की अपने अपने साम्प्रदायिक गुट्ट के बाहर न जाने की प्रवृत्ति इस नई संस्था को खड़ा करने में बड़ी रुकावट है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन तो किसी बरात की तरह दो दिन का मेला था। पर जब हिन्दी की एक स्थायी संस्था पंजाब में खड़ी करने की बात आई तब प्रत्येक सम्प्रदायवाले देखने लगे कि उसका नियंत्रण हमारे सम्प्रदाय के हाथ में रहता है कि नहीं। पंजाब में हिन्दुओं के बाहर तो तब कोई विरला ही हिन्दी प्रेमी मिलता। हिन्दुओं में से सनातन धर्मी सोचते कि समिति का मंत्री आर्यसमाजी है, कालिज पक्ष के आर्यसमाजी देखते कि वह गुरुकुल पक्ष का है, और गुरुकुल पक्ष वाले मानते कि वह नास्तिक है। यों समिति के मंत्री ने थोड़े दिन बाद ही देखा कि प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन को यदि तीनों में से किसी एक पक्ष की संस्था के रूप में खड़ा करना हो तो वह बहुत जल्दी अच्छी हैसियत में खड़ा हो सकता है किन्तु चूंकि वैसा नहीं करना है इस लिए उसकी नींव कठिनाई से ही पड़ेगी। ऐसा दशा में एक सज्जन ने संयोजक समिति का सदस्य न होते हुए भी दर-दर भटकने में समिति के मंत्री का सबसे अधिक और अन्त तक साथ निभाया। वे थे गुरुदत्त भवन के श्री ज्ञानचन्द संघारी।

इस भटकने में देखा गया कि पंजाब के शिक्षितसमाज के लिए तब हिन्दी और साहित्य दोनों शब्द नये थे। आर्यसमाज ने हिन्दी का जो थोड़ा बहुत प्रचार विशेषत: स्त्रियों में किया था सो आर्यभाषा नाम से। पर पंजाब के पढ़े लिखे लोग तब नागरीलिपि और उसमें लिखी जाने वाली भाषा—को वह चाहे हिन्दी हो या संस्कृत—शास्त्री कहते थे। साहित्य शब्द को तो कोई मुश्किल से ही जानता था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन कहने पर लोग पूछते—हिन्दू-सहायता सम्मेलन! पर इस दशा में भी समिति के मंत्री और श्री ज्ञानचन्द संघारी घर-घर जाकर लोगों को नई संस्था का अर्थ बताते रहे, और अधिकतर घरों से यदि उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा तो भी उन्होंने अपने वहां जाने को निरर्थक नहीं माना। आज जब कि साहित्य शब्द पंजाबी में भी खूब चल पड़ा है, हमें यह जानना चाहिए कि ३५ वर्ष पहले लोगों को उसे समझाने के लिए कैसा श्रम किया गया था।

धीरे-धीरे सदस्यों की संख्या ६०–७० हो गई तथा साधारण कार्य को चलाने लायक रकम भी हाथ में आ गई। समिति के मंत्री ने तब लाहौर के बाहर प्रान्त के दूसरे नगरों में जाना आरम्भ किया। गुजरांवाले में श्री बिहारीलाल चानणा, श्री बिहारीलाल विग आदि के सहयोग से बड़ा अच्छा समारोह हुआ और कार्य का सूत्रपात बहुत अच्छे ढंग से हुआ। प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार के भाषण के लिए वहां जुटाई गई सभा में, श्री भीमसेन सच्चर सभापति थे। वे गुजरांवाले में कांग्रेस के मुख्य सूत्रधार थे, और कांग्रेस के साथ तब खिलाफ़त आन्दोलन भी जुड़ा हुआ था। वक्ता ने उर्दू के विरुद्ध साम्प्रदायिक धरातल से कुछ भी न कहते हुए जिस प्रकार यह दिखाया कि हिन्दी और भारत की अन्य सब भाषाओं का मार्ग एक है और उर्दू का उससे उलटा, उससे प्रभावित होकर श्री सच्चर ने कहा कि यदि इस रास्ते पर हिन्दी का आन्दोलन चलाया जाता है तो हम उसका स्वागत करते हैं। फिरोज़पुर, अम्बाला, नाहन, मुलतान, डेराइस्माइल खां आदि से भी निमंत्रण पाकर मंत्री ने उन स्थानों में भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये, और पंजाब की इस नई लहर का अर्थ समझाया। मुलतान में प्रान्तीय सम्मेलन का पहला अधिवेशन करने के लिए श्री बोधराज जी एडवोकेट, श्री केवलकृष्ण और श्री गोपाल जी और पं० चूड़ामणि जी शास्त्री का निमंत्रण भी मिल गया।

वह पहला अधिवेशन ३०, ३१ मई १ जून १९२४ को पंजाब के पुराने हिन्दी लेखक स्वामी सत्यदेव जी के सभापतित्व में हुआ। स्वामी सत्यदेव के लेखों और भाषणों ने १९१०-२० के बीच पंजाब और हिन्दी प्रान्तों के नवयुवकों को बहुत कुछ जगाया था। इसलिए उनका पंजाब के पहले हिन्दी सम्मेलन का सभापति चुना जाना सर्वथा संगत था। सम्मेलन सचमुच बड़ी धूमधाम से हुआ। बाहर से आने वालों में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा मंत्री आगरे के अध्यापक रामरत्न आदि थे। मुलतान सम्मेलन की एक विशेष बात थी कौमी महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा खेला हुआ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भारत-दुर्दशा नाटक, जिसमें प्रहसन रूप से भारतेन्दु की 'अन्धेरनगरी' मिला दी गई थी। मुलतान अधिवेशन के कुछ ही दिन बाद प्रान्तीय सम्मेलन के मंत्री को पंजाब सरकार का नोटिस मिला कि आगे से वह नाटक पंजाब में न दिखाया जाय।

एशिया-लिपि नागरी का स्वप्न

मुलतान अधिवेशन की एक और विशेषता थी राजा महेन्द्रप्रताप की काबुल से आई हुई चिट्ठी उसमें उन्होंने लिखा था कि पंजाब के हिन्दी आन्दोलन का पहला कार्य होना चाहिए गुरु ग्रंथसाहब का देवनागारी में प्रामाणिक सम्पादन। उसके बाद उसे अन्य पड़ोसी भाषाओं का साहित्य नागरी में सुसम्पादित कर निकालना चाहिए। राजासाहब ने आगे लिखा था कि तुर्कों के जागृत लोग, अरबी लिपि को छोड़ किसी और लिपि को अपनाने की सोच रहे हैं, एशिया के अन्य देशों के लोग भी वैसा करेंगे, और यदि उन्हें दिखा दिया जाय कि नागरी लिपि अत्यन्त पूर्ण और वैज्ञानिक है तो वे इसकी ओर झुक सकते हैं। यह भविष्योक्ति कितनी सच्ची थी! तुर्कों ने उसके कुछ वर्ष बाद ही अरबी छोड़ कर रोमन अपना ली। किन्तु नागरी प्रगति का जो मार्ग राजा महेन्द्रप्रताप ने दिखाया था, उस पर आज तक कुछ कार्य नहीं हुआ। पंजाब के हिन्दी आन्दोलन को तो वह बड़ा कार्य उठाने की शक्ति न थी। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने बाद में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा यह कार्य करवाने के कई प्रयत्न किये, पर उनकी पुकार सदा बहरे कानों पड़ी।

स्वामी सत्यदेव को सभापति चुनना, भारत दुर्दशा नाटक और राजा महेन्द्रप्रताप का पत्र इस सब से यह भी सूचित हुआ कि पंजाब का हिन्दी आंदोलन राष्ट्रीय दिशा में चलाया जा रहा था।

महात्मा हंसराज का सहयोग

मुलतान अधिवेशन की सफलता के बाद जिन लोगों का सहयोग प्रान्तीय सम्मेलन को मिला उनमें प्रमुख महात्मा हंसराज जी थे। पंजाब के सार्वजनिक जीवन में उनका ऊँचा स्थान था, और सार्वजनिक जीवन की ऊँच नीच को वे खूब समझते थे। डेढ़ साल तक वे देखते रहे कि नई संस्था के संचालकों में कितनी सचाई और निष्ठा है। जब उन्हें इसकी तसल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई तब उन्होंने अपना सहयोग दिया। इसके बाद से सम्मेलन के मन्त्री को उनको ऐसा सहारा मिला रहा जैसा उनकी अपनी 'पार्टी' के किसी व्यक्ति को मिल सकता था।

महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में पंजाब भर में फैला हुआ डी. ए. वी. स्कूलों का जाल था। इन सब में (डी. ए. वी. स्कूल लाहौर को छोड़ कर) हिन्दी पढ़ाई जाती थी, पर पांचवीं कक्षा से धर्मशिक्षा के अंश रूप में! शिक्षा का आरम्भ उर्दू से होता था और वही सब विषयों की शिक्षा का आठवीं कक्षा तक माध्यम थी। महात्मा जी ने प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन से सहयोग होने पर बड़ा यत्न किया कि प्रान्त के डी. ए. वी. स्कूलों में शिक्षा की बुनियाद हिन्दी बन जाए, पर सफलता बहुत कम हुई। पुरानी परम्परा को और दुनियावी लाभ की वस्तु को न छोड़ने की लोगों की प्रवृत्ति ऐसी थी कि वे अपने मुखिया की बात भी न सुनते। एक बार महात्मा हंसराज जी ने अध्यापक रामरत्न और श्री जयचन्द्र विद्यालंकार से बात करते हुये कहा कि मैंने तो बहुत यत्न किया, पर लोग मेरी सुनते नहीं, और मुझे ऐसा लगता है कि मेरा सारी उम्र का प्रयत्न इस दृष्टि से बेकार हो रहा है (यह कहते हुये उनकी आंखों में आंसू भर आये) आप दोनों प्रान्त का दौरा करें और स्कूलों के हैडमास्टरों को जाकर समझाएँ।

समय की कड़ी पाबन्दी और सार्वजनिक धन के पैसे का पूरा पूरा हिसाब लेना महात्मा हंसराज जी के जीवन की विशेषताएँ थीं। मेरठ के श्री लालचन्द जी पंजाब सरकार के सचिवालय में बजट विभाग के निरीक्षक तथा डी. ए वी. कालेज समाज के प्रमुख सदस्य थे। आरम्भ से प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन की कार्य समिति के भी सदस्य रहे और उसका हिसाब जांचते रहे थे। सम्मेलन का हिसाब रखने की पद्धति उन्होंने निश्चित की थी। जिस ढंग से हिसाब रक्खा जाता उससे वे बहुत सन्तुष्ट रहे और समिति में उन्होंने इसकी चर्चा की। उन्हें कभी एक पैसे का फरक नहीं मिला। उनकी सम्मति का और इस बारे में में अपने तजरबे का भी महात्मा जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक बार सम्मेलन के मन्त्री जब हिसाब पेश करने लगे तो उन्होंने पूछा कि आप स्वयं तो इसे जांच चुके हैं न, और उनके हां कहने पर कहा कि तब हमें पूरा भरोसा है, आगे चलिए। हिसाब के बारे में उनका जैसा शक्की होना प्रसिद्ध था उसे देखते हुये दूसरे सदस्यों को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ।

सिंध में देवनागरी आन्दोलन

३० अप्रैल १–२ मई १९२५ को प्रान्तीय सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन फ़ीरोज़पुर में पं० दीनदयाल शर्मा के सभापतित्व में हुआ। उस वर्ष की दूसरी विशेष बात सिन्ध का देवनागरी आन्दोलन थी। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की बड़ी बहन श्रीमती पार्वतीदेवी सन् १९१८ में रौलट ऐक्ट के विरुद्ध महात्मा गान्धी के चलाये आन्दोलन में राजनीतिक क्षेत्र में उतरी थीं, और तब से स्वतंत्रता संग्राम के हरावल में रहीं। पंजाब का कोई शहर या कस्बा मुश्किल से होगा जिसमें सन् १९२०–२२ में वे स्वाधीनता का संदेश लेकर न गई हों। १९२२ के अन्त में उन्हें इसका पुरस्कार मिला और वे लाहौर में अपने भाई के घर गिरफ्तार की गईं। मेरठ जेल में मुकद्दमा चला कर उन्हें दो वर्ष की सख्त कैद दी गई। यों भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में जेल जाने वाली वे पहली स्त्री थीं। १९२४ में वे अपनी पहली सज़ा पूरी कर छुट कर आईं। सन् १९२४ में मुलतान सम्मेलन ने सिन्ध वालों का ध्यान भी खींचा था और श्री जयचन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालंकार को वहां देवनागरी आन्दोलन उठाने का निमंत्रण मिला था। उस वर्ष तो वे सिन्ध न जा सके, पर अगस्त सितम्बर १९२५ में उन्होंने अपनी बहन के साथ सारे सिन्ध का दौरा किया। सक्खर, रोहरी, शिकारपुर, हैदराबाद, कराची, टांडो आदम, लारकाना आदि सभी बड़े स्थानों में उनके भाषण हुए, सिन्ध के सभी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से मिले और शिक्षा-संस्थाओंमें भी व्याख्यान दिये। उन्होंने जो नई बात सिन्ध के मेधावियों के सामने रक्खी वह यह थी कि सिन्धी भाषा अरबी के बजाय नागरी लिपि में लिखी पढ़ी जाय, और इसकी पहल करने को कन्याओं की शिक्षा तो शीघ्र से शीघ्र नागरी-सिन्धी में कर दी जाय। सितम्बर के अपने दौरे के बाद अक्तूबर में वे फिर सिन्ध गये जब कि स्त्री-शिक्षा की दो बड़ी संस्थाओं के संचालकों ने अपने यहां नागरी में सिन्धी पढ़ाना आरम्भ करने के निश्चय की सूचना दी, एक सज्जन ने नागरी-सिन्धी की रीडरें तैयार करवाने और छपवाने का सारा खर्चा उठाने का ज़िम्मा लिया तथा सभी नगरों में नागरी-सिन्धी सभाएँ स्थापित हो गईं जिनके सदस्यों ने नागरी सीखने और आपसी कार्यों में उसी का प्रयोग करने के प्रण किये। यदि श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इसके बाद दो-तीन महीने सिन्ध में ही बैठ जाते तो यह लहर वहां पूरी तरह चल पड़ती, किन्तु वे इतना अवसर तब न निकाल सके।

अबोहर का साहित्य सदन

मुलतान सम्मेलन के बाद से प्रचार के सिलसिले में सम्मेलन के मंत्री अनेक बार अबोहर गये। स्वामी केशवानन्द जी ने उनके परामर्श पर वहां प्रान्तीय सम्मेलन की शाखा संस्था रूप में साहित्यसदन की स्थापना की और उसके लिए २० हज़ार रुपया इकट्ठा करने का संकल्प किया। २४ जनवरी १९२६ को अबोहर साहित्यसदन का शिलान्यास स्वामी सत्यदेव जी ने किया। स्वामी जी और श्री ज० च० वि० की अपील पर ८ हज़ार की राशि स्थानीय जनता ने सदन के लिए वहीं दान दी। इसके बाद भी धनसंग्रह होता रहा। इसके कुछ काल पहले से यह विचार चल रहा था कि प्रान्तीय सम्मेलन को रजिस्टर्ड संस्था बना लिया जाय, और इसकी प्रतीक्षा थी कि सम्मेलन के हाथ में कुछ पूंजी या सम्पत्ति आजाय। महात्मा हंसराज जी और अध्यापक रामरत्न जी ने इसके लिए विशेष उत्सुकता दिखाई थी, और अबोहर में यह धन आ जाने पर उन्होंने और अन्य साथियों ने आशा लगाई थी कि प्रान्तीय सम्मेलन की रजिस्टरी उसके साथ ही हो जायगी। किन्तु इसके बाद अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बड़े अधिकारियों के बुलाने से स्वामी जी प्रयाग गये और वहां से लौट कर उन्होंने अपने इस निश्चय की सूचना दी कि अबोहर साहित्यसदन की रजिस्टरी प्रयाग सम्मेलन के नाम होगी। प्रयाग सम्मेलन ने इसके द्वारा मानो यह दिखलाया कि उन्हें अपनी प्रान्तीय शाखा के टिकाऊ होने पर स्वयं भरोसा नहीं है! महात्मा हंसराज जी और और अन्य कार्यकर्त्ताओं के मन पर इससे बड़ी ठेस लगी। पर जीवन में ऐसे अनुभव आते ही हैं।

शिमला हिन्दी प्रचारिणी सभा

सन् १९२६ की दूसरी विशेष घटना शिमले में हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना थी। उसकी भूमिका अध्यापक रामरत्न जी ने १९२५ और २६ की गर्मियों में सोलन रहते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाई थी। शिमले में उन्होंने और श्री जयदेव विद्यालंकार ने हिन्दी के लिए कार्य करने वाला युवकों का एक दल खड़ा कर दिया। शिमला बाज़ार के श्री किशोरीलाल और डा० नन्दलाल वर्मा का सहयोग उन्हें प्राप्त हुआ। भूमिका बन जाने पर सम्मेलन के मंत्री को बुलाया गया जिसके व्याख्यान से शिमले के शिक्षित वर्ग का भी इस कार्य में खिंचाव हुआ। तब सभा की विधिवत् स्थापना की गई।

तीसरा अधिवेशन

प्रान्तीय सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन मई १९२६ में लाहौर में करना निश्चित हुआ था। पं० मदन मोहन मालवीय उसके सभापति चुने गये थे। उनकी सुविधा को देखते हुए अधिवेशन को तीन बार मुलतवी किया गया और अन्त में वह १२-१३ फ़रवरी १९२७ को हुआ।

विदाई और सिंहावलोकन

इसके बाद श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने सम्मेलन की ज़िम्मेदारी छोड़ने की इच्छा प्रकट की। १९२५-२६ में पंजाब में हिन्दी के कार्य के अतिरिक्त वे कांग्रेस के कार्य में भी सचेष्ट रहे थे। इस सार्वजनिक कार्य के बढ़ने पर उन्हें अपने इतिहास अध्ययन को जारी रखने को समय न मिलता, जिससे ऊब कर उन्होंने चुपचाप बैठने का निश्चय किया था। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की बागडोर तब डा० लक्ष्मण स्वरूप के हाथ सौंपी गई (११-६-१९२७)।

लाहौर में दयालसिंह कालेज के प्रोफेसर सन्तराम जी ग्रोवर ने भी पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्यकारिणी के सदस्य के नाते, लाहौर के कालेजों के विद्यार्थियों तक सम्मेलन का सन्देश पहुँचाने में सराहनीय पूर्ण सहयोग दिया।

अक्तूबर १९२७ में शिमला हिन्दी प्रचारिणी सभा के निमंत्रण पर पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन का चौथा अधिवेशन शिमले में लाला लाजपतराय जी के सभापतित्व में हुआ। उस अधिवेशन के बाद श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने पंजाब से विदाई ली। पंजाब में हिन्दी की प्रगति में इसके बाद भी वे बराबर रुचि लेते रहे हैं। पर जैसा कि हमने इस लेख की प्रस्तावना में देखा है उनका पंजाब में हिन्दी प्रचार आन्दोलन आरम्भ करने का उद्देश्य यह था कि पंजाब की जनता तक ज्ञान की ज्योति पहुंचाने का सुगम मार्ग बन जाय अपने पांच वर्ष के प्रयत्न के बाद उन्होंने यह अनुभव किया कि पंजाबी जनता में ज्ञान फैलाने का सब से ठीक मार्ग यह है कि पंजाबी भाषा का ही, उसे देवनागरी अक्षरों में लिखते हुए, विकास किया जाय और राष्ट्र-भाषा रूप में हिन्दी का पठन-पाठन जारी रक्खा जाय। लगभग पिछले २७-२८ वर्ष से उनका यही मत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की ऐतिहासिक कृति :
[१९२०-१९४६]

ले०-श्री पृथ्वीसिंह जी महता विद्यालंकार
शिवकुटी फतहसागर की पाल
उदयपुर।

भारतीय प्राचीन भूवृत्त संस्कृति और ऐतिहासिक वाङ्मय तथा पुरातत्व के आज के माने हुए विद्वान् डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने १९४२ ई. में दिल्ली में मिलने तथा भारतीय प्राचीन भूवृत्त विषयक उनकी खोजों की चर्चा चलने पर, एक बार लेखक से कहा था कि इस विषय के मौलिक अन्वेषण की दिशा में प्रेरणा और मार्ग दर्शन उन्हें श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के कार्य तथा ग्रंथों से ही प्राप्त हुआ था और कि वे उनके लिए आज भी आदर्श और प्रेरणाप्रद बने हुए हैं, कि उनके "भारत भूमि और उसके निवासी" की टक्कर का ग्रंथ प्राचीन भारतीय भूवृत्त विषय पर दूसरा लिखा जाना अभी शेष था। यही बात और लगभग इन्हीं शब्दों में लेखक को भारतीय इतिहास, भूवृत्त, कला और सांस्कृतिक अनुशीलन के एक दूसरे माने हुए विद्वान् डा० मोतीचन्द ने १९५२ ई० में बम्बई के प्रिंसआफ वेल्स म्यूजियम में उनसे मिलने जाने पर कही और डा० अग्रवाल ने अभी-अभी पिछले साल १९५५ के इसी मास (मार्च) में जयपुर में पं० मोतीलाल शास्त्री के यहां मिलने पर इसे फिर दोहराया था।

भारतीय कला के मर्मज्ञ और माने हुए विद्वान् बनारस के राय कृष्णदास की मान्यता है, कि "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" की टक्कर की रचना भारतीय इतिहास पर अभी तक दूसरी नहीं लिखी जा सकी है और उन्हें श्री जयचन्द्र जी से (१९५१ तक) क्यों कि उसके बाद लेखक को उनसे मिलने का कभी अवसर नहीं मिला; बराबर यह कड़ी शिकायत रही है कि वे उक्त ग्रंथ की सिर्फ दोही जिल्दें निकाल कर रह गये और कि वे अपनी शक्ति इन दिनों प्राचीन इतिहास के स्पष्टीकरण की ओर न लगा आधुनिक और समसामयिक घटनाक्रम के तारतम्यों को जोड़, उनकी व्याख्या में खर्च रहे हैं। हालां कि उनका यह मानना है कि इस विषय पर भी उनके द्वारा किये गये कार्य का गुण दूसरों द्वारा अब तक किये गये कार्य से कहीं अधिक महत्व का और आंखें खोलने वाला होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयचन्द्र विद्यालंकार का जन्म सन् १८६८ में, दक्षिण-पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के जिला साहीवाल (मिंटगुमरी) के कमालिया कस्बे में हुआ और शिक्षा-दीक्षा भारत के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की ऐतिहासिक कृति

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार सन् १६१६ में गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक होकर निकले और उसी साल से हिन्दी को ऐसी देन देने लगे जिससे उसका स्थायी साहित्य बनने लगा। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर लिखते, सदा उनकी बुनियादी गुत्थियों को सुलझाते और उनके स्थायी समाधान सुझाते रहे। उनके पहले लेख "सत्याग्रह के सिद्धान्त की समीक्षा" १६१६ ई. ने हिन्दी प्रान्तों के महान् उन्नायक गणेशशंकर विद्यार्थी का ध्यान खींचा, जिनके निमन्त्रण पर आगे वे उनकी 'प्रभा' और 'प्रताप' के लिये लिखने लगे। समकालिक समस्याओं पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार तब से प्रायः लगातार कुछ न कुछ लिखते रहे हैं, और उनके उन लेखों का संग्रह हो तो पिछले चालीस वर्ष के इतिहास के भीतरी विचार-मथन पर भरपूर प्रकाश पड़े। किन्तु उनकी वह देन हमारे आज के लेख का विषय नहीं है।

सन १६२० में 'प्रभा' में लिखे हुये एक लघु लेख से उनका ऐतिहासिक खोज में झुकाव भी प्रकट हुआ था। वही झुकाव उन्हें १६२१-२२ में इतिहास के महान् प्रकाश-स्तम्भ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के चरणों में ले गया, जहां उन्होंने प्राचीन लिपियां सीखीं और भारतीय इतिहास खोज के नये वाङ्मय और उस खोज की पद्धति का परिचय पाया। उसके बाद से उनके ऐतिहासिक लेख भी निकलने लगे। उन दिनों वे लाहौर के कौमी महाविद्यालय में अध्यापक थे, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना कर उसके मन्त्री की जिम्मेदारी निभा रहे थे, प्रान्तीय कांग्रेस में भी भाग लेते थे और पंजाब में क्रान्तिकारी संगठन का जिम्मा भी उठा चुके थे। परन्तु इस सब के बीच उनका इतिहास-अध्ययन भी जारी था।

सन १६२१ में ही उन्होंने संकल्प किया था कि भारतीय दृष्टि से भारत का पूरा इतिहास लिखना है। १६२६ ई० से उन्होंने उसमें हाथ लगाया। अगले वर्ष वे लाहौर छोड़ बिहार विद्यापीठ, पटना में अध्यापक हो कर चले गये। वहां वे प्राचीन भारतीय इतिहास के एक दूसरे आचार्य श्री काशी प्रसाद जायसवाल के सम्पर्क में आये, जिससे उन्होंने पूरा लाभ उठाया। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है—श्रद्धेय ओझा जी से मैंने पहले पहल ऐतिहासिक खोज के औज़ार चलाना सीखा था.........किन्तु उसके बाद भी मैं अनेक बार उन औज़ारों को गलत चला बैठता यदि...जायसवाली के चरणों में बैठ कर मैं अपनी सूझ को और निर्णय शक्ति को ठीक ठीक न सधा पाता।' (भारतीय इतिहास की रूप रेखा १६३३ वस्तुकथा पृष्ठ १८-१६)

तीन अनूठे ग्रन्थ

सन् १६३० के बाद से श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार के परिपक्व ग्रन्थ निकलने लगे। पहला ग्रन्थ "भारत भूमि और उसके निवासी" १६३१ में निकला। जो वास्तव में उनकी १६२२ ई० में प्रकाशित पुस्तिका "भारतीय इतिहास के भौगोलिक आधार" का ही परिष्कृत और परिवर्धित संस्करण था, जिस में उन्होंने भारत के ऐतिहासिक सामरिक भूवृत्त का अंकन और विवेचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी स्पष्टता सूझ बूझ के साथ पहली बार किया था। वह भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति मार्गियों के गहरे अध्ययन की वस्तु थी। उसकी एक प्रति कलकत्ता में उनके लघु अनुज श्री इन्द्रचन्द्र नारंग की तलाशी में मिलने के कारण पुलिस ने उन्हें क्रान्तिकारी होने के सन्देह में गिरफ़्तार किया और १९२७ में देवघर षड्यन्त्र के मुकद्में में उसे अविकल अंगरेजी अनुवाद सहित इनके विरुद्ध क्रान्ति मार्गी होने के प्रमाण रूप में यह कहते हुये अदालत में पेश किया था कि भारत का सामरिक भू अंकन उक्त ग्रन्थ में किया गया था। किन्तु विद्वान् अंगरेज जज ने यह टिप्पणी देकर उसे पर्याप्त प्रमाण मानने से इन्कार कर दिया कि यह तो बरतानवी साम्राज्य तन्त्र के लिये भी उतना ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है (It can also be helpful to the British Impersialist as well) स्व० डा० जायसवाल का ध्यान, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार और उनके ऐतिहासिक भूवृत्तीय अध्ययन खोज और मनन के महत्व की तरफ, विद्वान् अंगरेज जज की उस टिप्पणी के कारण ही पहले पहल खिंचा और तब से अपने जीवन अन्त तक वे उनसे अपना सम्बन्ध और सम्पर्क बनाये रखने और उत्तरोत्तर घनिष्ट करते रहने का यत्न करते रहे थे।

'भारत भूमि और उसके निवासी' ग्रंथ के १९३० में प्रकट होने पर उसके विषय में भारत की आदिम जातियों के महान् विशेषज्ञ और भारतीय ओरियण्टल कान्फ्रेन्स (प्राच्य सम्मेलन) के १९३० के सभापति डा० हीरालाल ने लिखा था—'पं० जयचन्द्र विद्यालंकार की नई सूझ है, जो (भारतीय) भूगोल (भूवृत्त) को शास्त्र का रूप दे रही है।

दूसरा ग्रंथ 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा'—प्राचीन काल–१९३३ में निकला। उसके विषय में स्वयं जायसवाल जी ने लिखा था—Such a synthetic work had not been attempted before. (ऐसे समन्वयात्मक ग्रन्थ लिखने का पहले किसी ने प्रयत्न नहीं किया)।

तीसरा ग्रन्थ "इतिहास-प्रवेश" १९३८–४० में निकला। कलकत्ता रिव्यू में उसकी आलोचना करते हुये महान् भाषा विज्ञानी डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने लिखा—And it is a history not for Indians only but for the whole world to read. (और यह ऐसा इतिहास है जो न केवल भारतीयों के लिये प्रत्युत सारी दुनिया के पढ़ने लायक है)।

तीन ग्रंथों के विषय में तीन प्रामाणिक विद्वानों के इन तीन वाक्यों से श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की इतिहास–कृति का मूल्य प्रकट है। किन्तु दिग्गज विद्वानों के ऐसे प्रशंसा बचनों से ही पाठकों को जिज्ञासा होगी कि उन ग्रन्थों में कौन सी विशेषताएँ हैं तथा उनके लेखक का सारा कार्य कैसा है सो उसका संक्षिप्त परिचय देने का हम यत्न करते हैं।

भारत भूमि और उसके निवासी

"भारत भूमि और उसके निवासी" की पहली विशेषता तो यह थी कि उसमें भारत की भूमि रचना का प्रभाव इतिहास पर ब्योरेवार दिखाया गया था। उसकी दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें भारत के भाषा जनपदों का, जिन्हें लेखक ने तब "जातीय भूमियां" कहा था, पूरा नक्शा तथा प्रत्येक जनपद के इतिहास का खाका टटोला गया था। सन १९२१ में ही अपने एक लेख में उन्होंने भाषा जनपदों का महत्व दिखाया था। "भारत भूमि और उसके निवासी"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा 'उन भषा जनपदों की पहचान जहां एक तरफ भारतीय इतिहास और समाज शास्त्र के अध्ययन की बुनियाद है, वहां भारतीय राष्ट्र के भावी जीवन की भी वही इकाइयां हैं।...उनके स्वरूप को समझने का जतन मैं सन् १६२१ से सन् १६३० तक लगातार करता रहा हूँ। उनका मोटा खाका इस पुस्तक के सातवें अध्याय के रूप में पहली बार भारतीय जनता की भेंट किया जा रहा है।'

लेखक ने इस ग्रन्थ में दिखाया कि आजकल के भारतीय बोलियां के जो क्षेत्र हैं वही प्राचीन भारत के जनपद थे। जिनकी अपनी विधान सभाएँ अपने नियम कानून आदि होते थे। यों इन भाषा क्षेत्रों के सामूहिक जीवन की बुनियाद दो हज़ार वर्ष गहरी है। उस बुनियाद को तथा इस बात को देखते हुये कि राष्ट्रीयता की नींव अपने भाषा के प्रेम पर है, उन्होंने उन्हें राष्ट्र के भावी जीवन की इकाइयां कहा। ध्यान रहे कि महात्मा गांधी ने स्वराज्य पाने का अपना जो कार्यक्रम १६२० में बनाया था उसका भी एक मुख्य जुज़ भाषानुसार प्रान्त रचना था। पर समूचे भारत के भाषा जनपदों पर पूरा नक्शा तथा प्रत्येक भाषा जनपद का ऐतिहासिक खाका पहले पहल श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने १६३१ में देश के सामने रक्खा और भारत के इतिहास में जातिकृत भौमिक आधारों को टटोल कर पहले पहल यह भी दर्शाया कि आधुनिक भाषाओं बोलियों, उप बोलियों आदि के क्षेत्र, न केवल भारत अपितु अफगानिस्तान और पामीर तक के प्राचीन जनपदों का स्थान स्पष्टता के साथ निदर्शन कराते रहते हैं और कि भारतीय राष्ट्र का समूचा इतिहास, उसके इन भाषा जनपदों के विकास और पारस्परिक सम्बन्धों के समन्वय की प्रक्रिया का ही इतिहास है। उनके इस कार्य को देखते हुये डा० हीरालाल ने लिखा—आशा है आपका प्रयत्न अनेक लोगों की आंखें खोल देगा।'

परन्तु भारत की भाषाओं के विकास से जिन अंग्रेजी वालों के स्वार्थों को चोट लगती थी उन्होंने जान बूझ कर आँखें मींचे रक्खीं। आज यह सब को मालूम है कि स्वराज्य मिलने के पश्चात् किस प्रकार महात्मा गांधी के अनुयायियों ने ही भाषा जनपदों का विरोध किया। जब कांग्रेस की कार्य-समिति ने जनवरी १६४८ में यह निश्चय किया कि भारत में ऊँची शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषाएं न हो कर संघभाषा हो, तब महात्मा गांधी ने अपने प्रार्थना प्रवचन में कहा—'कांग्रेस ने २० साल से यह तय कर लिया था कि देश में जितनी बड़ी-बड़ी भाषाएँ हैं उतने प्रान्त होने चाहिए। कांग्रेस ने यह भी कहा था कि हकूमत हमारे हाथ में आते ही ऐसे प्रान्त बनाये जायेंगे।............इसके अलावा अगर भाषावार प्रान्त बन जाते हैं तो प्रान्तीय भाषाओं की भी तरक्की होती है। वहाँ के लोगों को हिन्दुस्तानी में तालीम देना तो वाहियात है और अंग्रेज़ी में देना तो और भी वाहियात है।'*

इस प्रवचन के पाँच दिन बाद ही गांधी शहीद हो गये। कांग्रेस के नेताओं पर उनका अंकुश न रहा तो भारत के संविधान में उन्होंने भाषा जनपदों के सिद्धांत को तिलांजलि दे दी। जब देश के सब शक्तिशाली नेता उस सिद्धांत को अपने जानते दफना चुके थे तब श्री जयचन्द्र

*प्रार्थना प्रवचन, दूसरा खंड, पृष्ठ ३३८, २५ जनवरी १९४८ के प्रवचन के अन्तिम शब्द (पृथ्वीसिंह महता—हमारा राजस्थान, प्रयाग १९५०, पृष्ठ ४९४ पर उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालंकार ने पहले अपने एक लेख में, फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन कोटा के सभापति पद से दिसम्बर १६५० में दिये अभिभाषण में, उसका ऐसा युक्तिसंगत और बलपूर्वक प्रतिपादन किया जिसका कोई जवाब किसी से न बन पड़ा। यह उल्लेखनीय है कि उनके इन लेखों के मराठी और तेलगु अनुवाद हुए और उनके प्रकाशित होने के बाद दक्षिण भारत में वह लहर उठी जिसमें श्री रामुलु ने अपने जीवन का बलिदान किया। अन्त में करोड़ों की संपत्ति और हजारों जानों के कुर्बान होने के बाद देश के नेताओं ने अपनी आँखें खोलीं और कम से कम दक्षिण भारत के लिए भाषा जनपदों के सिद्धांत को माना, जिससे नवम्बर १६५६ में राज्यों का पुनर्निर्माण हुआ। किन्तु गुजरात और महाराष्ट्र में द्विभाषी बम्बई राज्य बनाने का यत्न कर उन्होंने इसे फिर टालने का यत्न किया है। और वर्तमान (१६५७ के) चुनावों में उन प्रान्तों में शासक कांग्रेस दल की भारी पराजय इस बात का एक फिर बड़ा सबूत है कि भारत की जनता अपने स्वराज्य में शासनिक इकाइयों का निर्माण भाषा क्षेत्रों के अनुसार ही चाहती है, जिसे स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महात्मा मोहन दास कर्मचन्द्र गांधी जैसे हुतात्मा लोक नायकों का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका था।

प्राचीन भूवृत्तीय खोज

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने इस पहचान के आधार पर कि आज के भारतीय बोलियों के क्षेत्र प्राचीन जनपद हैं, अनेक प्राचीन जनपदों और स्थानों का पुनरुद्धार किया उनकी इस विषय की पहली खोजें "भारत भूमि और उसके निवासी" के परिशिष्ट में थीं। उन्होंने निर्धारित किया कि अर्वाचीन काल का गल्वा या ताजिक भाषा का क्षेत्र 'पामीर और बदख़शा' ही प्राचीन कम्बोज था। फिर महाभारत में कम्बोज के पूर्व ऋषिक लोगों का उल्लेख है। उनका उन्होंने प्राचीन मध्य एशिया की आर्षी भाषा से सम्बन्ध बताया और कहा कि वही चीनी लेखकों के 'युइशि' हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० सिलवान् लेवी ने, जो अपने जमाने में युरोप में संस्कृत और चीनी भाषाओं तथा भारत और चीन के प्राचीन इतिहास के सबसे बड़े विद्वान् माने जाते थे, सन् १६३३ में फ्रांसीसी विद्वत्पत्रिका 'जूर्नाल आजियातिक' में अपने एक लेख में इस खोज का उल्लेख करते हुए लिखा कि 'एक भारतीय विद्वान् श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने "ऋषिक में युइशि' को पहचाना है....। यह ऐसी सूचना है जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।' प्रो० लेवी के इस लेख से युरोप के विद्वानों को श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के कार्य की सूचना मिली।

उनकी प्राचीन भारत विशेषतः उत्तरपच्छिमी भारत, अफगानिस्तान और मध्य एशिया के भूवृत्त की खोज इसके बाद बराबर जारी रही है और आज तक उनकी एक भी पहचान गलत सिद्ध नहीं हुई बल्कि अनेक बार ऐसा हुआ कि आज जो पहचान उन्होंने की वह बाद की पुरातत्व की खोज या खुदाई से पुष्ट हुई। उदाहरणार्थ १६२४ में ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित अपने एक लेख में महाभारत के एक सन्दर्भ की विवेचना करते हुए उन्होंने दिखाया कि रोहतक का प्रदेश दूसरी शताब्दी ई० पू० में बहुधान्यक कहलाता था। दो वर्ष बाद रोहतक की खुदाई में सिक्के ढालने के मिट्टी के दस हजार सांचे मिले जिनमें प्रत्येक पर दूसरी शताब्दी ई० पू० की लिपि में लिखा था 'बहुधान्यके'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० सिल्व्याँ लेवी के लेख से भारत में भी कुछ लोगों का ध्यान जयचन्द्र जी की कृति के महत्व की ओर गया। श्री रामकृष्ण परमहंस की जयन्ती पर प्रकाशित कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया' (Cultural Heritage of India—भारत का सांस्कृतिक दाय) में भारतीय प्रदेश रचना पर अंग्रेज़ी में लेख लिखना उनको सौंपा गया, जो उन्होंने Regional and Linguistic Structure of India शीर्षक से लिखा। उस लेख में 'भारत भूमि और उसके निवासी' का सार है। प्रो० विनयकुमार सरकार ने उसे पढ़ कर लिखा—Your ideas are in the main very suggestive...I should rather say that your ideas have grown out of the fact of Hindu-culture-history. (आपके विचार प्रायः बड़े सूझ दिलाने वाले होते हैं···मैं यह कहूँगा कि आपके विचार भारत के संस्कृति-इतिहास के तथ्यों से ही विकसित हुए हैं)।

भारतीय इतिहास की रूपरेखा

१९३३ ई० में श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का महान् ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका रूप उनका पहला ग्रन्थ 'भारत भूमि और उसके निवासी' था। इस ग्रन्थ का परिचय जायसवालजी के शब्दों में ही देना ठीक होगा। उन्होंने लिखा था—

It is a unique work. From the Vedic age upto the end of the Gupta period, Indian History has been surveyed in all its aspects-political, social, and cultural. The author has utilised the researches by various scholars upto date and has added his own contributions which are important. Such a synthetic work had not been attempted before. The learned author's method is perfectly critical and his judgement logical. (यह अद्वितीय कृति है। वैदिक काल से लेकर गुप्तयुग के अन्त तक भारतीय इतिहास के राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक सब पहलुओं की पर्यवेक्षा की गई है। लेखक ने विभिन्न विद्वानों की आज तक की खोजों का उपयोग किया है और उनमें अपनी महत्वपूर्ण देन भी जोड़ दी है। ऐसा समन्वयात्मक ग्रन्थ लिखने का पहिले किसी ने प्रयत्न नहीं किया था। विद्वान लेखक की पद्धति सर्वथा आलोचनात्मक और उनके निर्णय युक्ति संगत हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास का यह अद्वितीय ग्रन्थ आज १३-१४ वर्ष से अप्राप्य है—उसे दोहरा कर अद्यानुकूल बनाने के लिए लेखक को जो सुविधाएं चाहिएं हमारे देश में उन्हें वे देने का ध्यान किसी को नहीं है—तो भी इस विषय पर वैसा समन्वयात्मक ग्रन्थ आज तक कोई दूसरा भी नहीं निकला है।

ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ

जो फुटकर लेख हिन्दी अंग्रेजी में जयचन्द्र इस बीच लिखते रहे उनकी चर्चा छोड़ हम मुख्य-२ ग्रन्थों की ही बात करेंगे। १९३४ ई० में अन्य विद्वानों के सहयोग से उनके द्वारा सम्पादित ओझा अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसका पूरा नाम है–महामहोपाध्याय गौरी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर हीराचन्द ओझा के सम्मान में समर्पित भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ।' यह रायल चौथाई माप के ५५२ पृष्ठों का मोटा ग्रन्थ है जिसमें भारत ईरान युरोप और अमरीका के विद्वानों के अपनी अपनी १४ भाषाओं में लिखे लेखों का हिन्दी सारानुवाद साथ है। भारतीय और ईरानी आदि भाषाओं के सब लेख देवनागरी में, और यूरपी भाषाओं के रोमन में। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी इसके संपादक-मण्डल में थे। ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर उन्होंने श्री जयचन्द्र विद्यालंकार को लिखा—The Ojha Comm. Volume is a splendid production and it also bears ample testimony to your powers of organisation and your scholarship, since it was you who was mainly responsible for its publication. (ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ शानदार उपज है और यह आपकी संगठन-शक्ति और आपकी विद्वत्ता दोनों को भरपूर प्रमाणित करता है, क्योंकि इसके लिये मुख्यत: आपही जिम्मेदार थे)।

संघटन शक्ति और विद्वत्ता दोनों के मेल अत्यन्त दुर्लभ हैं। पर ज्ञान संस्थाएं चलाने के लिये दोनों की आवश्यकता होती है। और दोनों के मेल से ही बाद में जयचन्द्र जी ने भारतीय इतिहास परिषद् की स्थापना कर उसे चलाया।

भारतीय इतिहास का समन्वय कार्य

सन १९३० में बिहार विद्यापीठ का कालेज विभाग बन्द हो जाने पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार आर्थिक दृष्टि से 'बेकार' हो गये थे, और उसी दशा में उन्होंने उपर्युक्त ग्रंथ प्रकाशित किये थे। रूपरेखा' के प्रकाशित होने के बाद उनके मित्र अध्यापक रामरत्न जी ने उनसे कहा कि अपनी विद्यमान दशा में इस पैमाने पर भारतीय इतिहास को पूरा करना आपके लिये अशक्य होगा, सो अपनी इसी पद्धति से छोटा इतिहास तैयार करें। इस सुझाव के अनुसार सन् १९३२ में उन्होंने उस छोटे ग्रंथ में हाथ लगा दिया, जो १९३८-४० में 'इतिहास-प्रवेश' नाम से प्रकाशित हुआ।

इस ग्रंथ की अनेक विशेषताओं में से एक यह है कि दूसरे विद्वान् जहां हिन्दू इतिहास मुस्लिम इतिहास मुगल इतिहास मराठा इतिहास सिक्ख इतिहास आदि को अलग-२ देखते रहे हैं, वहां जयचन्द्र जी ने अपनी समन्वय दृष्टि से सारे भारत के विकास को एक साथ टटोला जाँचा है। उनकी इस समन्वय की दृष्टि की चर्चा विशिष्ट विद्वानों में फैल गई। मराठा इतिहास के सबसे बड़े विद्वान् गोविन्दराव सरदेसाई ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ Main Currents of Moratha History (मराठा इतिहास की मुख्य धाराएं) उनके पास भेज कर उन्हें लिखा कि आपने अपनी कृति पर मेरा मत पूछ कर मेरा बड़ा आदर किया है क्योंकि मैं तो आपको अपने गुरू के समान मानता हूं। आगे उन्होंने विवेचना पूर्वक अपना मत दिया। उत्तर में सरदेसाई ने लिखा—I feel particularly grateful for the valueable aspect you mention in relation to the Sikhs of the Punjab affecting the Maratha affair of Panipat. It is an unpardonable ommission not only on my part, but on that of so many learned scholars who have dealt with the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

subiect before me.........(मैं आपका विशेष कृतज्ञ हूँ पानीपत के मराठा मामले पर सिक्खों का जो प्रभाव पड़ा उस कीमती पहलू को बताने के लिये। यह अक्षम्य चूक है न केवल मेरी, प्रत्युत मुझ से पहले जिन विद्वानों ने इस विषय की चर्चा की है उन सब की...)।

इस पत्र में जहां श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की इतिहास विवेचन पद्धति की एक झलक है वहां महाराष्ट्र के उस महान् विद्वान् की, जो सौभाग्य से आज ९६ वर्ष की आयु में भी स्वस्थ हैं, अनुपम सत्यनिष्ठा और सरलता चित्रित है।

श्री जयचन्द्रविद्यालंकार के विश्लेषणात्मक समन्वयसे भारतीय इतिहास का चित्र कैसा जाग उठा है यह उनके नागपुर (१९३६) और शिमला (१९३८) में हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा आरा (१९३०) में बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्यसम्मेलन की इतिहास परिषदों के सभापति पद से दिये अभिभाषणों में दिखाई देता है। वही जीता-जागता चित्र उनके ग्रंथ 'इतिहास-प्रवेश में भी है।

इतिहास प्रवेश

'इतिहास प्रवेश' में पूरा भारतीय इतिहास है। भारतीय विद्वानों ने उसे भारतीय दृष्टि से लिखा हुआ भारत का पहला पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास माना है। उसके विषय में हम स्वयं कुछ कहने के बजाय बड़े विद्वानों के कथन ही उद्धृत करते हैं।

प्रो० विनयकुमार सरकार ने लिखा—The style is wonderfully lucid. And undoubtedly most readers will feel that your treatment of history introduces them to men and women of flesh and blood.

(शैली अद्भुत रूप से विशद है। और निश्चय से अधिकतर पाठक अनुभव करेंगे कि आपका इतिहास विवेचन हमें रक्त मांस वाले—जीते—जागते—स्त्री—पुरुषों से परिचित कराता है।

दक्षिण भारत के प्रमुख ऐतिहासिक प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री ने जायसवाल और लेवी के लेखों में जयचन्द्र जी के ग्रंथों की चर्चा पढ़ उन्हें पढ़ने का संकल्प किया और इसी खातिर हिन्दी सीखी। ग्रंथों को पढ़ने के बाद उन्होंने लिखा कि मैंने 'इतिहास-प्रवेश' आदि की प्रत्येक पंक्ति पढ़ी···I have been struck by the wide range and the great precision of your learning...Itihasa Pravesa...is the best book on Indian history of that size I have so far come across in any language. (आप की विद्वत्ता के क्षेत्र-विस्तार और बड़ी ठिकाई को देख कर मैं चकित हूं।··इतिहास-प्रवेश किसी भी भाषा में भारतीय इतिहास की उस परिमाण की मेरी अब तक देखी पुस्तकों में श्रेष्ठ है)।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्ये ने कलकत्ता रिव्यू (फरवरी १९४१) में ग्रंथ की आलोचना की जिसमें से एक वाक्य ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उन्होंने लिखा है—This is a remarkable well-planned and well-written book on Indian history... most up-to-date, most comprehensive and most satisfactory work of its type on the subject I have ever read. Conceived in a thoroughly

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

scientifics pirit ande xecuted with a thoroughness and conscientiousness that would do honour to the erudition and industry of any scholar anywhere in the world...this book gives an admirable survey...of the history and culture of the Indian people which will be read with profiit and pleasure by both the specialist and the general reader. Mr. Vidyalankar apart from his own papers and books on various aspects of Indian history and culture, in which he has established his place in the front rank of investigators in Indology, is well-known as the energetic secretary (in fact very life and soul) of the Bharatiya Itihas Parishad...(यह भारतीय इतिहास पर कमाल का सुयोजित और सुलिखित ग्रंथ है...इस विषय पर मैंने अब तक जितनी पुस्तकें पढ़ी हैं उन सबसे अधिक अद्यानुकूल संग्राहक और सन्तोषजनक है। पूरी वैज्ञानिक भावना से कल्पित और ऐसी पूर्णता और सचाई से रचित कि जिससे संसार भर में कहीं के किसी भी विद्वान् की विद्वत्ता और परिश्रम का गौरव बढता... यह ग्रंथ भारतीय जनता के इतिहास और कृष्टि की ऐसी प्रशस्त पर्यवेक्षा करता है जिसे पढ़ कर क्या विशेषज्ञ और क्या साधारण पाठक सभी को आनन्द और लाभ होगा। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का नाम भारतीय इतिहास और कृष्टि के विभिन्न पहलुओं पर के अपने उन लेखों और ग्रंथों से तो सुविदित है ही; जिनके द्वारा वे भारतीय खोज करने वालों की अग्र पंक्ति में स्थान पा चुके हैं। इसके अलावा वे भारतीय इतिहास परिषद् के कर्मठ मन्त्री, सच कहें तो उसके प्राण, भी हैं।...)

अपनी आलोचना के अन्त में डा० चैटर्जी ने लिखा—Works like the present one are really helping to establish Hindi as a speech of science and culture. (इस तरह की कृतियां हिन्दी को विज्ञान और कृष्टि की भाषा के रूप में स्थापित करने में सहायता दे रही है।) और लेखक की भाषा शैली के विषय में कहा—His Hindi is one of the best I have read in a modern writer—he writes beautiful Hindi prose, terse, vigorous, to the point, and withal picturesque. (उनकी हिन्दी आधुनिक हिन्दी के श्रेष्ठ नमूना में से है—वे सुन्दर हिन्दी गद्य लिखते हैं, संक्षिप्त और सारगर्भित जोरदार, ठिकाने का और तिसपर भी रंगीन।)

'इतिहास-प्रवेश' अब अपने पांचवें संस्करण में है और उसमें लगातार आज तक की खोज के आधार पर दोहराया हुआ इतिहास तथा आज तक का इतिहास आता जाता है।

भारतीय इतिहास परिषद्

जिस प्रकार का समन्वयात्मक कार्य श्री जयचन्द्र विद्यालंकार कर रहे थे उसे करने के लिए एक राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता थी। उस आवश्यकता को अनेक विद्वानों ने अनुभव किया था। भारत में अंग्रेजी राज का खरा २ इतिहास लिखने वाले मेजर वामनदास वसु उनमें से एक थे। जयचन्द्र जी १९२७ में मेजर वसु के संपर्क में आये और उनसे वहुत प्रभावित हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेजर वसु यदि वह संस्था खड़ी हो जाय तो उसे अपना बड़ा कीमती पुस्तक-संग्रह और कुछ भूमि और धन भी देने को तैयार थे। जयचन्द्र जी की सचाई और निष्ठा से प्रभावित होकर उन्होंने उन्हें उस संस्था का मंत्री बनाना तय किया था। उन्होंने अपना विचार बाबू राजेन्द्र प्रसाद के पास भेजा जिनके बिहार विद्यापीठ में तब जयचन्द्र जी काम कर रहे थे।

मेजर वसु तो १९३० में चल बसे। पर 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' की पांडुलिपि सुनने के बाद श्री काशीप्रसाद जायसवाल के मन में वही संकल्प जाग उठा। अन्त में १९३६ में जायसवाल जी और जयचन्द्र जी ने राजेन्द्र बाबू को मना लिया कि वह संस्था खड़ी करने में हमें सहायता दें। वह संस्था खड़ी हुई। उसका उद्देश्य था कि भारतीय इतिहास के हर पहलू का मूल स्रोतों से अध्ययन भारत में किया जायगा, कि उस मौलिक अध्ययन के फल भारतीय भाषाओं में लिखे जायेंगे, भारतीय दृष्टि से भारत का बड़ा समन्वयात्मक इतिहास तैयार होगा, इत्यादि। मेजर वसु की कल्पनानुसार परिषद् के मुख्य स्तंभ कुछ आजीवन कर्मी होने को थे। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार १९३६ में काशी विद्यापीठ में नियुक्त हो गये थे और १९३८ में बम्बई के नव-स्थापित विद्याभवन में इतिहास के बिडला प्रोफेसर हो कर चले गये थे। भारतीय इतिहास-परिषद् का कार्य आरम्भ होने पर वे उसके आजीवन कर्मी बन कर बनारस लौट आये। परिषद् की ओर से इतिहास की बड़ी योजना उन्होंने तैयार की, जिसके संपादक मंडल के वे मंत्री नियुक्त हुए। उस हैसियत से विभिन्न विद्वानों के लेख उनके पास आलोचनार्थ आने लगे। भारत की चोटी के विद्वान् उनकी आलोचना का कितना मूल्य मानते थे सो इन दो-चार उद्धरणों (के अनुवादों) से प्रकट होगा।

प्रोफेसर मुहम्मद हबीब लिखते हैं (अक्टूबर ७, १९४०) 'मैं अपने लेख पर आपकी आलोचना के लिए बहुत अनुगृहीत हूं।' फिर (दिसम्बर २३, १९४०)…'यदि आप पांडुलिपि देख चुके हों तो उसे अपने सुझावों के साथ लौटा दीजिए। 'यदि आपकी तबीयत ठीक न हो तो कृपा कर अपने किसी सहकारी से कहिए कि उसे देख डालें।' प्रकट है कि प्रोफेसर हबीब जयचन्द्र जी की विचारसरणि और पद्धति से इतने प्रभावित थे कि उनके साथ काम करने वाले उनके शिष्यों की आलोचना का भी मूल्य मानते थे।

प्रो० नीलकंठ शास्त्री लिखते हैं (१७ जून १९४१)—'मैं मौर्य जिल्द की योजना को आपके सुझावों की रोशनी में दोहरा रहा हूं…।'

भारतीय पुरातत्व विभाग के मुख्य निर्देशक (डायरेक्टर जनरल) राव बहादुर काशी नाथ नारायण दीक्षित लिखते हैं (२७ जून १९४१ ई०)—'मैं अपने खाके की एक प्रति आपके पास भेज रहा हूं।…अपनी टीका टिप्पणी के साथ इसे लौटाइएगा जिससे मैं अन्तिम प्रस्तावित खाका सर यदुनाथ सरकार के पास भेज सकूँ।'

जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० बीरबल साहनी ने रोहतक की खुदाई में मिले मिट्टी के साँचों की गहरी छानबीन कर प्राचीन भारत के सिक्के ढालने के शिल्प पर निबंध लिखा था। वह उन्होंने जयचन्द्र जी के पास भेजा। आलोचना मिलने पर वे लिखते हैं (२३ जुलाई १९४१ ई०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'मेरे लेख पर आपकी श्रमपूर्ण कीमती आलोचना के लिए मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूं......मेरी कृति की आपने इतनी पूरी आलोचना की यह मेरा बड़ा सौभाग्य है। लेख को श्री दीक्षित के पास भेजने से पहले मैं आपकी आलोचना का पूरा उपयोग कर लूँगा।'

अन्त में, स्वयं सर यदुनाथ सरकार ने जो लिखा वह पते का है। (२३-३-१६४२ ई०)
—"Today I am posting to you···three finally corrected chapters of the Age of Akbar and one chapter···Please offer your suggestions for improvement or corrections in these chapters without feeling the least delicacy or hesitation···" (आज की डाक में आपके पास 'अकबर युग' के तीन अन्तिम सुधारे हुए और एक अध्याय भेज रहा हूं···। कृपया इन अध्यायों में संशोधन या सुधार के बारे में अपने सुझाव जरा भी संकोच या हिचक न मानते हुए भेजिए)।

स्वराज्य पाने के बाद

१६४२ के जनान्दोलन के प्रसंग में श्री जयचन्द्र विद्यालंकार अप्रैल १६४३ में गिरफ्तार कर लाहौर किले में लाये गये और वहाँ से अटक जिले में कैंबलपुर जेल। यों तीन वर्ष वे अपने पंजाब में रहे। सन् १६४६ में जेल से छूट कर वे आये तो देश की दशा बदली हुई थी।

भारत के स्वराज्य मिलने के बाद राष्ट्रीय दृष्टि से इतिहास का अध्ययन करने वाली और लिखने वाली संस्था को खुल कर पनपना चाहिए था। किन्तु वह उलटा बंद हो गई। देश में आज साहित्य की कला की नृत्य की एकाडमियाँ स्थापित की गई हैं। पर इतिहास की शिक्षा को सुधारने की मांग जो चालीस वर्ष से चल रही थी, उसके बारे में भी आज दस वर्ष से चुप्पी है। पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय इतिहास का कोई स्थान नहीं है। क्या सचमुच यह पहेली नहीं है? हिन्दी में साहित्य सृजने की सरकार की बड़ी-बड़ी योजनाएँ हैं। पर वे सब योजनाएँ अनुवादों और संकलनों की हैं, मौलिक साहित्य का आज कोई मूल्य नहीं।

इन पहेलियों को सुलझाने में हम अभी नहीं पड़ेंगे। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इस वातावरण की कठिन परिस्थिति में पड़ जाने पर भी पिछले दस वर्षों में पहले से अधिक महत्व की ऐतिहासिक रचनाएँ करते रहे हैं। उनकी उन नई कृतियों का परिचय हो सका तो हम फिर कभी देंगे। इधर कुछ मास हुए वे अपने पंजाब लौट आये हैं। पंजाब को अपने इतिहास की खोज की, अपनी पंजाबी और हिन्दी भाषाओं के विकास की बड़ी आवश्यकता है। क्या उनका पंजाब उनसे यह काय नहीं ले सकता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहौर में हिन्दी प्रकाशन के अनुभव :

ले०—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
४ पाटौदी हाउस नई देहली

मार्च सन् १९३१ की बात है, मेरे सम्माननीय मित्र प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने लाहौर से "जन्मभूमि" नाम का एक दैनिक पत्र निकालने का निश्चय किया था और मैं उसके प्रथम सम्पादक के रूप में लाहौर गया था। उन दिनों की याद मेरे मानस पटल पर आज भी बहुत स्पष्ट रूप में विद्यमान है। उन दिनों सरदार भगतसिंह और उनके साथी फांसी की कोठरियों में बन्द थे और सारा देश उनकी प्राण रक्षा की मांग कर रहा था। मेरे लाहौर पहुँचने के कुछ ही दिन बाद की बात है कि एक प्रातः सारा लाहौर जैसे एक जलजले का धक्का पाकर जाग उठा! सैकड़ों-हजारों नौजवान गली-कूचों में चिल्लाते फिर रहे थे—"उठो! उठो! लाहौर वासियो! सरदार भगतसिंह और उनके साथी फांसी पर चढ़ा दिये गये हैं।" उस दिन जिस तरह सारा लाहौर भूखा रहा और सतलुज के किनारे से लाकर शहीदों की भस्मी का जलूस निकाला गया। वह सब भूलने की बात न होते हुये भी मेरे इन संस्मरणों का विषय नहीं है।

इस असाधारण रूप से उद्वेलित वातावरण में हम लोगों ने लाहौर से दैनिक जन्मभूमि का प्रकाशन प्रारम्भ किया। विदेशी हकूमत द्वारा लोकमत की उपेक्षा कर भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी पर चढ़ा देने के कारण पंजाब भर का वातावरण अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठा था। उसके कुछ ही दिन बाद समाचार मिला कि कानपुर में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हो गये हैं। विद्यार्थी जी के उक्त बलिदान का प्रभाव लाहौर तक पहुंचा और वातावरण जैसे स्तब्ध-सा हो गया। भगतसिंह आदि को तो विदेशी शासन ने फांसी पर चढ़ाया था, पर श्रद्धेय गणेश जी तो देश के मूढ़ विश्वासों और अन्ध धारणाओं से लोहा लेते हुए बलिदान हुए। और लाहौर तो अनेक अन्य साम्प्रदायिक धारणाओं का भी एक गढ़ था। हम लोगों ने निश्चय किया "जन्मभूमि" द्वारा हम प्राणपण से दोतरफा आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे—एक तो विदेशी शासन के विरोध में और दूसरा जन-साधारण के एक बहुत बड़े अंश में व्याप्त साम्प्रदायिक धारणाओं के विरोध में। "जन्मभूमि" की नीति का संचालन इन्हीं दोनों आदर्शों के आधार पर किया जाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बहुत शीघ्र मैंने पाया कि जैसे हम वीरान में शोरगुल मचा रहे हों। जैसे हम एक ऐसी भाषा में चिल्ला रहे हों, जिसे कोई समझता न हो। उन दिनों "जन्मभूमि" की लगभग ३००० कापियां हम छापते थे। इनमें से लगभग आधी कापियां बिक भी जाती थीं। पर मैं पाता था कि जैसे हमारी आवाज़ कोई सुन नहीं रहा। उत्तर प्रदेश के कुछ हज़ार घरेलू नौकर या मज़दूर लाहौर में थे। सैकड़ों पनवाड़ी भी वहाँ थे। इन में के १५ या २० प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे। मैंने पाया कि "जन्मभूमि" के ग्राहकों या पाठकों में सबसे बड़ी संख्या इन्हीं लोगों की थी। ये सब एक तरह से परदेसी थे और बिखरे हुए थे, इससे जैसे "जन्मभूमि" की पुकार लाहौर के कानों पर जरा भी नहीं पड़ रही थी।

मैंने भरसक प्रयत्न किया कि "जन्मभूमि" को अधिक से अधिक रोचक और ज्ञान वर्धक भी बनाऊँ। प्रतिदिन पत्र के ४ पूरे कालमों में रोचक तथा स्थायी महत्व की सामग्री दी जाती थी। समाचारों को अधिक से अधिक प्रभावशाली रूप में देने का भरसक प्रयत्न तो हम करते ही थे। "जन्मभूमि" के प्रारम्भिक दिनों में मैंने औसतन १५ घण्टे प्रतिदिन काम किया। बहुत बार तो दिन रात दोनों दफ़तर ही में बिताए। आवश्यक साधनों के अभाव में काम जितना ही कठिन दिखाई देता था उतना ही अधिक काम करने में मुझे आनन्द आता था। हमारा यह प्रयत्न बेकार नहीं गया। "जन्मभूमि" की माँग क्रमशः बढ़ने लगी। जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला और हरिद्वार में "जन्मभूमि" के पाठकों की संख्या लाहौर की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई।

पर हमारा यह प्रथम साहस सफल नहीं हो सका। इस असफलता का एक मात्र कारण पूंजी के सम्बन्ध में हम लोगों की नाजानकारी थी। बिना अपने प्रेस के केवल ८००० रुपयों की पूंजी से दैनिक पत्र चला सकने का साहस आज तो शायद पागलपन ही गिना जाएगा। उस ज़माने में भी यह एक बहुत बड़ा दुस्साहस सिद्ध हुआ। और अर्थाभाव के कारण हमें "जन्मभूमि" का प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा। व्यवहार में हमने पाया कि ८००० रुपया तो ५-६ दिन में मार्कीट में फंस गया। उसके बाद भी न जाने किस तरह महीनों तक हम लोग "जन्मभूमि" निकालते रहे। सम्पादन का कार्य करते हुए बहुत शीघ्र मैं "जन्मभूमि" का हिस्सेदार भी बन गया था।

"जन्मभूमि" का प्रकाशन बन्द हो जाने पर मैंने हिन्दी में पुस्तक प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय किया। बड़ी कठिनता से मैं अपने पिताजी को इस बात के लिए तैयार कर पाया कि उक्त व्यवसाय के लिए वह मुझे ५०००) की रकम देंगे। मैंने निश्चय किया कि "विश्व साहित्य ग्रंथ माला" नाम से पुस्तक प्रकाशन कार्य प्रारम्भ करूँ और इस माला में विश्व-साहित्य की चुनी हुई रचनाओं का अनुवाद तथा श्रेष्ठ भारतीय साहित्य के ग्रंथ प्रकाशित करूँ।

पिता जी ने बार-बार मुझ से कहा कि तुम्हारे इस दूसरे अध्यवसाय का परिणाम भी वही होगा, जो पहले का हुआ है। लाहौर में कितने ही शुभचिन्तक मित्रों ने भी मुझसे कहा कि लाहौर हिन्दी के लिए बंजर भूमि है, इस कारण यहाँ चाहे और जो कोई काम-धंधा प्रारम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो पर हिन्दी प्रकाशन का कार्य, विशेषत: श्रेष्ठकोटि के हिन्दी साहित्य का प्रकाशन, एक बहुत बड़ा खतरा मोल लेना है। परिणाम यह हुआ कि बहुत सोच-विचार कर १६३१ में मैं लाहौर से दिल्ली चला आया और दिल्ली से ही मैंने विश्व-साहित्य ग्रंथ माला का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस ग्रंथ माला के प्रथम ग्रंथ 'संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' का संग्रह और सम्पादन मैंने दिल्ली में ही किया और पुस्तक दिल्ली ही के एक प्रेस में छपने के लिए दे दी गई।

पर जैसे लाहौर मुझे निरन्तर पुकार रहा था। लाहौर से भाग कर दिल्ली चले आने की बात जैसे मुझे एक भीरुता के समान प्रतीत हो रही थी। मुझे दिखाई दिया था कि "जन्मभूमि" की असफलता का कारण लाहौर नहीं था, अपितु हमीं लोगों की साधन-हीनता थी। जी बार-बार कहता था कि प्रकाशन के कार्य का परीक्षण भी मुझे लाहौर ही से अवश्य करना चाहिए था। इसी बीच एक मित्र द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि लाहौर के एक प्रभावशाली और विद्वान् नागरिक वहाँ हिन्दी प्रकाशन का कार्य करना चाहते हैं और यह भी कि वह मेरे ही समान एक हिस्सेदार की तालाश कर रहे हैं। इन सज्जन का नाम था श्री वेदव्यास। अपने मित्र द्वारा मैंने उनसे संक्षिप्त सी बातचीत की और बोरिया-बिस्तर उठा कर लाहौर पहुँच गया। व्यापारी बातचीत क्या होती है, इस बात का तब तक मुझे ज्ञान भी न था और न किसी तरह का कोई लिखित समझौता ही हम दोनों के बीच हुआ। दिल्ली में 'संसार की सर्व श्रेष्ठ कहानियाँ' के मुद्रक को मैंने यह हिदायत दे दी कि पुस्तक के छपे हुये फार्म लाहौर भेज दिये जाएँ और तब पुस्तक पूरी छप जाने की प्रतीक्षा तक किये बिना, मैं लाहौर वापस चला गया।

यह नवम्बर सन् १६३१ की बात है। लाहौर में जाड़ा प्रारम्भ हो गया था, जो मुझे बहुत पसन्द आया। इस मौसम में खूब काम करने की स्फूर्ति मैंने अनुभव की। यह निश्चय किया गया कि विश्व साहित्य ग्रन्थ माला की प्रथम १० पुस्तकें एक साथ प्रकाशित की जाएं। इन सभी पुस्तकों का सम्पादन तो मुझे करना ही था, इन में से ५ पुस्तकों का अनुवाद भी मैंने स्वयं किया। इस प्रथम सैट में एण्टन चैखव, थामस हार्डी, मोपासां, तुर्गनेव आदि के कहानी संग्रह भी थे। इन सभी पुस्तकों की तैयारी, छपाई की व्यवस्था, कागज़ का चुनाव, ब्लाक, कवर पेज, जिल्दबन्दी आदि सभी कामों में मैंने पूरी दिलचस्पी ली। इन सभी कार्यों की पूरी प्रक्रिया समझने का मैंने भरसक प्रयत्न किया और जिल्दबन्दी में तो किफ़ायत के दृष्टिकोण से कितने ही नए परीक्षण भी मैंने किए।

मेरे दुबारा लाहौर आने के कुछ ही दिन बाद मेरे एक मित्र ने मुझ से कहा कि यहां उर्दू लिपि जाने बिना आपका काम नहीं चलेगा। मैंने उनसे कहा कि मैं लाहौर में उर्दू लिपि जाने बिना और उर्दू का रत्ती भर भी प्रकाशन किए बिना मैं काम चलाऊंगा। चुनांचे, जब तक मैं लाहौर में रहा मैंने उर्दू नहीं सीखी। मैं मानता हूं कि उर्दू न सीखना अपने में कोई अच्छी बात नहीं है। उस मित्र ने यदि मुझे चैलेंज न दिया होता तो मैं शायद उन्हीं दिनों उर्दू लिपि सीख भी लेता। एक अत्यन्त सौभाग्यपूर्ण स्थिति यह थी कि मेरे हिस्सेदार एक अत्यन्त प्रतिभाशाली और अत्यन्त कार्यशील सम्पन्न व्यक्ति थे और हम दोनों में प्रत्येक बात पर बहुत आसानी से समझौता हो जाता था। सच तो यह है कि हम दोनों को एक दूसरे पर पूरा विश्वास था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग ३ मास में हमारा १० पुस्तकों का प्रथम सैट तैयार हो गया। आज शायद ३ महीनों में १० पुस्तकों के प्रकाशन का कुछ भी महत्व नहीं है। पर अकेले उन १० में से ६ पुस्तकों को लिखने, ४ का सम्पादन करने और दसों पुस्तकों की छपाई, प्रूफ़, जिल्दबन्दी आदि की स्वयं व्यवस्था करने की दृष्टि से १० किताबों का यह प्रथम सैट हमें एक बहुत बड़ी विजय के समान जान पड़ा। इस सम्पूर्ण कार्य में मुझे काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। सभी पुस्तकों के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सारे प्रूफ़ मैंने स्वयं पढ़े और एक कविता संग्रह में, जो इसी प्रथम सैट में प्रकाशित हुआ, छापे की एक भी भूल नहीं आने पाई। इस बात से मुझे विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ।

और उस युग में एक नई ग्रन्थ माला के दस पुस्तकों के इस प्रथम सेट ने हिन्दी जगत् में एक तहलका-सा मचा दिया। हिन्दी साहित्य के कितने ही महारथियों और पत्र सम्पादकों से जब मुझे हार्दिक बधाई और साधुवाद के सन्देश मिले तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे ४ महीनों का मेरा प्रयत्न पूरी तरह सफल हो गया।

अब प्रश्न आया इन पुस्तकों के लिए बाजार तालाश करने का, इन १० पुस्तकों की पृष्ठ संख्या लगभग २००० थी। आज उस सैट की कीमत मज़े में ३५) रु० हो सकती है। पर तब उस सजिल्द सैट की कीमत मैंने केवल १२) रु० ही रक्खी थी। मुझे तब तक बाजार का अनुभव शून्य के बराबर था। मैंने उस प्रश्न पर विचार किया और भारत भर के पुस्तक विक्रेताओं की सूची एकत्र करने का प्रयत्न किया। तब मुझे ज्ञात हुआ कि हिन्दी में कोई पुस्तक विक्रेता है ही नहीं। हिन्दी के सभी पुस्तक विक्रेता पुस्तक-प्रकाशक भी हैं। यह स्थिति चिन्तनीय प्रतीत हुई फिर भी मैंने सोचा कि उत्तर भारत के प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर में एक या दो पुस्तक प्रकाशक और विक्रेताओं को मैं साख पर आवश्यकतानुसार अपने ५ से लेकर २५ तक सैट दे दूंगा और बिक्री धन प्राप्त होने पर उन्हें नए सैट देता चला जाऊँगा। इन में विक्रेताओं को अपना रुपया नहीं फंसाना पड़ेगा और हमारी पुस्तकों की बिक्री का सिलसिला चल निकलेगा।

यह योजना बना कर मैंने स्वयं दिल्ली से लेकर कलकत्ता और उधर दिल्ली से बम्बई तक का दौरा लगाया। इस दौरे के अनुभव बहुत मनोरंजक रहे। इस दौरे में लगभग १०,००० रुपयों की कीमत का स्टाक मैंने विभिन्न पुस्तक विक्रेताओं को साख पर दिया। किसी से एक भी पैसा मैंने अगाऊ नहीं लिया। सब मिला कर यह दौरा भी मुझे बहुत सफल जान पड़ा।

पर बहुत शीघ्र मुझे ज्ञात हो गया कि मैंने कितनी भयंकर भूल की थी। उन १०,००० के स्टाक में से मुझे ५००) भी शायद ही वसूल हुए। कुछ प्रकाशकों ने परिवर्तन में अपनी पुस्तकें जरूर भेज दीं। पर वह भी बहुत कम। अधिकांश पुस्तक विक्रेताओं ने तो शायद यही समझा कि मैं अपना माल मुफ़्त में उन्हें दे आया था। कुछ लोगों ने तो यह व्यक्त भी किया कि यह कौन बेवकूफ़ है जो अपनी कित.वें हमारे घर जाकर मुफ़्त में बांटता फिर रहा है।

पर जहां तक लाहौर का सम्बन्ध है, लाहौर के सभी क्षेत्रों से हमें सचमुच बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोत्साहन मिला। उन दिनों पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी के मन्त्री प्रो० बुखारी (पतरस) थे, जो आजकल संयुक्त राष्ट्र संघ के सहकारी मन्त्री हैं। वह हिन्दी नहीं जानते थे, पर जब उन्हें मेरी योजना का पतालगा (मैंने इस सम्बन्ध में उन्हें सूचना तक देने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया था) तो उन्होंने बड़े सम्मान के साथ मुझे अपने यहां निमन्त्रित किया, मेरी योजना के सम्बन्ध में विस्मय और आह्लाद प्रकट किया और उन दिनों के लिहाज़ से स्वयं ही पंजाब के पुस्तकालयों के लिए एक अच्छा बड़ा आर्डर भी मुझे दिया। इसी तरह 'ट्रिब्यून' ने तथा पंजाब के अन्य प्रभावशाली पत्रों ने हमारी ग्रन्थमाला का अत्यन्त उत्साहवर्धक स्वागत किया। 'मिलाप' के सम्पादक श्री रणबीर ने तो मुझ से यहां तक कहा कि विश्व साहित्य ग्रन्थमाला की इन्हीं पुस्तकों ने उन्हें कहानी लिखने की ओर प्रेरित किया।

फिर भी प्रोत्साहन एक बात है; और प्रकाशन-व्यवसाय को आत्म-निर्भर बनाना दूसरी बात है। मेरे हिस्सेदार इस क्षेत्र के मँजे हुए और अनुभवी खिलाड़ी थे उन्होंने मुझे राय दी कि हमें साथ ही साथ पाठ्यपुस्तक प्रकाशन का कार्य भी करना चाहिये। दूसरे वर्ष विश्व-साहित्य ग्रन्थ माला में हिन्दी साहित्य सम्बन्धी १० नई पुस्तकें प्रकाशित करने के साथ ही साथ कुछ पाठ्य पुस्तकें भी हमने तैयार कीं। इन में से कुछ पाठ्य क्रम में लग भी गईं और हम लोगों का उस से गुज़ारा तो चलने ही लगा। बाद में स्थिति यही रही कि पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन से हम लोग आय अर्जित करते थे और विश्व साहित्य ग्रन्थमाला के साहित्यिक प्रकाशनों में हमारी उपयुक्त आय का अच्छा बड़ा भाग खर्च हो जाता था।

पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने का यह कार्य कितना अधिक जोड़-तोड़ का तथा अशान्तिपूर्ण कार्य बन गया है, इस का मुझे खूब अनुभव है। प्रतिद्वन्दी प्रकाशक एक दूसरे को नीचा दिखाने और हानि पहुँचाने के सभी उचित-अनुचित उपाय बरतते थे। वर्ष भर में कुछ महीने तो बहुत उद्विग्नतापूर्ण बिताने होते थे। पर परिस्थितियां ऐसी थीं कि इस लाइन को हम छोड़ भी नहीं सकते थे। पर इस क्षेत्र में भी कितने ही स्मरणीय अनुभव मुझे प्राप्त हुए। केवल एक घटना मैं यहां अंकित कर रहा हूँ।

हिन्दी परीक्षाओं का पाठ्यक्रम अधिक श्रेष्ठ और उपयोगी बनाने के उद्देश्य से प्रो० वेदव्यास और मैं कितनी ही नई-नई योजनाएं बनाया करते थे। एक ऐसी ही योजना के अन्तर्गत संसार की तथा भारतीय गतिविधि से परिचित कराने वाली एक पुस्तक मैंने सन् १९३५ में लिखी। इस पुस्तक का नाम मैंने रक्खा 'आजकल'। मानव विचार, वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों और सामाजिक तत्वों की प्रारम्भिक शिक्षा देना इस पुस्तक का उद्देश्य था। सदा के समान मैंने यह पुस्तक लिखी, छपवाई तथा उसकी जिल्दबन्दी में इतनी दिलचस्पी ली कि वह देखने में सुन्दर और आकर्षक बन गई। यह पुस्तक प्रचलित पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं थी, इस से कोर्स में लगने की कोई सम्भावना तो नहीं थी, फिर भी हम लोगों ने यह पुस्तक भी युनिवर्सिटी के पास विचारार्थ भेज दी।

उन दिनों सर मनोहरलाल, तत्कालीन पंजाब सरकार के वित्त मन्त्री; यूनिवर्सिटी के हिन्दी बोर्ड के अध्यक्ष थे। 'आजकल' की एक प्रति युनिवर्सिटी से उनके पास भी गई। पुस्तक की जिल्दबन्दी इतनी सुन्दर थी कि सैकड़ों पुस्तकों के ढेर में से उन्होंने अनायास ही उसे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों में उठा लिया और पुस्तक को देखना आरम्भ किया। उन्हें हिन्दी अधिक नहीं आती थी। फिर भी विषयसूची देख कर उन्हें इतना तो ज्ञात हो ही गया कि यह साधारण ज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तक है। सर मनोहरलाल के यहां उन दिनों १४ वर्ष का एक किशोर रहता था, जिस की शिक्षा-दीक्षा उन्हीं की देख रेख में हो रही थी। सर मनोहरलाल ने ८ वीं श्रेणी में पढ़ने वाले इस लड़के को बुलाया और उससे कहा कि वह 'आजकल' पढ़े और दो दिनों के बाद वह उसका इम्तिहान लेंगे।

ठीक दो दिन के बाद सर मनोहर लाल ने पुनः उस लड़के को बुलाया। उससे उन्होंने पहले भारत के विभिन्न आन्दोलनों के सम्बन्ध में सवाल किए और उसके बाद संसार के विभिन्न वादों के सम्बन्ध में भी। वह लड़का उन्हें ठीक-ठीक और संक्षिप्त से जवाब देता चला गया। उस के उत्तरों में उन्हें कहीं भी अस्पष्टता या भटकन प्रतीत नहीं हुई।

कुछ ही दिन बाद बोर्ड की मीटिंग थी। सब प्रकाशक ऐड़ी से चोटी तक प्रयत्न कर रहे थे। पर मेरा तो श्री मनोहरणलाल से परिचय तक न था। बोर्ड की मीटिंग में पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में बाद विवाद और निश्चय जब समाप्त होने पर आए तो अध्यक्ष श्री मनोहरलाल ने अपनी फाइल में से 'आजकल' की प्रति निकाली और कहा—"इस वर्ष जितनी पुस्तकें आई हैं, उन में यह पुस्तक सब से अधिक ध्यान देने योग्य है।"

बोर्ड के बाकी सभी सदस्य अध्यक्ष महोदय की कृपा पर निर्भर करते थे. इस से उनकी बात के विरोध का तो सवाल ही नहीं था। एक सदस्य ने साहसपूर्वक इतना ही कहा—हजूर, पुस्तक तो निस्सन्देह बहुत अच्छी है। पर पाठ्यक्रम जिस ढंग का है, उसमें यह कहीं माफिक नहीं बैठती।"

सर मनोहरलाल ने कहा—"तो फिर हमें अपना पाठ्यक्रम बदलना होगा।"

और सचमुच बोर्ड ने हिन्दी परीक्षाओं का पाठ्यक्रम बदला और 'आजकल' हिन्दी रत्न तथा संस्कृत प्राज्ञ की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में नियुक्त हो गया। तभी से यह भी निश्चय हुआ कि युनिवर्सिटी की हिन्दी परीक्षाओं में साधारण ज्ञान का विषय आवश्यक कर दिया जाए।

सन् १९४५ तक हमारे इस प्रकाशन व्यवसाय के पैर वहां खूब अच्छी तरह जम गए थे। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने मुझे भारतीय 'लिटरेचर बोर्ड' की केन्द्रीय कार्य समिति में ले लिया। प्रकाशन व्यवसाय के यथेष्ट अनुभव प्राप्त कर मैं इस परिणाम पर पहुंचा था कि भारत में एक ऐसी प्रकाशन संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है जो बहुत बड़े पैमाने पर १४ भारतीय भाषाओं में एक साथ भारतीय सहित्य के प्रकाशन का कार्य करे। मैंने अपना यह विचार बापू के सम्मुख रक्खा और सिद्धान्त रूप से यह विचार उन्हें पसन्द आया। तब १९४६ के अन्त तक बापू के निर्देश पर इस सम्बन्ध में एक विस्तृत योजना बनी। इस योजना पर विचार हो ही रहा था कि देश का विभाजन हो गया। एकाएक मैंने पाया कि मैं स्वयं विस्थापित बन गया हूँ। जून १९४७ में मैं मसूरी गया था और उसके बाद जैसे एक बहुत बड़े धक्के से सम्पूर्ण पंजाब ही का रूपान्तर हो गया! जैसे जादू की छड़ी के एक ही स्पर्श से वह पूरा का पूरा लाहौर ही विलुप्त हो गया!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ संस्मरण :

ले०—श्री रामकृष्ण 'भारती' एम. ए. बी टी.
कलकत्ता

[आदरणीय पं० भीमसेन जी विद्यालंकार, प्रधानमन्त्री पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदेशानुसार कुछ संस्मरण लिख रहा हूं। लिखने को तो इतना कुछ है कि उसके लिये अधिक अवकाश की आवश्यकता है। भविष्य में यदि समय मिला, तो फिर कभी अधिक विस्तार से लिखा जा सकता है। आज तो केवल आज्ञापालन के नाते कुछ लिख रहा हूं।
—'भारती'

* * *

वैसे तो मेरे जीवन में हिन्दी के प्रति आकर्षण उसी समय हो गया था, जबकि मैं अभी अबोध बालक था। मेरा जन्म ग्राम-दायरादीन पनाह, तहसील-कोटअदू, जिला-मुज़फ्फर गढ़ (पश्चिमी पंजाब) में नवम्बर, १६१७ में हुआ। जन्म की निश्चित तिथि स्मरण नहीं। पिताजी पहली नवम्बर को मेरी जन्म तिथि बतलाते थे। मैट्रिक के प्रमाणपत्र में १२ नवम्बर का दिन अंकित है इतना तो निश्चित है कि मेरे जन्म के एक दो दिन पूव ही पिता जी को प्रथम महायुद्ध में बसरा की ओर जाना पड़ा। वे रेलवे के कर्मचारी थे और जीवन में एक दो बार उन्होंने नौकरी छोड़ी। एक बार घरेलू परिस्थितियों के कारण तथा दूसरी बार गांधी जी की पुकार पर। उन्होंने भी असहयोग आन्दोलन में नौकरी छोड़कर मज़दूरी की, खड्डी चलाई तथा गांधी आश्रम की यात्रा भी की।

इन अस्त-व्यस्त परिस्थितियां में मेरा जन्म तथा लालन-पालन हुआ। आरम्भ के कुछ वर्ष जन्म-भूमि में तथा उसके पश्चात् बलोचिस्तान में कुछ समय व्यतीत हुआ। तीसरी श्रेणी अपने जन्म-स्थान के ही जिला बोर्ड स्कूल से उत्तीर्ण की तथा एक दो वर्ष घर पर ही पढ़ाई चलती रही, क्योंकि पिताजी बलोचिस्तान में छोटे-२ स्टेशनों पर स्टेशन मास्टर के रूप में कार्य करते थे और उन स्थानों पर स्कूल तो थे ही नहीं। पिताजी ही कुछ समय देकर पढ़ाते थे। मुझ से बड़ी एक बहिन हैं। हम दोनों की प्रारम्भिक पढ़ाई, इस प्रकार पिताजी के द्वारा ही चली। कुछ दिनों मुझे अपने चाचा जी से भी पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ, जो जीवन के अन्त तक प्राइमरी के अध्यापक ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा नियमित विद्याध्ययन सन् १९२५-२६ में डी. ए. वी हाई स्कूल कोयटा में आरंभ हुआ, जहां मैं चौथी अथवा पांचवी श्रेणी में प्राइवेट परीक्षा देकर प्रविष्ट हुआ। उसी स्कूल से मैंने स्थानीय शिक्षा विभाग की वर्नाक्युलर फाइनल की परीक्षा मार्च, १९३१ में उत्तीर्ण की। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार उर्दू प्रथम भाषा थी। मिडल कक्षाओं में हिन्दी तथा संस्कृत का अध्ययन किया। उन दिनों मैं कोयटा में अपने फूफा जी के पास ही रहता था, क्योंकि पिताजी तो बाहर के छोटे छोटे स्टेशनों पर नियुक्त थे। फूफा जी भी रेलवे के मुख्य कार्यालय में कर्मचारी थे। इन्हीं दिनों मेरी बुआ जी का देहान्त होगया तथा फूफा जी के पुनर्विवाह के कारण आगे की मेरी शिक्षा-व्यवस्था की समस्या घर वालों के लिए विचारणीय वस्तु बन गई। सौभाग्यवश उन दिनों डी. ए. वी. स्कूल कोयटा में धर्म शिक्षा के अध्यापक पं० ब्रह्मदेव जी विद्यावाचस्पति थे। उनके परामर्श से पिताजी ने मुझे श्रीमद्दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय लाहौर में प्रविष्ट कराने का निश्चय किया। तब तक आर्यसमाज में मेरी रुचि उत्पन्न हो चुकी थी। स्कूल में बालक सुधार सभा के साप्ताहिक तथा वार्षिकादि अधिवेशन होते थे। सन्ध्या, हवन, भाषण, लेख नाटक तथा संगीत आदि में मेरी रुचि हो चली थी और कविता के प्रति भी कुछ आकर्षण हो गया था। डी. ए. वी. स्कूल कोयटा में छात्रावास नहीं था। छात्रावास केवल सरकारी स्कूल में था तथा उसमें अधिकतर छात्र-मुसलमान थे। इसी लिये मुझे लाहौर भेजने का निश्चय किया गया। मेरी आयु अभी १३½ वर्ष के लगभग ही थी तथा विद्यालय में १४ वर्ष की आयु से कम के विद्यार्थी प्रविष्ट नहीं किए जाते थे। पिताजी ने ब्रह्म महाविद्यालय के आचार्य श्री पं० विश्वबन्धु जी की सेवा में पं० ब्रह्मदेव जी के द्वारा प्रार्थना करके मेरे प्रवेश के लिए अनुमति प्राप्त कर ली थी। विद्यालय में प्रविष्ट होने वाला मैं ही सबसे छोटा विद्यार्थी था।

अप्रैल १९३१ से माच १९३५ तक मैं ब्रह्ममहाविद्यालय का विद्यार्थी रहा। मेरे जीवन के वे चार वर्ष सचमुच अत्यन्त महत्व पूर्ण थे। आचार्य जी का व्यक्तित्व, आश्रम का वातावरण, पुस्तकालय की सुविधा तथा सभी प्रान्तों के विद्यार्थियों का संगम, इन सब ने मेरे जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। संस्कृत शिक्षा की नवीन पद्धति मुझे यहीं प्राप्त हुई। इस पद्धति में व्याकरण, दर्शन, साहित्य तथा वेदादि के अध्ययन की सुविधा प्राप्त हुई। संस्कृत का अध्ययन करते हुए हिन्दी के प्रति मेरी इतनी ममता हो गई कि विद्यालय के पुस्तकालय से नित्यप्रति पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें लेकर पढ़ने लगा। यह रुचि इतनी बढ़ी कि काव्यपुस्तकों की अपेक्षा मेरा अधिक समय ऐसी पुस्तकें पढ़ने में ही व्यतीत होने लगा। लिखने की रुचि भी यहीं प्रारम्भ हुई। मेरी सबसे पहली रचना सम्भवतः १९३४ में 'हिन्दी सन्देश' के किसी अंक में 'पथिक से' शीर्षक से प्रकाशित हुई। आचार्य विश्वबन्धु जी के जापान जाने तथा जापान से लौटने पर मैंने जो तुकबन्दियां कीं, आचार्य जी ने संस्कृत में उनका उत्तर देकर मेरा उत्साह बढ़ाया। आश्रम जीवन के संस्मरण तो इतने हैं कि उन्हें लिपिबद्ध करने के लिये अवकाश चाहिये, किन्तु इस लेख में तो मुझे केवल वही बातें लिखनी हैं, जिनका सम्बन्ध हिंदी प्रचार के साथ हो।

महाविद्यालय में रह कर ही मैंने क्रमशः विद्यारत्न, विद्यानिधि तथा विद्यावाचस्पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आचार्य विश्वबन्धु जी के पश्चात् महाविद्यालय के आचार्य के रूप में पं० ऋषिराम जी बी. ए. तथा श्री पं० परमानन्द जी एम. ए. कार्य करते रहे। विद्यावाचस्पति परीक्षा में मैं सर्व-प्रथम रहा। इस बीच में मैंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा १६३४ में लाजपत राय भवन लाहौर केन्द्र से हिन्दी साहित्य, संस्कृत तथा राजनीति विषय लेकर उत्तीर्ण कर ली थी। १६३५ में हिन्दी प्रभाकर तथा १६३६ में मैट्रिक तथा शास्त्री परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

ब्रह्म महाविद्यालय में रहते हुए ही मैं लाहौर के सार्वजनिक जीवन में रुचि लेने लगा था। उन दिनों कुछ नवयुवकों ने मिलकर 'राष्ट्र भाषा प्रचार संघ' नाम की संस्था की स्थापना की। यह सम्भवतः १६३४-३५ की बात है। संघ का प्रथम मन्त्री श्री अजयकुमार (अब विजयकुमार पुजारी) को बनाया गया। संघ की नियमावली के अनुसार संघ का केवल एक मात्र अधिकारी मन्त्री ही होता था। उसकी सहायता तथा परामर्श के लिये कार्यकारिणी का संगठन होता था किन्तु संघ अपने कार्य के कुछ प्रारम्भिक वर्षों में प्रधानादि के चक्कर में नहीं पड़ा। श्री अजयकुमार के लाहौर से चले जाने पर सम्भवतः १६३५ में मुझे संघ का मंत्री निर्वाचित किया गया तथा सन १६४१ तक, जब तक मैं लाहौर में रहा मुझे ही निरन्तर यह कार्य करना पड़ा। बीच में कुछ मास के लिए जब मुझे आचार्य श्री काका साहेब कालेलकर के साथ वर्धा जाना पड़ा, तब सम्भवतः कुछ सहयोगियों ने इस कार्य को निरन्तर सम्भाले रखा।

राष्ट्रभाषा प्रचारक संघ ने मूकभाव से लाहौर में हिन्दी के लिए जो वातावरण बनाया, उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ठ है कि लाहौर में हिन्दी के साहित्यिक वातावरण का श्रीगणेश तथा विकास संघ ने किया। अधिकारियों के चुनाव के झंझट से बचकर केवल १) वार्षिक शुल्क अपने सदस्यों से प्राप्त करके संघ ने जो कार्य किया, उसकी साक्षी वे सभी हिन्दी प्रेमी दे सकते हैं, जो पंजाब प्रान्त के हिन्दी प्रचार से तनिक भी परिचित हैं। संघ के मूक कार्य-कर्त्ताओं में श्री शिवकुमार शारदा, श्री देवदत्त अटल तथा श्री माधव के नाम उल्लेखनीय हैं ही, किन्तु सर्वश्री उदयशंकर जी भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', राणा जंगबहादुर सिंह, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृथ्वीनाथ शर्मा, श्रीमती सत्यवती शर्मा, डा० हरिदेव बाहरी, डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० लक्ष्मणस्वरूप, डा० रघुवीर, डा० गौरीशंकर, डा० बनारसीदास, म. म प. परमेश्वरानन्द, कुमारी कंचनलता सब्भरवाल आदि के नाम क्या भुलाए जा सकते हैं? डा० लक्ष्मीचन्द जी जैन, श्री पृथ्वीपालसिंह, श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन, श्री लक्ष्मीचन्द जैन, श्री यान्स प्रसाद जी जैन, गोस्वामी गणेशदत्त जी, प्रो० वशिष्ठ जी, श्री भीमसेन जी विद्यालंकार, प्रि० छबीलदास जी, श्री ला० खुशहालचन्द जी अब म० आनंद स्वामी जी. तथा श्री यश के नाम पंजाब के हिन्दी प्रचार कार्य में नहीं भुलाए जा सकते। सर्व श्री अध्यापक रामेश्वर 'करुण' विष्णुदत्त शर्मा 'विकल', जगन्नाथ नलिन, बटुक, सत्यदेव शर्मा, अनन्त 'मराल', अध्यापिका प्रफुल्ल बाला जी, तथा श्रीमती सावित्री सूरी के नाम आज भी वैसे ही उपस्थित हैं। आचार्य विश्वबन्धु, श्री आनन्दस्वरूप जी शर्मा, बहिन सीतादेवी जी, श्रीमती शन्नोदेवी जी, श्री मोहनसिंह जी सेंगर; श्री लेखराम जी, श्री क्षेमचन्द 'सुमन' श्री देवदत्त शर्मा, श्री कृष्णकान्त जी मालवीय, पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा, श्री बृजलाल जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० परशुराम जी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तथा स्वराज्य सभा के श्री सत्यार्थी आदि कितने ही नाम हैं, जो आज भी यह संस्मरण लिखते हुए प्रस्तुत हो जाते हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का नाम तो मैं भूल ही गया, जिनके नेतृत्व में संघ का शिष्टमण्डल पंजाब के तत्कालीन शिक्षामन्त्री मियाँ अब्दुल्ल हयी से पंजाब सरकार की हिंदी विरोधी शिक्षा नीति के सम्बन्ध में मिला था, तथा मियाँ जी को श्रीमती जी के स्वागत में खड़े होना पड़ा था। श्री मेहरचन्द खन्ना का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के हिन्दी विरोधी सरक्यूलर का विरोध किया था। कप्तान केशवचन्द्र जी ने भी हिन्दी के लिये पर्याप्त कार्य किया। साहित्यसदन अबोहर के संस्थापक श्री स्वामी केशवानन्द तथा मास्टर तेगराम जी तो मूकरूप से हिंदी की सेवा आज कर रहे हैं। वैद्य मदनमोहन चोपड़ा, बहिन स्वदेश, आदर्श, पं० श्रीधरानंद जी व्याकरणाचार्य तथा हिंदी शिक्षणालयों के सैंकड़ों छात्र-छात्राएँ भी हमारे कार्य में सदैव सहयोगी सिद्ध हुए, जो समय समय पर हमारे आयोजनों, गोष्ठियों तथा कविसम्मेलनों में भाग लेते थे। सर्व श्री देवराज दिनेश, 'मधु' 'चंचल', सत्यपाल विद्यालंकार, काशीनाथ 'पथिक', श्रीमती ज्ञानदेवी जी ये सभी तो हमारे परिवार के ही बन गए थे।

प्रातः स्मरणीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन के नाम का उल्लेख न करना तो एक कृतघ्नता होगी, क्योंकि लाहौर तथा पंजाब में जो कुछ भी हिंदी कार्य हुआ, उसमें उनका आशीर्वाद तथा सत्परामर्श रहा। संघ की नीति हिंदी प्रचार कार्य में आरम्भ से ही असम्प्रदायिक रही। आर्यसमाज, सनातनधर्म तथा सिक्खों के दृष्टिकोण से ऊपर उठ कर कार्यकर्ताओं ने सभी से सहयोग प्राप्त किया। श्री सरदार मानसिंह का जो गुरुद्वारा ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष रह चुके हैं, दृष्टिकोण आज भी स्मरण आता है। उनकी हार्दिक इच्छा रहती थी कि यदि पंजाबी के प्रेमी सिक्ख भाई गुरुमुखी को धार्मिक लिपि बन्धन से मुक्त करके नागरी को अपना लें, तो पंजाबी का प्रचार तथा विकास घर-घर में हो जायगा। क्या भाई वीरसिंह की कविताएँ केवल सिक्ख भाइयों के लिए ही अभिमान की वस्तु हैं। क्या गुरु नानक अथवा श्री गुरु गोविन्दसिंह की वाणी पर सिक्खों का ही एक मात्र अधिकार है? हमने जब तब महात्मा हंसराज, श्री डा० गोकुलचन्द नारंग, भाई परमानन्द, पं० सन्तराम तथा श्री धर्मवीर से भी सहयोग तथा आशीर्वाद प्राप्त किया। प्रि० मेहरचन्द, प्रि० सूर्यभानु, प्रि० भगवानदास, पं० नृसिंहलाल आदि से भी हमें सहयोग प्राप्त हुआ। प्रो० अब्दुलमजीद खान, डा० सत्यपाल, डा० गोपीचन्द ला० अचिन्तराम, श्री देवराज जी सेठी श्री मोहनलाल आदि भी हमारी सभाओं में सम्मिलित हुए तथा हमारा पथ-पदर्शन करते रहे। श्री हाफ़ीज़ जालन्धरी आदि को भी हमने हिन्दी की ओर आकर्षित किया। लिटरेरी लीग के मन्त्री श्री चौधरी के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तानी' सभा का भी आयोजन किया गया, जिसमें उर्दू, पंजाबी तथा हिन्दी के लेखक सरल भाषा में अपनी रचनाएँ पढ़ते थे। लाजपतराय भवन लाहौर हमारी प्रगतियों का केन्द्र रहा। हमने सर्व श्री बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, श्री रामनारायण मिश्र महाकवि 'निराला' माखनलाल चतुर्वेदी, काका साहिब कालेलकर, मुन्शी प्रेमचंद, आनंद कौसल्यायन, जैनेन्द्रकुमार, डा० रामकुमार वर्मा डा० हरिवंश राय बच्चन विद्यावती कोकिल, सोहनलाल द्विवेदी आदि साहित्यकारों का अभिनन्दन किया। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी हमारे एक वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा चौधरी शेरजंग आदि साहित्यकारों ने तो कई बार हमारी गोष्ठियों में भाग लिया। इस के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी हिंदी के लिए वातावरण तैयार हुआ। आचार्य श्री शुक्ल, श्री प्रसाद तथा श्री प्रेमचन्द जी की जयन्तियों का भी आयोजन किया गया। तुलसी-जयन्ती तो एक प्रकार का हमारा राष्ट्रीय आयोजन ही बन गया था। संघ का अपना पुस्तकालय तथा वाचनालय था, जो कई वर्षों तक कृष्णनगर में चला। बाद में समय की आवश्यकता के अनुसार संघ की नई नियमामली स्वीकृति हुई तथा अध्यक्षादि का भी चुनाव होने लगा। कुछ वर्षों तक भारत इन्शोरेंस कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन संघ के अध्यक्ष रहे तथा संघ का कार्यालय भी भारत बिल्डिंग में चला गया, जहाँ पुस्तकालय तथा वाचनालय को भी हस्तांतरित कर दिया गया।

साहित्यिक दृष्टिकोण से संघ की गोष्ठियां अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुईं। ये पाक्षिक तथा मासिक रूप में लाजपतराय भवन के कमेटी रूप में होती थीं। स्थानीय साहित्यकारों के अतिरिक्त बाहिर से आने वाले साहित्यकारों का भी इनमें अभिनन्दन किया जाता था। नवीन तथा नवयुवक लेखकों को भी प्रोत्साहित किया जाता था। साहित्यिक चर्चा भी होती रहती थी। कवि सम्मेलनों की तो एक परम्परा ही चल पड़ी। यह रुचि इतनी विकसित हुई कि श्रोताओं से लाजपत राय भवन का हाल भर जाता था तथा वातावरण को संयम में रखने के लिये पहले से ही हिन्दी प्रेमियों को निमन्त्रण भिजवा दिये जाते थे तथा हाल में प्रवेश निमन्त्रण पत्रों से ही नियन्त्रित करना पड़ता था। यह प्रयोग सफल रहा तथा कविसम्मेलनों की मांग बढ़ने लगी। पंजाब में हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन तथा वितरण को धीरे धीरे बल मिलने लगा। जहां पहले केवल 'हिन्दी-भवन' लाहौर को ही एक मात्र हिन्दी का प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता समझा जाता था वहां मेहरचन्द लक्ष्मण दास, मोतीलाल बनारसी दास आदि संस्कृत के प्रकाशक भी हिन्दी में पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। अधिकतर पाठ्य पुस्तकों के लिये होड़ रहती थी। फिर भी सामान्य हिन्दी पुस्तकें भी प्राप्त होने लगीं। एक दृष्टान्त देना अनुचित न होगा। जब ई० १९३८ में मैंने सम्मेलन की साहित्य रत्न की परीक्षा देने का विचार किया, तब तक खण्डशः परीक्षा देने की सम्भवतः सुभीता नहीं हुई थी तथा लाहौर में "साहित्यरत्न" परीक्षा का केन्द्र भी नहीं था। मुझे अच्छी प्रकार से संस्मरण है कि साहित्यरत्न की कुछ पाठ्य पुस्तकें अत्यन्त परिश्रम करने पर भी न तो लाहौर के किसी पुस्तकालय में प्राप्त हो सकीं तथा न किसी पुस्तक विक्रेता से ही प्राप्त हो सकीं। अन्त में जब मैं परीक्षा देने आगरा गया, तब वहीं परीक्षा के दिनों में मैंने नागरी सभा के पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर तथा बाबू गुलाबराय आदि के व्याख्यानों की सहायता से परीक्षा दी। तथा उस वर्ष भारत भर में चतुर्थ रहा। धीरे धीरे इतना सुधार हुआ कि हिन्दी की चार पाँच दुकानें और खुलीं ओरियण्टल बुक डिपो, सूरी ब्रादर्स तथा ब्रती भ्राता—ये कुछ नाम मुझे स्मरण हैं। इण्डियन प्रेस वालों ने भी वहां अपनी शाखा स्थापित की। इतना होते हुये भी 'हिन्दी भवन' हिन्दी की पुस्तकों के लिये लाहौर में सब से अच्छा केन्द्र था। 'हिन्दी भवन' के कुशल सञ्चालन में श्री धर्मचन्द नारंग, श्री देवचन्द नारंग तथा श्री इन्द्रचन्द्र नारंग का संगठित परिश्रम तथा व्यवहार कुशलता को श्रेय है। देश के विभाजन में श्री देवचन्द्र नारंग को अपनी आहुति देनी पड़ी। बहिन ब्रह्मवती जी को उनका वियोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहना पड़ा। वे आज कन्या गुरुकुल देहरादून में अध्यापन-कार्य में अपना समय व्यतीत कर रही हैं। विभाजन के पश्चात् हिन्दी भवन को अपनी प्रगति जालन्धर तथा इलाहाबाद में केन्द्रित करनी पड़ी। हिन्दी मिलाप के भूतपूर्व सम्पादक श्री आनन्द स्वरूप जी शर्मा को भी अपनी आहुति वहीं देनी पड़ी।

अस्तु, संघ ने अपनी सीमित शक्ति से हिन्दी प्रचार तथा प्रसार के लिये विभाजन के पूर्व तक कार्य किया। पुस्तकालय, वाचनालय, गोष्ठियां, जयन्तियां, विशेष व्याख्यानों, कवि सम्मेलनों तथा अन्य सम्मेलनों के अतिरिक्त समय समय पर कुछ पुस्तिकाएँ तथा विज्ञप्तियां भी प्रकाशित की गईं। पंजाब शिक्षा विभाग के सम्बन्ध में 'पंजाब और हिन्दी' नामक पुस्तिका में तथ्य तथा आंकड़े दिये गये थे। पत्र व्यवहार तथा हिसाब किताब में हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में तथा बोर्डों पर हिन्दी में नामादि के सम्बन्ध में आन्दोलन तथा प्रयत्न किये गये। हिन्दी पढ़ने वालों के लिये कुछ केन्द्रों पर श्रेणियों का प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार सन् १९३४ से लेकर सन् १९४१ तक संघ के कार्यों में मुझे काफ़ी समय देना पड़ा। काम भी ऐसा कि चन्दा इकट्ठा करने से लेकर डाक बांटने तक भी मुझे साइकल पर कई बार स्वयं जाना पड़ता, किन्तु, काम करने की धुन ऐसी थी कि मुझे ये सब कार्य करने ही होते थे। संघ के पास रुपया इतना भी नहीं था कि हम सेवक तक रख सकते। अन्तिम कुछ वर्षों में सेवक रखा गया हो, इसका मुझे ठीक स्मरण नहीं। इस सब कार्य के अतिरिक्त मुझे पढ़ना तथा पढ़ाना भी होता था। एफ. ए. तथा बी. ए. की परीक्षाएँ देने के साथ साथ मैंने दयानन्द इण्डस्ट्रियल स्कूल लाहौर तथा सरस्वती कालेज लाहौर में कुछ अध्यापन कार्य किया। कुछ मास के लिये मित्रों के कहने पर भारती प्रिंटिंग प्रैस लाहौर में तथा कुछ मास दैनिक "शक्ति" तथा 'सीता' मासिक के सम्पादकीय विभागों में कार्य किया। दैनिक शक्ति का सञ्चालन श्रीमती शन्नोदेवी जी ने किया तथा 'सीता' मासिक का श्रीमती अमरकौर ने। संघ का प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी संस्थाओं के साथ पूर्ण सहयोग रहा। इस बीच में पंजाब हि० सम्मेलन का कार्य पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने श्री प्रो० वशिष्ठ के कन्धों पर सौंपा। सम्मेलन के लायलपुर तथा अमृतसर अधिवेशनों में मैं सम्मिलित हुआ। ज़िला सम्मेलन भी (दो बार बहुत से हुए। सरगोधा सम्मेलन की स्मृति आज भी बनी है। वैसे कवि सम्मेलनों आदि के अवसर पर मुझे कपूरथला मुलतान अबोहर, शिमला आदि कई स्थानों पर जाना पड़ा। इस बीच में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी दो अधिवेशन पंजाब में हुए—एक शिमला में १९४५ ई. में तथा १९४१ ई. में अबोहर में। इन दोनों अधिवेशनों में मैं सम्मिलित हुआ। अबोहर सम्मेलन के पश्चात् ही लाहौर में संघ का वार्षिक अधिवेशन रखा गया, जिसका सभापतित्व बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने किया तथा उद्घाटन राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने किया। अबोहर सम्मेलन में जो भी साहित्यिक तथा कविवर पधारे थे, उनमें से अधिकांश लाहौर पधारे। यद्यपि तब तक मैं लाहौर से पुनः कोयटा चला गया था किन्तु मित्रों के अनुरोध पर संघ के इस अधिवेशन का भी बहुत कुछ उत्तरदायित्व मुझ पर पड़ा। सर्व श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी कविवर निराला, बच्चन, डा० रामकुमार वर्मा आदि सभी महानुभावों ने हम पर कृपा की तथा वे लाहौर पधारे थे। शिमला तथा अबोहर सम्मेलनों के 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी" वाद-विवाद मुझे अब तक नहीं भूले, जो घण्टों तक दिन रात चलते रहे। तब तक संघ हिन्दी साहित्य सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी से सीधे सम्बद्ध हो चुका था तथा मैं स्थायी समिति का सदस्य भी था। पंजाब सम्मेलन की स्थायी समिति में तो मैं वर्षों तक सदस्य रहा।

१९४१ ई० के अगस्त मास में मुझे लाहौर से कोयटा जाना पड़ा। सोचा कि एम. ए. की परीक्षा किसी स्वीकृत संस्था में अध्यापक रूप में कार्य करते हुये दे दी जाए। डी. ए. वी. स्कूल कोयटा का मैं पुराना छात्र था। वहां स्थान रिक्त था। मुझे बुला लिया गया। इस बीच में मेरा विवाह हो चुका था तथा मेरी दो तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी थीं। 'निर्झर' १९४० ई० में, तथा 'हिन्दी-गद्य' १९४१ ई० में छप चुके थे। श्री काका साहब कालेलकर की गुजराती पुस्तक—'ओतराती दीवालों' का 'जेल का अनुभव' नाम से मैं अनुवाद कर चुका था और वह पुस्तक भी धारावाहिक रूप से मासिक "दीपक" अबोहर में छप चुकी थी। मेरे 'निर्झर' का सभी ओर से अभिनन्दन हुआ था। सरस्वती, हंस, विशाल भारत, कल्याण, माधुरी, आदि में मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं थीं। स्थानीय पत्र पत्रिकाओं में तो मैं नियमित रूप से लिखता ही था। हिन्दी मिलाप, शक्ति, खरी बात, शान्ति, विश्वबन्धु, दीपक, आर्य जगत् तथा हुमायूँ में मेरी रचनाएँ छपती रहतीं। उन दिनों मैं नियमित रूप से तथा निरन्तर लिखता था और सम्भवतः मुझे नाम की भूख भी थी, जो यौवन का एक चिह्न है।

कोयटा जाकर भी मुझ पर हिन्दी प्रचार कार्य का नशा छाया रहा और वहां भी शीघ्र हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना कर डाली गई। इस सभा के संगठन में भी संघ की नीति का अवलम्बन किया तथा आर्यसमाजी, सनातनी, सिन्धी, आदि सभी महानुभावों तथा संस्थाओं का सहयोग प्राप्त किया गया। आरम्भ से ही सभा के प्रधान श्री ला० ईश्वरदास जो टण्डन को चुना गया, जिन्होंने कोयटा के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लिया था। सभा का कार्य क्रमशः इतना फैला कि यहां भी अपना पुस्तकालय तथा वाचनालय खोला गया। गोष्ठियां, जयन्तियां तथा सम्मेलन होने लगे। राष्ट्र भाषाप्रचार समिति की परीक्षाएँ चलीं। समिति के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री आनन्द कौसल्यायन, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के साथ कोयटा पधारे। स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा को बलोचिस्तान भर के के लिये प्रान्तीय संचालक के रूप में तब तक कार्य करना पड़ा, जब तक मैं कोयटा में रहा। समिति की ओर से हमें कुछ आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई, जो अब तक सभा के नाम से बैंक में सुरक्षित है। भवन निर्माण के लिये प्रयत्न चल रहा था कि देश के विभाजन के कारण सब कुछ वहीं रह गया। १९४५ तक मैं कोयटा में रहा। डी. ए. वी. स्कूल छोड़ कर फ्रांटियर सिन्धी स्कूल में अध्यापन कार्य करने लगा था। वहां के कार्यकर्ताओं में स्व० श्री दीनानाथ शर्मा, श्री मोतीराम, श्री के. ज्ञानी, दीवान गोबिन्दराम, श्री डिनामल, वैद्य सोमप्रकाश, श्री देवराज नारंग, श्री रामशरण दास खन्ना, श्री सेठ शम्भूनाथ, श्री ओमप्रकाश, श्री कमल, सेठ हीरामल, छांगोमल, श्री कालानी मलिक परमानन्द, श्री सूरजभान वकील, श्री लाला दीवानचन्द, श्री लाला प्राणनाथ लांबा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस बीच मुझे 'बी. टी.' करने के लिये पेशावर जाना पड़ा। बी. टी. करने के पश्चात् पुनः कोयटा गया, किन्तु शीघ्र ही पञ्जाब वापिस आ गया तथा भलवाल (सरगोधा) के आर्य हाई स्कूल में कार्य करने लगा। वहां भी हिन्दी प्रचार का कार्य संगठित किया तथा एक कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। अप्रैल, १९४७ ई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भलवाल से बादामी बाग (लाहौर) आ गया। देश के विभाजन के साथ ही मुझे भी १२ अगस्त, १९४७ ई० को लाहौर छोड़ना पड़ा, किन्तु पूज्य पिता जी तथा माता जी साथ न आ सके तथा २३ अगस्त १९४७ को मध्याह्नोत्तर अपने ही बंगले में मुस्लिम भीड़ के सामूहिक आक्रमण से उनका बलिदान हुआ। वे रेलवे की नौकरी में बलोचिस्तान से कराची सरगोधा, कोहाट, कैम्बलपुर तथा बादामी बाग (लाहौर) के स्टेशन मास्टर रूप में कार्य करते हुये हमें छोड़ गये। वे उसी दिन डी. ए. वी. कालिज कैम्प जाने वाले थे, किन्तु उससे पूर्व ही धोखे से उन पर आक्रमण कर दिया गया, तथा स्थानीय गंगाराम हस्पताल में उनकी मृत्यु हो गई।

कोयटा प्रवास की एक घटना अब भी स्मरण है। वहां के हिन्दी प्रचार कार्य के लिये हमने प्रो० वशिष्ठ एम. ए. को लाहौर से निमन्त्रित किया तथा वे मेरे साथ कोयटा के अतिरिक्त सिब्बी, लोरा लाई तथा फोर्ट सण्डेमन आदि स्थानों पर गये तथा उन स्थानों पर भी हिन्दी प्रचारिणी सभाएँ स्थापित की गईं।

कोयटा की सभा के जो वार्षिकोत्सव हुये उनमें क्रमशः गोस्वामी गणेशदत्त जी, ला० खुशहाल चन्द जी (श्री आनन्द स्वामी जी) तथा श्री भीमसेन जी ने सभापतित्व किया।

देश के विभाजन के पश्चात् भी हिन्दी प्रचार का नशा उतरा नहीं। प्रान्तीय संचालक होने के नाते मैं प्रयाग सम्मेलन की स्थायी समिति का तो वर्षों सदस्य रहा। दिल्ली में भी प्रान्तीय सम्मेलन तथा स्थायीसमिति का तो वर्षों सदस्य रहा। दिल्ली में भी प्रान्तीय सम्मेलन तथा स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा से मेरा आज तक भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोटा सम्मेलन में दिल्ली प्रान्तीय सम्मेलन के प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुआ। सब्जी मण्डी शाखा ने प्रान्तीय सम्मेलन के जिस अधिवेशन का आयोजन चार पांच वर्ष पूर्व किया, उसके साहित्य विभाग का संयोजन मुझे करना पड़ा। वैसे पंजाब सम्मेलन के साथ भी मेरा आज भी वैसा ही सम्बन्ध है। पंजाब सम्मेलन के अम्बाला, लुधियाना हिसार तथा अमृतसर सम्मेलनों में मैंने भाग लिया तथा हिसार सम्मेलन में तो मुझे कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करनी पड़ी।

बीच में जब मुझे दिल्ली से एक-डेढ़ साल के लिये राजस्थान जाना पड़ा तब सँगरिया तथा गंगानगर में भी इस प्रकार के आयोजन किये। अबोहर की यात्रा की तथा आदरणीय टण्डन जी को गंगानगर के लिये निमन्त्रित करने गया।

गत एक वर्ष से भारत सरकार के गृह-मन्त्रालय में भी इसी विचार से प्रविष्ट हुआ कि सरकारी कर्मचारियों में हिन्दी के प्रति आकर्षण तथा उत्साह की भावना उत्पन्न की जाए। इससे पूर्व भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय में भी दो तीन वर्षों तक यहीं कार्य करता रहा। अब गत ८-९ महीनों से मुझे गृह मन्त्रालय की ओर से कलकत्ता भेजा गया है, जिससे यहां के केन्द्रीय कर्मचाचारियों के हिन्दी शिक्षणादि के कार्य में सहयोग दे सकूँ।

हिन्दी प्रचार के सम्बन्ध में पंजाब, बलोचिस्तान तथा दिल्ली के अतिरिक्त मैंने दक्षिण भारत तथा राजस्थान की भी यात्राएँ की हैं तथा सर्वत्र मुझे जनता तथा कार्यकर्त्ताओं में उत्साह की भावना ही दृष्टिगोचर हुई है। आशा ही नहीं, विश्वास है कि हिन्दी का कार्य और भी अधिक प्रगति करेगा तथा हिन्दी प्रचार के कार्य में लगे हुये महानुभाव अपने उत्तरदायित्व का और भी निष्ठा से पालन करेंगे।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८ साल पहले के लाहौर और पंजाब में हिन्दी :

ले०–श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार
साहित्य सदन कनाट सर्कस
नई देहली

२८ साल पहले के लाहौर और पंजाब की कल्पना आज सहज नहीं। आज के पंजाब और लाहौर को देखने पर सहसा मुँह से यही निकलेगा :—

'सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामन्त चक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्ध परिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उत्सिक्तः स च राजपुत्र निवहस्ते वन्दिनस्ताः कथा,
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृति पथं कालाय तस्मै नमः॥'

उस समय अनारकली बाजार के दोनों ओर के मकान तिमंजले से ऊँचे न थे। बेलीराम ब्रदर्स की शानदार इमारत की नींव भी नहीं पड़ी थी। उस समय यह दुकानें लाहौरीगेट के बाहर थीं। इसकी कुछ दुकानों के बाद फलों और सब्जी की दुकानें थी। इसके सामने चाट और हलवाई की प्रसिद्ध दूकान थी। चौक पार करने के बाद जहाँ शुद्ध हिन्दी सुनाई देती थी। वह पकौड़े बेचने वाले मनोहर की दूकान थी। उस समय भी इस दूकान पर शिमले की मिर्च भिस, बैंगन, आलू के पकौड़े एक-एक आने के मिलते थे। इस दूकान पर भीड़ भी काफी रहती थी। इसके पास ही मछली के पकौड़े बिकते थे। मनोहर देहरादून का निवासी था और बड़े मजे में मछली के पकौड़े की दूकान दिखा कर कहता, यह कमुनिस्ट पार्टी है और अपनी दूकान को गुरुकुल पार्टी बताता। इसका कारण था। कुछ दिन पहले ही दोनों (गुरुकुल और और कालेज) पार्टियों के दो महारथियों श्री बुद्धदेव विद्यालंकार और प्रो० अमरनाथ बाली के बीच माँस भक्षण पर शास्त्रार्थ होके चुका था। यद्यपि मैं जून १९२८ ई० में लाहौर पहुँचा था, पर उस महान् शास्त्रार्थ की गूँज उस समय सुनाई पड़ती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब प्रान्तीय हिंदी साहित्य सम्मेलन स्थापित हो चुका था। किन्तु श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के पंजाब छोड़ने के साथ सम्मेलन भी समाप्त प्राय था। हां, उसकी स्मृति हिन्दी भवन के रूप में शेष थी। पर यह दूकान ही रही, हिंदी का केन्द्र नहीं बना। इसको देख कर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि चार साल पहले लाहौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, किन्तु वह वस्तुतः दो व्यक्तियों तक सीमित था। एक थे राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन और दूसरे श्री भीमसेन विद्यालंकार। श्रद्धेय पुरुषोत्तम दास टण्डन उस समय सक्रिय राजनीति से अलग थे और पंजाब नैशनल बैंक के जनरल मैनेजर थे। हिंदी-प्रेमी जन के लिए वे जहां प्रेरणा के स्रोत थे वहां उनका घर उनके लिए तीर्थस्थल था। लाहौर पहुंचने के साथ 'आर्य' साप्ताहिक में हाजिरी देने के बाद सबसे पहला कार्य जो मैंने किया, वह था श्रद्धेय टण्डन जी के दर्शन। श्री भीमसेन जी विद्यालंकार के साथ उनके पास गया। उनके कमरे में मन्द-२ प्रकाश फैला हुआ था और वे ज़मीन पर नीचे बैठे हुए थे। १९२५ ई० में राजर्षि टण्डन वाग्वर्धिनी सभा के आमन्त्रण को स्वीकार कर गुरुकुल के उत्सव में भी शामिल हुए थे। वाद-विवाद सम्मेलन के सभापति हुए। इसमें मैं भी बोला था। पर यह परिचय सर्वथा नया था। दीक्षा लेने के लिए यह भेंट की गई थी। थोड़ी ही देर हम दोनों वहाँ रहे, पर हिंदी के कार्य के सिवाय और कोई बातचीत नहीं हुई। पण्डित भीमसेन जी पेरिस जाने की तैयारी कर रहे थे। प्रश्न था उनके पीछे सम्मेलन कौन सम्भालेगा? श्रद्धेय टण्डन जी रथवान की खोज में थे।

*　　　*　　　*

राजनीति की आँधी जोरों की चल रही थी। बारदोली का सत्याग्रह रंग ला रहा था। इसके सामने नेहरू कांग्रेस की रिपोर्ट भी फीकी हो गई थी। इन दिनों मोरी गेट के सामने रोज़ाना ही सभाएँ होती थीं। इनमें वक्ता होते थे डा० सत्यपाल, डा० आलम, मियां जाफरअली, सरदार तेजासिंह लायलपुरी। सरदार जी पंजाबी में बोलते थे और शेष लोग उर्दू भाषा में। डा० सत्यपाल की भाषा में अवश्य हिंदी की पुट रहती थी। किन्तु मुसलमान खालिस उर्दू भाषा में बोलते थे और बीच २ में शेर बोल कर अपने भाषण में रंग लाते थे और उसको आकर्षक ढंग का बनाते थे। 'ब्रेडला हाल' दूसरी जगह थी, जहाँ सार्वजनिक सभाएँ होती थीं। किंतु यहाँ बिना किसी अपवाद के अंग्रेजी में ही भाषण होते थे। युवक और छात्र आन्दोलन जोरों पर था। लाहौर उसका एक केन्द्र था। जुत्शी माता और जुत्शी बहनें बड़ी लोकप्रिय थीं। किंतु वे हों अथवा राणा जंगबहादुर हों बोलते सब अंग्रेजी में थे। श्री नेहरू भी ब्रेडला हाल में बोले तो अंग्रेजी में ही। बच्छोवाली आर्यसमाज के उत्सव में दीवान चमनलाल का भाषण अवश्य कराया जाता था। क्योंकि वे सुन्दर अंग्रेजी में भाषण देते थे और लाहौर के नौजवान उनका अंग्रेजी भाषण सुनना पसन्द करते थे। श्री बुद्धदेव विद्यालंकार के हिन्दी भाषण में श्रोता अवश्य झूम उठते थे, किंतु वे लाहौर के वक्ता न थे, न आर्यसमाज से बाहर उनकी मांग ही थी। फिर भी उनका भाषण रात को नहीं, मध्याह्न में कराया जाता था। रात के समय दीवान चमनलाल सरीखे लोगों का भाषण कराया जाता था।

*　　　*　　　*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा जा सकता है कि १९२८ में क्या हिंदी कहीं नहीं थी? क्या परीमहल में श्री भीमसेन विद्यालंकार के निवास-स्थान के बाहर भी कहीं हिंदी की पूछ थी और हिंदी का कहीं आधिपत्य था? इसका उत्तर है, 'गुरुदत्त भवन।' यहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का कार्यालय था। इसके कार्यालय मन्त्री श्री नन्दलाल आर्य कट्टर आर्यसमाजी होने के साथ साथ कट्टर हिंदी प्रेमी थे। आपका पुत्र गुरुकुल में पढ़ता था। आप पंजाबी होते हुए भी हिंदी से अनुराग रखते थे। इस दफ्तर में हिंदी प्रेमी एक युवक आर्य, श्री युगलकिशोर। लेकिन ये उत्तर-प्रदेश के निवासी थे। सभा का सारा कार्य हिंदी में होता था। 'आर्य' इसी का मुख पत्र था। किंतु 'आर्य' सौत का पुत्र मालूम होता था। दफ्तर में दो-तीन को छोड़ कर शायद ही कोई इसके दीर्घायुष्य की कामना करता हो। आर्यसमाज के उत्सवों की सूचनायें और उपदेशकों का प्रोग्राम दफ्तर के लोग 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक को जिस तत्परता से देते थे, उस तत्परता का वे 'आर्य' के प्रति परिचय नहीं देते थे, जिसको पाने का वह अधिकारी था। वे उर्दू लिखते बोलते थे। उर्दू लिखना उनके लिए सरल था। 'आर्य' से अतः वे उपेक्षा करते थे उसका सम्पादक स्वतः उनसे आवश्यक प्रोग्राम और जानकारी ले जाय। 'आर्य' को यह समाचार सर्वप्रथम पाने का अधिकार है, इस बात को वे मानने को प्रस्तुत नहीं थे।

प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का 'आर्यजगत्' बन्द हो चुका था और 'आर्यगज़ट' उर्दू में चल रहा था। 'पंजाब केसरी' निकालने की कोई बात नहीं थी। शहर मिट्ठे में लक्ष्मणदास मेहरचन्द की प्रसिद्ध दुकान संस्कृत और हिंदी ग्रंथों का प्रकाशन करती थी। भाई परमानन्द जी पर्णकुटी में गुरुदत्त भवन के पास ही रहते थे। हिंदू महासभा के माने हुए नेता थे। 'विरजानन्द प्रेस' वे अपने एक युवक भगत श्री जगत्नारायण (भूतपूर्व शिक्षामन्त्री पंजाब सरकार) को दे चुके थे। भाई जी जात-पात तोड़क मण्डल भी चलाते थे। लेकिन इसका सारा कार्य हिंदी में नहीं होता था। यद्यपि इसके मन्त्री बी. ए. होने पर भी हिंदी में लिखने वाले श्री सन्तराम थे, हां, वैदिक स्वामी हरप्रसाद जी के सब ग्रन्थ हिंदी में ही लिखे जाते और छपते थे। यही बात अमृतवाणी स्वामी सत्यानन्द जी की थी। महर्षि दयानन्द का चरित्र लिख कर आपने उन्हीं दिनों छपवाया था। किन्तु आर्यसमाज में जिसके कारण भीषण आँधी आई, वह ग्रन्थ भक्ति-प्रकाश और था वह 'राम नाम की दीक्षा देने के साथ दिया जाता था। वह कभी बाज़ार में न बिकता था। 'राजपाल एण्डसंस' उन दिनों एक मात्र आर्यसमाज का धार्मिक साहित्य छापते और प्रकाशित करते थे। इनके लिए हिंदी, उर्दू एक समान थी, यद्यपि आर्यसमाज के हिन्दी ग्रन्थों के भी ये सबसे बड़े प्रकाशक थे। 'आर्य' के विशेषांकों में इनका एक पृष्ठ का विज्ञापन भी निश्चित था। हास्पिटल रोड पर इनकी दूकान थी और उसके सामने, 'उर्दू प्रताप' प्रकाश का दफ्तर था। इन पत्रों की छाया इस पर घने रूप में पड़ती थी।

अमृतधारा भवन में भी हिंदी की चर्चा सुनाई देती थी। अमृतधारा के प्रसिद्ध आविष्कारक श्री ठाकुरदत्त शर्मा हिन्दी प्रेमी माने जाते थे। हिंदी के लिए दान देने में संकोच न करते थे। परन्तु महात्मा मुन्शीराम का अनुसरण करने का साहस उस समय के पंजाब में किसी में नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतला जी के मन्दिर में संस्कृत की पाठशाला थी। परीक्षा के दिनों में यहाँ सैंकड़ों छात्र आश्रय पाते थे। अन्य प्रान्तों से भी बहुत लोग इस समय आते थे। होटलों में इस कारण से अरहर की दाल बनने लगती थी। यहाँ की पाठशाला के संचालक हिंदी संस्कृत के शिक्षण की व्यवस्था धार्मिक भावना से करते थे। राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जगत् में कहीं ऐसा स्थान और कहीं ऐसा कोई कोना नहीं था, जहाँ हिन्दी समादृत हो, या अपने अधिकार से प्रतिष्ठित हो। वह सर्वत्र दया और कृपा की पात्र होकर पहुँचती थी। श्री नानक चन्द बैरिस्टर सदृश वक्ता और भारतीय संस्कृति के हिमायती भी छात्रों की विवाद सभा में अंग्रेजी में भाषण देने में गौरव अनुभव करते थे, और वे यह तनिक भी अनुभव नहीं करते थे कि अंग्रेजी में भाषण देना कोई अस्वाभाविक बात है।

ब्रह्म महाविद्यालय और उपदेशक महाविद्यालय तथा आयुर्वेद विद्यालय में अवश्य हिंदी का राज्य था। ये सब आर्यसमाज की संस्थाएँ थीं और इनका लक्ष्य प्रचारक और वैद्य तैयार करना था। इनमें पढ़ने वाले छात्र भी अधिकतर ठेठ पंजाब से बाहर के थे। अतः ये हिंदी के केन्द्र नहीं बन सके। आचार्य विश्वबन्धु की अनुसन्धान शाला का कार्य भी हिंदी भाषा में होता था, किंतु वह सामान्य-जनों के लिये नहीं था। आर्यसमाज और सनातन धर्म के स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था अवश्य थी। किंतु ऐच्छिक विषय होने के कारण हिंदी का महत्व उर्दू के मुकाबले में कुछ भी नहीं था। संन्ध्या और हवन के मन्त्र भी छात्रगण उर्दू में लिखी संन्ध्या व हवनमंत्र से याद करते थे। अतः उनका उच्चारण अशुद्ध होता था। किंतु उच्चारण अशुद्ध क्यों होता है, इस ओर कभी किसी पंजाबी आर्य समाजी का ध्यान नहीं गया। १९३१ में जब श्री भीमसेन विद्यालंकार ने देखा कि उनका भतीजा और भाँजा संन्ध्या के मंत्रों का अशुद्ध उच्चारण कर रहे हैं, तब उनको पता चला कि डी. ए. वी स्कूल तक में सन्ध्या हवन उर्दू में पढ़ाई जाती है। यत्न किया गया और बच्चे फिर हिंदी में सन्ध्या हवन के मंत्र याद करने लगे।

'आर्य' एक साप्ताहिक पत्र था। पंजाब में १९२९ तक एक मात्र यही एक हिंदी का साप्ताहिक पत्र था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वार्षिक अधिवेशन में, म. कृष्ण जी की उर्दू प्रकाश पार्टी के विरोध का मुकाबला कर बहुमत से मासिक 'आर्य' को साप्ताहिक किया गया। सभा के प्रायः प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में आर्य साप्ताहिक के भविष्य पर बहस होती थी। यह उस समय के हिंदी के साप्ताहिकों के समान १६-२० पृष्ठों का निकलता था। विरजानन्द प्रेस में छपता था। इसके पास ही मोहनलाल रोड पर ही, प्रसिद्ध होटल था, जहाँ सरदार भगतसिंह, सुखदेव, सदृश प्रसिद्ध क्रान्तिकारी आदि भोजन करने के बहाने परस्पर भेंट करने के लिए इकट्ठे होते थे। वहाँ लोक सेवक मण्डल के सदस्यगण, विशेषतः पंजाब के वर्तमान शिक्षा-मन्त्री श्री अमरनाथ विद्यालंकार, भूतपूर्व एम. पी. श्री राजाराम शास्त्री, एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन के मन्त्री श्री भीमसेन विद्यालंकार जमा होते थे। शाम को यहाँ कभी कभी यह मण्डली राजनीति के साथ-२ हिंदी की भी चर्चा कर लेती थी, किंतु यह चर्चा संयोग वश ही होती थी और वह भी राजनीतिक प्रसंग से। यद्यपि कांग्रेस पास कर चुकी थी कि कांग्रेस का सारा कार्य हिंदी और उर्दू लिपि में किया जाय, किंतु लाहौर में कांग्रेस का सारा कार्य अंग्रेजी या उर्दू में ही होता था। इसके जनरल सक्रेटरी डा. खानचन्द देव थे। आप जर्मनी से डाक्टरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा लेकर आये थे। देश-भक्ति की तरंगें आपके हृदय में जोरों से लहराती थीं, साप्ताहिक 'आर्य' के आप अधिष्ठाता भी थे। हिंदी-प्रेमी और हिंदी भक्त थे। सरल हृदय के मिलन-सार व्यक्ति थे। उनसे जो कुछ बन सकता था, वह करने को सदा तैयार रहते थे। किंतु उनके जीवन और व्यवहार की भाषा हिंदी नहीं थी। कसूर में हुई प्रादेशिक राजनीतिक कांग्रेस के आप अध्यक्ष चुने गये। आपका मुद्रित भाषण अंग्रेजी-उर्दू में था, हिंदी यहां भी स्थान नहीं पा सकी थी। लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में भी यही बात थी। डा. किचलू और श्री नेहरू के भाषण अंग्रेजी में हुए। महात्मना मालवीय जी भी एक बार आवेश आने पर अंग्रेजी में बोले। हां, गाँधी जी सदा के समान हिंदी और अंग्रेजी में बोले। और लोग यह साहस नहीं कर सकते थे। हां, टण्डन जी अवश्य अपनी जीवन की परम्परा के अनुसार हिंदी में बोले थे। इस समय वे पंजाब नेशनल बैंक का कार्य छोड़ कर सक्रिय राजनीति में आ गये थे और लोक सेवक मंडल में लाला जी की जगह अध्यक्ष हो गए थे। किंतु इसके साथ ही टण्डन जी लाहौर छोड़ कर पुनः प्रयाग जाने वाले थे।

इन विपरीत परिस्थितियों और प्रतिकूल अवस्थाओं में भी हिंदी का काम आगे सरकता ही जाता था। यह सरकता भी था तो श्री भीमसेन विद्यालंकार के साथ। इनके जीवन का मिशन ही था, हिंदी का प्रचार। हिंदी का यह अनन्य किंतु मूक-सेवक यदि 'आर्य' सम्पादक था, जो हिंदी प्रचार के लिये, यदि उसने टण्डन जी के आशीर्वाद और उनकी सहायता से 'पंजाब केसरी' निकाला तो हिंदी के प्रचार के लिये; हिंदी को उसने कभी नहीं भुलाया। लाहौर कांग्रेस के दिनों में, जब सारा पंजाब कांग्रेस देखने में व्यस्त था, तब हिंदी का यह साधक कांग्रेस देखने का मोह छोड़ कर 'पंजाब केसरी' का दैनिक संस्करण निकालने में लगा हुआ था। उसके मन में यही एक बात थी कि कोई यह न कहे कि जब लाहौर से अंग्रेजी और उर्दू के दैनिक निकल रहे हैं, तब हिंदी का एक दैनिक भी यहाँ से नहीं निकल रहा। नया नया वैवाहिक जीवन है, इसका भी इस साधक एवं तपस्वी ने ख्याल नहीं किया और अकेला ही रात-दिन 'पंजाब केसरी' का दैनिक संस्करण निकालने में लीन रहा। हाँ काँग्रेस अधिवेशन की आँखों देखी रिपोर्ट अवश्य श्री दीन दयालु शास्त्री एम. एल. ए. देते थे। श्री भीमसेन जी लाजपतनगर में दिखाई भी दिये, तो कर्त्तव्य पालन में रत और जीवन-व्रत को पूरा करते हुए। राष्ट्रभाषा सम्मेलन का अधिवेशन भी इस अवसर पर सरदार पटेल की अध्यक्षता में आयोजित किया था। आप इसके संयोजक मंत्री थे। इस अवसर पर आप कैसे अनुपस्थित रह सकते थे। उनकी इस साधना और तपस्या का श्रेय मित भाषिणी श्रीमती वेदकुमारी को भी है। आप एक प्रसिद्ध आर्य घराने में पल कर और जालन्धर कन्या-महाविद्यालय की स्नातिका होकर भी गुरुमुखी जानती हैं, जब यह सुना, और जाना तो उनके जीवनसंगी भी चकित रह गए। इससे उनको एक नई प्रेरणा मिली। हिंदी, उर्दू, गुरुमुखी के विवाद में यदि हिंदी, गुरुमुखी एक हो जाय तो ? पर ये दोनों एक कैसे हों ? भीमसेन जी ने युक्ति निकाली कि बोली पंजाबी रहे, पर लिपि नागरी रहे। हीर रांझा का प्रकाशन भी किया गया। किंतु यह परीक्षण विफल रहा। क्योंकि यहां भाषा का प्रश्न धार्मिक कट्टरता के साथ जुड़ा हुआ था। यहाँ सम्प्रदाय का प्रश्न था, उसकी विजय का सवाल था। उसकी विशेषता की रक्षा का प्रश्न था, जन-मानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क्षितिज को विकसित करने का नहीं। अतः नागरी पर गुरुमुखी की कलम लगाने का परीक्षण आगे नहीं बढ़ा। यदि कहीं यह कलम लग जाती और फूल फल जाती, तो आज विभक्त पंजाब के सामने हिंदी, गुरुमुखी की समस्या न आती।

हिंदी के संस्कृतमयी हिंदी के नहीं—श्रोताओं की कमी लाहौर में कभी नहीं रही। कथावाचक श्री राधेश्याम की रामायण की कथा सुनने के लिये जो भीड़ टूटती थी उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। लाहौर के सब हाल उसके लिये छोटे थे। किंतु उसी लाहौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कोई शाखा नहीं थी। प्रान्तिक हिंदी साहित्यिक सम्मेलन निरवलम्ब त्रिशंकु के समान आकाश में था पुनः भीमसेन जी ने प्रयत्न किया। परीमहल में पहली सभा का आयोजन हुआ। इस समय तक कवि एवं नाटक-कार श्री उदय शंकर भट्ट पंजाब को अपना निवास स्थान बना चुके थे। इसके प्रधान पं० शिवराम जी शास्त्री बनाये गये। इन पंक्तियां का लेखक मंत्री चुना गया। इसकी ओर से कई गोष्ठियाँ हुई। एक गोष्ठी में घासलेटी साहित्य पर गर्मागर्म चर्चा हुई, और श्री उग्र के प्रेमियों ने उनके कलकत्ता निर्वासन पर बड़ा शोक प्रकट किया। किंतु यह कुछ अधिक दिन नहीं चल सका। नमक कानून भंग दण्डी-कूच के साथ यह तितर-बितर हो गया। क्योंकि १६३१ में पुनः इसको पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता हुई।

'आर्य' आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र था। आशा की जाती थी कि सब समाजें इसको अपनायेंगी और समर्थ आर्य सज्जन इसको अपने घरों में स्थान देंगे। किन्तु स्थिति ऐसी नहीं थी, अनेक आर्यसमाजों में यह खोला तक नहीं जाता था। अतः सम्पादक से यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वह नगर-नगर जाकर 'आर्य' के ग्राहक भी बनायगा। 'आर्य' वेद प्रचार का एक भाग माना जाता था। पर वेद प्रचार के अधिष्ठाता की कल्पना थी कि 'आर्य' के लिये जो घाटा उठाया जा रहा है, वह व्यर्थ है, यह रुपया यदि वेदप्रचार में लगे तो अधिक अच्छा है। 'आर्य' व्यावसायिक पत्र नहीं है, किंतु यह एक लक्ष्य को प्रचारित करने के लिये है और इसमें घाटा होना अनिवार्य है, यह मानने को सभा के व्यवसाय कुशल अधिकारी भी उद्यत न थे। वे यह भी मानने को तैयार नहीं प्रतीत होते थे कि ऋषि दयानन्द के सन्देश का प्रचार हिंदी द्वारा ही सर्वोत्तम रीति से हो सकता है। क्योंकि इन्हीं दिनों सभा ने उर्दू में आर्य मुसाफिर श्री चिरंजीलाल प्रेम के सम्पादकत्व में निकालना पसन्द किया। यद्यपियह भी घाटे का सौदा था। परन्तु उस समय का वातावरण ही ऐसा था।

पंजाब केसरी के निकालने से कोई स्थिति में विशेष परिवर्तन आया, ऐसा नहीं कहीं जा सकता। इसके लिये श्री जवाहरलाल नेहरू तक से लेख प्राप्त किए गए। उनके दो लेख एक साथ छपे। ये दोनों मूलतः हिंदी में ही लिखे गये थे। लाला जी की आत्म-कथा भी इस समय इसमें छपी। किन्तु 'पंजाब केसरी' हिंदी प्रचार के उद्देश्य से निकाला गया था। श्रद्धेय टण्डन जी को घाटे की परवाह नहीं थी। किंतु यह 'लोक-सेवक मण्डल' का मुख-पत्र होकर भी अपने में से ऐसे व्यक्ति पैदा न कर सका, जो सम्पादक को दो सप्ताह की छुट्टी भी दे सके। आज के शिक्षा एवं श्रम-मन्त्री श्री अमरनाथ विद्यालंकार भीमसेन विद्यालंकार के नमक सत्याग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सिलसिले में लाहौर से जाकर सहारनपुर जेल में गुरुकुल काँगड़ी स्नातक मण्डल के सत्याग्रही जत्थे के साथ कैद होने पर; इस समय इसके सम्पादक थे। 'जन्मभूमि' दैनिक का परीक्षण विफल हो चुका था। वे अवकाश और विश्राम चाहते थे। उनको कुछ काम भी था, ऐसे समय दो सप्ताह के वास्ते 'पंजाब केसरी' का कार्य इन पंक्तियों के लेखक, ने सम्भाला और वह भी विना किसी पैसे के। हिन्दी पत्र और हिन्दी की १६३१ में क्या स्थिति थी, इससे कुछ अनुमान किया जा सकता है। टण्डन जी पंजाब केसरी को दैनिक करने को व्यग्र थे। योजनायें बनीं। दिन भी निश्चित हो गया, पर पुनः दैनिक पंजाब केसरी के प्रकाशित होने का दिन नहीं आया।

जेल से वापिस आने और कुछ सुस्ता लेने के बाद श्री भीमसेन विद्यालंकार को पुनः हिन्दी की धुन सवार हुई। 'पंजाब केसरी' छूट ही चुका था। साप्ताहिकआर्य में वापिस जाने का प्रश्न नहीं था, क्योंकि वह साप्ताहिक से मासिक हो चुका था। अतः अब आपने हिंदी कानवयुग प्रैस खोलने का निश्चय किया। लाहौर से 'सत्यवादी' निकालने के बाद यह उनका दूसरा अपना एवं स्वकीय प्रयास था। प्रथम महायुद्ध में 'प्रभात' निकालने का साहस निष्फल सिद्ध हो चुका था। 'उषा' की लाली भी ज्यादा देर टिकी न थी। ये सब इतिहास के पुराने पन्ने सामने थे। किंतु हिंदी नवयुग प्रैस के संस्थापक ने हतोत्साह होना और जीवन-क्रम से डिगना सीखा नहीं था। नई मशीनें मंगाई गईं। नया टाईप खरीदा गया। यह हिन्दी की सेवा के लिए एक महान् आयोजन का बीज पनपा था। श्रद्धेय टण्डन जी के कर कमलों द्वारा इसका उद्घाटन हुआ, उद्घाटन भी अद्भुत तरीके से हुआ—मशीन घर का स्विच या बटन नहीं दबाया गया। प्रेस के बरामदे में इकट्ठे हिन्दीप्रेमियों के सामने टण्डन जी ने अपने भाषण के बाद 'टाइप' के बंडल खोले। 'हिंदी संदेश' 'अलंकार' शांति मासिक पत्रिका' 'खरी बात' 'बलिदान' तथा 'साप्ताहिक आर्य' १६४६ तक प्रकाशित होते रहे। अलंकार में श्री वीर सावरकर के, श्याम जी कृष्ण वर्मा सम्बन्धी लेख के कारण नवयुग प्रैस जप्त होकर आर्य प्रैस में परिवर्तित हो गया। उस समय कितने हिन्दी प्रेमियों के हृदय हिन्दी के चमकते अक्षर देख भविष्य की आशा से पुलकित हो उठे। उस समय किसने कल्पना की थी कि मोहनलाल रोड पर श्रद्धेय टण्डन जी के हाथों रोपा वृक्ष, देश, विभाजन की आँधी से उखड़ कर भी नष्ट न होगा और अम्बाला में यह पुनः हरा-भरा होकर पनपेगा। यह हिन्दी का वट वृक्ष सिद्ध हो और प्रादेशिक सम्मेलन इसका आश्रय पाकर हिन्दी की विजय वैजयन्ती फहराता रहे, यही हार्दिक कामना है। एवमस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे हिन्दी पर क्यों और कैसे प्रेम हुआ :

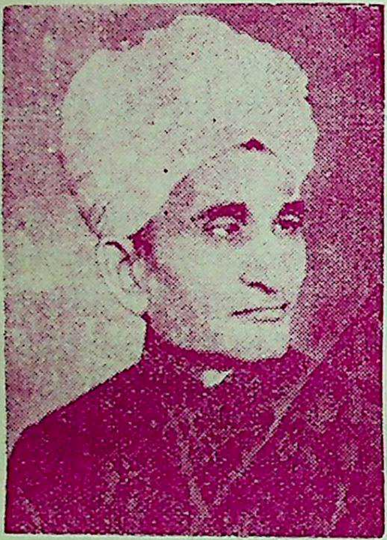

लेखक—
श्री सन्तराम जी बी० ए०, पुरानी बसी
होशियारपुर

[आप पंचनद प्रदेश में हिन्दी पत्रकार आन्दोलन तथा हिन्दी गद्य साहित्य निर्माण के सूत्रधारों में से क्रान्तिकारी निर्भीक स्वतन्त्र विचारक साहित्यकार हैं]

हिन्दी के मार्ग में अनेक विघ्न बाधाएँ रहते भी आज वह भारत की राष्ट्र भाषा के सम्मान्य पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी है। पर जिन दिनों की बात मैं करता हूँ उन दिनों पंजाब के स्कूलों और कालेजों में इसका कोई स्थान न था। बड़े बड़े नगरों के सरकारी या नगर-पालिका के स्कूलों में कहीं कहीं संस्कृत की शिक्षा की तो थोड़ी बहुत व्यवस्था थी किन्तु हिन्दी का तो कहीं नाम निशान तक न था। मैं म्युनिसिपल बोर्ड हाई स्कूल जालन्धर से मैट्रिक पास करके गवर्नमैंट कालेज लाहौर में भरती हुआ। यह सन् १९०५ की बात है। मैंने एक विषय फ़ारसी भी ले रखा था। हक़ीक़त यह है कि मुझे फारसी अच्छी आती थी। बी. ए. में मुझे दो तीन बार अपनी क्लास में फारसी में प्रथम रहने के कारण पारितोषिक भी मिले थे। फ़ारसी साहित्य पढ़ते पढ़ते मुझे उस भाषा पर ही नहीं, फारस देश पर भी अगाध प्रेम हो गया था। मुझे लगता था कि संसार में कोई मधुर भाषा है तो फारसी है, कोई सुन्दर देश है तो फारिस है। वहां की पुष्प-वाटिकाओं, नदी, नालों, वनों, उपवनों और गुलो बुलबुल का वर्णन पढ़ कर मन आनन्द विभोर हो उठता था। यही जी चाहता था कि वह कौन दिन होगा जब मैं फारिस जाऊँगा, वहां की नदियों के किनारे बैठ कर मीठे फल खाऊँगा और वहां की किसी सुन्दरी से विवाह करके वहीं बस जाऊँगा।

सौभाग्य से इन्हीं दिनों मुझे लाहौर में आर्य समाज के सत्संग का अवसर मिला। महात्मा मुन्शीराम जी (पीछे से स्वामी श्रद्धानन्द हुये)। जालन्धर से उर्दू में "सद्धर्म प्रचारक" नामक साप्ताहिक पत्र निकाला करते थे। एक मित्र से मुझे वह पढ़ने को मिल जाता था। उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ कर मुझे बड़ा आनन्द आता था। कुछ काल उपरान्त महात्मा जी ने घोषणा कर दी कि 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू के स्थान में आर्य भाषा हिन्दी में निकला करेगा। मैं 'सद्धर्म प्रचारक' का लोभ संवरण न कर सका। मैंने नागरी लिपि सीखना आरम्भ कर दिया। कोई पढ़ाने वाला न था। इसलिये आरम्भ में बड़ी कठिनाई हुई। घण्टे भर में मुश्किल से अखबार का एक कालम पढ़ पाता था। फिर धीरे धीरे अभ्यास बढ़ गया और पुस्तक पढ़ने में रस आने लगा।

पहले ही पहले मैंने "कादम्बरी" नामक एक हिन्दी उपन्यास पढ़ा। उसके बाद "सीता वनवास' इन दोनों पुस्तकों के पाठ ने मेरी भ्रान्ति दूर कर दी। इनमें अपने देश के ऋषि आश्रमों और वनोपवनों का वर्णन पढ़ कर अपने देश पर मेरा प्रेम बढ़ने लगा। मैंने अनुभव किया कि फारिस ही नहीं, हमारा अपना देश उससे भी कहीं अधिक सुन्दर है। आर्य समाज के पूज्य प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के जीवन पर जब दृष्टि पड़ी तो देखा कि उस त्रिकाल दर्शी महान् विभूति ने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के लिये किस प्रकार अपनी मातृ भाषा गुजराती को छोड़ कर आर्य भाषा हिन्दी को अपनाया था, तो हिन्दी का महत्व और भी अधिक स्पष्ट हो गया। तब से मैंने उर्दू फारसी का मोह छोड़ कर हिन्दी की सेवा तथा प्रचार का ही निश्चय कर लिया।

उन दिनों कन्यामहाविद्यालय जालन्धर से "पांचाल पण्डिता" और लाहौर से श्री चरणदास जी का "चांद" निकला करते थे। मैं ने पहले इन्हीं में लिखना आरम्भ किया। फिर गुरुकुल काँगड़ी से निकलने वाले 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखने लगा। धीरे धीरे प्रयाग की "सरस्वती" में भी लेख भेजने का साहस किया। आचार्य महाबीर प्रसाद जी द्विवेदी की कृपा से संशोधित होकर मेरे लेख उस पत्रिका में स्थान पाने लगे। अब सन् १९१४ में मैंने लाहौर से "उषा" नाम की मासिक पत्रिका निकाल दी। परन्तु ग्राहकों की कमी के कारण वह केवल दो वर्ष चल कर ही बन्द हो गई। इसमें मुझे काफ़ी घाटा उठाना पड़ा। यह वह समय था जब "उषा" शब्द भी पंजाबियों को कठिन प्रतीत होता था। यद्यपि आज उसी पंजाब में लड़कियों के नाम 'उषा' रखे जा रहे हैं। उन्हीं दिनों पंजाब प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर के श्री चरणदास बी. ए. ने श्री यज्ञदत्त विद्यालंकार के सम्पादकत्व में लाहौर से प्रभात' नाम का एक साप्ताहिक पत्र हिन्दी में निकाला। पंजाब से निकलने वाला यह कदाचित् पहला हिन्दी साप्ताहिक था। राय रोशनलाल जी बैरिस्टर की धर्मपत्नी श्री हरदेवी की मासिक पत्रिका "भारत भगिनी" उन दिनों बन्द हो चुकी थी।

लाहौर के अनारकली बाजार में लक्ष्मी नारायण का एक मन्दिर था। उसके ट्रस्टियों में श्री ज्वालादत्त मिश्र नाम के एक सज्जन थे। वे हिन्दी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने एक हिंदी प्रचारिणी सभा भी बना रखी थी। उसके अतिरिक्त डी. ए. वी. कालेज के प्राध्यापक श्री राजाराम शास्त्री और श्री आर्य मुनि जी भी अच्छे अच्छे ग्रंथ लिख कर हिन्दी का प्रचार कर रहे थे। इस समय लाहौर के डी. ए. वी. हाई स्कूल के सिवा और कोई स्कूल ऐसा न था जहां आरम्भ से ही हिन्दी में शिक्षा दी जाती हो। जालन्धर कन्या महाविद्यालय के संचालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् देवराज जी ने न केवल कन्याओं को हिन्दी में उच्च शिक्षा देकर ही, वरन बालोपयोगी अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख कर भी हिन्दी का खूब प्रचार किया। इस पीढ़ी से पूर्व की पीढ़ी की पढ़ी लिखी स्त्रियां अधिकांश श्री देवराज जी के कन्या महाविद्यालय की ही छात्रा हैं। सन् १९१९ में कन्या महाविद्यालय से उन्होने "भारती" नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। इस का सम्पादन मुझे ही सौंपा गया था। श्री भाई परमानन्द जी ने अपनी 'आकाश-वाणी' नामक साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार किया।

सन् १९३२ में जात पाँत तोड़क मण्डल ने लाहौर से "युगान्तर" नाम का एक मासिक पत्र निकाला। उसका सम्पादन भी मैं ही किया करता था। असहयोग के दिनों में मेरठ के श्री धर्मेन्द्र नाथ तर्क शिरोमणि ने भी लाहौर आकर एक 'जन्मभूमि' दैनिक पत्र कुछ दिन निकाला था।

जहां तक मुझे स्मरण है पंजाब विश्वविद्यालय ने १९२१ में पहली बार एफ. ए. की परीक्षा में हिन्दी को भी स्थान दिया था। इसका पहला परीक्षक मैं ही नियुक्त हुआ था।

गत बीस-पच्चीस वर्ष में हिन्दी ने पंजाब में सन्तोषजनक उन्नति की है। पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी लेकर परीक्षा देने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या उर्दू और गुरुमुखी (कथित पंजाबी) लेने वालों से चौगुनी के लगभग होती है। परन्तु हमारे अदूरदर्शी राज-नीतिज्ञों की स्वार्थपरता के कारण अब हिन्दी की प्रगति में भारी व्याघात पहुँच रहा है। इन राजनीतिज्ञों ने भाषा के आधार पर पंजाब को बलात् दो क्षेत्रों—पंजाबी क्षेत्र और हिन्दी क्षेत्र में बांट कर जालन्धर डिवीजन के लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध गुरुमुखी अक्षरों में पंजाबी पढ़ने पर विवश कर दिया है। यह बात लोकराज और सम्बिधान के विरुद्ध है। पर इन राज-नीतिक खिलाड़ियों को इस से क्या ? इनका उद्देश्य तो अपने दल की सत्ता को जब तक बन सके, जैसे तैसे बनाये रखना है। चाहे अन्त में इस नीति का परिणाम समूचे देश के लिये विनाशकारी ही क्यों न हो। एक ओर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया जा रहा है और दूसरी ओर जो लोग उसे अपनी क्षेत्रीय और राष्ट्र भाषा मान कर उसे अपनाना चाहते हैं उन्हें इसे छोड़कर गुरुमुखी सीखने पर विवश किया जा रहा है।

अंग्रेज हिन्दुओं को फाड़ कर एक अलग सिख जाति बनाना चाहते थे। इस लिए वे विशेष अधिकार और सुविधायें देकर लोगों को सिख बनने का प्रलोभन देते थे। हिन्दू की अवस्था में वे केवल विशेष विशेष जातियों के लोगों को ही सेना में भरती करते थे। परन्तु सिर पर लम्बे केश रख कर किसी भी जाति का हिन्दू सेना में भरती हो सकता था। एक बार सिख बन जाने पर वह कहीं फिर हिन्दू न बन जाय इसके लिए वे उस रंगरूट को 'पौहल' या 'अमृत छकाना' का संस्कार कराते थे। (देखो Sikha Religion by M. A. Macaulliffe, p. XXV of the Prefact) इतना ही नहीं मैकालिफ फिर लिखता है कि गुरुमुखी पढ़ाने पर हम इस लिए बल देते हैं, क्योंकि जो मनुष्य गुरुमुखी पढ़ेगा उसे पहले चाहे कितनी ही अच्छी हिन्दी क्यों न आती तो वह हिन्दी का सर्वथा त्याग कर देगा। उसके शब्द देखिए—

"Gurmukhi character was well Calculated to make its readers

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

part with Hindu compositions written in Sanskrit, The Gurmukhi S is. Sanskrit M., the Gurmukhi M is the Sanskrit Bh, the Gurmukhi W is the Sanskrit D, the Gurmukhi Dh is the Sanskrit P, and the Gurmukhi B is nearly the Sanskrit G h. When Therefore one has become accustomed to the use of the Gurmukhi letters, a separate and special effort is required to read Sanskrit however much one may have been previously acquainted with it. The result has been that in more cases Gurmukhi scholars have parted company with Sanskrit and the multitudinous Brahmanical works in that recondite language" —Sikh Religion, vol. II, 1909, p p. 56–57.

जब मैकालिफ जैसा विद्वान गुरुमुखी और देवनागरी लिपि के अई अक्षरों की आपस में गड़ बड़ हो जाने के कष्ट का अनुभव करता है तो जिन बच्चों को गुरुमुखी और हिन्दी एक साथ पढ़नी पढ़ती है उनकी कठिनाई का अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। किसी भी स्कूल में जाकर देखिए, आपको अध्यापक बतायेगा कि बच्चे हिन्दी लिखते-लिखते बीच में भूल से गुरुमुखी अक्षर लिख जाते हैं।

गुरुमुखी लिपि न तो देवनागरी से अधिक पूर्ण है और न पंजाबी बोली कोई अन्त-र्राष्ट्रीय भाषा है. जिस के सीखने की बड़ी, आवश्यकता हो। फिर मालूम नहीं, क्योंकि थोड़े से कभी न सन्तुष्ट होने वाले साम्प्रदायिक लोगों को सन्तुष्ट करने के लिये, लोकतंत्र तथा न्याय के गले पर छुरी चला कर राष्ट्र के बालकों को बलि का बकरा बनाया जा रहा है, गुरुमुखी और पंजाबी महाराजा रणजीत सिंह के समय में भी कभी राज भाषा नहीं बनी और न इस में कोई ऊँचा साहित्य ही है। जिसके लिए इस पर समय तथा धन व्यय किया जाय। पंजाब की ७० प्रतिशत से भी अधिक जनता हिन्दी को अपनी न केवल क्षेत्रीय और राष्ट्रीय भाषा कहती है; वरन् इसे अपनी धार्मिक भाषा भी मानती है। यहाँ मुस्लिम और अंग्रेजी काल में भी उर्दू ही राजभाषा थी और यह उर्दू फारसी अक्षरों में हिन्दी के सिवा और कुछ नहीं! हम नहीं कहते कि किसी को बलात् हिन्दी पढ़ाई जाय। जो हिन्दी नहीं पढ़ना चाहता वह न पढ़े। हम तो केवल इतना चाहते हैं कि सब लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार हिन्दी या गुरुमुखी पढ़ने की अनुमति हो।

हिन्दी-प्रेमियों को हताश नहीं होना चाहिए। अदूरदर्शी और स्वार्थान्ध राजनीतिज्ञों की यह धांधली बहुत दिन न चल सकेगी। राष्ट्रीय एकता-निर्माण रूपी पवित्र यज्ञ में यह राजसी विघ्न बहुत दिन न टिक सकेगा। हिन्दी के विरोधियों और स्वार्थान्ध साम्प्रदायिकों को झकमार कर गुरुमुखी छोड़ हिन्दी की शरण में आना पड़ेगा। गुरुमुखी पढ़ने वालों को, श्री मैकालिफ के शब्दों में, कभी हिन्दी का अच्छा ज्ञान और अभ्यास न हो सकेगा। इससे वे भारत की संघ सरकार के ऊँचे पद कभी न प्राप्त कर सकेंगे और जीवन संग्राम में पिछड़ जायेंगे। सिख जनता भी जब इन थोड़े से स्वार्थान्ध और राष्ट्र-द्रोही लोगों की वीभत्स चालों को समझ जायेगी तो वह अपने हिताहित के विचार से हिन्दी को ही अपनाने लगेगी। वह दिन जितना शीघ्र आए भारतीय राष्ट्र का उतना ही कल्याण है। ❁ ❁ ❁

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्धर्म प्रचारक और हिन्दी :

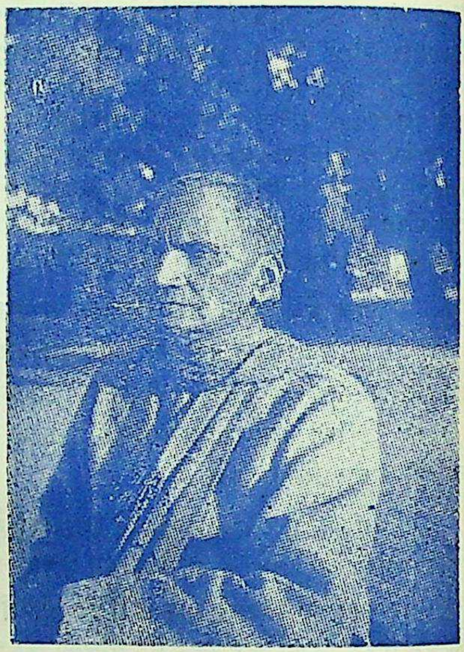

लेखक—
श्री प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति एम० पी० दिल्ली
उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सद्धर्म प्रचारक का जन्म १९४६ विक्रमी के वैशाख मास की पहली तिथि को हुआ था, सद्धर्म प्रचारक प्रारम्भ से ही वस्तुतः प्रचारक पत्र था। वह एक भावना का परिणाम था। महात्मा मुंशीराम जी ने जब यह अनुभव किया कि आर्यसमाज में नया जीवन डालने के लिये एक समाचार पत्र की आवश्यकता है तब उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक-प्रैस' की रचना करके साप्ताहिक 'सद्धर्म प्रचारक' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। उन दिनों पंजाब के पढ़े लिखे लोगों की भाषा उर्दू थी। दुकानों के तथा सभा सोसायटियों के काम उर्दू द्वारा ही होते थे। हिन्दी केवल कन्याओं के लिये उपयोगी मानी जाती थी। यों आर्य समाजी लोग महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रंथों को पढ़ने के लिये और अन्य हिन्दू सत्यनारायण की कथा आदि धर्म-पुस्तकों के पाठ के लिये हिन्दी पढ़ते थे। परन्तु उनकी संख्या कम थी। प्रांत के शेष सब कारोबार उर्दू में ही होते थे। सद्धर्म प्रचारक भी उर्दू में ही निकाला गया।

पत्र की लिपि तो उर्दू ही थी परन्तु भाषा में हिन्दी और संस्कृत शब्दों का काफ़ी ज़ोरदार पुट होता था। स्वयं 'सद्धर्म प्रचारक' यह नाम ही पर्याप्त कठिन था। इसे वही लोग समझ सकते थे जिन्हें धार्मिक ग्रंथ पढ़ने का अभ्यास था। पत्र का 'मोटो' था 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।' प्रत्येक अंक में एक वेद मंत्र की व्याख्या होती थी। उसकी भाषा में भी हिन्दी के शब्दों की बहुतायत रहती थी। महात्मा जी उर्दू और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मौलवियों द्वारा हुई थी। उस समय उत्तरीय भारत के समृद्ध घरानों का यह रिवाज था कि शिक्षा का श्री गणेश उर्दू से किया जाता था। हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा जी ने धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से किया था। फलत: उनकी भाषा में उर्दू और हिन्दी का उपयोगी मिश्रण हो गया था। पंजाब के हिन्दुओं के उर्दू पत्रों की भाषा में हिन्दी के मिश्रण का प्रारम्भ 'सद्धर्म प्रचारक' से ही हुआ। मिश्रित या खिचड़ी भाषा की यह विशेषता होती है कि यदि भाषाओं के कुशल कारीगर ने मिश्रित भाषा का प्रयोग किया तो वह अपने लेख को चार चाँद लगा देता है। वह दोनों भाषाओं के उपयुक्त शब्दों और मुहावरों का ऐसा समन्वय कर देता है कि भाषा का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। परन्तु यदि भाषाओं का मिश्रण किसी ऐसे व्यक्ति ने किया जो दोनों अथवा किसी एक का मर्मज्ञ न हो तो भाषा भूँडी और प्रभाव रहित बन जाती है। हिन्दी और उर्दू के शब्दों के मिश्रण से सद्धर्म प्रचारक की भाषा खूब ज़ोरदार और लोकप्रिय बन गई थी।

कई वर्षों तक सद्धर्म प्रचारक उर्दू में निकलता रहा। १८ वर्षों के पश्चात् १९०७ के मार्च मास की पहली तारीख को प्रचारक ने चोला बदल लिया। उस दिन का अंक हिन्दी में निकला। पंजाब से हिन्दी भाषा में पत्र निकालने का शायद यह पहला ही प्रयत्न था। प्रारम्भ में हिन्दी सद्धर्म प्रचारक की ग्राहक संख्या कुछ घटी परन्तु धीरे धीरे फिर बढ़ने लगी। जिन पाठकों को प्रचारक के पढ़ने का अभ्यास हो गया था उनके लिये वह साप्ताहिक खुराक सी बन गई थी। उनमें से कइयों ने प्रचारक पढ़ने के लिये ही हिन्दी का अभ्यास किया।

उर्दू के प्रचारक की तरह हिन्दी के प्रचारक का अग्रलेख अधिकतर महात्मा जी का ही होता था। उनकी हिन्दी की शैली ज़ोरदार और सरल थी। प्रचारक के अग्रलेख प्राय: धार्मिक और सामाजिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाले होते थे परन्तु कभी कभी महात्मा जी प्रचलित राजनीति पर भी अपनी सम्मति प्रकट किया करते थे। उनकी सम्मति की यही विशेषता रहती थी कि वह प्राय: स्वतन्त्र होती थी। उसमें न सरकार का लिहाज़ किया जाता था और न कांग्रेस या किसी अन्य पार्टी का। इस कारण प्राय: लोगों को वह सम्मति अद्भुत प्रतीत होती थी। एक बार विलायत से लौटने पर लाला लाजपतराय जी के स्वागत के समय कुछ नौजवानों ने लाला जी की गाड़ी के घोड़े खोल दिये और स्वयं उसे खेंचा। महात्मा जी ने मनुष्यों द्वारा मनुष्य के वाहन के खेंचे जाने का सद्धर्म प्रचारक में कठोर विरोध किया था। जब कभी भारतवासियों के शिष्ट मंडल के विलायत जाकर अंग्रेजों से राजनीतिक फैसला करने की बात उठती थी तब महात्मा मुंशीराम जी इस आशय की सम्मति प्रकट किया करते थे कि अंग्रेज राजनीति के पुराने खिलाड़ी हैं गोलमेज़ कॉन्फ्रैंस में किसी अन्य जाति का व्यक्ति उनका पार नहीं पा सकता। वह सदा पछाड़ खायेगा। जब इंगलैंड की सरकार ने लार्ड मिण्टो को भारत का वायसराय बना कर भेजा था तब प्रचारक ने उसे 'अक्खड़ सिपाही' का विशेषण दिया था।

सद्धर्म प्रचारक में 'हिन्दी' की जगह 'आर्य भाषा' शब्द का प्रयोग होता था। हिन्दी कलेवर धारण करने के पश्चात, सद्धर्म प्रचारक वैदिक धर्म, आर्य समाज, और समाज सुधार की तरह आर्य भाषा का भी प्रचारक बन गया। उसके कारण पंजाब में हिन्दी को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। यों तो कन्या पाठशालाओं और आर्य स्कूलों ने पंजाब के हिन्दू घरानों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी की प्रगति :

ले० —कवि विनोद वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य,
अमृतधारा भवन, देहरादून

पंजाब में हिन्दी का प्रचार बहुत कम था। अब भी जितना होना चाहिए उतना नहीं हुआ। फिर भी सन्तोष जनक **है**। इसका कारण यह था कि पंजाब के विद्यालयों में उर्दू की शिक्षा दी जाती है और यह नियम है कि आरम्भ में जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है उसी का अधिक व्यवहार हो जाता है। यही कारण है कि पंजाब में जिन लोगों ने हिन्दी की भी शिक्षा प्राप्त की है वे प्रायः उर्दू में ही लिखते पढ़ते हैं। मैंने संस्कृत के एक पण्डित को देखा है जो शीघ्र लिखते समय उर्दू में ही लिखते थे। मैं स्वयं भी तो इसी श्रेणी में हूँ।

मेरी अपनी बात—प्राथमिक (Primary) कक्षा तक उर्दू पढ़ी; तत्पश्चात् गाँव छोड़कर अमृतसर नगर में आया तो आर्य समाज के नेता मास्टर आत्माराम जी से सम्पर्क हो गया। उनके प्रभाव से मिडिल की अन्तिम श्रेणी में हिन्दी ले ली और एफ० ए० तक हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ी। हिन्दी लिखने के योग्य होने पर भी लेखनी प्रायः उर्दू में ही चलती है।

हिन्दी का काफ़ी प्रसार कर दिया था परन्तु उसे भाव प्रकाशन की भाषा बनाने में सद्धर्म प्रचारक ने बहुत भाग लिया। पहले पंजाब और उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभाओं और आर्य समाजों के कार्यालयों का सब कार्य उर्दू में होता था। १९५५ विक्रमी के प्रचारक में महात्मा जी ने इस आशय की टिप्पणी लिखी थी कि दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये कि प्रतिनिधि का दफ़्तर और आर्य समाज का पत्र व्यवहार आर्य भाषा में हो। क्या उर्दू का स्थान आर्य भाषा को लेते मैं देख सकूँगा?" ११ वर्षों के पश्चात् १९६६ विक्रमी के २१ ज्येष्ठ के पर्चे में आपने संतोष पूर्वक लिखा था—"क्या यह (१९५५ विक्रमी सं०) टिप्पणी लिखते हुए मुझको स्वप्न भी आ सकता था कि मैं अपनी आंखों से ही न केवल प्रतिनिधि सभा के कार्यालय का सब काम तथा पत्र व्यवहार ही आर्य भाषा में होता देखूँगा, प्रत्युत सद्धर्म प्रचारक को आर्य भाषा में परिवर्तित देखने के अतिरिक्त देवनागरी लिपि के प्रचार के लिये सारे देश में आंदोलन भी देखूँगा।"

सद्धर्म प्रचारक और गुरुकुल द्वारा महात्मा जी ने हिन्दी को जो पुष्टि दी; उसे सब देशवासियों ने आदर भाव से देखा। उसी का परिणाम था कि महात्मा जी को भागलपुर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन का सभापति चुना गया। सम्मेलन के भाषण में महात्मा जी ने हिन्दी के लिये 'मातृभाषा' शब्द का प्रयोग किया था और यह आशा प्रकट की थी कि किसी दिन यह मातृभाषा ही हमारे देश की राष्ट्रभाषा होगी। स्वाधीन भारत के संविधान ने महात्मा मुंशीराम जी की वह आशा पूरी कर दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सत्य है कि आर्य समाज के प्रचार के प्रभाव से पंजाब वासियों ने हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। यहां तक कि आर्य समाज के कई सज्जनों ने हिन्दी में लिखना आरम्भ कर दिया। परन्तु लेखों में कई अशुद्धियां होती थीं। वे विचलित नहीं हुए और अपने पत्र-व्यवहार हिन्दी में ही करते रहे।

पंजाब में आर्य समाज की कृपा से यह भावना जागृत हुई कि हिन्दी ही हमारी मातृ भाषा है और उसी की उन्नति तथा प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इसके बाद ही हिन्दी के पक्ष में भिन्न भिन्न आंदोलन आरम्भ हुए। आर्य समाज के स्कूलों में हिन्दी को प्रधानता दी जाने लगी। हिन्दी सम्मेलन का जन्म हुआ। ब्राह्मण सभाओं तथा सनातन धर्म सभाओं की ओर से भी ऐसे ही आन्दोलन होने लगे। परिणाम यह हुआ कि जनता के हृदयों में हिन्दी का प्रेम उमड़ने लगा और दिनानुदिन बढ़ता ही गया। आर्य समाज और सनातन धर्म के विद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। यह सब हुआ परन्तु, डाक विभाग हिंदी में लिखे पत्रों को 'डैड लैटर आफिस' (Dead Lettar Office) में भेज देता था। इसके विरुद्ध भी यह आन्दोलन किया गया कि सब सज्जन हिन्दी में ही पते लिखा करें जिससे डाक विभाग को बाध्य होकर तदनुरूप प्रबन्ध करना पड़े।

अन्त में, न्यायालयों में भी हिन्दी भाषा को मान्यता दिये जाने का आन्दोलन आरम्भ हुआ ही था कि हमारा विभाजन हो गया और हिन्दी उर्दू के विवाद ने कुछ सज्जनों की भूल से अब हिन्दी गुरुमुखी के विवाद का रूप धारण कर लिया है। इस दिशा में जो कुछ हो रहा है उसको पंजाब की पोलिटिक्स के विशेषज्ञ आपके समक्ष रखेंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कार्य करते रहने तथा उसका मन्त्री और प्रधान भी रहने के नाते मैंने यह लेख लिखा है।

हिन्दी के अक्षर सीखे

"उर्दू हिन्दी के झगड़े ने मुझे हिन्द जातीयता का पहला पाठ पढ़ाया और मेरी तबियत ने उस समय पलटा खाया उसमें फिर कमी नहीं हुई। प्रारम्भिक संस्कार और पिता की शिक्षा से तो मेरी सहानुभूति उर्दू के साथ होनी चाहिए थी। निजी लाभ भी मेरा इसमें था क्यों कि मैं हिन्दी का अक्षर तक न जानता था। फ़ारसी के पढ़ने में मैंने कई साल लगाये थे और उर्दू साहित्य की मुझे अच्छी जानकारी थी। हिन्दी की विजय में स्पष्ट ही मेरी निजी हानि थी। किन्तु ज्यों ही मुझे यह निश्चय हो गया कि राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिये सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है, मैंने अपने लाभ और हानि के विचारों को एक ओर रख दिया और हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। हिन्दी उर्दू के झगड़े में जब मैं अम्बाले पहुंचा और मैंने हिन्दी के पक्ष में और उर्दू के विरुद्ध व्याख्यान दिया तो उस समय मुझे हिन्दी के अक्षर भी न आते थे। परलोकवासी राय हुकमचन्द इस सभा में उपस्थित थे। वह दिल्ली वाले थे। अँगरेजी के विद्वान् थे ही, किन्तु उर्दू के प्रेमी थे। उर्दू तो मानो उनके घर की लौंडी थी। उन्होंने एक अखबार में मेरे व्याख्यान की बहुत प्रशंसा की, किन्तु मेरे हिन्दी के ज्ञान पर बड़ी हँसी उड़ाई। मैंने दिल्ली से वापस आते ही हिन्दी के अक्षर सीखे और फ़ारसी और अरबी पढ़ना छोड़ दिया।" (स्व० लाला लाजपतराय जी की आत्मकथा से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहौर का साहित्यिक वातावरण :

ले०—श्री प्रो० जयनाथ जी 'नलिन' एम० ए०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग के० वि० डिगरी कालेज
माछरा मेरठ

अम्बाला छावनी सनातन धर्म कालेज में १९५०–५४ तक आप हिन्दी उपाध्याय का कार्य करते रहे और यहां के कालेजों के वातावरण को साहित्यिक बनाया था।

लाहौर के सामाजिक और साहित्यिक जीवन में कुछ ऐसा जादू था कि वह किसी को भी मोहित कर लेता। मैं किसी सिलसिले में लाहौर गया। भारत की सौन्दर्य नगरी और पंजाब की संस्कृति-शिक्षा, उल्लास-विलास की केन्द्र भूमि लाहौर के वातावरण ने मुझे ऐसा मुग्ध किया कि मैंने मन ही मन वहीं रहने का संकल्प कर लिया। एक शाम को सैर करते हुये, निस्बत रोड पर दैनिक हिन्दी "शक्ति" का बोर्ड देखा तो मैं अपने साथियों से बोला—"इसी पत्र में सम्पादक बन कर लाहौर आ रहा हूँ!" मेरे लजीले और झेंपू स्वभाव को वे जानते थे, उन्होंने जो खिल्ली उड़ाई और मज़ाक बनाई वह कहने की बात नहीं। दैनिक 'शक्ति' की संचालिका श्रीमती शन्नोदेवी से मिलने का साहस तो मैं न कर सका, पर आगरा वापस जाकर मैंने उन्हें एक पत्र लिखा और परम आश्चर्य की बात यह कि उसके उत्तर में नियुक्ति पत्र पहुंच गया। २१-२२ जुलाई, १९३८ ई० को मैंने अपना कार्य भार सम्भाल लिया। मेरा लाहौर आगमन वहां के साहित्यिकों के लिये जैसे कोई महत्वपूर्ण घटना हो। चार-पांच दिन के भीतर ही श्री माधव जी. श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', श्री उदयशंकर भट्ट, श्री करुण जी आदि जब 'शक्ति' कार्यालय में मुझ से आकर मिले तो मैं लाज के मारे बड़ा संकुचित हुआ। पहली भेंट में ही इन लोगों ने मुझे अपने कुटुम्ब का प्रिय सदस्य बना लिया। दो तीन सप्ताह के भीतर ही सर्व श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, श्रीमती सत्यवती शर्मा डा० सरनदास भनोत, जंगबहादुर राना, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सन्तराम जी, रामकृष्ण भारती, भीमसेन विद्यालंकार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आत्मस्वरूप शर्मा, अविनाशचन्द्र आदि सभी लोगों से मेरी ऐसी घनिष्ठता हो गई, जैसे मैं वर्षों से लाहौर रह रहा हूँ। इन्हीं लोगों के बीच में पला हूं—बड़ा हुआ हूं।

मुझे इन साहित्यिकों से जो स्नेह सौहार्द और अपनापन मिला, उसमें मेरी पात्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी। एक दो के सिवाय सभी आयु, ज्ञान, साहित्य-सर्जन और ख्याति में मुझसे बड़े थे। पत्रकार और कवि के रूप में अभी मेरी आयु ढाई-तीन वर्ष की ही थी। एक साहित्य-किशोर को जो सम्मानित और प्रिय स्थान इन लोगों ने अपने समाज में दिया, उससे यह स्पष्ट है कि लाहौर का साहित्यिक जीवन अत्यन्त उदार, स्नेह-सम्पन्न, सुगठित और कौटुम्बिक वातावरण से पवित्र था। इस पारिवारिकता की प्रेरणा के उद्गम की केन्द्र थी साहित्यिक गोष्ठी। जिस संगठन के तत्त्वावधान में इस साहित्यिक-गोष्ठी का आयोजन किया जाता था उसका नाम सम्भवतः "हिन्दी-समाज" था। पं० भीमसेन विद्यालंकार, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री रामकृष्ण भारती, डा० सरनदास भनोत, श्री माधव जी आदि इसके संयोजक रहे। लाजपतराय भवन के स्टडी रूम में यह गोष्ठी हुआ करती थी। मेरे लाहौर पहुँचने के १५-२० दिन बाद ही गोष्ठी होने वाली थी। शायद माधव जी ने 'शक्ति-कार्यालय' में पहुँच कर, मुझे कविता पाठ के लिये निमन्त्रित किया। संकोचवश मैं हाँ-ना कुछ भी न कर सका। पत्रों में, निमन्त्रण में मेरा नाम भी छप गया। लेकिन कविता-पाठ करना मेरे लिये अत्यन्त टेढ़ी खीर थी। कविता पढ़ना तो दूर रहा, किसी सम्मेलन में कविता पाठ करने की कल्पना मात्र से पसीना आ जाता और दिल धड़कने लगता था। डर के मारे मैं उस गोष्ठी में न गया।

इसी प्रकार दो तीन बार और गोष्ठी में जाने से मुँह छिपाया। लेकिन लाहौरी साहित्यिकों को तो ईसाई मिशनरियों की तरह अपने समाज का विस्तार करने की धुन थी। अनेक मित्रों, विशेषकर माधव जी; प्रेमी जी और डा० भनोत साहब के अनुरोध, स्नेह, प्रेरणा और प्रोत्साहन के कारण अपनी कोई रचना पढ़ने का इरादा मैंने कर लिया। गोष्ठी के सभापति राना जंगबहादुर थे। धड़कते दिल और काँपती जबान से 'लोमड़ियों का शिकार' नामक हास्य एकांकी पढ़ा। उसकी इतनी प्रशंसा उस गोष्ठी में हुई कि इसी प्रकार के अन्य एकांकी लिखने की ओर मैं प्रेरित हुआ। परिणाम स्वरूप 'नवाबी सनक' मेरी प्रथम हास्य पुस्तक लिखी गई। धीरे-धीरे झिझक खुल गई। पढ़ने का साहस भी एकत्र हो गया। पढ़ने के ढंग का कुछ ज्ञान हो गया। मैं भी साहित्य गोष्ठियों में अपनी कविताएँ और व्यंग रचनाएँ पढ़ने लगा। लाहौर के साहित्यिक जीवन के विशेष प्रेरक थे प्रेमी जी और माधव जी। प्रौढ़ और प्रतिष्ठित तथा नौसिखिये और नवोदित—सभी इनसे, सम्मान, स्नेह और प्रोत्साहन पाते। मैं नया ही लाहौर आया था। कुछ समय के बाद ही "विश्वबन्धु" के विशेषांक में प्रकाशित एक लेख भी प्रेमी जी ने मेरे विषय में लिखा था, "जितने नाज़ुक नलिन जी हैं, उतनी ही नाज़ुक उनकी कविता है। उन कविताओं में कवि की तीव्र यथार्थ अनुभूति और भावुकता है! मुझे विश्वास है हिन्दी कविता के इतिहास में वह लकीर खींच देंगे।" एक नवांगतुक के विषय में यह वक्तव्य उनके उदार प्रेरक हृदय का परिचायक है। प्रेमी जी ने अपनी लेखनी और स्नेह पूर्ण प्रेरणा से और माधव जी ने 'विश्वबन्धु' द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन से लाहौर में अनेक कवियों और लेखकों का निर्माण किया।

इस गोष्ठी का आयोजन बहुत ही समझदारी से किया जाता था। साहित्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने वाले चुने हुये श्रोता और मँजे हुये प्रतिष्ठित साहित्यकार ही इस गोष्ठी में सम्मिलित होते। अत्यन्त स्वस्थ, कलारुचि सम्पन्न, ईर्ष्या द्वेष विहीन, वातावरण खुले हृदय और मुक्त कण्ठ से सुरुचि पूर्ण कलात्मक रचनाओं की प्रशंसा, प्रतिष्ठित कलाकारों के प्रति सम्मान और नवोदित युवक लेखकों के लिये अपरिमित प्रोत्साहन इस गोष्ठी की विशेषता थी। पृथ्वीनाथ शर्मा, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की अधिकतर श्रेष्ठतम कहानियां, हरिकृष्ण 'प्रेमी' उदयशंकर भट्ट, श्रीमती सत्यवती शर्मा, रामेश्वर करुण की कविताएँ, डा० सरनदास भनोत के आलोचनात्मक और श्री जंग बहादुर के सामाजिक क्रान्तिकारी निबन्ध इसी गोष्ठी की देन है।

इस गोष्ठी के युवक साहित्यकार रामकृष्ण भारती, विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' विष्णुदत्त शर्मा 'विकल' देवदत्त 'अटल' अविनाशचन्द्र, देवराज 'दिनेश' आदि का नाम उल्लेखनीय है। यह गोष्ठी पंजाब के हिन्दी लेखकों का प्रेरणाकेन्द्र बन गई थी। गुजरांवाला से ही श्री व्रजकिशोर 'नारायण' भी, जो अब विहार के एक प्रबुद्ध हिन्दी कवि, पत्रकार और कहानी लेखक हैं, बराबर इस गोष्ठी में आकर अपनी जवानी भरी रचनाएँ सुनाया करते थे।

इससे प्रेरित हो, इसकी स्पर्धा में लाहौर में अनेक साहित्यिक गोष्ठियों का उदय हुआ। लाहौर में प्रायः हर मास दो बार ऐसे साहित्यक जमाव हो जाया करते थे। जो रूप किसी नियमित धार्मिक जमाव का होता है, वही रूप इन हिन्दी-समारोहों का था। साहित्य-निर्माण और प्रचार दोनों ही दिशाओं में ये गोष्ठियाँ काम कर रही थीं। सन् १९४० ई० के आस-पास तो पंजाब का शायद ही कोई नगर हो जिसमें ऐसे हिन्दी-समाजों की स्थापना न हो और सुचारु रूप में कार्य न हो रहा हो। लाहौर के प्रौढ़ कवि और पत्रकार भी अन्य नगरों में स्थापित ऐसी गोष्ठियों में सम्मिलित होने के लिये जाया करते थे।

केवल गोष्ठी-केन्द्र ही नहीं अनेक लेखकों और काव्य-रसिकों के घर भी साहित्य चर्चा और कविता सम्मेलन के केन्द्र बन गये थे। भारत प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री डा० एल० सी० जैन के यहां डा० रामकुमार वर्मा आकर ठहरा करते थे। वहां अवश्य कवि-मण्डली का जमाव होता। चायपान के साथ काव्य गान भी चलता। वर्ष में एक दो बार वहां अवश्य ऐसा आयोजन होता था। श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का घर तो साहित्य चर्चा का मुख्य केन्द्र था। उदयशंकर भट्ट ने छपने से पूर्व अपने भावयनाट्य श्री 'राधा' को वहीं काव्य पारखियों को सुनाया था। मेरा कमरा तो चौबीस घण्टे खुला ही रहता था। कुँवारों का घर धर्मशाला। कभी भी वहाँ साहित्यिक चर्चा के लिये लेखक लोग एकत्र होते प्रेमी जी का "बन्धन" नामक नाटक भी प्रकाशित होने से पहले मेरे ही कमरे पर अनेक मित्रों को सुनाया गया। यह सहयोग और आत्मीयता लाहौर के साहित्य साधकों में थी जिसका अनुकरण अन्य लोग भी करें तो साहित्य-निर्माण की दिशा में कितना लाभ हो।

प्रोफ़ेसर, उच्च श्रेणियों के विद्यार्थी, पत्रकार, कवि, लेखक और साहित्य-पारखी जनही इनमें उपस्थित होते। और कोई विद्वान या साहित्य निर्माता ही सभापति बनाया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या सौ—सवा सौ तक पहुंच जाती। प्रेमी जी की करुणा भीगी, राजनीतिक और आग उगलने वाली विद्रोही कविताओं को सुन श्रोताओं की आँखें छलक आतीं और रक्त खौलने लगता। करुण जी और माधव जी की व्यंग्य-हास्य-भरी कविताएँ सुन लोग हँसते-हँसते लोट पोट हो जाते। बटुक जी की प्रेम और वेदना से लबालब रचनाएँ मुग्ध कर देतीं। नारायण जी की कविताएँ सुन लोग रोमांचित हो जाते। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन की भोली भाली कल्पनाओं से पूर्ण भावुकता भरी कविताएँ जन समूह की प्रशंसा पातीं। नवोदित कवि 'दिनेश' अपनी मस्ती भरी कविताओं और सुरीले कण्ठ से श्रोताओं को मोहित कर लेता। एक ओर तो यह रसप्रवाह और दूसरी ओर गम्भीर पथप्रदर्शक आलोचना। श्री जंग बहादुर, डा० भनौत, भट्ट जी तथा अन्य विद्वानों की सरसमति और सहानुभूति पूर्ण समीक्षा वातावरण में संतुलन स्थापित रखती थी।

लाहौर के हिन्दी वालों में व्यावहारिक या सामाजिक ही नहीं, अटूट पारिवारिक सम्बन्ध था। लगता था जैसे जातपात, धर्म-मजहब से उठकर, साहित्य लोक के भावात्मक धरातल पर देखते रह रहे हैं। इतना रागात्मक सम्बन्ध मैंने किसी नगर के हिन्दी वालों में नहीं देखा। बाहर से जो साहित्यिक लाहौर आते थे, उनका स्वागत-सत्कार हिन्दी समाज द्वारा इसी प्रकार होता, जैसे किसी धार्मिक या राजनीतिक नेता का उसके अनुचरों द्वारा होता है। हिंदी अबोहर साहित्य सम्मेलन से लौटकर लाहौर आने वाले हिन्दी कवियों और लेखकों के स्वागत-सम्मान में आयोजित, लाजपत राय भवन की सभा एक ऐतिहासिक घटना है। निराला जी, माखन लाल चतुर्वेदी सोहनलाल द्विवेदी अंचल, कमला बाई किबे, सुमित्रा कुमारी सिंहा, आदि इसके विशेष अतिथि थे। विविध—शिक्षण, सामाजिक और साहित्यिक संस्थाओं द्वारा इन्हें मान पत्र दिये गये। मस्तक तिलकों से अभिषिक्त किये गये। गले पुष्पहारों से लाद दिये गये। यह स्वागत न सरकारी पद और राजनीतिक प्रभाव से भयभीत होकर किसी स्वार्थवश किया गया था और न रिवाजिया तौर पर। इसमें पंजाबी उदार हृदय की भावुकता उमड़ी पड़ती थी। साहित्य-साधना और राष्ट्रभाषा हिन्दी निर्माण के प्रति पंजाब की अपरिमित श्रद्धा ही इसमें प्रेरणा थी।

श्रद्धेय टण्डन जी, प्रसिद्ध हास्य लेखक पं० हरिशंकर शर्मा, विख्यात कथाकार पंडित भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि के पधारने पर भी इसी अपरिमित श्रद्धा और भावुकता का परिचय लाहौर के हृदय ने दिया था।

पंजाब का साहित्यिक संगठन राजनीतिक आतंक, यूनिवर्सिटी की किताबी दलबन्दी और धार्मिक सम्प्रदायवादी प्रभाव से पूर्णतः स्वाधीन था। अब न वह साहित्यिक वातावरण पंजाब में रहा और न वह पंजाब रहा। शायद ही किसी नगर में अब हिन्दी-गोष्ठी का आयोजन हो। कुछ वर्ष तक अम्बाला में गोष्ठी सुचारू रूप से चली; लेकिन वहाँ भी उसका नाम लेवा कोई नहीं। क्या हिन्दी-अकादमी और क्या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—दोनों ही रिवाजिया तौर पर जीवित हैं। मैं नहीं जानता, इन संस्थाओं द्वारा कहाँ तक हिन्दी विद्वानों या निर्माताओं का सम्मान किया जाता है। राजनीति अब हमारे जीवन को इतना आतंकित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी पहली कहानी की जन्म कथा :

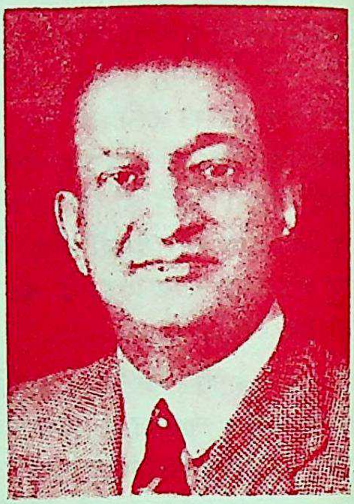

ले०—श्री नन्दकिशोर जी हरगुलाल एण्ड सन्स
अम्बाला छावनी ।

लाहौर में हिन्दी की प्रगति की पृष्ठ भूमि में कोई तीस वर्ष पुरानी बात लिख रहा हूं, धुँधली सी दूर दृष्टि में अवश्य कुछ त्रुटियां रह जाएँगी ।

आप रावी के नाम से तो परिचित होंगे। मेरा अभिप्राय उस रावी नदी से नहीं, जो लाहौर के समीप बहती है बल्कि गवर्नमैंट कालिज की उस पत्रिका से है जो प्रतिमास वहां से प्रकाशित हुआ करती थी और अब भी होती होगी।

यह उस समय की बात है जब अंग्रेज़ी शासक भारत की भिन्न-भिन्न जातियों का दिल बहलावा इस लिये किया करते थे कि उनमें भेद-भाव और भी बढ़ता जाये। इस नीति की एक कृपा यह भी थी कि रावी की पत्रिका में चार भाषाओं को स्थान प्राप्त था—अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी और बेचारी हिन्दी को भी। यदि इस पत्रिका के १०० पृष्ठ होते थे तो इनमें से लगभग ५० तो अंग्रेज़ी को मिलते थे क्यों कि वह राज्य-भाषा थी। २५ पृष्ठ उर्दू को दिये जाते थे। वह मुसलमानों की मातृ भाषा तो नहीं थी परन्तु उनकी साम्प्रदायिक भाषा समझी जाती थी। १५-२० पृष्ठ पंजाबी को मिलते थे। वह सिक्खों की भाषा थी। बचे खुचे ५-१० पृष्ठ हिन्दी के निमित्त रखे जाते थे।

परन्तु इसमें अंग्रेज़ प्रिंसिपल का कोई दोष न था, बल्कि कृपा ही थी। वास्तव में

किये हैं कि उसके संकेत पर ही हम नाचने लगे हैं। हिन्दी के लिये, नेतागिरी के लिये आंदोलन हैं—कोलाहल है, लेकिन पंजाब अब निर्माण क्या कर रहा है? प्रौढ़ों के लिये सम्मान का आसन कहाँ है? नवोदितों के लिए प्रोत्साहन कहाँ हैं? इनके लिये अपनी वाणी मुखरित करने का अवसर और मंच कहाँ है और इनके स्वरों को संभालने के लिये सहृदय सहानुभूति शील कलामर्मज्ञ स्वर साधक कहाँ है? तब पंजाब में हिन्दी को क्या खिलाकर जीवित रखोगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दिनों वे ५-१० पृष्ठ भरने भी एक कठिन समस्या हुआ करती थी। और पंजाब में सदा ही यह समस्या रही है। अंग्रेज़ी का स्थान सर्वप्रथम रहा। दूसरा रहा उर्दू का, फिर पंजाबी का। हिन्दी का स्थान तो केवल आर्य समाज के जलसों या उन भूले भटके विद्यार्थियों के परीक्षा पत्रों में रह गया था जो Optional Subject ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी को सुगमता के कारण ले लिया करते थे।

हां, मैं रावी के सम्बन्ध में बता रहा था। इस पत्रिका को मैंने इस लिये चुना है कि इससे मेरा पूर्ण परिचय रहा है और दूसरे इस पत्रिका का लाहौर के शिक्षित वर्ग में अच्छा स्थान था।

श्री जगेश हिन्दी विभाग के सम्पादक हुआ करते थे। हिन्दी संस्कृत के विद्वान थे। बहुत भले सीधे सादे व्यक्ति; बस पंजाब में हिन्दी की दशा के जीते जागते प्रतीक। वे गवर्नमैंट कालेज के अहंकार-युक्त वायुमंडल से सर्वथा भिन्न थे। इस कालिज में प्रविष्ट होना ही इतना बड़ा गौरव समझा जाता था जो आजकल शायद आई० ए० एस० में भी आ जाने से प्राप्त न होता हो। ८०० में से प्रत्येक विद्यार्थी यही समझ लेता था कि आई० सी० एस० की पोस्ट तो केवल उसी के लिये 'रिज़र्व' है। कालिज में आकर मस्तिष्क को संतुलन में रखना कोई साधारण काम न था। परन्तु हिन्दी विभाग के संचालक जगेश सदा इसी उधेड़-बुन में लगे रहते थे कि किसी प्रकार हिन्दी के हिस्से के ५-१० पृष्ठ भर दिये जायें। यदि वे भी कुछ खाली रह गये तो मुख्य सम्पादक कहीं उन पृष्ठों में भी और कमी न कर दें।

जो भी रास्ते में मिल जाता श्री जगेश उसका रास्ता रोक लेते और कहते, 'मिस्टर शामलाल, यार कुछ हिन्दी के लिये भी तो लिखा करो। अंग्रेज़ी विभाग में तो आपके बहुत महत्त्वपूर्ण लेख निकलते हैं।'' ''क्या कहा, मेहता पूर्णचन्द ? अरे भाई यह तो पंडितों की बोली है। यह अपने बस की बात नहीं है।''

श्री जगेश को कभी क्रोध आ जाता तो चुप्पी साध लेते, क्यों कि हिन्दी के प्रचारक को क्रोध का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित है। एक दिन की घटना है। श्री जगेश मिस्टर भारद्वाज से अनुरोध कर रहे थे, ''भाई इस पतित पावनी हिन्दी का भी ख्याल किया करो। उर्दू क्या तुम्हारे घर की ज़बान है ? उसमें तो खूब लिखा जाता है।''

भारद्वाज ने उत्तर दिया, ''पंडित जी कुछ अकल की बात किया करो। यह २० वीं शताब्दी है। इस में हिन्दी की क्या पूछ ?''

श्री जगेश बोले, ''ना समझी की बातें मत करो। समय आएगा और तुम्हें पता चलेगा कि इसी पंजाब में हिन्दी कहाँ पहुँचती है।''

बातों-बातों में ही बात बढ़ गई। अभी कॉलिज की छुट्टी हुई ही थी। लड़कों का जमघटा बढ़ गया। सोंधी बोला, ''अरे ! इसे अपनी एडीटरी की पड़ी है। हिन्दी के सफ़े नहीं भरे तो इसकी एडीटरी चली जाएगी।''

ऊधमसिंह बोला, 'कुछ अकल दी गल्ल कित्ता कर ओ पंडता ! ए केड़ी ज़बान लई फिरदा ए।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठी बोला, "पंडित जी, अभी शादी नहीं हुई। हिन्दी पढ़ने की अभी जरूरत नहीं पड़ी।"

त्रिलोचन सिंह, "ए म्हाशा जी, जे हिन्दी पढ़नी सी तां म्हाशा कालिज जाना सी, एत्थे कानूं आनां हे।"

बेचारे जगेश का बुरा हाल था। यदि गवर्नमैंट कालिज के विद्यार्थियों की यह दशा है तो हिन्दी विभाग कैसे चलेगा ?

उसी सन्ध्या को मैं कालिज के तालाब से नहा कर आ रहा था। रास्ते में एक बैंच पर श्री जगेश अनमने से बैठे थे। वे अभी तक मुझे भली प्रकार जानते भी नहीं थे। दोपहर के परिहास का दृश्य मुझे स्मरण आया। श्री जगेश पर कुछ तरस सा आया। मैं ठहरा और बोला, "मिस्टर जगेश, यहां के लड़के भी कितने निष्ठुर हैं। अपनी मातृ-भाषा से भी कुछ प्रेम नहीं।"

श्री जगेश ने मेरी सहानुभूति की ओर तो ध्यान नहीं दिया। केवल मेरे शब्द 'निष्ठुर' और 'मातृ-भाषा' सुन कर चौंक पड़े।

"ओह! आप तो हिन्दी बहुत अच्छी बोलते हैं। फिर तो 'रावी' के लिये भी कुछ लिखिये। बस दो दिन रह गये हैं लेख भेजने में।"

जो बोले सो कुंडा खोले। मैं पकड़ा गया, बोला "मगर मुझे कुछ भी लिखना नहीं आता!" "अरे यह क्या कठिन है। देखो दो तीन लेख तो मैं ही किसी किसी के नाम से लिख डालता हूँ।"

"परन्तु जब लिखने का अभ्यास ही न हो ?" "बहुत अच्छी हिन्दी बोलते हैं आप और फिर इन लेखों को पढ़ता भी कौन है।" "क्यों इतने लड़के तो हैं, और फिर प्रोफ़ेसर लोग ?"

बहुत देर के पश्चात् श्री जगेश के मुख पर थोड़ी सी हँसी आई बोले, "क्या पूछते हो आप ? हमारे पंजाब में कोई हिन्दी नहीं जानता। जानता है तो पढ़ता नहीं। पढ़ता है तो समझता नहीं। आप अवश्य लिखें।"

वह एक प्रेरणा थी, हिन्दी का प्रेम था या श्री जगेश के प्रति सहानुभूति, मैंने कुछ लिखना आरम्भ किया, कुछ टूटी फूटी कविताएं कुछ लेख और सारे कालिज में केवल एक व्यक्ति था सराहने के लिये श्री जगेश, "भाई ग़ज़ब कर दिया तुमने तो लोगों ने बहुत पसन्द की है तुम्हारी कहानी..............वह लेख तो कमाल ही था।" और मुझे पता था कि इतने बड़े कालिज में शायद दो चार व्यक्ति ही थे जो मेरे लेखों को पढ़ने का कष्ट करते थे।

इस प्रकार जब भी १५ दिन रावी के छपने में रह जाते, श्री जगेश मेरे पास आ बैठते, "बड़ा अच्छा लेख लिखा था आपने, अब अगले अंक के लिये आज से ही लिखना आरम्भ कर दीजिये।"

इसके बाद पंजाब के उस प्रसिद्ध कालिज की प्रसिद्ध पत्रिका में मेरे लेख कई बार प्रकाशित होने लगे और मुझे भी भ्रम हो गया कि मैं भी एक लेखक हूं। इसके साथ ही शायद श्री जगेश के पराक्रम से या कुछ उस जागृति के कारण जो पड़ोसी डी० ए० वी० और सनातन धर्म कालिज के प्रभाव से हुई; हिन्दी विभाग के पृष्ठों में दो चार पृष्ठों की वृद्धि हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

इण्टर और बी० ए० में ५० नम्बरों की Optional Language हुआ करती थी। न तो इसमें पास होना आवश्यक था। और न ही शायद उन दिनों इससे डिवीज़न में अन्तर पड़ता था।

मैंने हिन्दी ली हुई थी। हिन्दी में बहुत लड़के नहीं थे और जितने भी थे वे केवल इस लिये कि हिंदी की पढ़ाई उर्दू की अपेक्षा सुगम थी। साधारण सी कहानियों की किताबें, राधेश्याम के पद्यमय नाटक कोर्स में हुआ करते थे। मुझे याद है कि उर्दू जानने वाले कई विद्यार्थी भी हिन्दी लिया करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि पंडित पढ़ाने में और नम्बर देने में बहुत दयालु होते हैं।

हमारे हिन्दी के प्रोफ़ेसर थे पंडित उमाशंकर जी उनकी एक बहुत बड़ी कठिनाई यह थी कि उनको हिन्दी और गुरुमुखी दोनों पढ़ानी पड़ती थीं।

मैं बहुत शान्त स्वभाव के लड़कों में था। फिर भी पता नहीं क्यों विवशता में उनके घण्टे में शरारत हो ही जाती थी। उनकी प्रकृति बहुत शान्त और दयालु थी। उनसे किसी प्रकार का भय नहीं था। हम खूब शोर मचाते और उनके मना करने पर भी चुप न होते। वे आते ही कमरे में मुझे घूर कर देख लेते और फिर कुर्सी पर बैठ कर बोलते, निकालो, वीर अभिमन्यु का पृष्ठ उनानवे"

"यह उनानवे क्या होता है, पंडित जी" मैं बोल उठता।

"एटी नाइन"

"अंग्रेज़ी में क्यों बोलते हैं आप, पण्डित जी? यह हिन्दी का घण्टा है।"

और सारे लड़के खिलखिलाकर हँस पड़ते।

मुझे बहुत खेद है अपनी शरारतों पर। परन्तु यह सच है कि पजाब में हिन्दी और संस्कृत की पढ़ाई के घण्टों की प्रायः यही दशा हुआ करती थी। कभी भी उच्चारण में ज़रा सी भूल हुई जैसे पुत्तर, प्रापत, परसन,किरपा आदि, तो हम लड़कों ने शोर मचाना आरम्भ किया। इसी उद्दण्डता के कारण मैं हिन्दी क्लास का लीडर हुआ करता था।

एक दिन सब लड़के क्लास में आ रहे थे। पढ़ने की कुछ सलाह थी नहीं। होस्टल के दरवाजे पर एक कुत्ता मिल गया। मुझे एक शरारत सूझी। पांच छः लड़कों ने कुत्ते को घेर लिया। हम उसको हिन्दी की क्लास में ले आये और चुपके से पीछे बिठा दिया।

पण्डित जी ने थोड़ा ही पढ़ाया था कि श्याम मोहन ने कुत्ते को एक ठोकर लगाई। वह चीख़ने लगा। हम सब 'पागल कुत्ता' पागल कुत्ता कह कर क्लास से बाहर आ गये। बेचारे प्रोफ़ैसर साहब कमरे में अकेले रह गये।

एक बार चौक पर एक आदमी टीन के मेंढक बेच रहा था। दो आने के आठ लेकर मैंने अपने मित्रों में बांट दिये। फिर हम हिन्दी की क्लास में गये। जेब में एक हाथ डाले मेंढक को दबा कर कड़क कड़क शब्द निकाला और क्लास में बड़ा आनन्द आया।

पण्डित जी ने एक बार मुझे कमरे में अलग बुलाया और कहा—"देखो, तुम बहुत होनहार लड़के हो, हिन्दी भी अच्छी लिखते हो, रावी में तुम्हारे लेख छपते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ सोच कर बोले "मगर पता नहीं तुम्हें शरारत किसने सिखा दी। गुरुजनों का आदर किया करते हैं इस प्रकार का व्यवहार अच्छा नहीं होता।"

मैंने पश्चात्ताप किया, कुछ विश्वास दिलाया और चला आया।

फिर भी कभी कभी गलती हो ही जाया करती थी। मैं प्रोफेसर साहब को भी खुश न रख सका। वास्तव में पंजाब में हिन्दी और संस्कृत का पढ़ना पढ़ाना अंग्रेजी और उर्दू की भाँति कभी अनुशासन युक्त न हो सका।

[३]

मैंने आपको अपनी पहली कथा सुनानी थी। यह भूमिका पंजाब के प्रमुख विद्या केन्द्रों में हिन्दी की दशा बताने के लिये बहुत आवश्यक थी।

हां तो मैं बता रहा था कि रावी के हिन्दी विभाग में मेरे टूटे फूटे लेख और कविता निकलने आरम्भ हुये और मुझे यह पक्का भ्रम हो गया कि मुझे हिन्दी लिखनी आती है।

श्री जगेश ने मुझसे कई बार कहानी लिखने के लिये आग्रह किया। परन्तु मुझे कथानक मिलता ही न था। कई बार सोचता परन्तु कुछ समझ में न आता। न लेख अच्छे न कविता अच्छी, न कहानी के कथानक का ज्ञान।

इसी प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। हमारे कालिज का वार्षिक उत्सव होना था। पंजाब के गवर्नर इस उत्सव के सभापति हुआ करते थे। योग्य विद्यार्थियों को पारितोषिक मिला करता था। यह एक बहुत गौरव की बात होती थी। पिछले वर्ष भी मुझे कोई इनाम न मिला था। इस बात का मुझें बहुत दुःख था। वास्तव में अपने स्कूल में प्रति वर्ष इनाम लेने का मुझे अभ्यास पड़ गया था। मैं सोचता था कि यदि किसी छोटे मोटे कालिज में होता तो शायद एकाध पारितोषिक मिल ही जाता।

उत्सव में १५ दिन रह गये थे। आफिस में इनाम लेने वाले विद्यार्थियों की भीड़ लगी हुई थी।प्रत्येक को एक पर्चा मिलता था जिसके आधार पर लड़के किताब वालों की दुकानों से उस पर्चे पर लिखे हुये रुपयों में कुछ रुपये अपने पास से मिलाकर पारितोषिक की पुस्तकें ले आया करते थे जो उनको वार्षिक उत्सव पर मिलती थीं।

मुझे तो स्वप्न में भी आशा न थी, परन्तु मैं चकित सा रह गया। जब श्री जगेश ने मेरे कन्धे पर हाथ मारा और बोले 'Congratulation' बधाई। रावी के हिन्दी सैक्शन का इनाम आपको मिलेगा।

आज तक तो मैं शायद श्री जगेश पर अहसान करने के लिये हिन्दी में लेख लिखता था। परन्तु यह जान कर कि गवर्नर के हाथों मुझे भी पुरस्कार मिलेगा और वह मेरे रावी में हिन्दी लेखों के कारण। मेरे आनन्द की सीमा न रही। न सोते बनता था न जागते। मन ही मन श्री जगेश का धन्यवाद करता था।

फिर क्या था। ओछे मनुष्य की भांति मैं विवश हो गया। आफिस से अभी पर्चा भी नहीं लिया। १५ रुपयों का पुरस्कार था। १० रुपये जो खाने पीने के पैसों से सिनेमा के लिये बचाया करता था उनमें मिलाकर २५ रुपये की किताबें लेने निकल पड़ा। दो मित्रों को साथ लिया और रामकृष्ण की दुकान पर गया। दो तीन घण्टे लगाये, बहुत छान बीन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ऐसी किताबें लूँ जो दूर से बहुत मोटी दीख पड़ें। उन्हें अपने लिये रिज़र्व करा लिया जिससे कि अगले दिन ऑफिस से पर्चा ले आऊँ।

अगले दिन ऑफिस में गया। उस दिन पर्चा न मिल सका। उससे अगले दिन भी नहीं और दो दिन उपरांत भी न मिला। चौथे दिन ऑफिस वालों ने कहा. "आप किस पर्चे के पीछे पड़े हैं ? रावी के हिन्दी विभाग का पुरस्कार तो श्री दयाकृष्ण को मिलेगा।"

जान सी निकल गई। सारा बना बनाया काम बिगड़ गया। दिल बैठ गया। कमरे में जाकर पड़ गया। खाना भी न खा सका। सन्ध्या को साहस करके श्री जगेश के कमरे में गया।

'आइए आइए! श्री जगेश बोले "कैसे आए?"

"कैसे आये. सुन कर मुझे बड़ा क्रोध आया। इस व्यक्ति के कहने पर मैंने कितना परिश्रम किया, इसकी साख रखने के लिये कितने लेख लिखे और फिर इसने स्वयं ही तो मुझे बताया था कि इनाम मेरा है। इसकी सम्मति पर ही इनाम दिया जाता है। इतना होने पर भी यह मुझसे पूछता है 'कैसे आये'।

खैर, उसने बताना आरम्भ किया, "बैठिये, शान्त हो जाइए, दुःखी मत होइए। बात यों हुई कि मैंने केवल आप का ही नाम प्रोफैसर साहब को बताया था। वे सहमत न हुये। मैंने तो बहुत जोर दिया।"

कुछ देर चुप रह कर वे फिर बोले, क्षमा करना, वास्तव में आप भी उनको कुछ तंग किया करते थे, या शायद नहीं, परन्तु वे ही कुछ ऐसा समझते थे। खैर, कोई बात नहीं, आप दुःखी न हों।

मैंने सब सुना। अपनी सारी शरारतें याद आ गईं। अब समझ में आ गया कि कि हर एक का अपना २ समय होता है। आज प्रोफेसर साहब ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। फिर भी साहस करके मैंने पूछा. "उन्होंने क्या यही कारण बताया कि मैं क्लास में शरारत करता हूं?"

'ओह! नहीं" श्री जगेश बोले " वे ऐसा कैसे कह सकते थे? उन्होंने कहा कि यह लड़का हिन्दी में योग्य तो है परन्तु देखो उसका लेख कितना गन्दा होता है, ठीक से पढ़ा भी नहीं जाता। और लिखने में भी अशुद्धियां रह जाती हैं।"

मैं चुपचाप कमरे से बाहर चला आया। मैंने निश्चय किया कि कुछ भी हो अब हिन्दी रावी में कभी लेख नहीं दूँगा।

(४)

केवल १५ दिन ही बीते थे। रावी छपने की तारीख निकट आ गई और फिर वही फेरा श्री जगेश का मेरे पास। ओह! इतनी निर्लज्जता कुछ भी विचार नहीं किया कि अभी इसके साथ क्या हुआ, कितना दुःखी होगा यह अभी तक। परन्तु अपनी वही रटन्त, "फिर लेख कब दीजियेगा?"

मेरे क्रोध की सीमा न रहीं, बोला! "बस, वे दिन गए। आप मुझे और बेवकूफ़ न बनाएं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ओह, आप अभी तक भूले नहीं उस बात को 'श्री जगेश बोले' भई, इन बातों की परवाह नहीं किया करते। और अगली बार यदि तुम्हें इनाम न मिला तो कहना।"

मैंने बार-बार इन्कार किया। श्री जगेश के कहने का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे बहुत दुःखी हुए, उठे और बोले, 'आपसे बहुत पुराना सम्बन्ध था, आपसे बहुत आशा थी।' और वे बाहर चले गए।

मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। भला इस बेचारे का क्या अपराध। इसने तो सदा मेरा साथ दिया। इसने स्वयं मेरा नाम प्रोफेसर के सम्मुख रखा। यदि वे ही न मानें तो इसका क्या दोष ?

'दोष तो प्रोफेसर का था।' उसका वाक्य मेरे मन में गूंज गया। उसने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया, मेरा मन तोड़ा, मेरी आशाओं का खून किया। बस, प्रतिकार की भावना मेरे मन में जाग उठी। इससे एक प्रेरणा मिली। एक से एक नई-युक्ति सूझती थी किस प्रकार बदला लिया जाए। मन में घटनाएं घूमने लगीं, कहानी बनने लगा। चार दिन सोचने में ही लग गए। एक कहानी का कथानक समझ में आया। अकस्मात् मैं श्री जगेश के कमरे में गया।

उन्होंने मुझे बड़े आदर से बिठाया, बोले, "कहिये, क्या बात है ?"

"मैं एक लेख दूंगा, मैंने कहा।"

श्री जगेश उछल पड़े, बड़ी कृपा है आपकी" कृतज्ञता पूर्ण नेत्रों से वे बोले।

"अब की बार एक कहानी दूंगा, 'मैंने कहा ! कहानी ! ओह, कमाल कर दिया आपने। क्या शीर्षक है उसका ?"

"हिंसक"

'आपका अत्यन्त धन्यवाद, परन्तु समय तो समाप्त होने को है। आज ही दीजिये।'

'आज नहीं, चार दिन में दे सकूंगा।'

'फिर तो बहुत देर हो जाएगी। मैं कब पढ़ूँगा ? प्रैस में कब भेजूंगा !'

'आपको पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं' 'फिर भी एक बार तो............'

'आप विश्वास कीजिये। कहानी सुन्दर होगी। आपको पढ़ने की आवश्यकता न होगी। आप सीधा उसको प्रैस में भेज दें।'

'बहुत अच्छा'

चार दिनों के पश्चात् मेरी पहली कहानी प्रैस में भेज दी गई। बिना किसी के पढ़े नियत समय पर रावी में छप गई।

कहानी संक्षेप में यों थी।

(५)

हसक रहस्य

मुसलमानों का शासन निर्बल होने के कारण देश छोटे-छोटे प्रान्तों में बट गया था। उन्ही दिनों संयुक्त प्रान्त के पूर्व में हिमालय की तलहटी में एक छोटा सा राज्य था। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी थी देव नगर। अब उसको क्या कहते हैं, मुझे स्मरण नहीं। इस राजधानी का वायु मण्डल इस्लामी सभ्यता से सर्वथा सुरक्षित था।

वहां एक राजा रणवीर सिंह नामी राज्य करता था। राजा के मन्त्री का नाम यादव था। राजा प्रतिवर्ष अपने जन्म दिन पर एक कवि सम्मेलन किया करता था और सर्वोत्तम कविता के लिये कवि को भारी पुरस्कार और राजकीय सन्मान की पदवी देता था।

यह राजकीय कवि-सम्मेलन की अन्तिम झलक थी।

कवि-सम्मेलन हो रहा था। राजसभा में सुन्दर-सुन्दर कविताएं पढ़ी जा रही थीं। इतने में एक अकिंचन सा सीधा सादा व्यक्ति मंच पर आया। सभासद देख कर हंस पड़े। यह व्यक्ति नाटे कद का, काला भद्दा सा पुरुष था। उसने ऊँची सी धोती बांध रखी थी। हाथ में डंडा था। नंगे पाँव आकर खड़ा हो गया। जब उसने ऊँचे स्वर से कविता पढ़नी आरम्भ की तो समस्त सभा मुग्ध हो गई। उसके छन्द की प्रवीणता और भाव-गाम्भीर्य से सब चकित रह गये। यह बिल्कुल निश्चित जान पड़ता था कि पुरस्कार और पदवी का अधिकारी केवल यही भद्दी आकृति वाला मनुष्य होगा।

परन्तु यह तो बड़े अन्याय की बात थी कि इस प्रकार का मानव-जन्तु पुरस्कार का अधिकारी हो और राजककवि नियुक्त हो सके।

मंत्रीयादव ने कहा, "मुझे एक सन्देह है, महाराज।"

"क्या ?"

"यह कविता इस व्यक्ति की योग्यता का परिणाम नहीं। यह किसी अन्य व्यक्ति की कृति है। सम्भवतः किसी पुराने कवि का छुपा हुआ रत्न।"

"क्या प्रमाण है इसका तुम्हारे पास ?"

"प्रमाण ?" यादव कविता दिखाते हुए बोला, "लेख तो देखिये, कितना गंदा लिखा है, श्रीमान् !" फिर हँस कर बोला, "तीन शब्द अशुद्ध लिखे हैं। और इनके व्यक्तित्त्व को तो निहारिये ! क्या कवि ऐसे ही हुआ करते हैं ?"

फिर वक्ता की ओर संकेत कर मंत्री बड़े गम्भीर और प्रामाणिक स्वर में बोला, "हिन्दोल तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि यह कविता तुम्हारी लिखी हुई है ?"

हिन्दोल ने केवल राजा को प्रणाम किया और अत्यन्त उत्तेजित स्वर से बोला, "कोई नहीं।" "तो तुम इस पदवी के अधिकारी नहीं बन सकते। सत्य-सत्य कहो नहीं तो तुम्हें राजदंड दिया जाएगा।" राजा कठोर स्वर में बोला।

हिन्दोल कुछ काल मौन रह कर सन्तुष्ट स्वर से बोला, "क्या महाराजाधिराज मुझे आज्ञा देंगे कि मैं न्यायाधीश से पूछूं कि कविता की सत्यता में सन्देह करने के लिये उनके पास क्या प्रमाण है ?"

राजा तीव्र दृष्टि से मन्त्री को देखने लगा। मंत्री ने कविता को हाथ में उठाया और कहा, "प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? हिन्दोल की लिखाई, इसकी वेश-भूषा, पदवी, निवास तथा जाति से कोई कैसे कह सकता है कि यह कवि है।"

सभासद् मंत्री के उत्तर की प्रशंसा करने लगे। बस, सहन शक्ति की सीमा आ चुकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। हिन्दोल के नेत्र अंगारे की भांति चमकने लगे। उसकी उत्तेजना की ज्वाला भड़क उठी। उसने वीरों की भांति सीना आगे निकाल कर गुंजाते हुए ओजपूर्ण शब्दों में कहा, प्रत्यक्ष प्रमाण की इच्छा है तो देता हूं। मेरी अन्तिम कविता भी सुन लो।

विचित्र महिमा उद्यान की, सुन कोकिल का गान।
निपुण व्याध हैं छोड़ते, कागा कह कर बाण॥
हंस पुराने बन चलो, यह बड़ों का बंस।
कपटी घातक बेधते, बगुला कह कर हंस॥

यह कह कर हिन्दोल मुड़ा और शीघ्रता से राजदरबार से बाहर चला गया।

यह सुनकर राजा शोक सागर में निमग्न हो गया और कहा, "क्या और प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता है, यादव ?"

यादव ने लज्जा और भय से नेत्र नीचे कर लिये।

कुछ काल पश्चात् राजा ने सिर उठाया और मंत्री से गम्भीरता से कहा, "यादव! तुमने राजकार्य में रस भंग डाला तुम उपद्रवी हो। तुमने अपने राजा को धोखा देना चाहा, तुम राज-द्रोही हो। तुमने अन्याय किया, तुम अन्यायी हो। सबसे अधिक तुमने एक पवित्र और निर्दोष हृदय को दुखाया, तुम हिंसक हो।"

यह कह कर राजा ने मंत्री को आज्ञा दी कि हिन्दोल को उपस्थित किया जाय। उससे क्षमा माँग कर उसे सम्मानित किया जाए।

चारों ओर कर्मचारी हिन्दोल को खोजने के लिये गए परन्तु उसका पता न चला।

[६]

बहुत समय न लगा। जो भी हिन्दी विभाग में पढ़ते थे उन्हें पता लग गया कि कहानी क्यों लिखी गई है और वह बेडौल कवि कौन है। एक ने दूसरे को, दूसरे ने तीसरे को सुनाया। बिना हिन्दी पढ़े भी कहानी सुनते थे।

दो दिन पश्चात् श्री जगेश मेरे पास आए, बोले, "आपको प्रोफ़ेसर साहब ने बुलाया है।" रास्ते में उन्होंने बताया कि "यह आपने अच्छा नहीं किया कि मुझ पर भी नाराज़ हैं कि मैंने बिना देखे कहानी प्रेस में भेज दी, खैर, अब हो भी क्या सकता है? और कोई अपने पर क्यों समझे?"

मैं प्रोफ़ेसर साहब के कमरे में घुसा तो दिल धक्-धक् कर रहा था जैसे कोई अपराधी न्यायालय में घुस रहा हो। परन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब वे उठे और मेरी पीठ ठोक कर बोले, "तुम्हारी कहानी बड़ी, सुन्दर है। मैंने तुम्हें शाबाश देने को बुलाया है।"

मैं चुप खड़ा था। "तुम बोलते क्यों नहीं।" मैं अब भी चुप था।

प्रोफ़ेसर ने फिर कहा, "ओह! शायद् तुम स्वयं को अपराधी समझ रहे हो। मुझे तो तुम्हारे प्रति कोई शिकायत नहीं।"

"मैं लज्जित हूं। मैं कुछ आवेश में "आ गया था" तो क्या हुआ? यह स्वाभाविक ही है। होनहार लड़के ऐसे ही किया करते हैं। और फिर साहित्य इसी प्रकार बना करता है।"

मैं प्रसन्न था। श्री जगेश भी चकित थे। उन्होंने सन्तोष की सांस ली। मैंने प्रोफ़ेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का धन्यवाद किया और बाहर आ गया।

उस दिन के पश्चात् जब तक भी मैं कालिज में रहा, हिन्दी क्लास में संयम और श्रद्धा से पढ़ता रहा। मैं बहुत सुधर चुका था। मेरे लिये भी प्रौफ़ेसर के मन में बहुत प्रेम हो गया था।

उन्हीं दिनों हिन्दी ने हमारे कालिज में बहुत प्रगति की। श्री जगेश के उत्साह और प्रौफ़ेसर उमाशंकर के प्रोत्साहन से रावी के हिन्दी विभाग के पृष्ठ बढ़ते गए। विद्यार्थियों में से नवीन लेखक आगे आए। हिन्दी विभाग की प्रतिष्ठा खूब बढ़ गई। और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ हमारे कालिज में हिन्दी की प्रगति पर हमारे साथी डी० ए० वी० और सनातन धर्म कालिजों का प्रभाव पड़ा।

मैंने भी कुछ और लेख लिखे, कुछ कहानियां भी। मुझे प्रौफ़ेसर और श्री जगेश का सहयोग सदा मिलता रहा। फिर मेरी अन्तिम कहानी छपी। मुझे ठीक नाम याद नहीं। शायद उसका नाम "प्रेम परीक्षा" था।

एक दिन मुझे प्रौफेसर साहब ने बुला भेजा। श्री जगेश भी साथ खड़े थे। "अब तुम बहुत अच्छा लिखने लगे हो।" वे बोले!

मैं चुप था।

"क्या तुम अभी तक दुःखी हो? उस पुरस्कार के वृत्तान्त को नहीं भूले!" उन्होंने प्यार भरे स्वर में कहा।

"प्रौफ़ेसर साहब, रावी में मेरा यह अंतिम लेख है।" मैंने उदास स्वर से कहा।

उन्होंने फिर आश्वासन दिलाते हुए कहा, "मुझ पर विश्वास रखो। अब की बार हिन्दी विभाग का पुरस्कार तुम्हारा ही होगा।" "मैं कालिज से जा रहा हूँ।" मैंने उत्तर दिया "हैं! कहां? क्यों?

"मैं रुड़की इंजीनियरिंग कालिज में ले लिया गया हूं।"

"फिर तो बहुत-बहुत बधाई। परन्तु क्या तुम सचमुच हमसे विदा हो जाओगे?" प्रौफ़ेसर साहब ने पूछा।

"मैं विवश हूँ। विश्वास रखें मैं आपकी सहायता और सहानुभूति का सदा आभारी रहूँगा।"

श्री जगेश ने मुझे हिला कर कहा, "तुमने यह क्या.........कब.........क्या अवश्य जाना होगा।"

मेरी आंखों में अश्रु थे।

प्रौफ़ेसर साहब बोले, "इंजीनियरिंग के अध्ययन में हिन्दी को न भूल जाना।"

"इंजीनियरिंग मेरी आजीविका होगी, हिन्दी मेरा जीवन।" "इसे स्मरण रखना" श्री जगेश ने कहा।

"मैं आप दोनों को सदा याद रखूंगा" मैंने रूँधे हुए कंठ से कहा। अन्तिम नमस्कार किया और बाहर चला आया।

❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्यामहाविद्यालय जालंधर का हिन्दी-सेवा-कार्य

लेखिका—
आचार्या कुमारी लज्जावती जी

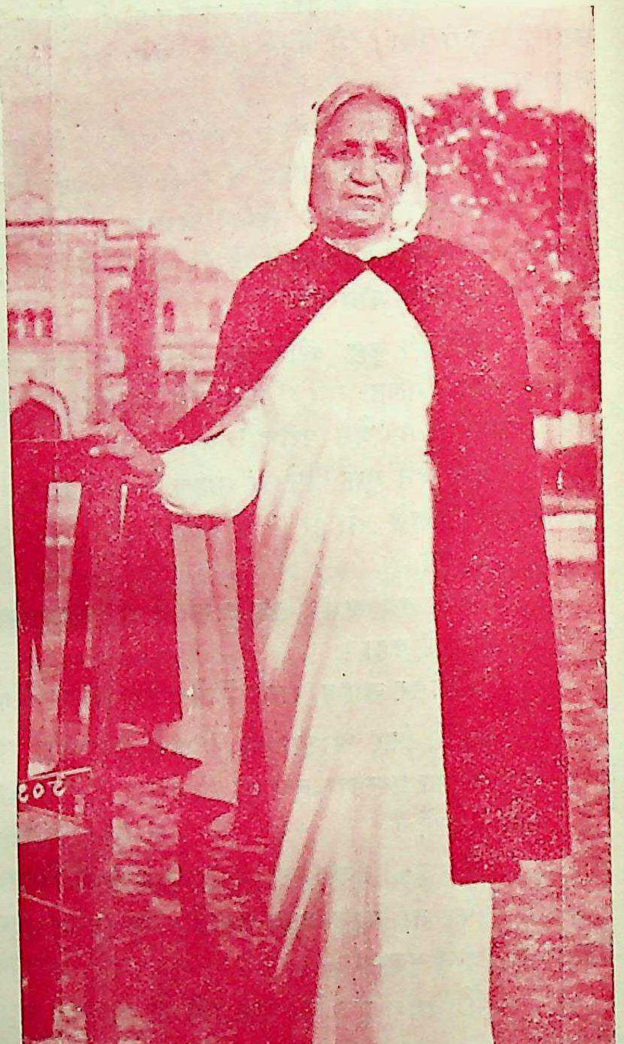

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में जो सर्वतोमुखी जागरण हुआ उस में स्वा० दयानन्द और आर्य समाज का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। हमारे प्रांत को आर्य समाज के कार्य का सब से बड़ा केन्द्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कन्यामहाविद्यालय जालन्धर का इस कार्य में विशेष भाग है।

विद्यालय की स्थापना सन १८८६ में हुई। उस समय स्त्री शिक्षा को तो हमारे देश में पाप ही माना जाता था। उन विकट परिस्थितियों में संस्था के संस्थापक ला० देवराज जी ने इस कार्य का बीड़ा उठाया। उस समय लड़कों के लिए जो सरकारी तथा अर्ध-सरकारी शिक्षा संस्थाएँ थीं और जो शिक्षा कार्यक्रम थे। उन में हिन्दी और संस्कृत के लिए कोई स्थान न था। कन्या महा विद्यालय की स्थापना एक तरह से पंजाब में संस्कृत और हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के अंकुर को आरोपित करना था।

संस्था में शिक्षा का माध्यम तो हिन्दी था ही, इसके अतिरिक्त इसने अपनी एक पाठ्य विधि विकसित की जिस के लिए बहुत सी बालोपलोगी पुस्तकों की रचना हुई। विद्यालय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

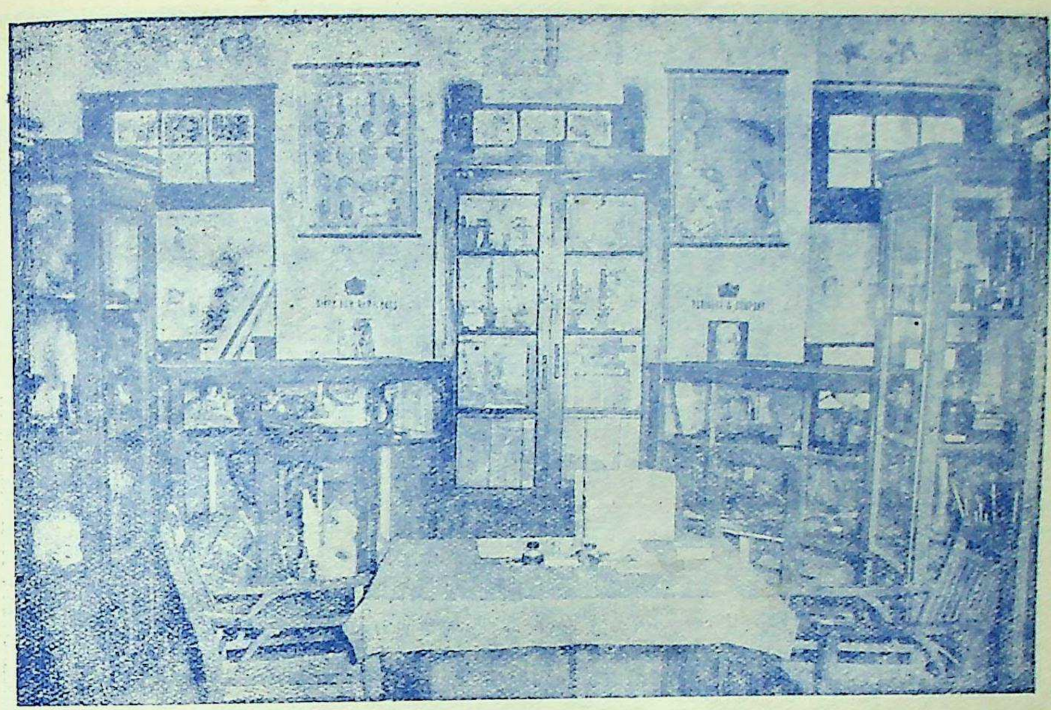

कन्या महाविद्यालय जालन्धर, (Biology) जीव-विज्ञान का (Museum) अजायबघर

कन्या महाविद्यालय जालन्धर की रसायन-प्रयोगशाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

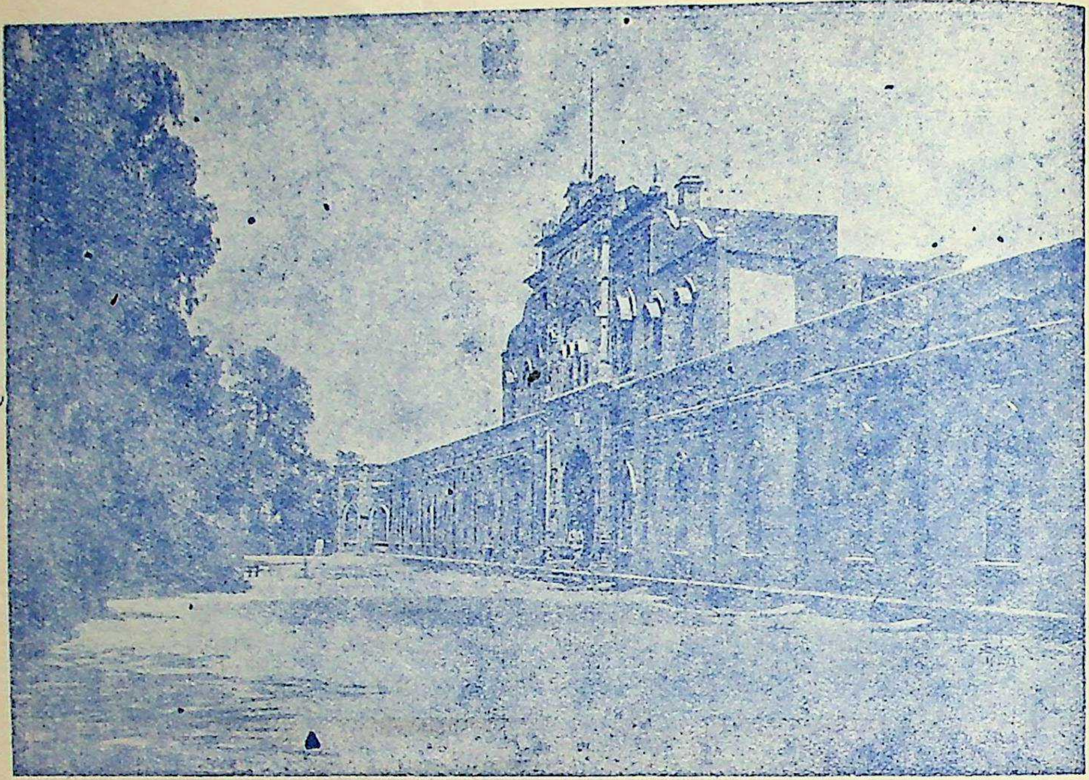

कन्या महाविद्यालय जालन्धर का छात्रावास

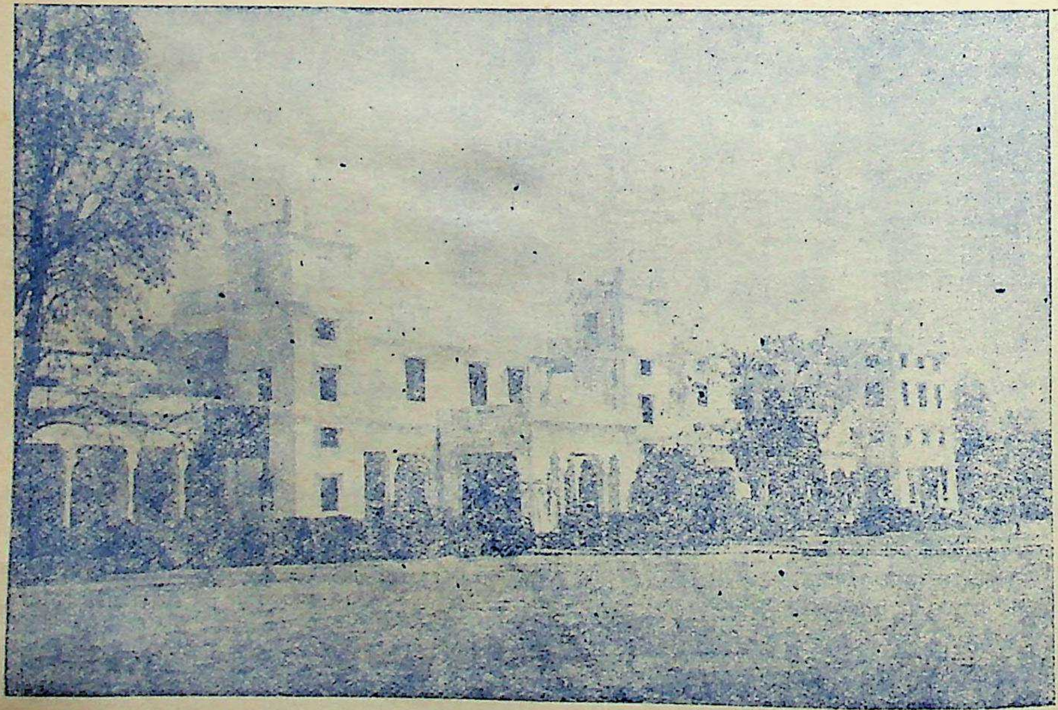

कन्या महाविद्यालय जालन्धर का महाविद्यालय विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थापक ने बालाओं के लिए उपयोगी हिन्दी पुस्तकों के अभाव को देख कर स्वयं ऐसी पुस्तकों की रचना की जिन में भारतीयता और सदाचार के भाव ओत-प्रोत थे। उन पुस्तकों की संख्या ५० के लगभग है। इस संस्था से प्रेरणा लेकर जैसे-जैसे स्थान-स्थान पर पाठशालाएँ स्थापित हुईं, वैसे-वैसे इन पुस्तकों का प्रचार भी बढ़ा। इन में से अनेकों पुस्तकों के छपने की संख्या लाखों तक पहुंची और उनके संस्करण पच्चीस तीस तक पहुंचे। इन पुस्तकों की रचना के लिए लाला जी को पंजाब के शिक्षा-विभाग से पुरस्कार भी मिले। पंजाब से बाहिर भी कई पुस्तकें शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत की गईं। सौ से ऊपर कन्या पाठशालाओं में विद्यालय की पाठ्य-विधि अपनाई गई। कई पुस्तकों के अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं मराठी, गुजराती और तेलगू आदि में भी हुए।

संस्था का शिक्षा-कार्य हिन्दी का एक विशाल प्रचार कार्य था, क्यों कि यहां न केवल सारे पंजाब ही से, बल्कि भारत के लगभग सभी प्रान्तों से और कभी-कभी भारत के बाहिर के देशों ब्रह्मा और अफ्रीका आदि से भी भारतीय कन्याएँ शिक्षा के लिए आती थीं। सन् १९१० में संस्था के छात्रावास में लगभग ६० कन्याएँ पंजाब से बाहिर की थीं।

विद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर के सैंकड़ों छात्राओं ने पंजाब में और बाहिर भी कन्या पाठशालाओं में शिक्षा का कार्य किया और हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रसार किया। सन् १९१४ में विद्यालय से निकली ८६ छात्राएँ भिन्न-भिन्न कन्या पाठशालाओं में अध्यापन कार्य कर रही थीं। संस्था की बहुत सी छात्राएँ देश के राष्ट्रीय आंदोलन में भी सम्मिलित हुईं। इस प्रकार एक विशाल क्षेत्र में विद्यालय की पुरानी छात्राएँ फैल गईं और जहां भी वे गईं उनका हिन्दी प्रेम भी उनके साथ गया।

हिन्दी के साथ संस्कृत का प्रचार भी विद्यालय के कार्य-क्रम का एक मुख्य भाग रहा। १९१३ ई०में ही यहां की ५ छात्राओं ने प्राज्ञ परीक्षा पास की। १९१४ में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा पास करने वाली पहली स्त्री कु० सत्यवती इस संस्था की छात्रा थी। हिन्दी और संस्कृत की यह परीक्षाएँ दीर्घ काल तक विद्यालय में प्रचलित रही और सैंकड़ों छात्राएं इन में उत्तीर्ण हुईं।

सन् १९३३ में संस्था के संस्थापक की हिन्दी सेवाओं को देखते हुए उन्हें जम्मू में हुए पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति चुना गया। अपने भाषण में उन्होंने ठीक ही कहा था, "मैंने तब हिन्दी की तुच्छ सेवा आरम्भ की थी, जब यहां कोई हिन्दी का नाम भी नहीं जानता था।"

इस समय यह संस्था पंजाब विश्वविद्यालय की एफ० ए०, बी० ए० और एम० ए० तक हिन्दी परीक्षाओं का अध्यापन कार्य करती है। कार्यालय का प्रायः सारा काम हिन्दी के ही माध्यम से होता है। संस्था का वातावरण हिन्दी-मय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी की स्वतन्त्र दशाब्दि :

लेखक—
प्रो॰ प्रेमप्रकाश सिंह बी एम. ए. एम. ओ. एल.
सह-निर्देशक भाषा विभाग (पंजाब)

भारत के समुज्ज्वल क्षितिज पर जब से स्वातन्त्र्य-रवि का समुदय हुआ है तब से इसकी गुण-गौरव-गरिमा और चतुर्दिक समुन्नन्ति के शुभ दर्शन हो रहे हैं। साहित्य, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान, कला, शिक्षा, भाषा आदि क्षेत्र-प्रक्षेत्रों में एक नवीन चेतना जैसे सजग हो रही है। परन्तु इन सब में से जो सर्वतोमुखी समुत्थान की ओर द्रुत-गति स अग्रसर होता जा रही है वह है हमारी राष्ट्रीय भाषा 'हिन्दी'।

यह अतीव हर्ष का विषय है कि हिन्दी ने इस प्रथम स्वतन्त्र दशाब्दि में कल्पनातीत प्रगति की है। इसी स्वल्प अवधि में हिन्दी एक प्रान्तीय भाषा की सीमा से निकल कर राष्ट्र के स्वर्णिम सिंहासन पर समारूढ़ हो गई है। आबाल वृद्ध इसको स्वर्णरश्मियों से अनुरंजित होने के लिये निरन्तर उद्यत हैं। बहुत से राज्यों में पत्र-व्यवहार से लेकर विश्व विद्यालयों की उच्च कक्षाओं तक हिन्दी का माध्यम अपनाया जा रहा है। इसके साहित्य में प्रतिपल संवर्धन हो रहा है। हिन्दी के इस चतुर्मुखी विकास से पंजाब की भूमि भी सुतरां आप्लावित हो रही है। प्रस्तुत लेख में पंजाब में हिन्दी का यही दशवर्षीय विकास प्रतिपाद्य विषय है।

पंजाब की अपनी ही एक परम्परा है और अपना ही हिन्दी के साथ सम्बन्ध है। पंजाब को भगवत्कृपया इस बात का गौरव और गर्व प्राप्त है कि यहां ही भारतीय आर्य सभ्यता की प्रथम किरण प्रस्फुटित हुई मानी जाती है। यह वही पुण्य प्रदेश है। जहां पर विश्व-वंद्य वेदों के पवित्र मन्त्र उच्चरित और संकलित हुये थे। यह इसी भू-खण्ड को ही सौभाग्य समुपलब्ध है कि यहां के भगवान् पाणिनि ने भारत-भारती को एक अभूत पूर्व पुस्तक "अष्टाध्यायी" प्रदान की। इसी परम्परा की पराकाष्ठा इस बात में निहित है कि पंजाब ने हमारी वर्तमान राष्ट्र भाषा "हिन्दी" को यह नाम दिया।

जब भारतवर्ष का मध्य-एशियायी देशों के साथ सम्पर्क स्थापित होने लगा तब विदेशियों ने हमारे देश को सम्भवतः सिन्धु नदी के आधार पर "हिन्द" या हिन्दुस्थान कहा और यहां की भाषा को "हिन्दवी" या "हिन्दी"। इन नामों का श्रेय प्राचीन पंजाब प्रान्त की ही उन पुरातन उपभाषाओं को है जो भारत के सुदूर उत्तर-पश्चिम सीमा पर बोली जाती थीं जो आर्य और दर्द भाषाओं की संगमस्थली मानी जाती है। विदेशियों ने इस भाषा अथवा इन उप-भाषाओं को 'हिन्द' अर्थात् भारत की भाषा मानकर 'हिन्दवी' या हिन्दी कहा जिस नाम के भग्नावशेष आज भी वहां विद्यमान है। यही नाम आगे चलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ महेशचन्द जी हिसार

आप पंजाब यूनिवर्सिटी में हिन्दी के स्तर को उन्नत करने तथा हिन्दी को शिक्षामाध्यम बनाने का लगातार आन्दोलन कर रहे हैं। पंजाब युनिवर्सिटी के सीनेट में कई वर्षों से लगातार सदस्य हैं। हिसार में दिसम्बर १९५२ ई० में हुये पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्वागत समिति के आप स्वागताध्यक्ष थे। 'हरियाणा सन्देश' के सम्पादक हैं।

श्री दीवान आनन्द कुमार जी

भूतपूर्व वायस चांसलर पंजाब युनिवर्सिटी। पंजाब विभाजन के बाद आपने पंजाब युनिवर्सिटी को पुनः चालू करने का प्रशंसनीय यत्न किया।

श्री जगन्नाथ जी पुच्छरत
अमृतसर

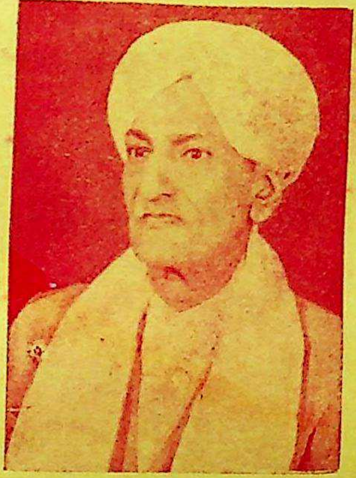

पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा संचालित हिन्दी रत्न भूषण प्रभाकर परीक्षाओं के निष्काम प्रचारक हिन्दी सेवक

श्री इन्द्रनाथ मदान एम. ए.

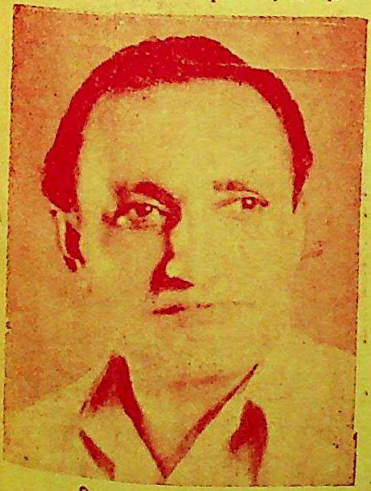

रीडर हिन्दी विभाग
पंजाब युनिवर्सिटी

प्रो० प्रेमप्रकाश जी एम. ए., एम. ओ. एल.

असिस्टैण्ट डाइरेक्टर भाषा विभाग
पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवान अलखधारी जी

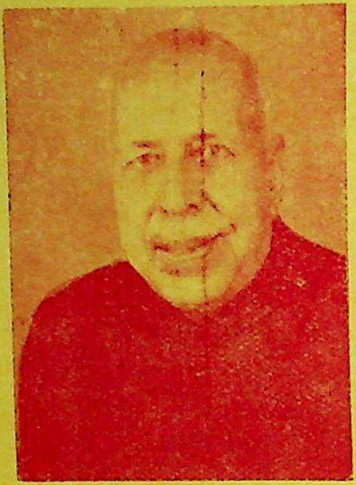

अम्बाला छावनी के हिन्दी प्रेमी
भीष्मपितामह

दानवीर रा. ब. सोहनलाल जी

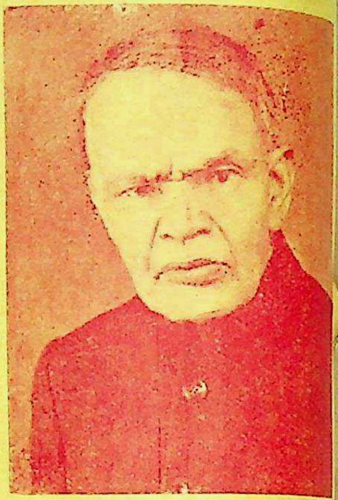

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के
आजीवन सदस्य
प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री तथा हिन्दी प्रे

स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

आपने देश की विविध स्थानीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिन्दी के संघर्ष विरोध को दूर करने का एक मात्र उपाय, दूरदर्शी नेता की दृष्टि से, देवनागरी लिपि में पूना से मराठी "केसरी" को प्रकाशित कर दिखाया।

श्रीमती सुदर्शन बाहरी एम. ए.

अम्बाला छावनी की
प्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री
आज कल आप पंजाब पब्लिक रिलेशन विभाग में कार्य कर रही हैं।

श्रीमती पुष्पा महाजन,
गुरदासपुर

हिन्दी कहानी साहित्य क्षेत्र
उदीयमान लेखिका संघर्ष और
नाम से कहानियों का संग्रह प्रका
किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना व्यापक हुआ कि आज हमारे राष्ट्र की भाषा इसी नाम से अलंकृत है। अतः यह पंजाब प्रदेश ही है जिसने हमारी राष्ट्रभाषा को नाम दिया और जिस पर पंजाब सत्यतः गर्व करता है।

तत्पश्चात् पंजाब ने वर्तमान हिन्दी की पूर्ववर्ती भाषाओं में यथा समय पूर्ण सहयोग समर्पित किया है। हिन्दी की पूर्वज दो प्रमुख भाषाएँ थीं—अवधी और व्रजभाषा। दूसरी भाषा में पंजाब निवासियों ने अनन्य मनोयोग और असीम निष्ठा से बृहदाकार पुस्तकें लिख कर भारत-भारती के कोष को अभिमण्डित किया है। इनमें कुछेक ऐसे ग्रन्थ हैं जो गुरुमुखी लिपि में अंकित होने के कारण नागरी-निष्ठों के लिये दुर्गम्य से पड़े हैं तथापि उनके उत्खनन और लिप्यन्तर करने के स्तुत्य प्रयास किये जा रहे हैं।

इस प्रकार पंजाब की एक एतादृश शृङ्खलाबद्ध परम्परा है जिससे स्पष्टतया अभिज्ञात हो जाता है कि हिन्दी और पंजाब एक अविछिन्न पदयुग्म है। इस पूर्व प्रथा के अनुपालन में पंजाब हमें प्रदर्शित कर रहा है, कि इन वर्तमान वर्षों में यहां किस गति और किस रीति से हिन्दी के साथ घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। निम्न पंक्तियों में इसी घनिष्ठता पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

जैसे पहिले संकेत किया गया है कि पंजाब की वीरप्रसू भूमि में एक ऐसा पथ चला आ रहा है जिसके द्वारा पंजाब को हिन्दी का सम्यक सान्निध्य अनायास ही सम्प्राप्त रहा है। यही कारण है कि स्वाधीनता के पश्चात् पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रभाव अधिकाधिक गति से बढ़ता जाता प्रतीत होता है। इस प्रतीति में भी सत्य के विश्वासनीय अंश अधिक मात्रा में प्राप्त है जिन का सम्यक समर्थन इस विगत दशक पर दृष्टिपात करने से भली भांति हो जाता है। इस प्रभाव के कतिपय कारणों का उल्लेख इस सन्दर्भ में समीचीन ही प्रतीत होता है।

गत सहस्राब्दी में यह एक दुःखद परिस्थिति रही है कि भारतीय आर्य भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल रहे, और उनका भरण पोषण या विकास पृथक् रूप से ही रहा। इस पार्थक्य को और भी उत्तेजना मिली जब आर्य भाषाओं को राजकीय सम्मान से वंचित कर विदेशी भाषाओं ने शासकीय पदवी ग्रहण कर ली। परिणामतः भारत की आर्य भाषाएँ मूक और एकाकिनी हो गईं। वे उच्छृङ्खल हो कर स्वेच्छया बढ़ती गई और एक दूसरी से दूर होती गईं। फ़ारसी, फारसी-पूर्ण उर्दू, अंग्रेज़ी इत्यादि विदेशी भाषाओं ने इन आर्य भाषाओं के सम्बन्ध में एक गर्हणीय व्यवधान का काम किया जो वर्षों की दासता के उपरान्त स्वतन्त्रता की प्रथम टंकार के साथ टूटने लगा। इस कृत्रिम व्यवधान के टूटने से आर्य भाषाओं को जैसे कारागृह से मुक्ति मिली हो। जिससे उनके सहमिलन में पुनःस्थापना होने लगी। दो बहिनों को कोई सौतेली किंचित् पृथक् तो कर सकती है परन्तु उनके जन्म-जात सम्बन्ध को छिन्न-भिन्न नहीं कर पाती। उन्हें जब अवसर मिलता है वे उत्कट उत्कण्ठा से मिलती है और जैसे एक पथ की पथिक होकर चलने लगती हैं। यही अवस्था पंजाबी भाषा की संस्कृत के साथ और हिन्दी के साथ दीख पड़ती है। ज्यों ही फारसी-उर्दू-अंग्रेजी का आवरण क्षीण होता है पृथक्कारी व्यवधान शिथिल पड़ता है, पंजाब और इसकी भाषा पंजाबी तथा प्रतिवेशिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का सहमिलन पुनः अबाधगति से बढ़ने लगता है। दस वर्ष के इस सहमिलन और सहगमन का पारस्परिक प्रभाव अनिवार्य था जिसके चिह्न प्रत्यक्ष रूप से हम देख रहे हैं।

इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता की समुपलब्धि के साथ यहाँ के विश्व विद्यालयों में हिन्दी की उच्च कक्षाओं को आयोजित किया गया। फलतः हिंदी और इसके द्वारा संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन को बहुत उत्प्रेरणा मिली। इससे पंजाब में हिंदी को प्रोत्साहन मिला और कई प्रकार की पुस्तकें संरचित और संकलित होने लगी। शिक्षा विभाग में पंजाबी के साथ साथ हिंदी को काफ़ी प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। स्कूलों, कालिजों में हिंदी की ध्वनियाँ प्रतिध्वनित होने लगीं। इस प्रकार गत दशक में पंजाब का वायुमण्डल हिंदी की रसीली झंकार से झंकृत हो उठा है। इसका प्रभाव पंजाब के जन-जीवन और भाषा पर स्वाभाविक ही था।

पंजाब के कतिपय भाषाविद कुछ संस्थाओं, सभाओं और साहित्यिक गोष्ठियों के द्वारा हिंदी प्रचार का सराहनीय कार्य कर रहे हैं। "पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन" "साहित्यकार परिषद् पटियाला" "संस्कृत विश्व परिषद् पंजाब" इत्यादि सुसंगठित संस्थाएँ इस कार्य में निरन्तर संलग्न हैं। जिससे इस दिशा में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है।

'आकाशवाणी' जालंधर के प्रति भी आभार प्रकट करना एक करणीय कर्तव्य की पूर्ति ही नहीं अपितु "सत्य" का प्रकाशन ही है। यह केन्द्र पंजाबी और हिंदी दोनों की अभिवृद्धि में इस प्रकार मनोयोग और तल्लीनता से कार्यरत है कि इन भाषाओं के प्रति सर्वसाधारण के हृदय में एक चाव और उमंग उमड़ रही है।

इन उपर्युक्त परिस्थितियों के हितकर एवं अनुकूल परिवेष्टन में पंजाब के जीवन, साहित्य, भाषा आदि अंशों पर हिंदी का जो प्रमुख प्रभाव पड़ रहा है, वह भी यहां सुतरां द्रष्टव्य है। पंजाब के किसी भी अवयव का अवलोकन कीजिये, इस परिवर्तित परिस्थिति का लक्षण अवश्य परिलक्षित होगा।

सर्व प्रथम पंजाब के जन-मन गण की रुचि को ही लीजिये। प्रत्येक पंजाबी के हृदय में हिंदी भाषा या संस्कृत के श्रवण, पठन और अध्ययन की उमंग एक क्षीण रूप में या उग्र रूप में अवश्य उभर रही है। कहीं स्वार्थ-परायणता हो, कहीं एतद्विषयक उत्कण्ठा हो, कहीं प्राचीनता के प्रति मोह हो, परन्तु वास्तविकता यही है। फल रूप पंजाब की मनोवृत्ति में हिंदी का स्थान स्थायित्व धारण करता जा रहा है।

सर्वसाधारण की इस उपरि-संकेतित मनोवृत्ति के अतिरिक्त पंजाब के साहित्य और पंजाबी भाषा पर हिन्दी और हिन्दी के द्वारा संस्कृत का प्रभाव बढ़ता दिखाई देता है। पंजाब में लेखकों, कवियों और साहित्यिकों की एक ऐसी श्रेणी का सहज उद्गम हो रहा है। जिनकी लेखनी हिन्दी-संस्कृत में ही दीक्षित होती है और इसी में ही सतत अभिरुचि रखती है। इस श्रेणी के अतिरिक्त पर्याप्त संख्या में ऐसे लेखक भी प्राप्य हैं जिन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ पंजाबी भाषा की साहित्य-सृष्टि से किया परन्तु अब हिन्दी के विस्तार में यथा संभव सहाय प्रदान कर रहे हैं। या यों कहें कि ये लेखक पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी के आकर्षण से भी आकृष्ट हो रहे हैं। उन में प्रो० सन्तसिंह सेखों, श्रीमती अमृता प्रीतम, उपन्यासकार सरदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानक सिंह, श्री करतार सिंह दुग्गल, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी आदि उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावों के प्रशस्त प्रयत्न अब इस दिशा में हो रहे हैं कि वे अपनी पूर्वोपलब्ध पुस्तकों को हिन्दी में स्वयं या किसी के सहयोग से अनूदित कर रहे हैं या मूल रूप से हिन्दी में लिखने के लिए कृतकार्य हैं। इन और अन्य साहित्यिकों का पंजाब में बड़ी तेजी से अनुकरण हो रहा है।

पंजाबी साहित्य के बहुविध पृष्टों में हिन्दी और हिन्दी साहित्य की देदीप्यमान छाप प्रकट रूप से पड़ती हुई दिखाई दे रही है। स्वातन्त्र्य-पूर्व पंजाबी साहित्य के विवेचन और विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इसके सहायक स्रोत प्रधानतया उर्दू, फारसी और अंग्रेजी की साहित्यिक कृतियां थीं जिनके विषयों, शीर्षको, विधाओं, वादों और साहित्यिक पद्धतियों की स्वतः अनुकृति होती रहती थी और जो पंजाबी साहित्यिकों का जैसे दिशा-निर्धारण एवं पथ-प्रदर्शन करती थीं। वे ही इस साहित्य के माप-दण्ड भी मानी जाती थीं। यद्यपि उल्लिखित भाषाओं में प्राप्त साहित्य अधुनापि पंजाबी साहित्य को प्रभावित कर रहा है तथापि इनके साथ हिन्दी के प्रति भी मोह उत्पन्न हो रहा है जिससे स्वभावतः हिन्दी साहित्य का प्रतिबिम्ब यत्र तत्र द्योतित हो रहा है।

इस दशाब्दी की अवधि में हिन्दी का प्रभाव जिस अंश में उग्र रूप से परिलक्षित हो रहा है वह है पंजाबी की पंजाबी भाषा विशेषतः साहित्यिक भाषा। पंजाबी साहित्यिक भाषा का जहां तक सम्बन्ध है हिन्दी या हिन्दी के द्वारा संस्कृत की प्रतिच्छाया स्पष्टतया पड़ रही है। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इस विषय में तनिक अवगाहन किया जाय तो पता चलता है कि पंजाबी भाषा का प्रत्येक अंग इस हिन्दी के संमोहन से परिव्याप्त हो रहा है। सवप्रथम हम पंजाबी भाषा की ध्वनियों को देखते हैं।

यह तो सर्वविदित ही है कि पंजाबी भाषा में अन्य प्रादेशिक आर्य भाषाओं की भांति तद्भव ध्वनियों की प्रचुरता रही और चल रही है। प्राकृत काल से लेकर पंजाबी भाषा में ऊष्म ध्वनियों स, श, ष के स्थान पर बहुधा दन्त्य स ही होता है। उदाहरणतया......सोग (शोक) दोस (दोष) देस (देश) पसु (पशु)। परन्तु अब हिन्दी के प्रभाव से तत्सम श ध्वनि के उच्चारण और अंकन का प्रसार हो रहा है। अब शोक, दोष, देश आदि तत्सम शब्द प्रचलित हो रहे हैं। इसी प्रकार अन्तःस्थ य की भी पंजाबी में अभिवृद्धि हो रही है अब तक य को ज में परिवर्तित किया जाता रहा है। युग के स्थान में जुग, योग का जोग योगी का जोगी. यत्न का जतन यग्ग (यज्ञ) का जग्ग आदि। परन्तु अब उनके साथ-साथ यतन (यत्न) युग, योग आदि चलने लगे हैं। व' ध्वनि भी व का स्थान ले रही है। वृत्ति, वाणी, वचन आदि बिरती, बानी वचन के साथ-साथ सुनाई देती हैं।

इसके अतिरिक्त संस्कृत की क्ष ध्वनि पंजाबी वक्ताओं के मुख में और साहित्य में दीख पड़ती है यद्यपि इसका उच्चारण पूर्ण रीति से तत्सम नहीं सुनाई पड़ता। कहीं ख्षा कहीं क्षा। रख्षा 'रक्षा) सुख्षम (सूक्ष्म) आदि प्रचलित हो रहे हैं। कदाचित साधारण जन 'रक्षा मन्त्री' को रिख्षा मन्त्री 'या' रिखशा मन्त्री कहते सुने जाते हैं।

''स'' से प्रारम्भ होने वाले संस्कृत के शब्दों के पूर्व, पंजाबी भाषा में अ, इ या उ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगम कर लिया जाता है यथा 'स्तुति' की 'उस्तुती' 'स्थिति' को 'इस्थिति' आदि। अब हिन्दी के प्रभाव से पंजाबी भाषी एवं पंजाबी साहित्यिक तत्सम रूप के निकट उच्चारण करने की ओर उद्यत हो रहे हैं। लिखने में सथान (स्थान) सथिती (स्थिति) आदि को तरजीह दी जा रही है।

पंजाबी भाषा की कतिपय ध्वनियों के इस विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिंदी का सान्निध्य तत्सम ध्वनियों को पुन: जीवित करने में सचेष्ट है।

ध्वनि-समूह की इस संक्षिप्त विवेचना के पश्चात् अब हम रूप विचार (Morphology) की ओर आते हैं।

भाववाचकत्व के वाचक पंजाबी प्रत्यय विविध रूप से प्राप्य हैं:—गी, पण, पुणा, ताई, अत्त (स्पुर्दगी मुखपुणा, मूर्खताई, पंडताई, काबलीयत) आदि। परन्तु विगत, नौ-दश वर्षों में जैसे जैसे हिंदी प्रधान साधनों तथा कारणों का नैकट्य बढ़ रहा है तत्सम प्रत्यय—ता का प्रयोग भी बढ़ रहा है। यहां तक कि इस प्रत्यय ने अनाधिकृत सीमा में प्रवेश प्रारम्भ कर लिया है। मूखता, सरलता, सफलता आदि में–ता का प्रयोग व्याकरणानुकूल है परन्तु गौरवता, उद्गारता आदि में अनाधिकार चेष्टा है। इस चेष्टा से और कुछ हो न हो, यह संकेत अवश्य मिलता है कि तत्सम रूपात्मक तत्वों का पंजाबी में किस उत्सुकता से आगमन हो रहा है।

संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए पंजाबी में फारसी आदि के ई आदि प्रत्यय अधिकतर प्रयुक्त होते थे परन्तु अब तत्सम--क का भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलन हो रहा है। 'समाजी' भी 'समाजक' (सामाजिक) भी।

इसी प्रकार भूत कृदन्त वाले तत्सम प्रत्यय—त का भी पंजाबी भाषा पर प्रभाव पड़ रहा है। पहिली परिपाटी के अनुसार पंजाबी में भूत कृदन्त के रूप त—अन्त नहीं होते अपितु अधिकतर आ—अन्त या ई—अन्त होते हैं। उदाहरणतः लिखिआ, (लिखित) चलिया (चलित) मिलिया (मिलित) रचिआ (रचित) आदि। परन्तु इन वर्षों में तत्सम की ओर रुचि बढ़ती दिखाई देती है जिससे—त की प्रियता बढ़ रही है। लिखित, कृत, रचित, कथित उक्त आदि का प्रयोग यत्र तत्र प्राप्त है। यह इस तथ्य का परिचायक है कि किस प्रकार तत्समता के प्रति आकर्षण हो रहा है।

पंजाबी के परसर्गों में तो अभी विशेष तत्सम प्रवृत्ति का आभास नहीं मिलता। हां, दो-चार अन्य तत्सम परसर्ग पंजाब की भाषा में प्रयुक्त हो रहे हैं। उदाहरणतया "प्रती (प्रति)। परन्तु उपसर्गों का प्रवेश काफी मात्रा में होता दिखाई देता है। अनु, वि, निषेधात्मक अ, निर्, सु आदि तत्सम या तत्समास रूप में ग्रहण किये जा रहे हैं। अनुसार, अनुकूल, वियर्थ (व्यर्थ) विदेशी, अ—हिल्ल (अचल) सुदर्शन, सु—विकसित, निरसंकोच (निःसंकोच) निरसन्देह (निःसन्देह) आदि कुछेक ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पंजाब की विगत दो-ढाई शतियों की भाषा फारसी-अरबी या तद्भव क्रिया विशेषणों से ही लदी हुई रही है। परन्तु हर्षोल्लास के साथ देखा जाता है कि अब पंजाबी विशेषतः साहित्यिक पंजाबी में तत्सम रूप लिये कई क्रिया विशेषण प्रयोग में आ रहे हैं। शीघर (शीघ्र) कदाचित (कदाचित्) अधिक,—पूर्वक, उपरन्त (उपरान्त) आदि उद्धृत किये जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी भाषा के अन्य सभी अंगों की अपेक्षा इसकी शब्दावली में तत्सम प्रवृत्ति प्रबल रूप से दृष्टिगत होती है। शब्द-कोष के उस भाग को छोड़ कर जो पंजाबी का मूल शब्द कोष है जिसका व्यवहार अधिकतया अशिक्षित जनता में होता है और जिसमें फारसी-अरबी इंगलिश के शब्द अविच्छिन्न और अविभिन्न रूप से तद्रूप हो गये हैं, अवशिष्ट भाग में तत्सम शब्द-समूह अनायास ही व्यवहृत हो रहा है और जिसका विस्तार प्रतिदिन विकासोन्मुख प्रतीत होता है। तनिक पैनी दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो विज्ञात होगा कि उर्दू के माध्यम से प्रविष्ट फारसी-अरबी की कृत्रिम-शब्द-राशि शनैः शनैः परित्यक्त की जा रही है। जिसका स्थान आर्य तत्सम या आर्य तद्भव शब्द ग्रहण कर रहे हैं। यद्यपि इस दिशा में कुछ विरोधी मत अभी चल रहे हैं जो ठेठ बोली के नाम पर उर्दू की शब्दावली का महत्व अभिव्यक्त करते हैं तथापि यह आश्चर्य की बात है कि वे स्वयं ही अब तत्समता की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। भला ! निकट परिवेष्ठन से पृथक् कैसे रहा जाय। अतः यह कहना असंगत न होगा कि पंजाबी भाषा के शब्द-समुदाय में तत्सम शब्द काफी सख्या में व्यवहृत होने लगे हैं।

इस प्रसंग में एक बात और भी बड़ी रोचक है कि तद्भव शब्दों का जैसा शुद्धीकरण होने चला है; पंजाबी के अनेक तद्भव शब्द तत्सम रूप धारण कर रहे हैं। संभवतः इसका प्रमुख कारण है शुद्ध शब्दों से परिचय। जैसे जैसे इस प्रकार का परिचय बढ़ रहा है यह प्रवृत्ति भी विस्तृत होती जा रही है। निमसकार के स्थान में नमसकार (नमस्कार) अनिन्न की बजाय अनन्न (अनन्य) भ्रिष्टाचार की बजाय भ्रष्टाचार आदि कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता के आगमन से पंजाबी भाषा के प्रति पंजाबी भाषियों की जागरूकता उत्पन्न हुई है। अब शिक्षा क्षेत्र में पंजाबी की उच्च कक्षाओं का श्रीगणेश हो चुका है। विविध विषयों पर पंजाबी में पुस्तक-पुस्तिकाएं लिखी जा रही है। उन नवीन और आधुनिकतम विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने के लिए पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता का अनुभव होता है क्योंकि पंजाबी की परम्परागत शब्दावली इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अभी अशक्त पाई जाती है अतएव किसी अन्य सुविकसित भाषा की शरण लेनी पड़ती है। वह भाषा पंजाबी की पूर्व-परिचित और निकटवर्तिनी ही होनी चाहिये। फारसी अब दूर जा रही है। उर्दू क्लिष्ट प्रतीत होने लगी है। एतादृश द्विविधा में संस्कृत-हिन्दी की ओर जाना ही एक मात्र हितकर एवं श्रेयस्कर मार्ग कहा जा सकता है जिसका अनुसरण सहर्ष देखा जा रहा है।

इस पूर्वोक्त विचार—विमर्श से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि पंजाब में हिन्दी ने विकास के बड़े-बड़े डग भरे हैं जिस से उसका भविष्य नितान्त उज्ज्वल है। परन्तु इसका यह भाव नहीं है कि हिन्दी की इस समृद्धि ने यहां की पंजाबी भाषा और साहित्य को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाई है। बल्कि इसके विपरीत देखा यह जाता है कि हिन्दी की सन्निकटता से पंजाबी भाषा और साहित्य में संतोषजनक प्रगति हुई है। इसी समीपता का फल है कि पंजाबी अपनी आवश्यकताओं को बिना कठिनाई के पूर्ण कर रही है और अपनी समुन्नति के पथ पर दृढ़ रूप से आरूढ़ है। आशा की जाती है कि पंजाब में हिन्दी तथा पंजाबी दोनों भाषाएं अपनी अपनी रीति से पुष्पित और फलित होकर निजी परम्परा को स्थिर रखने में सर्वथा सेवारत रहेंगी। ❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब का छिपा हुआ हिन्दी साहित्य :

लेखक—
श्री प्रेमप्रकाश जी शर्मा एम० ए०
भाषा विभाग पटियाला

आज के विक्षुब्ध राजनैतिक वातावरण में चाहे कैसी भी भ्रांतिमूलक धारणाएं प्रसारित की जाएं किन्तु वास्तविकता यह है कि पंजाब प्रदेश की यह शस्य श्यामला भूमि हिंदी और हिंदी साहित्य के लिए तथाकथित हिंदी-भाषी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक उर्वर भूमि बनी रही है। मेरी इस धारणा का अकाट्य प्रमाण है पंजाब के विभिन्न नगरों, कस्बों और ग्रामों में भारी परिमाण में प्राप्त होने वाला वह हस्तलिखित हिंदी-साहित्य, जो अनेक कारणों से अभी तक साहित्यालोचकों के विवेचन का विषय नहीं बन सका, और जिसका उद्धार होने पर संभवत: समूचे हिंदी साहित्य में मूल्यांकन सम्बन्धी कुछ एक समायोजन (Adjustments) करने पड़ें।

उक्त अप्रकाशित रचनाएं अधिकतर पटियाला, अमृतसर, जालन्धर, नाभा, कपूर्थला आदि नगरों के निजी एवं राजकीय पुस्तकालयों में उपलब्ध होती हैं। किन्तु इसके लिए महन्तों एवं साधुओं के डेरे तथा प्राचीन पण्डितों और ज्ञानियों के बन्द बस्तों की छानबीन भी अपेक्षित है। इन में से बहुत से हस्तलिखितों की तो बहुत ही दयनीय दशा है। बहुत सी पुस्तकें तो जर्जरित हैं। उनके पन्ने या तो नष्ट हो चुके हैं या फिर हाथ से छूते ही झर से जाते हैं। परिणामत: आज बहुत से अमूल्य ग्रंथ अधूरे हैं। कुछ एक में प्रक्षिप्तांश पर्याप्त मात्रा में आ गया है। बहुत सी रचनाओं की चर्चा तो मिलती है किन्तु मूल पुस्तक का कुछ पता नहीं चलता। इन को ढूँढने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज इन रचनाओं के सम्पादन का काम बहुत ही दुष्कर है।

पंजाब में रचित इन हस्तलिखितों के प्रकाश में न आ सकने का एक कारण बहुत सी पुस्तकों का गुरुमुखी लिपि में लिखा होना है। पंजाब के बहुधा राजा या तो स्वयं सिक्ख थे या फिर थोड़ा बहुत सिक्ख धर्म से प्रभावित थे। इन रचनाओं की भाषा उस समय पंजाब की साहित्यिक भाषा-व्रज है किन्तु लिपि देवनागरी और गुरुमुखी। बहुत से ग्रंथ तो समूचे देश में गुरुमुखी लिपि के अधिक व्यापक न होने के कारण अछूते पड़े रहे। न हीं व्रज भाषा होने के कारण इन्हें कोई स्थान मिला। किन्तु फिर भी देवनागरी लिपि में लिखित अनेक साहित्यिक कृतियाँ थीं, जिनका उद्धार अब तक हो जाना चाहिए था। अत एव इस ओर प्रगति न होने का कारण केवल गुरुमुखी लिपि नहीं; अपितु पंजाब प्रदेश के साहित्यकारों की उपेक्षा और उनकी निजी आर्थिक कठिनाईयां विशेष रूप से कारण बनीं।

हर्ष का विषय है कि पंजाब में रचित हिंदी साहित्य बहुमुखी है। इस विशाल और बहुमुखी साहित्य को विश्लेषण की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. श्री कृष्ण तथा महाभारत सम्बन्धी साहित्य २. श्री राम साहित्य ३. रीति साहित्य ४. धार्मिक साहित्य ५. वीर साहित्य ६. उपदेशात्मक साहित्य ७. गुरु-महिमा साहित्य ८. गद्य साहित्य।

(१) *कृष्ण साहित्य*–इस साहित्य की प्रमुख रचनाएं और लेखक हैं–बसन्त सिंह ऋतु राज (कृष्ण लीला), गोविंदानन्द खण्ड (रसिक गोविन्द), साधु अमीरदास (श्री कृष्ण साहित्य सिंधु), आलिम कवि (श्याम स्नेही), चन्द्रशेखर वाजपेयी (वृन्दावन शतक), जातीराम (रुक्मिणी मङ्गल) केशवदास—२ (बारह मासा कृष्ण जी का), उमादास (सुदामा चरित), किशोरदास (भगवद्गीता), साधु गोविन्द दास (श्रीमद्भगवद्गीता) इन सभी पुस्तकों में प्रायः श्री कृष्ण का रूप वही लोकप्रिय मन मोहन और नट नागर लिया गया है—देखिए अभिसार के लिए जा रही राधा को, जिसके सौन्दर्य की आभा से देवते और दानव तो आकर्षित हुए हैं, स्वयं कवि भी मस्त हो उठा है—

अतर औ गुलाब गोरी रोरी लायो अंग अंग,
निसा में गुपाल लाल खोजती है केलि कै।
भूसन बसन मोती हेम हीरा जोति देखी,
पीछे परे लाग आयो देव दैत मेलि कै।
भने कवि ब्रह्म ताकि अंग कै सुगन्ध आयो,
जैसा क्योरा केतकी कपूर के फुलेलि कै।
छैलन छबीली पाय छरे गई छोभ मोंहि,
काम अभिसार का सो ध्यान जोग पेलि कै।

किन्तु जैसा कि उपरिलिखित लेखकों एवं कृतियों से स्पष्ट है कि पंजाब के कवियों ने कृष्ण को गीतोपदेशक, ज्ञानी तथा कर्मयोगी रूप पर भी खुलकर लेखनी चलाई। यद्यपि ज्ञान एवं कर्म योग का स्तर वैसा ऊँचा नहीं रह सका जैसा कि संस्कृत साहित्य में, फिर भी भगवद्-गीता को आधार मान कर दो चार कृतियां अच्छी हो पाई हैं।

महाभारत की कथाओं को लेकर भी बहुत सी रचनायें रची गई। इनका आधार महर्षि व्यास द्वारा रचित "महाभारत" ही है किन्तु कवियों ने अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति का भी उपयोग किया है। ऐसे लेखकों में उमादास (अश्वमेध पर्व, स्वर्गारोहण पर्व, मौसल पर्व, महा प्रस्थान पर्व, एवं गदा पर्व), चन्द स्वर्णकार (उद्यम [उद्योग] पर्व), निहाल कवि (दान पर्व) आदि प्रमुख हैं।

(२) *राम साहित्य*—मर्यादा के बन्धनों में बन्धा होने के कारण राम साहित्य मुक्त प्रेम का विषय न बन सका। श्री कृष्ण जनप्रिय रीति कवियों के हाथों में सामान्य नायक बन गए किंतु श्रीराम का जो मर्यादापुरुषोत्तम स्वरूप गोस्वामी तुलसीदास जी ने बना दिया उसे बदलने का साहस बाद के कवि भी न कर पाए। यह बात पंजाब के राम साहित्य के लेखकों पर भी पूरी उतरती है। उनके राम भी गोस्वामी जी के राम की भांति सर्वतोमुखी आदर्श हैं राम साहित्य के लेखकों में कीर्तिसिंह (अनूप रामायण), साधु गुलाबसिंह (राम गीता), निहाल कवि (रामायण राम चन्द्रोदय), बसावा सिंह (राम चरित रामायण) उत्कृष्ट लेखक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) *रीति साहित्य*—पंजाब के कवियों ने रीति ग्रंथों की तो भरमार ही रच डाली। संभवतः सब से अधिक ग्रंथ रीति सम्बन्धी ही हैं। ये ग्रंथ रीति काल की परिपाटी पर ही लिखे हुए हैं अधिकतर लेखकों को राज्याश्रय प्राप्त था। अतः एक तो उनके आश्रय दाताओं की विलास तृप्ति के लिए ही इन ग्रंथों की रचना हुई। कृष्ण को साधारण नायक बनाकर नाना प्रकार की रंगीन एवं रस भीगीं पिचकारियाँ छोड़ी गई। बारह मासा इस काल की विशेष रचना रही है। नायिका-भेद को बड़े विस्तार से लिया गया। देखिए मुग्धा नायिकाओं की रमणीयता, उनका भोलापन, हाव-भाव-सभी आकर्षक हैं—

थोरी थोरी बैस वारी नवल किसोरी सबै,
भोरी भोरी बातन बिहँसि मुख मोरतीं॥
वसन विभूषण विराजत विमल वर।
मदन मरोरनि तरकि तन तोरतीं॥
प्यारे पातसाह को परम अनुराग रँगी।
चायलभरीं चायल चपल दृग जोरतीं॥
काम अवला-सी कलाधर की कला-सी चारु।
चम्पक लता सी चपला सी चित चोरतीं॥

रीति साहित्य के प्रमुख लेखक हैं—गुलाब नबी (रस प्रबोध), केशवदास—२ (अष्ट नायिका), जोरावरसिंह (रसिक प्रिया), साधु अमीरदास (नवरस संग्रह) एवं ब्रज विलास सतसई), दलसिंह (आनंद सतसई) आदि।

इसके साथ अलंकार और छंद भी पञ्जाब के प्रिय विषय रहे हैं। कुछ एक कृतियाँ तो बहुत ही सुन्दर स्पष्ट है। इस विषय में टहलसिंह (अलंकार सागर सुधा) गिरिधरलाल (पिंगल सार), हरिरामदास (छन्द रत्नावली) आदि श्रेष्ठ लेखक हुये हैं।

(४) *धार्मिक साहित्य*—धर्म से तो शायद् पंजाब के किसी भी हिन्दी साहित्यकार को जुदा न किया जा सके। सिक्ख गुरुओं ने पंजाबियों को धर्म के प्रति उन्मुख करने में काफी योग दिया है। अतएव इन साहित्यकारों ने भी धर्म के बारे में कुछ न कुछ लिखा ही है। कृष्ण और राम साहित्य तो धर्म के अन्तर्गत है हीं। प्राचीन संस्कृत धार्मिक ग्रन्थों पर भी टीकाएँ इसी वर्ग में आएँगी। इस विषय में साधु गुलाबसिंह, गोबिन्ददास, निहाल कवि, रामश्याम कवि, जयमलसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(५) *वीर साहित्य*—वीर साहित्य में गुरु गोविन्दसिंह जी की "चण्डी की वार" प्रसिद्ध रचना है। उनकी प्रेरणा से उनके बावन कवियों ने वीरता सम्बन्धी अच्छा साहित्य लिखा। इस तरह के साहित्य में "महाराजा अमरसिंह की बार" और "हम्मीर हठ" बहुत श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। महाराजा अमीरसिंह की बार में वीरोत्साह का उदाहरण उल्लेखनीय है—

अमर सिंह चढ़ चल्यो भूप। अति तेजवन्त सुन्दर सरूप॥
जहां बज्यो दमामा घोर वार। सभ चढ़ी सैन शसतर संभार॥
× × ×
चढ़यो महाराज बज्यो सबल डंका। मानो रामदल चल्यो तोरन सुलंका।
छूटे तोप सुकोप परे गोले। मानो पके फल बरखत ओले॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चन्द्रलोक, जवाहर नगर
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दिल्ली द्वारा
गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय को
भेंट

गहे सूर किरपान अरु तेज कत्ती। चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती॥

(६) *उपदेशात्मक साहित्य*—पंजाब में उपदेशात्मक साहित्य की भी काफी रचना हुई है। इसके प्रमुख लेखक हैं—कीर्तिसिंह, बसावासिंह, साधु गुलाब सिंह, गोबिन्ददास, सन्तरेण जी, निहाल कवि, अमीर दास आदि हैं। कुछ एक सूक्तियां तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन पड़ी हैं। जैसे—

इह जगि मीतु न देखिओ कोई।
सकल जगतु अपनै सुख लागिओ दुःख मैं संगि न होई।
दारा मीत पूत सम्बन्धी सगरे धन सिव लागे।
जब हि निरधन देखि ओ नर कउ संगु छाड़ि सभ भागे॥

(७) *गुरु महिमा*—पंजाब की गुरु भक्ति भी अतुलनीय है। इस प्रकार का साहित्य भी काफी मिलता है। प्रायः लेखकों ने गुरु-महिमा की ही है। इस प्रकार के साहित्य में गुरुओं के प्रति असीम श्रद्धा दिखलाई गई है। जैसे—

चारों चक्क सेवैं गुरु-गोबिन्द तिहारे पाँय,
मेरे जाने आज तू ही, दूजो करतार है।
प्रबल प्रचण्ड खण्ड खण्ड महि मण्डल माँहि,
सांचो पातसाह जाको सांचो सिर भार है॥

× × ×

परम उदार पर-पीर के हरन हार,
कौन जाने कौन भांति लीनो अवतार है।

(८) *गद्य साहित्य*—गद्य साहित्य की दृष्टि से पंजाब को यह गौरव प्राप्त है कि आचार्य शुक्ल के मतानुसार हिंदी गद्य का पहला परिष्कृत और सुसंस्कृत रूप निरंजनी के योग वासिष्ठ में ही मिलता है। इसके अतिरिक्त रामचरित मानस, भागवत और कई एक पुराणों की सुन्दर टीकाएं गद्य के रूप में यहां उपलब्ध होती हैं। चौबीस अवतारों की कथा, कथा राजे फूल की, नृप कन्या की कथा आदि भी उल्लेखनीय कृतियां हैं।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान बहुमूल्य है किन्तु अभी तक इसे स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु हर्ष का विषय है कि पंजाब के कुछ एक ख्यातनामा साहित्यकार इस ओर दत्तचित्त हुये हैं जिनमें प्रो० संसारचन्द, डा० सरनदास भनोत, श्री त्रिलोकीनाथ रंजन, ओंप्रकाश आनन्द, शमशेर सिंह अशोक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रो० संसार चन्द जी के पथप्रदर्शन का ही यह फल है कि यह लेखक भी इस ओर आकृष्ट हुआ है। उन्हीं के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलते हुये हिन्दी साहित्यकार परिषद् पटियाला की ओर से शीघ्र ही श्री दलसिंह द्वारा रचित "आनन्द सतसई" और श्री अमीरदास द्वारा विरचित 'ब्रजविलास सतसई' का संग्रह "सतसई युगल" के नाम से प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादन का भार मुझे और श्री त्रिलोकीनाथ रंजन को उठाना पड़ रहा है। आशा है कि हिन्दी के दूसरे साहित्यकार भी इस ओर यथोचित ध्यान देकर इस अप्रकाशित साहित्य का उद्धार कर राष्ट्रीय भाषा के कोश को समृद्ध करेंगे। *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमी कालेज लाहौर की राष्ट्रभाषा हिन्दी को देन :

हिन्दी के क्रान्तिकारी रूप का संदेशहर–राष्ट्रीय नाटक समाज

लेखक–
स० यशवन्तसिंह जी नैशनल बी. ए.
न्यू दिल्ली ।

असहयोग आन्दोलन को यदि भारत में नव जागृति काल कहा जाय तो अनुचित न होगा। इस क्रांति कारिणी जागृति में जो भाग लाहौर के नैशनल कालेज ने लिया वह विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। इस कालेज में सभी वर्ग और जातियों के विद्यार्थी थे। उन में से कुछेक ने तो भारत को स्वतन्त्र कराने तथा हिन्दी भाषा की जो सेवा की है, वह भारत के साहित्य और स्वतन्त्रता युद्ध के इतिहास में सदा चमकती रहेगी। हिन्दी भाषा किसी जाति विशेष की नहीं परन्तु सभी भारतवासियों की राष्ट्र भाषा है। कौमी कालेज ने इसको किसी धर्म विशेष के छोटे दायरे से निकाल कर राष्ट्र के बड़े दायरे में:–जहां सभी जातियाँ और धर्म हैं:—लाने का बीड़ा उठाया और उसे इतने सुन्दर व सुचारु ढंग से किया बावजूद हिन्दी के प्रति पंजाबियों की उदासीनता के; कि हिन्दी के आंदोलन को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँची। बल्कि दिन प्रति दिन हरमनप्यारी व लोकप्रिय होती गई। उस समय भारत में अंग्रेजों का शासन था। और उन की भाषा अर्थात् अंग्रेजी भाषा ही राष्ट्र भाषा मानी जाती थी। उन्हें हिन्दी को प्रोत्साहन देने की भला क्या जरूरत थी। तब कुछ लोग जो हिन्दी का प्रचार भी करते तो 'हिन्दी, हिन्दू', हिन्दोस्तान के नारे को लेकर करते। जिस से कि हिन्दी का प्रसार हिन्दुओं में तो पता नहीं कहाँ तक होता था; पर अन्य धर्मावलम्बियों पर इसका विपरीत ही असर होता था। किसी भाषा को हम किसी धर्म क्षेत्र में रख कर उस की आयु तो भले ही बढ़ा दें; पर उसको हम विकसित कदाचित नहीं कर सकते।

लाहौर नैशनल कालेज की "राष्ट्रीय नाटक समाज" जो कहने को तो नाटक खेलती थी पर ध्येय था उस का जन साधारण में क्रांतिकारी विचारों को हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा पहुँचाना। अत्यन्त कठिन कार्य था; एक तो विदेशियों को भारत से बाहर निकालना और दूसरे उस भाषा को अपने प्रचार का साधन बनाना जो कि जनता में बहुत ही कम बोली जाती थी। इस के लिये वह हताश नहीं हुए, उन्होंने नाटक ही ऐसे चुने जिनको जनता ने बहुत पसन्द किया। 'भारत दुर्दशा', 'महाराणा प्रताप', 'दुर्गादास', अगाहशर काश्मीरी का 'महाभारत' इत्यादि। इन को रुचिकर बनाने के लिये इन में पंजाबी के दो प्रसिद्ध गीतों का "असा वसना वे वसना; हिन्द साडा घर बार", "तूसां नसनां वे नसना छोड़ के आखिर कार" तथा "कदे तू भी हिन्दीयाँ होश संभाल ओये, होश संभाल ओये, लुट्ट गया माल ओये, कदे तू भी·······" का समावेश किया गया। थोड़े ही समय में यह मंडली बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इस को कई स्थानों से नाटक खेलने के लिये निमन्त्रण आने लगे। जड़ांवाला गुजरांवाला तथा मुलतान में नाटक खेले गये। नाटकों के हाव भाव, भाषा, अभिनेताओं के प्रदर्शन ढंग और उस पर अंग्रेजों को सीधी चुनौती, "*तूसां नसना वे नसना छोड़ के आखिरकार*" एक ही रात में हमें फिर कीजिए (Oncemore) का आनन्द उठाने देते। दूसरी रात कभी आई ही नहीं, अगले दिन तक ही पुलिस कर्मचारी नुक्से अमन के खतरे का परवाना ला देते। हमारे दर्शकों को निराशा होती पर हम गर्व से फूल उठते। हिन्दी प्रचार के साथ ही साथ यह मंडली वहाँ के लोगों के दिलों पर राज्य क्रांति की भी छाप छोड़ जाती।

हमारे दर्शकगण किसी समाज या धर्म विशेष से सम्बन्ध न रखते थे। उनमें मुसलमान, सिक्ख और हिन्दू सभी लोग थे।

शुरु-शुरु में तो हम लोग अन्य लेखकों के नाटक खेलते रहे, पर बाद में श्री पंडित जयचन्द्र जी विद्यालंकार, जो पंजाब में क्रांतिकारी लहर के बानी थे; और इस नाटक योजना के जन्मदाता थे ने एक और योजना बनाई। अनुभव ने बताया कि अन्य लेखकों के नाटक खेलने से हमें अपने ध्येय की शत प्रतिशत पूर्ति नहीं हुई। बहुत सा समय व्यर्थ जाता। बहुत सा रुपया खर्च होता जो कि हमें सब से ज्यादा अखरता। नाटक खेलने में हमें अभिनय का बहुत ध्यान रखना पड़ता। अच्छा अभिनय करने वाले विद्यार्थियों की, पार्टी में कमी थी। पर इस नयी योजना में इन सब झंझटों से छुटकारा हो गया। एक कवि की कविता पाठ करने की नकल उतारना कहीं आसान है, बनिस्बत कि एक ड्रामा के नायक, सुखांत और दुःखांत के पार्ट अदा करने के, नाटक अभी तक रात में ही खेले जाते थे। जिससे कि सारी रात ही बरबाद हो जाती। तब तक किसी लेखक को खुलानाटक घर की (ओपन थियेटर) सूझ नहीं सूझी थी। इस नयी योजना में हम दिन में जिस समय भी चाहें नाटक खेल सकते थे। पर्दे, सीन, सीनरी, के बनवाने तथा किराये भाड़े पर लाने की जरुरत न पड़ती। और फिर उस समय हिन्दी में हमारे ध्येय को पूरा करने वाले रंग मंच पर खेलने योग्य नाटक बहुत ही कम थे जो स्टेज पर लाये जा सकते थे। उन की भाषा में हिंदी की अपेक्षा उर्दू भाषा प्रधान रहती। नाटकों के पात्र सभी या तो काल्पनिक तथा स्वर्गवासी महापुरुष होते थे। उनको स्टेज पर अभिनीत करना बहुत कठिन होता। कोशिश करने के बावजूद भी जनता दर्शकों पर स्थाई-प्रभाव नहीं पड़ता था, जितना कि किसी जीवित महापुरुष या कवि के लिखे अभिनय नाटक करने से पड़ता। मिसाल के तौर पर शिवाजी, महाराणा प्रताप, भगवान् कृष्ण के पार्ट के लिये हमें बहुत ही मँजी हुई भाषा और उच्च कोटि के अभिनय की जरूरत होती है; पर किसी भी जीवित महापुरुष का पार्ट अदा करने के लिये हमारे सामने भाषा घड़ने का प्रश्न ही नहीं आता। उन्हीं की भाषा को लेकर पढ़ दिया जाता है। हम में से बहुतों ने बापू (महात्मा गांधी जी) को भाषण देते सुना है। उनके उच्चारण तथा शब्दों का भी हमें पता है। कोई भी व्यक्ति थोड़ी सी सावधानी से उनके शब्दों तथा हाव भाव, भाषण शैली को भली प्रकार अदा कर सकता है जैसे की एक सभा में बापू जी उपदेश दे रहे हैं "मी केता हूँ कि तुम सभी बहन भाई चरखा कातो तो मी शराज देता हूँ तुम छुआछात छोड़ो, तुम पंचायत करो............।"

एक व्यक्ति अच्छा सिपाही हो सकता है पर जरुरी नहीं कि वह अच्छा अभिनेता भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। इस नयी योजना में (एक्टिंग-अभिनय शैली) को भली प्रकार न समझने वाले विद्यार्थी भी आ सकते थे।

यह योजना थी राजा भोज का दरबार। इस में किसी साधारण व्यक्ति को राजा भोज बना लिया जाता था और अन्य विद्यार्थी नवीन और प्राचीन कवियों के रूप में भोज के दरबार में हाजिर होते और बारी-बारी से अपनी कविता सुनाते। इन हिन्दी कवि गण के साथ-साथ पधारते पंजाब के ग्रामीण कवि भी; और "कदीं तू भी हिन्दियाँ" तथा अन्य राजनैतिक कविताएं सुनाते, और हिन्दी कवियों के बराबर ही आदर पाते।

राजा भोज के इस दरबार अथवा हिन्दी भाषा में इस नये ढंग से अभिनय प्रदर्शन ने पंजाब के उर्दू के शैदाइयों को चकाचौंध कर दिया। उन के विचार में जो जोश, बलबले, जज़बात, और तख्यलिय उर्दू भाषा में है वह भला हिन्दी में कहाँ! पर जब वह राजा भोज के दरबार में पहुँच कर सुनते—

"रण चण्डी फिर जाग कि वैरी वैरानल कोप जगाते हैं।
हम घर-घर अधीर हुए फिर धूर्त दाँत दिखलाते हैं॥
× × × ×
मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक॥
× × × ×
खूब लड़ी मरदानी वोतो झाँसी वाली रानी थी।
बुन्देले हर बोलों के मुख, हमने सुनी कहानी थी॥

तब उन्होंने देखा कि उर्दू भाषा ने दरियों को कूज़े में बन्द किया था और हिन्दी की तो गागर में सागर समाया हुआ है। हिन्दी के प्रति मस्तक झुक गया। उन्होंने भविष्य में हिन्दी का अध्ययन करने की प्रतिज्ञा की। कुछ लोग जो पहले इस नयी पद्धति की सफलता पर आशंकित हुए थे जल्दी ही फिरोज़पुर तथा देहरादून की सफलता से उनका भ्रम दूर हुआ। वहाँ पर भी अंग्रेज़ी सरकार की कृपा से राजा भोज का यह दरबार भी नुक्से अमन बन गया। मुझे अन्य प्रान्तों का ज्ञान नहीं, पर पंजाब में तो अंग्रेज़ सरकार सब से ज्यादा नुक्से अमन का खतरा पंजीबी भाषा में, फिर उर्दू में और अंग्रेजी भाषा में देखती थी। हिन्दी भाषा को वह पंजाब के लिये बिलकुल ही निर्जीव समझती थी। यू. पी. में बन्दी जीवन ज़ब्त कर दिया था। पर पंजाब में इस की बिक्री पर कोई इतराज़ नहीं था। इस प्रकार नैशनल कालेज लाहौर जो असहयोग अन्दोलन की उपज था, ने हिन्दी को पंजाब की जनता के सामने एक नये रूप में ला कर रख दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी साहित्य निर्माण

पद्य-गद्य साहित्य

का

क्रमिक-विकास-विवरण

पंजाब में ब्रिटिश शासन काल में—सामाजिक, धार्मिक सुधार के लिये ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, देवसमाज, सनातन धर्म, जैन, आदि विचारों के लेखकों ने अपनी अपनी विचारधारा को फैलाने के लिये हिन्दी में रचनाएँ कीं। इस काल में हिन्दी पद्य साहित्य विकास में ५ क्रम दिखाई देते हैं। १. हिन्दी उर्दू साहित्य से सुपरिचित सुधारक सन्त कवि श्री श्रद्धाराम जी फुलेरी, श्री अमीचन्द जी आदि। २. अंग्रेजी, संस्कृत के हिन्दी विद्वान् श्री पं० चमूपति जी, श्री बुद्ध देव जी विद्यालंकार, श्री बंशीधर जी विद्यालंकार आदि। ३. राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर कविता करने वाले श्री स्व० पं० चेतराम जी शर्मा जालन्धर कन्या महा विद्यालय, श्री उदयशंकर जी भट्ट, श्री हरिकृष्ण जी प्रेमी आदि। ४. सामाजिक, क्रान्तिकारी साहित्य सम्बन्धी विषयों पर श्री करुण जी (करुण सतसई) श्री देवराज दिनेश, श्रीमती पुरुषार्थवती आर्य। ५. प्रगतिवादी—यथार्थवादी नये छन्द, भाव-भाषा विचारों में नवीनतम विचारधाराओं को अपनाने वाले—श्री परमानन्द जी, श्री अरुण जी श्री जयनाथ जी नलिन आदि। इन कालों की प्रतिनिधि रूप कुछ कविताएँ यथा स्थान इस विभाग में दी जा रही हैं।

भीमसन विद्यालंकार सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबेला पंजाब

यह सरसों क्यों नाच रही है?
मेरा धीरज जाँच रही है।
मैं कुछ दिखलांवा न किया था।
धीरज का दावा न किया था॥
जहाँ कहेगी लोट पड़ूँगा।
या कुछ करके ओट पड़ूँगा॥
दिल मेरा पर कब मानेगा।
आखिर चलने की ठानेगा॥
मुझे हो गई बीमारी है।
यहाँ दवा की तैयारी है॥
प्रकृति लाडला रण में बाँका।
पाँच लड़ा गजरा दुनियाँ का॥
अलबेला पंजाब खिला है।
ढूंढ़े भी मुझको न मिला है॥
यहाँ प्रकृति भी मद में माती।
हरी भरी जगमग इठलाती॥
जिसने देखी नाट्य कला है।
और न हाथों दिल निकला है॥

बुद्धदेव विद्यालंकार

ॐ जय जगदीश हरे प्रभु जय जगदीश हरे

भक्त जनों के संकट छिन में दूर करे॥ॐ॥

जो ध्यावै फल पावे, दुःख विनसे मनका। प्रभु०
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तनका॥ॐ॥

मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी। प्रभु०
तुमबिन और न दूजा, आस करूं जिसकी॥ॐ॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी। प्रभु०
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी॥ॐ॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता। प्रभु०
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्त्ता॥ॐ॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती। प्रभु०
किसविधि मिलूं दयामय मैं तुमको कुमती॥ॐ॥

दीनबन्धु दुःख हर्ता, तुम ठाकुर मेरे। प्रभु०
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे॥ॐ॥

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा। प्रभु०
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥ॐ॥

श्रद्धाराम फिलौरी

× × × × ×

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश गाते हैं गन्धर्व गुणी जन धन्यवाद॥
मन्दिरों में कन्दरों में पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगातार सौ–सौ बार मुनिवर धन्यवाद॥
करते हैं जंगल में मंगल पक्षिगण हर शाख पर।
पाते हैं आनन्द, मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद॥
कूँए में, तालाब में सिन्धु की गहरी धार में।
प्रेम-रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद॥
शादियों में, जल्सयों में यज्ञ और उत्सव के बाद।
मीठे स्वर से चाहिए, करें नारी-नर सब धन्यवाद॥
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर की स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद॥

—"अमीचन्द"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-गद्य के निर्माण और विकास में पंजाब का योग-दान

लेखक—

प्रो० संसारचन्द्र जी, एम. ए. अध्यक्ष संस्कृत हिन्दी विभाग
सनातन धर्म कालेज अम्बाला छावनी

(पंजाब यूनिवर्सिटी की सैनेट के सदस्य)

उपप्रधान पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

अनेकता में एकता, विभिन्नता में अभिन्नता, भेद में अभेदत्व और द्वैत में अद्वैत की भावना भारतीय संस्कृति की एक अपूर्व विशेषता है। विभिन्न प्रकार के—प्रादेशिक, भाषागत, धार्मिक आदि भेद-भाव होते हुए भी भारतवासी एक सजग राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक-सूत्र में बँधे हुए हैं। यही कारण है कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कच्छ से मनीपुर तक समूचे भारत के लोगों ने कंधे से कन्धा भिड़ा कर जननी जन्मभूमि के सम्मान की रक्षा की है तथा सभी उसकी उन्नति में प्रयत्नशील हैं।

राष्ट्र की एकता का सर्वप्रमुख चिह्न राष्ट्रभाषा होती है। राष्ट्रभाषा की उन्नति भी राष्ट्र की उन्नति का एक अंग है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में भारत के सभी लोगों ने यथा-शक्ति योग दिया है, और दे रहे हैं। आज की प्रगति तो विशेष आशाजनक है। वह दिन दूर नहीं जब दक्षिण-भारत के अहिन्दी भाषी भारतीय भी साहित्य-क्षेत्र में अन्यान्य उच्च कोटि के साहित्यकारों से होड़ लेने लगेंगे।

हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति में पंजाब और उसके लेखकों की देन किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं। खड़ी-बोली-गद्य के निर्माण और विकास में तो पंजाबी लेखकों का विशिष्ट योगदान है। पंजाब के लिये यह विशेष गौरव की बात है कि खड़ी-बोली-गद्य का आरम्भिक परिष्कृत रूप सर्व प्रथम यहीं से ही प्रकट हुआ। पटियाला निवासी रामप्रसाद निरञ्जनी को ही यह श्रेय प्राप्त है कि वे हिंदी संसार के सन्मुख गद्य का व्यवस्थित और सुन्दर रूप प्रस्तुत कर सके। यद्यपि पंजाबी लेखक रामप्रसाद 'निरञ्जनी' से पूर्व भी, अकबर के दरबारी कवि गंग तथा अन्य एक दो लेखकों ने खड़ी-बोली-गद्य में दो-चार रचनाएँ की थीं, किन्तु उनका गद्य ब्रजभाषा और राजस्थानी से आक्रांत था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १७४१ ई० में 'निरंजनी' जी ने 'भाषा-योग-वासिष्ठ' नामक गद्य-ग्रन्थ की रचना साफ-सुथरी भाषा में की। इस रचना का प्रणयन हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका ऐतिहासिक महत्व कई रूपों में है। न केवल यह रचना खड़ी-बोली-गद्य के सुन्दर रूप का उदाहरण प्रस्तुत करती है; अपितु हिन्दी खड़ी-बोली-गद्य के सम्बन्ध में कई भ्रांतियों को दूर करने में भी नितान्त सहायक हुई है। खड़ी बोली हिन्दी-गद्य के जन्म के संबन्ध में प्रायः उर्दू के समर्थक यह कहते सुने जाते थे कि खड़ी बोली के उर्दू रूप से ही, अरबी, फ़ारसी के शब्दों को निकाल कर आधुनिक संस्कृत-प्रधान-गद्य गढ़ लिया है। निःसन्देह इस भ्रान्त-धारणा का निराकरण भी इसी ग्रन्थ से हुआ। इस रचना की भाषा स्पष्ट कर देती है कि सन् १८०० से पूर्व अर्थात् उर्दू की गद्य-रचनाओं से पूर्व ही संस्कृत के शब्दों से युक्त खड़ी-बोली हिन्दी-गद्य का शुद्ध रूप प्रचलित हो चुका था। उस समय की शिष्ट हिन्दू जनता की बोलचाल की भाषा अरबी-फारसी से आक्रान्त उर्दू के स्थान पर संस्कृत मिश्रित हिन्दी ही थी। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों की यह धारणा कि हिन्दी खड़ी-बोली-गद्य का निर्माण और प्रसार, फोर्ट विलियम कालेज और ईसाई प्रचारकों की क्रियात्मकता का ही फल है; इस रचना के होते हुए सर्वथा निर्मूल सिद्ध हो जाती है। निरंजनी जी की भाषा को देख कर विदित हो जाता है कि लल्लूलाल और सदलमिश्र आदि से ६०-६२ वर्ष पहले ही सुन्दर एवं परिमार्जित गद्य में पुस्तकें लिखी जाने लगी थीं।

निःसन्देह 'भाषा-योगवासिष्ठ' का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है। निरञ्जनी जी हिन्दी के प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक हैं। उनकी रचना का निम्न उद्धरण देखिये, भाषा कैसी व्यवस्थित और सुन्दर है।

'हे राम जी! जो मनुष्य अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष नहीं करता, क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है। मलीन वासना जन्मों का कारण है। ऐसी वासना को छोड़ कर जब तुम स्थित होगे, तब तुम कर्ता होते हुए भी निर्लेप रहोगे, तब वीतराग, भय, क्रोध से रहित रहोगे।"

पंजाब में हिन्दी गद्य-प्रसार के २० वर्ष—खेद का विषय है कि निरञ्जनी जी के पश्चात् पचासों वर्षों तक हिन्दी साहित्य में खड़ी-बोली-गद्य की क्रम-बद्ध परम्परा का सूत्रपात न हो सका। पंजाब में यह स्थिति १२० वर्षों तक रही। सन् १७४१ से लेकर सन् १८६० तक के दीर्घ-काल में पंजाब में किसी गद्य-ग्रन्थ के लिखे जाने का अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला। सम्भवतः खोज करने से कोई रचना मिल जाय। किन्तु पंजाब में हिन्दी-गद्य रचनाओं की क्रम-बद्ध परम्परा हमें सन् १८६५ से ही माननी पड़ेगी। सन् १८६५ से १८८५ के बीस वर्षों में पंजाब ने कुछ ऐसी विभूतियों को जन्म दिया जिन्होंने हिन्दी-गद्य के प्रसार और विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द अपने ढंग से हिन्दीगद्य के उत्थान का काम कर रहे थे, उसी प्रकार पंजाब में बाबू नवीनचन्द्रराय हिन्दी की उन्नति में प्रयत्नशील थे। बाबू जी पंजाब के रहने वाले थे और ब्रह्म-समाजी थे। इन बीस वर्षों में उन्होंने ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों और अन्यान्य सामाजिक विषयों से सम्बन्धित अनेक हिन्दी पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखीं और दूसरों से लिखवाईं। पंजाब के शिक्षा-विभाग में बहुत दिनों तक इनकी पुस्तकें पाठ्य-क्रम में रहीं। बाबू जी विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा आदि के पक्षपाती थे। समाज सुधार उनका मुख्य उद्देश्य था। आपने ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ कई पत्रिकाएँ निकालीं। सन् १८६७ में उनकी "ज्ञान-प्रदायिनी" पत्रिका निकली जिसमें शिक्षा साधारण-धर्म, नीति, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख छपा करते थे। पंजाब में हिन्दी की प्रगति के मार्ग में रोड़ा अटकाने वाले उर्दू के हिमायतियों को नवीन बाबू ने आड़े हाथों लिया। आप ने पंजाब में ईसाइयों के प्रभाव को रोकने का कार्य भी खूब जोरों से किया। नवीन जी की पुस्तकें नीति और धर्म की प्रौढ़ पुस्तकों में गिनी जाती हैं। इनकी भाषा भी विशुद्ध है। ये राजा शिवप्रसाद की उर्दू नुमा भाषा के विरुद्ध थे। उनकी 'विधवा-विवाह' पुस्तक की भाषा का नमूना देखिये।

"विधवा विवाह शास्त्र सम्मत अथवा शास्त्र विरुद्ध कर्म है। इस विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होना हो तो पहिले यह निरूपण करना आवश्यक है कि वह शास्त्र कौन सा है जिसके सम्मत होने से विधवा विवाह कर्तव्य समझा जावे और जिसके विरुद्ध होने से अकर्त्तव्य समझा जावे। व्याकरण, काव्य अलंकार, दर्शन प्रभृति शास्त्र इस विषय के शास्त्र नहीं हैं।"

सन् १८६५ से लेकर आज तक पंजाबी लेखकों द्वारा हिन्दी-गद्य-ग्रन्थों की रचना की अटूट परम्परा मिलती है। अनेक पंजाबी लेखकों ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विविध अंगों को पुष्ट किया है। बाबू नवीनचन्द से प्रेरणा लेकर इसी समय पंजाब के प्राच्य महा-विद्यालय के अध्यापक पण्डित सुखदयालु शास्त्री ने 'न्याय-बोधिनी' नामक गद्य-ग्रंथ की रचना की। इनकी भाषा भी बाबू नवीनचन्द राय से मिलती जुलती है। देखियेः—

"यद्यपि मनुष्य जगत् के पदार्थों का प्रत्यक्ष से ही निश्चय कर सकता है, तो भी बहुत पदार्थ परमाणु आदि ऐसे हैं जो युक्ति सिद्ध हैं। मानने तो अवश्य पड़ते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष उनका नहीं होता और जानना सम्पूर्ण पदार्थों का अभीष्ट है, इसलिये सब पदार्थों के मिले हुये और भिन्न-भिन्न ऐसे-ऐसे धर्म जानने चाहिएँ कि जो धर्म जिस वस्तु का हो वह उस सारी वस्तु में रहे कोई स्थान रीता न छोड़े और उस वस्तु से भिन्न वस्तु में कहीं न रहे ऐसे धर्म का नाम लक्षण है। जिसका लक्षण करना अभीष्ट है उसे, लक्ष्य कहते हैं।"

इसी काल की एक और गण्यमान्य विभूति हैं फिलौर निवासी महापण्डित श्रद्धाराम जी फिलौरी। फिलौरी जी एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। आपका व्यक्तित्व बड़ा प्रखर एवं प्रभा-वोत्पादक था। आपने अपने ओजस्वी व्याख्यानों द्वारा हिन्दू धर्म का किला सुदृढ़ किया और ईसाइयों के धर्म-प्रचार को मिट्टी में मिला दिया। कहते हैं कि कपूरथला-नरेश महाराज रणधीर सिंह ईसाई बनने जा रहे थे कि पण्डित जी ने उनके सब संशयों को दूर करके उन्हें ईसाई बनने से रोका इनकी उत्तेजक वाणी में जादू का सा असर था। आपने पंजाबी और उर्दू में भी कुछ लिखा है, पर अधिकतर पुस्तकें आप की हिन्दी में ही हैं। इनकी "सत्यामृत प्रवाह" पुस्तक की भाषा बहुत ही प्रौढ़ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी आप की भाषा में पर्याप्त है। कहीं-कहीं पंजाबी प्रभाव भी है। हिन्दी भाषाके प्रचार और गद्य-ग्रन्थों के प्रणयन में इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष योग है। सन् १८६६ में फिल्लौरी जी ने 'आत्म चिकित्सा' नामक एक आध्यात्मिक पुस्तक लिखी। इनके [illegible] 'तत्त्वदीपक', 'धर्म-शिक्षा', 'उपदेश-संग्रह' आदि हैं। इन धर्मसम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त, कहा जाता है कि आपने अपना एक वृहद् (लगभग १४०० पृष्ठों का) जीवनचरित भी लिखा था, जो अप्राप्य है। यही नहीं सन् १८७० में उन्होंने 'भाग्य-वती' नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा था, जिसकी उस समय बहुत प्रशंसा हुई। निःसन्देह फिल्लौरी जी अपने समय के सिद्धहस्त लेखक के। उनके 'सत्यामृत-प्रवाह' की भाषा का नमूना देखिये—

"फिर जो आप कहते हो कि ईश्वर शक्तिमान् है इसमें हमारा एक प्रश्न है। अर्थात् यदि शक्तिमान् है तो मेरी बुद्धि को अनीश्वरवाद से फेर के ईश्वरवाद में क्यों नहीं ले आता। यदि कहो कि तुम्हारे अनीश्वरवादी होने से उसको क्या हानि है तो इससे अधिक हानि उसकी क्या होगी कि मैं सहस्रों जन को अनीश्वरवादी बना दूँगा।"

पंजाब में हिन्दी-गद्य के विकास के इन २० वर्षों में कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने भी योग दिया। बाबू नवीनचन्द राय की पत्रिकाओं का उल्लेख हो चुका है। उनकी प्रसिद्ध पत्रिका 'ज्ञान-प्रदायिनी' हिन्दी और उर्दू दोनों में एक साथ छपती थी। इसके पश्चात् 'हिन्दू-बांधव' नामक पत्र निकला। उसमें भी उर्दू और हिन्दी दोनों रहती थीं। सन् १८७७ में लाहौर से पं० गोपीनाथ ने 'मित्र-विलास' नामक केवल हिन्दी का एकमात्र प्रथम पत्र निकाला। यह सनातन धर्म का पत्र था, जिसके द्वारा हिन्दी प्रचार का बहुत कार्य सम्पन्न हुआ। इस पत्र में बड़ी ही सुष्ठु और ओजस्विनी भाषा का प्रयोग होता था।

हिन्दी-गद्य के निर्माण-काल के उपर्युक्त लेखकों द्वारा हिन्दी-गद्य गतिशील अवश्य हुआ, किन्तु उसमें उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ न हुईं। हिन्दी गद्य-साहित्य के विविध अंगों का विकास भारतेन्दु युग में ही हुआ। अतः पंजाबी लेखकों की साहित्यिक देन भी इसी काल से आरम्भ होती है। पंजाब में हिन्दी गद्य के विकास के उपर्युक्त २० वर्षों के पश्चात समय समय पर पंजाबी लेखकों ने हिन्दी-गद्य-साहित्य को अपनी अमूल्य रचनाओं से समृद्ध किया है। माधवप्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकन्द गुप्त, गुलेरी जी तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक प्रभृति उच्च कोटि के निबन्ध लेखक तथा कथाकार इसी धरती के लाल हैं। यही नहीं वर्तमान काल के श्री यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, सुदर्शन, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, देवराज दिनेश, पृथ्वीनाथ शर्मा, सन्तराम बी. ए. आदि सर्व श्रेष्ठ साहित्यकारों पर भी पंजाब को गर्व है। हरिकृष्ण प्रेमी और उदयशंकर भट्ट जैसे पंजाबी क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों ने भी इसी पंजाब की धरती पर अपनी साहित्य-चेतना विकसित की। निःसंदेह पंजाब का हिन्दी-गद्य और उसके साहित्य के विकास में अपूर्व योगदान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कवि भाई रामसिंह पंजाबी :

लेखक—
श्री शमशेरसिंह जी अशोक, पटियाला

पटियाला न केवल आज ही, प्रत्युत प्राचीन समय ही से विद्या और साहित्यिक रुचियों का केन्द्र बना आ रहा है। यहां पर राजा अमरसिंह जी के समय हिन्दी कवि केशवदास ने बीहाड़ ग्राम (सरस) के जंग की वार लिखी। महाराजा कर्म्म सिंह जी के समय कवि धर्म्मसिंह भाई सन्तोष सिंह, राम नारायण बन्ना, कवि चन्द्रशेखर वाजपेयी, स० जयसिंह सैनी आदि कवियों ने धर्म और इतिहास के सम्बन्ध में पुस्तकें लिख कर हिन्दी साहित्य के भण्डार को समुन्नत किया। महाभारत, देवी भागवत, श्रीमद्भागवत, राज तरंगिणी (कल्हण), आईनि अकबरी, अनवार सहेली इख़लाके मुहस्सनी, इख़लाके जलाली, इख़लाके, नासरी आदि पुस्तकों के अनुवाद किये गये। महाराजा नरेन्द्र सिंह जी ने यहां पर समुचित रूप से कवि-दरबार की संस्थापना की और श्री गुरु गोविन्द सिंह जी के दरबारी कवियों द्वारा तैयार करवाये गये महाभारत को जो भीषण यवनोपद्रव के कारण किला आनन्दगढ़ को छोड़ने की वजह से अधूरा रह गया था, पटियाला के दरबारी कवियों द्वारा पूरा करवाया था। यह महाभारत, जो पंजाब के साहित्य तथा इतिहास के साथ पूर्णतया सम्बन्धित होने के कारण एक अमूल्य निधि है, आज कल महाराजा पटियाला के मोतीबाग़ पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस की लिपि गुरुमुखी और भाषा विशुद्ध हिन्दी है।

महाराजा नरेन्द्र सिंह जी न केवल हिन्दी तथा पंजाबी कविता के साथ हार्दिक प्रेम ही रखते थे, प्रत्युत वे हिन्दी के सर्वोत्तम कवि थे और बड़ी अच्छी कविता लिखते थे। उनकी हिन्दी कविता के कुछेक उदाहरण मैंने एक स्वतन्त्र लेख में दिये हैं जिसका नाम है "पेप्सू का प्राचीन हिन्दी-साहित्य" और जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटियाला की ओर से प्रकाशित हो चुका है। कवि रामसिंह 'पंजाबी', जिस का विवरण इस लेख में दिया जा रहा है, इन्हीं महाराजा नरेन्द्र सिंह जी का एक दरबारी कवि था। यह कवि, जैसे कि इसके सिफ़ाती नाम से पता चलता है, केवल कथन मात्र का ही कवि नहीं था, अपितु असल अर्थों में पंजाबी था और यह पंजाबी कविता भी लिखता था। पटियाला के हिन्दी तथा पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान् एवं कवि बाबा रामदास जी इस कवि के विद्यागुरु थे। जन्म इस का कब और कहां पर हुआ, इस बात का तो पता नहीं चलता, परन्तु यह लुधियाना का निवासी और जाति का क्षत्रिय सिक्ख था। संभवतः लुध्याना से पटियाला आकर इस ने महाराजा कर्म्मसिंह जी के समय में निवास किया और फिर महाराजा नरेन्द्रसिंह जी के दरबार में बाबा रामदास जी की सिफारिश से कविराज के पद पर यह नियुक्त हुआ।

फारसी, संस्कृत और व्रजभाषा का यह अच्छा विद्वान् था, इस लिये महाराजा की आज्ञा से इसने फारसी की "इख़लाके मुहस्सनी" नामक पुस्तक का अनुवाद "सुनीति प्रकाश"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम से किया और "फील नामा" का अनुवाद करके उसका नाम 'दुरद दर्पण' रक्खा। भाषा इन पुस्तकों की विशुद्ध हिन्दी है और कहीं-कहीं पञ्जाबियत का पुट भी दिया है। इन हस्तलिखित पुस्तकों के अतिरिक्त इस कवि की लिखी हुई कुछ अन्य पुस्तकें भी मिलती हैं, जैसे कि सीहरफी शोभा महाराजे नरेन्द्र सिंह की, सीहरफी वल्लभा वृत्तान्त और सीहरफी दम्भ विडम्बन। वास्तव में ये तीनों काव्य-रचनाएं एक प्रकार के पंजाबी किस्से हैं जिनकी भाषा पटियालवी ढर्रे की बोली है—उर्दू फारसी व हिन्दी शब्दों से लदी हुई। इन हस्त लिखित पुस्तकों के साथ ही इस कवि की दो रचनाएं और हैं—(१) भक्तमाल सटीक और (२) इस्प नामा का हिन्दी अनुवाद।

कवि रामसिंह कैसा अच्छा कवि और किस्साकार था। इस सम्बन्ध में इस की काव्य-रचना 'सीहरफी वल्लभा वृत्तान्त' भी इस कवि की आंखों देखी घटना का एक सजीव दृश्य है। वह प्रेमिका, जिस का वर्णन इस सीहरफी में किया है, एक साध्वी युवती थी और उसका नाम था 'मानकौर'। वह एक दफा पटियाला आई और किस स्थान पर ठहरी? बाबा रामदास जी के डेरे में या किसी अन्य धार्मिक स्थान पर? इस बात का इस कवि ने कहीं जिकर नहीं किया और इस घटना का वृत्तान्त इस प्रकार दिया है—

अलफ़-आई थी एक नवीन नारी, तुर मालवे तों मानकौर प्यारी।
छबि सोहणी स्वर्ग दी मोहणी ज्यों, रूप रोहिणी चन्द दी जान नारी॥
मूर्त्ति चित्रनी चित्र विचित्र मानों, चित्रकार लिखी किधौं चित्रकारी।
राम सिंह स्वरूप है साधणी दे, रूप रंग अनंग ज्यौं अंग भारी॥

और फिर कवि उसके सेवा-भाव के सम्बन्ध में यों चित्र चित्रित करता है—

बे-बोल बोले मानो कोकिला है, मीठा बोल कै चित्त चुराय लेवै।
साधु सन्त की सीस लौं सेवा करदी, खुशी खास महन्त दी आय लेवै॥
ज्ञानी गुणी दी दौर के होय दासी, तन मन दे बेग रिझाय लेवै।
राम सिंह सलोनी दे नैन लोने, पेख प्रेम स्यों पण्डितां धाय लेवै॥

मानकौर के नैन कैसे तीरंदाज थे, यह खाका भी कवि राम सिंह के ही शब्दों में देखिये—

ते-तक के मार-मटक लैंदी, सक्क चक्क के चोट चटकदी है।
समर सामुहे सुभट ज्यों फट्टे फट्टे, सट्टा सट्ट दी सांग सटकदी है॥
इक्क धाय कै चूर कै चट्ट लीते, इक्क भौंह कमान कड़कदी है।
राम सिंह लोनै नैन आशिकां दे, लग्गे तीर ज्यौं पीड़ रड़कदी है॥

भाषा इन पंक्तियों की पंजाबी होते हुई भी हिन्दी बहुला है, परन्तु यह इश्क अथवा उद्धत प्रेम साधु सन्तों के शान्ति पूर्ण वातावरण में किस तरह जा प्रविष्ट हुआ जिसने कि दक्षिणी भारत की देवदासियों का सा दृश्य उपस्थित कर दिया, कवि रामसिंह ने मानकौर के सम्बन्ध में इस रहस्य का कहीं पर भी स्पष्ट रूप से उद्घाटन नहीं किया बावजूद इस बात के कि वह सुप्रसिद्ध सन्त कवि बाबा राम दास जी का शिष्य था जहां पर यह भेद स्वभावतः खुल सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीहरफी वल्लभा वृत्तान्त के अतिरिक्त कवि राम सिंह की दो सीहरफियां, जैसे कि पहले बताया गया है, और हैं—(१) सीहरफी शोभा महाराजे नरेन्द्र सिंह की और (२) सीहरफी दम्भ विडम्बन। पहली सीहरफी पटियाला के इतिहास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है और दूसरी सीहरफी यहां के सामाजिक सुधार के साथ, और दोनों ही कवि के देखे हुए घटना-चित्र हैं। पहली सीहरफी में कवि रामसिंह महाराजा नरेन्द्रसिंह जी के रूप आदि के सम्बन्ध में लिखता है—

अलफ-ईश सुमेरु सों सीस शोभै, भलो भाल को पून्यो चन्द है जी।
नैन कौल से भौंह भृङ्ग मानो, कान जानियै काम के कन्द है जी॥
शुक बांग मलूक शुभ नाक शोभै, अधर बिम्ब मानो मोती चन्द है जी।
चिवुक कली कपोत औशंख ग्रीवा, धर्म्म सीव सी भुजा बुलन्द है जी॥
नरेन्द्र सिंह श्री महाराज जू के, कर किधौं कुबेर के नन्द है जी॥

इस छन्द की भाषा हिन्दी है, पंजाबी नहीं। इस के अतिरिक्त आगे का दोहा, जिस में महाराजा की एक विशेष राजाज्ञा की ओर इशारा है, ठेठ तथा शुद्ध हिन्दी भाषा में है और इस में एक शब्द भी पंजाबी-भाषा का नहीं, जैसे—

हुकम दियो महाराज ने, सकल प्रजा सुख हेत।
अर्ज़ी देह हजूर मैं, पावहँ न्याय निकेत॥

महाराजा नरेन्द्र सिंह जी का नित्यकर्म क्या था, यही इस काव्य-रचना में बताया गया है। कवि रामसिंह लिखता है—

(१) नित्य उठो प्रभात स्नान करकै गुरुबानी पढ़ै.............
(२) तोय-तलब सेती गुरु ग्रंथ जी को, बार-बार करे भूप बन्दना जी।
धूप दीप जगाय कै भाव सेती, अरचै सुगन्ध चरचै चोआ चन्दना जी॥
जान्यो ग्रंथ गुरु परमात्मा कै, मान्यो पाण्डवी ज्यों नन्द नन्दना जी।
नरेन्द्र सिंह श्री महाराज पूजे, गुरु ग्रंथ जो पाप निकन्दना जी॥

इसी तरह महाराज के आखेट के सम्बन्ध में भी कवि ने बड़े वीररसी भाव का प्रदर्शन किया है—

जबी आखेटक खेलने, जावत सिंह सिंगार।
पकड़ि ढाल तलवार करि, करत सिंह पर वार॥

और एक सिंह के आखेट का आंखों देखा वृत्तान्त कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में दिया है—

ज़ाल-ज़िकर शिकार दा जदों चल्लै, तदों धाँवदा धौंस दै हौंस कैसो।
शस्त्र धार कै शेर संहारनै कौ, चढ़यो जम्भु पै जुद्ध कौ इन्द्र जैसे॥
हेरि शेर कैसी शमशेर वाही, दियो चीर दुखण्ड प्रचण्ड ऐसे।
नरेन्द्र सिंह श्री महाराज ऐसे, महिषा दैत्य विहण्डियो मनु चण्ड जैसे॥

महाराजा नरेन्द्र सिंह केवल शूरवीर ही नहीं था, प्रत्युत बुद्धि एवं विद्या में भी बड़ा प्रवीण था। कितने ही कवि कोविद जो महाराजा के दरबार में शोभायमान थे, कोई मामूली कवि नहीं, अपितु बड़े तजर्बाकार साहित्यकार थे। महाराज की इच्छा के अनुसार उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत सी हिन्दी पंजाबी पुस्तकें लिखीं जो अद्यावधि महाराजा के मोतीबाग राज भवन पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

अन्य कवियों की कविता सुनने के अतिरिक्त महाराजा को स्वयं भी कविता रचने का भी अच्छा अभ्यास था। उन की रची हुई कुछ कविताएं शिवसिंह सरोज, सुन्दरी तिलक, सुमेरु भूषण आदि पुस्तकों में संगृहीत हैं। यह महाराजा साहब कितने बड़े विद्वान् थे और उनको कविता लिखने का कैसा अभ्यास था, इस सम्बन्ध में कवि रामसिंह के निम्नाङ्कित वाक्य देखने के योग्य हैं—

(१) मीम-मत्त महान राजान केरी, पढ़ लीनो है पारसी भेद सारो।
सारस्वत और शीघ्र बोध सीख्यो, शास्त्र सीख्यो गुरुमुखी बुद्धवारो॥
पढ़्यो काव्य कवीश्वरी आप करतो, सीख्यो नायका भेद शृङ्गार चारो।
नरेन्द्र सिंह, श्री महाराज सुधरो, पढ़्यो कोश औ चन्द्रिका चमत्कारी॥

(२) विद्या शस्त्री शास्त्री पारसी लौ, करै शायरी लाय कै प्रेम प्रीती॥

अर्थात्—वे शस्त्र विद्या, शास्त्र विद्या, संस्कृत और फारसी में बड़े पारंगत विद्वान् थे। व्रजभाषा (हिन्दी) और फारसी में कविता भी करते थे। महाराजा की व्रजभाषा की कविता के उदाहरण तो, जो अतीव उत्कृष्ट हैं, मिल गये हैं, परन्तु वे फारसी कविता भी लिखते थे, इस सम्बन्ध में अभी तक उनकी कोई काव्य-रचना प्राप्त नहीं हुई। शायद मोती बाग़ राजकीय पुस्तकालय में कोई ऐसी काव्य-रचना हो जो मेरी दृष्टि में न आई हो।

'सीहरफी महाराजा नरेन्द्र सिंह की' के बाद दूसरी उदाहरणीय पुस्तक है सीहरफी दम्भ विडम्बन। कवि रामसिंह ने यह सीहरफी, जैसे कि सर्व प्रथम बताया गया है, वेदान्ती साधुओं द्वारा फैलाई हुई कुप्रवृत्तियों के सुधार के निमित्त तैयार की थी जैसे कि इस सीहरफी के प्रारम्भ ही में लिखा है—

ए जु पखण्डी दम्भिये, सिमरत कभी न राम।
बोलत बात वेदान्त की, निस दिन करत कुकाम॥१॥
भरा भ्रष्ट निज इष्ट ते, स्त्रिन स्यों अति नेह।
तिन मूढ़न के ताड़ने, रची सीहरफी एहु॥२॥

मंगलाचरण तो इस सीहरफी का विशुद्ध हिन्दी में है, परन्तु आगे बैत की भाषा ठेठ हिन्दी नहीं, और न हम इसे ठेठ पंजाबी ही कह सकते हैं। यदि इसे हिन्दी पंजाबी का कोई सम्मिलित नाम दिया जाय तो उपयुक्त होगा। वे नमूना के बैत ये हैं—

अलफ़-आपणा आप की समझेआ है, जीव होय के ब्रह्म कहाउ नाहीं।
ब्रह्म कहे ते ब्रह्म न होय जावें, पेआ बहमियां ज्यों बुरड़ाउ नाहीं॥
घड़ा चुक्के ते घर ना वससदा है, शेख चिल्ली ज्यों लोक हसाउं नाहीं।
राम सिंह जे तेरा स्वरूप सभो, सींह सप ते तूँ डर पाउ नाहीं॥१॥
खे-खबर सिद्धान्त दी नाह जाणे, लाग्यो भूत वेदान्त बलाय तैनूं।
बिना पाह दे रंग अल्लाह चाहें, के ही भौंदू आ बई भुलाय तैनूँ॥*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रैगर्त के राजा :

लेखक—
श्री अमरनाथ जी शास्त्री,
उपप्रधान हिन्दी साहित्य सम्मेलन पंजाब

भूमिपुरातत्वानुसन्धान वालों का मत है कि आज जो भूमिभाग पर्वतमालालंकृत है, वह कभी लाखों वर्ष पूर्व जलनिधि की तरल तरङ्गों से तरङ्गित था। इस समय जहां महोदधि राज रहे हैं, वहां पर्वतराज विराजमान थे।

उन लोगों का कहना है कि पानी के साथ साथ त्तर त्तर कर पर्वतों की मिट्टी नीचे की ओर बहती रहती है। इस प्रकार समय पाकर पर्वतों का स्थान समुद्र तथा समुद्रों का स्थान पर्वत ले लेते हैं। अपने इस मत की पुष्टि के लिये उन लोगों ने यह अकाट्य प्रमाण उपस्थित किया है कि पर्वतों के गगन चुम्बी हिमाच्छादित शृङ्गों पर समुद्र के जीवों की लाखों वर्ष पुरानी अस्थियां मिलती हैं। इसी प्रकार समुद्र के तल में पर्वतीय जीवों के अस्थिपञ्जर भी प्राप्त होते है। अतः यह निर्विवाद है कि पर्वत तथा समुद्रों का परस्पर स्थान विनिमय होता रहता है।

आरकिआलोजिकल सर्वे रिपोर्टट्स में लिखा है कि आरम्भ में पंजाब का समतल भाग जलमग्न था, केवल हिमालय तथा उसके समीप की पर्वत श्रेणियां ऊँची होने के कारण उस जल से अछूती थीं। वहीं पर पशु तथा मनुष्य पाये जाते थे। शैवालिक के नीचे का भाग उस का कण्ढा (किनारा) था। इसलिये अब भी इसे कण्ढी कहा जाता है।

ज्वालामुखी से प्राप्त भोजपत्र पर लिखी त्रैगर्त राजाओं की वंशावली के अनुसार

---

*सुहना रेत कै रेत रुलावना है, जाय गरबी थी तैंडी की नाय तैनूँ।
राम सिंह जे सेंवदा गुरु पूरा, देंन्दा ब्रह्म दी बात बताय तैनूँ ॥२॥

ये प्रान्तीय-हिन्दी पंजाबी के उदाहरण हैं जो ऊपर दिये गये हैं। इनमें 'सी' और 'सन' के स्थान पर 'था', थी', थे, 'दा' 'दी' 'दे' के स्थान पर 'का', 'की' 'के' आदि शब्दों का प्राधान्य है। पटियाला चूंकि पञ्चनद् प्रदेश की पाँचों नदियों से यमुना के अधिकतर निकट है। इसी लिये यहां की भाषा पर उदू हिन्दी का प्रभाव अधिक है और इसमें हिन्दी शब्द अधिक प्रयुक्त हुये हैं। कवि रामसिंह ने इसी प्रभाव के आधीन होकर ये किस्से लिखे हैं। मैं समझता हूं कि सीहरफी उस समय अभी इस प्रांत में प्रचलित हो ही रही थी और ये सीहरफियां इस किसम की हिन्दी-पञ्जाबी के भाषा-संगम का एक उत्तम नमूना समझना चाहिए।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुड़रफर' ऋषि एक वंश के मुखिया थे। उनका गोत्र कश्यप था, वे लोग तप और विद्या में वहां के अन्य निवासियों की अपेक्षा प्रवीण थे। पारस्परिक विवादों में उनका निर्णय अंतिम माना जाता था।

समतल भाग का पानी धीरे धीरे सूखता गया, ग्रामों, नगरों तथा राजधानियों का निर्माण होने लगा। गुड़रफर ऋषि के वंशज भी क्रमशः इन लोगों के साथ साथ आगे बढ़ते चले गये। और अंत में मूल स्थान (मुलतान) तक पहुँच गये। उसे अपनी राजधानी बना लिया। वहीं पर इस वंश में जगद् विख्यात हिरण्यकश्यप महाराज हुये। और उनके घर भक्तों की माला के सुमेरु श्री प्रह्लाद भक्त का जन्म हुआ। समय तथा स्थान आज्ञा नहीं देते। इसका विस्तृत वर्णन मैंने अपनी पुस्तक "त्रिगर्त के इतिहास पर एक विहङ्गम दृष्टि" नामक पुस्तक में किया है।

महाराजा सुशर्मचन्द्र के पांच पीढ़ी पूर्व इसी वंश में महाप्रतापी महाराजा भूमिचन्द्र हो चुके हैं, इनको ही त्रैगर्त राज्य का प्रवर्तक होने का श्रेय प्राप्त है। किम्वदन्ती के अनुसार हिरण्यकश्यप के अनन्तर जालन्धर राक्षस ने अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। उस क्षेत्र का नाम जालन्धर पीठ पड़ गया। उसकी अपनी राजधानी जालन्धर नगर थी। अद्वैत मार्तण्ड में हिमालय के पांच खण्ड बताये हैं। उनमें से एक जालन्धर भी है।

श्लोक इस प्रकार है:—

खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिताः हेमाद्रि कूर्माचलौ।
केदारोऽथ जालन्धरोऽथरुचिरः काश्मीर संज्ञाऽभिधाः॥

पुराणों में भी इस पीठिका का वर्णन मिलता है। जालन्धर राक्षस के वर्णनातीत अत्याचारों से असहाय जनता आतङ्काक्रान्त हो गई।

लोगों को इस दशा में देख कर महाराज भूमिचन्द्र ने राक्षसों पर आक्रमण कर दिया। परिणाम स्वरूप राक्षसों का अन्त हुआ और प्रजा ने सुख की साँस ली। इस प्रकार भूमिचन्द्र ने अपने पूर्वजों के खोए राज्य को पुनः प्राप्त किया और आर्य मर्यादा के अनुसार व्यवस्था नियत कर दी।

भूमिचन्द से पांचवीं पीढ़ी में इसी वंश के रंगमंच पर महाराज सुशर्मचन्द्र आते हैं। इन्होंने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था। कौरवों की ओर से लड़े थे। ऊना से प्राप्त बंशावली के अनुसार यह दुर्योधन के बहनोई भी थे। शस्त्रास्त्रों की विद्या में सिद्धहस्त थे। प्रण करके लड़ा करते थे। अभिमन्यु की मृत्यु के दिन इन्होंने ही सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त अर्जुन को युद्ध में व्यस्त रखा था। इसका विवरण श्री व्यास जी ने महाभारत में दिया है। इन लोगों को आयुधजीवी भी कहा करते थे। "*त्रैगर्ताश्चायुध जीविनः*" भूमिचन्द्र से पूर्व इनका यही नाम था। जालन्धर की मृत्यु के अन्तर इनकी यह संज्ञा पड़ी थी।

जालन्धर ही त्रैगर्त थे। इसके विषय में हेमचन्द्र जी ने लिखा है "जालन्धराश्च त्रैगर्तास्युः" पुराणों में जालन्धर दैत्य के सम्बन्ध में लिखा है कि उसका सिर कोटकाँगड़ा में था और धड़ जालन्धर में तथा पाँव मुलतान में थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध इतिहासाचार्य कनिङ्घहम ने लिखा है कि यदि ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर विचार किया जाय तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जालन्धर के राज्य की सीमा कांगड़ा से लेकर मुलतान पर्यन्त थी। "त्रैगर्त" शब्द संस्कृत का है। इसका अर्थ तीन गढ़े हैं। इसका विस्तार सतलुज, व्यास, तथा रावी इन तीन नदियों के मध्य में था। जालन्धर की मृत्यु के अनन्तर जब यह राज्य भूमिचन्द्र के आधिपत्य में आ गया तब से इन लोगों का नाम त्रैगर्त पड़ा।

इसके अनन्तर यह वंश शानदार हीरों की खान बन गया। इसमें बड़ी २ उच्चात्माओं ने जन्म लिया। इनके लिये व्याकरण के प्रणेता पाणिनि मुनि को सूत्र रचना करनी पड़ी थी। "भर्गात्-त्रैगर्त से भार्गव शब्द की सिद्धि की है। प्रतीत होता है है वंशावली में लिखित भार्गव राजा से ही व्याकरण के रचयिता का तात्पर्य है।

चीन के प्रसिद्ध बौद्ध यात्री फाह्यान तथा ह्यूनसांग ने पञ्जाब के बारह राज्यों का वर्णन किया है। उसमें जालन्धर भी एक राज्य है। इसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि यह राज्य परिवार अभी तक अविभक्त है।

इसके पश्चात् त्रैगर्त राजाओं का वर्णन बैजनाथ की प्रसिद्ध प्रशस्ति में मिलता है। इस शिला लेख की भाषा संस्कृत है। अक्षर ब्राह्मी हैं। लेखक काश्मीर के कल्हण मिश्र हैं। इसका अनुवाद देवननागरी लिपि में भी हो चुका है। इसमें उन्होंने लिखा है कि त्रैगर्त राजा लक्ष्मीचन्द्र ने दैवीधन से इस शिवमन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया है।

यह पता नहीं चलता कि ये लोग अपनी राजधानी जालन्धर को पूर्ण रूप से छोड़ कर कांगड़ा के पितृ परम्परागत पुरातन ऐतिहासिक दुर्ग में कब और कैसे चले गये? कांगड़ा में इनका अस्तित्व गौरी के आक्रमण के समय में मिलता है। इससे आगे चल कर आइने अकबरी और तुजके जहांगीरी में मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि मुसलिम आक्रमणों में ही इनको अपने पूर्वजों के विनिर्मित गढ़ की शरण लेनी पड़ी थी। आज भी यह ऐतिहासिक दुर्ग त्रैगर्त राजाओं के अतीत गौरव का प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी:

डाकू मामा :

लेखिका:—

पुष्पा महाजन गुरदासपुर

बाहर यद्यपि अन्धेरी रात थी तो भी अमृतसर का स्टेशन विद्युत प्रकाश में जग-मग कर रहा था। फ्रंटियर मेल स्टेशन पर खड़ी थी सो चहल पहल एवं भीड़ भड़क्का भी खूब था। पिछले डिब्बे जहां थे उन्हीं से कुछ दूर एक युवक रात के समय भी धूप की ऐनक चढ़ाये खड़ा था। युवक अच्छे वस्त्रों से सुसज्जित था जो आधुनिकतम फैशन के कहे जा सकते थे। रंग गेहुँआ कुछ कालेपन की ओर झुका हुआ। माथा चौड़ा और नासिका सुडौल है! नेत्रों के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता था क्यों कि वे काले चश्मे में छुपे थे। वह कुछ गम्भीर था क्या सोच रहा था उसका मन जाने। फिर सहसा सिगरेट का लम्बा कश लेता वह घूमने लगा और उसने सारी गाड़ी का ध्यान से चक्कर लगाया पुनः अपने स्थान पर आ खड़ा हुआ। उसकी गम्भीर मुद्रा में कोई अन्तर नहीं आया था। किन्तु यह क्या, वह सतर्क हो गया और एक सैकेंड क्लास कम्पार्टमैंट की ओर नेत्र गड़ा कर देखने लगा। एक युवती, युवती ही नहीं सुन्दर भी थी वह। उस कम्पार्ट मैंट में कुली से सामान रखवा रही थी। काली साड़ी उसके गौरवर्ण पर खूब खिल रही थी। फिरहरी सी चुस्त थी वह युवती। इतनी दूर से वह उसका नख शिख तो देख नहीं सका किन्तु सुन्दर वह उसे लगी। एक नन्हीं बच्ची भी साथ थी उसके। तीन या साढ़े तीन वर्ष की रही होगी। गुलाबी फ्राक उसके गुलाब जैसे मुख को और भी सुन्दर बना रही थी। कलात्मक ढंग से कटे बाल बच्ची के कन्धों पर झूल रहे थे, उनमें गुथा था गुलाबी रिबन। बड़ी चचल थी, मां का हाथ छुड़ा कर बार-बार इधर उधर भाग जाती। संग में एक अनुचर था यही कोई पन्द्रह सोलह वर्ष का पहाड़ी छोकरा। तब उसे आदेश मिलता बच्ची को संभालने का। सामान लद गया डिब्बे में तब युवती नौकर और बच्ची को ले जा बैठी। एक बर्थ पर बिस्तर लगवा लिया उसने।

गाड़ी चलने में पन्द्रह मिनट शेष थे अभी, और वही युवक अब भी घूर-घूर कर उसी कम्पार्टमैंट को देख रहा था किन्तु स्टेशन की उस चहल पहल में किसको गर्ज थी उस ओर देखने की और वह वहीं का वहीं खड़ा रहा। न जाने क्या सोचता रहा सोचता रहा। ओह! यह गार्ड सीटी दे रहा था वह उछल कर आगे बढ़ा और उसी कम्पार्ट मैंट के एक पार्श्व में खड़ा हो गया। झण्डी हिली और गाड़ी प्लेट फार्म से धीरे-धीरे सरकने लगी। उसके पांव भी द्रुत गति से बढ़े और लपक कर गाड़ी का हैण्डल उसने पकड़ लिया और उसी कम्पार्ट मैंट के साथ लटक गया। द्वार खोलते हुए तनिक संकोच से कहा: 'क्षमा कीजिये, गाड़ी चल पड़ी और यहीं कम्पार्ट मैंट हाथ में आ गया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोई बात नहीं, प्रायः ऐसा हो जाता है। आप बैठिये।' कहते हुए उस सुन्दरी के कर्ण-फूल झूल उठे। उसका सुन्दर मुख मुस्करा उठा। वह एक सीट पर बैठ गया और चश्मे में से युवती को घूरने लगा। उसका ध्यान उसके हाथों में पड़े कंगनों पर था अथवा गले में पड़े सुन्दर हार पर। वार्ता वहीं ठप हो गई थी। बात चलाने के लिये पुनः पूछा ?

'कहां जायेंगी आप ?'

'देहली।'

'अकेली ही हैं क्या ?'

'जी नहीं, मेरे पति हैं साथ। वे लुधियाना से हमें मिलेंगे।'

'आजकल रात का सफ़र अकेले नहीं करना चाहिये।'

'क्यों ?'

'समय बुरा है। इसी लाइन पर शतशः दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। कहते तो ठीक हैं आप, किन्तु यह अनुचर है और फिर आपका संग भी रहेगा।'

इस विश्वास की बात सुन कर जैसे वह सिहर उठा !!! मानव चाहे कितना भी क्रूर एवं छली कपटी क्यों न हो जब उसके विश्वास को ललकार मिलती है तो उसके समस्त अवगुण जैसे पराभूत हो जाते हैं। युवक के हृदय की अन्तर्भावनाएं भी विश्वास का यह आह्वान पाकर कम्पित सी हो उठीं। तभी युवती की वह सुन्दर बच्ची चिल्लाने लगी—

'मम्मी ! भूख लगी है।'

'अरे ! अभी से भूख लग आई, नौ तो बजने दे।'

किन्तु बच्ची को ज्ञान था कि साथ की काश्मीरी टोकरी में मां ने भीनी-भीनी सुगन्ध वाले पराँठे बना कर रखे हैं तथा साथ में उसकी मन पसन्द भिण्डी तोरी की भाजी भी है वह और भी मचलने लगी। धीमी रोशनी दिखाई दी और एक छोटा स्टेशन फ्रंटियर मेल की त्वरित गति से पीछे छूट गया। पुनः वही घना अन्धकार खिड़कियों की दरारों में से झांकने लगा। बच्ची का नाम नीलम था पर मां उसे प्यार से नीलु पुकारती थी। जब उसने खूब उद्धम मचाया तो युवती को टोकरी खोलनी ही पड़ी। नहीं तो उसका विचार जालन्धर से पूर्व खाना खाने का नहीं था। नौकर ने प्लेटें निकाल कर एक सीट पर सजादीं और युवती ने युवक को भी भोजन का निमन्त्रण दे दिया।

'जी आप क्या कष्ट करेंगी ? मैं तो दस बजे के पूर्व खाता ही नहीं। जालन्धर जाकर खा लूंगा।'

'आप चिन्ता न करें। हमारे पास पर्याप्त खाद्य-सामग्री है। फिर उसने नीलु से कहा : 'मामा जी से कहो खायें।'

'मामा जी खाइये न !'

बालिका ने जैसे अनुरोधपूर्वक कहा वह 'न' नहीं कर सका। प्लेट उठा ली और खाने लगा। खाते समय वह निरन्तर सोचता रहा। किन्तु बालिका थी कि बोले जा रही थी। यद्यपि वह बच्ची ही थी पर खिलाने पिलाने में तंग दिल न थी। अनुचर ने दसहरी आम प्लेट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काट कर रख दिये। नीलु ने दो फांके अपनी प्लेट में रखदीं और दो उसकी प्लेट में। वह बोला—'तुम खाओ बेटी।'

'आप खाइये न, मुझे आम बहुत अच्छे लगते हैं, आपको भी अच्छे लगते हैं क्या ?'

'हां ! नीलु मुझे भी अच्छे लगते हैं।'

बालिका ने दो फांके और रख दी प्लेट में। वह न, न, ही करता रहा पर नीलु उसे बरबस खिलाये जा रही थी।

भोजन के उपरान्त नीलु ने अपने ब्लाक्स निकाल लिये ! 'आइये खेले मामा जी।'

'यह आपको खूब दिक करेगी रास्ते भर।'

'रहने दीजिये इसके दिक करने में भी आनन्द आ रहा है मुझे।'

फिर वह बालिका के संग उलझ गया। गाड़ी उसी गति से भागी जा रही थी और छोटे-छोटे स्टेशन, एक धूमिल आलोक बिखरा, पीछे छूटते जा रहे थे।

जालन्धर आ गया था और पुनः तीव्र प्रकाश गाड़ी को आवरण में ले रहा था। युवक उतरा तो नीलु भी तैयार हो गई। पूछा—'किधर जायेंगे मामा जी ?

'तनिक घूमूंगा।'

'हम भी घूमेंगे।'

'रात हो गई बेटी।'

मां ने प्यार से जैसे डांट दिया। 'नहीं, नहीं, मैं भी जाऊंगी।' और वह उछल कर युवक की गोदी में चढ़ गई। मां क्षुब्ध होती ही रह गई।

'मैं अभी इसे घुमा लाता हूँ श्रीमती जी।'

युवती अनुचर से बिखरा सामान संभलवाने में लग गई। बच्ची हठीली थी और मां उसके स्वभाव को जानती थी। वैसे भी प्रायः बच्चे को जिस बात से टोका जाये वह उसी पर अड़ जाता है।

लगभग दो तीन मिनट पश्चात युवक लौट आया। बच्ची सोने का उपक्रम कर रही थी। युवक के हाथ में एक बड़ा सा लिफाफा आमों से भरा था। उसने नीलु को मां के निकट देते हुए लिफाफा भी रख दिया। यह देख युवती बोली—'क्या ले आये आप ?'

'आम हैं थोड़े से. बच्ची के लिये।'

नीलु ऊंघ रही थी। मां ने बिस्तर पर सुला दिया। ट्रेन चल पड़ी। युवती भी कोई मासिक पत्रिका निकाल कर पढ़ने लगी। युवक क्या करे ? बातें करने का माध्यम तो सो चुका था। कोट की जेब से पेन निकाल कुछ लिखने लगा। क्या लिखने लगा, वही जाने पर उसका लिखना पर्याप्त समय तक चलता रहा। युवती कभी-कभी नेत्र उठा कर देखती युवक लिखने में तन्मय था। केवल हाथ ही व्यस्त न थे मुख की मुद्राएं भी अद्भुत थीं। कभी झुक जाता फिर सीधा हो लिखने लगता, कभी मुख पर मुस्कान खेल जाती, कभी विक्षोभ और कभी व्यथा नाच उठती। किन्तु युवती को इससे क्या ? वह भी एक मनोरंजक कहानी पढ़ रही थी। लुधियाना तक का समय न जाने कैसे कट गया। युवती ने खिड़की से झांक कर देखा पति प्लेटफार्म पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़े थे। उत्फुल्लता से स्वागत करते हुए द्वार खोल दिये उसने। युवक शान्त भाव से खड़ा हो गया और आगन्तुक का अभिवन्दन किया। बोला—'जी, अब मेरा कार्य समाप्त हुआ।'

'आप?' युवती के पति ने प्रश्न सूचक दृष्टि डाली। 'अमृतसर से जब फ्रंटियर चल पड़ी तो त्वरा में यह इसी कम्पार्टमैंट में आ गये। नीलु जालन्धर तक इनके संग खेलती रही। बड़े भले मनुष्य हैं।'

प्रत्युत्तर में युवक कुछ बोल ही नहीं सका। उसकी आत्मा जैसे घुटने का अनुभव कर रही थी। वह नीचे उतर गया। और नमस्कार करके चल पड़ा। परन्तु दो मिनटों के पश्चात पुन: लौट आया एक बड़ी टोकरी में फल लिये हुए।

'यह पुन: क्या ले आये आप?'

'आप मत बोलिये, नीलु के मामा की ओर से हैं यह।'

युवती चुप रह गई और एक सतृष्ण दृष्टि बच्ची पर डाल, प्रणाम कर वह दृष्टि से ओझल हो गया।

'कितना अच्छा है बेचारा।' युवती बोली

'संसार में भले भी होते हैं लता!'

अब हम युवती को लता ही कहेंगे क्योंकि अभी तक यह नाम अज्ञात था सो उसके पति ने यह रहस्य खोल दिया है।

बातों ही बातों में बारह बजे के लगभग समय हो गया। पहाड़ी छोकरा भूमि पर अपनी दरी बिछा निद्रा मग्न हो गया। पति-पत्नी भी सोने का उपक्रम करने लगे। पर युवती के सन्मुख वही चेहरा नाच रहा था। गाड़ी के खटूखटाहट में वह न जाने कब चिन्तन करते करते सो गई।

[२]

जैसे ही डिब्बे की जालियों से प्रभात किरण ने झाँका युवती की पलकें खुल गईं। वह उठ बैठी। पति प्रगाढ़ निद्रा में सोये थे अभी। स्फूर्ति से वह नित्यकर्म से निवृत्त हुई। वस्त्र जो अस्त-व्यस्त थे उन्हें परिवर्तन किया और नाटक की नायिका सी सज बैठी। तब तक पति, भी जाग गये। विहँस कर बोले—'ओह! तुम तो प्रभात सुन्दरी सी सज बैठी हो।'

मुस्करा पड़ी लता। तब तक प्रकाश की रेखाएँ और भी उज्ज्वल हो उठीं।

'नीलु को जगा लूँ।'

'अरे नहीं, सोने दो, देहली आने में अभी एक घण्टा शेष है।' स्नानगृह में जाते-जाते पति बोले।

सहसा लता का ध्यान टोकरी पर जा टिका और संग ही, देने वाले के शब्द स्मृति में कौंध गये, 'मामा का उपहार' कितना स्नेह करता था बच्ची से। उसका हृदयकोण जैसे प्यार के लिये लालायित था। कौतूहल वश उसने टोकरी खोल डाली। ऊपर ही एक पत्र पड़ा था। यह पत्र कैसा? त्वरा से उसने खोल कर पढ़ना आरम्भ किया और उसका मुख उत्तरोत्तर से अधिक गम्भीर होता गया। लिखा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीया दीदी,

बहुत चिन्तन के पश्चात् मन ने निर्णय किया कि यही सम्बोधन उचित रहेगा। क्योंकि नीलू ने मुझसे मामा का स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उसका एक एक मधुर सम्बोधन हृदय की सुप्त तारों को जैसे झंकृत करता गया और मेरी तन्द्रिल भावनाएँ नव अंगड़ाई लेती गईं। मैं समझ नहीं पाया यह सब क्यों हुआ ? कैसे हुआ ? कुछ ऐसी अनुभूति हुई जैसे कुछ पाया है जिसके लिये मेरा मन तड़प रहा था चिरकाल से। नहीं तो मुझ जैसे क्रूर व्यक्ति से ऐसे मृदुल व्यवहार की आशा व्यर्थ थी। मैं वह नहीं हूँ जो आप मुझे समझे बैठी थीं। आपने विश्वेश्वर डाकू का नाम सुना होगा ? तो सुनिये वहीं हूं। कई वर्षों से यही मेरा जीवन है। मैं दूसरों को लूटता हूँ विशेषकर धनियों को। आप पूछेंगी क्यों ? अब इस क्यों का उत्तर मैं क्या दूँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने को निर्दोष समझता है। मैं भी समझता हूं क्यों कि मेरे इस डाकूपन का रहस्य उन परिस्थितियों में है जो समाज ने मेरे लिये उत्पन्न की हैं, नहीं तो मैं जन्म जात डाकू नहीं था। आज से दस वर्ष पूर्व की एक घटना मेरी स्मृतियों को अभी भी आन्दोलित करती है और मैं पागल हो जाता हूं। मुझे सुध नहीं रहती कि मैं मानव हूँ। मेरा पशुत्व जागृत हो उठता है। किन्तु मैं सोचता हूं उन दिनों मैं पूर्ण मनुष्य था फिर मुझे पशु किसने बनाया.........किसने बनाया मुझे पाषाण ? मैं किसी कार्यवश गांव से बाहर गया था। लौट रहा था कि एकाएक पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया मैं आश्चर्य चकित था। बिना अपराध के यह गिरफ्तारी कैसी ? सोच रहा था मैं। हवालात में जाकर ज्ञात हुआ कि मुझ पर हत्या का अभियोग लगाया जायेगा और यह देख कर मैं आश्चर्य चकित रह गया कि आठ दिन पश्चात् जब अदालत में मुझे ले जाया गया तो गढ़े गढ़ाये गवाह तैयार थे। मैं किसी भी प्रकार अपना अपराध मानने को तैयार न था वास्तव में मैं अपराधी था भी नहीं। पर वहां तो अपराध स्पष्ट प्रमाणित था। मुझे फाँसी का दण्ड तो न मिला पर दस वर्ष की लम्बी कैद मिल गई। मुझे अपनी चिन्ता तो न थी पर घर पर बूढ़ी माँ थी, युवती बहिन थी व्याहने योग्य। उनके विषय में मैं निश्चिन्त नहीं हो सकता था। कमाने वाला भी केवल मैं था। सो स्थिति बड़ी दुविधा पूर्ण थी। परन्तु कानून का शिकंजा भी सुदृढ़ था। मन मार कर रह गया। लगभग एक वर्ष तक माँ बहिन की स्थिति ज्ञात होती रही। उसके पश्चात् कुछ नहीं जाना। दस वर्ष पश्चात् छूट कर आया तो माँ और बहिन दोनों ही न थीं। पता लगा कि माँ तो स्वाभाविक मृत्यु से मरी थी और बहिन ने समाज से तंग आकर आत्म हत्या कर ली थी। यह सुन कर मुझे आग लग गई थी कि मेरे गाँव के ज़मींदार ने ही उसे मरने को विवश किया। उसी रात प्रतिशोध की भावना लेकर उसके भवन में जा घुसा। उसके कक्ष में प्रकाश आ रहा था। मैं दबे पांव दीवार के निकट जा पहुँचा। बात करने का शब्द आ रहा था। वहाँ मेरा भी प्रसंग चल रहा है। ऐसा मेरे कानों ने सुना। जो कुछ सुना तन बदन में आग लग गई उससे। वह हत्या जिसका दण्ड भुगत कर मैं आ रहा था। ज़मीदार का ही काला कारनामा था। वह उसका आसामी था। एक क्रोध में अन्धे होकर उसने उसने उसको इतना पीटा कि बेचारा काल कवलित हो गया। क्यों पीटा ? इसलिये कि वह समय पर लगान नहीं दे सका था। आज युग बहुत आगे बढ़ चुका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पर वह समय ऐसा ही था। अपने को ईश्वर का अंश समझने वाले राजा या जमींदार ऐसा ही वर्त्ताव करते थे। उस नृशंस जमींदार के कुकर्म का दण्ड भोगना पड़ा मुझे। मेरी प्रतिहिंसा जागृत हो उठी और देखते ही देखते दो मनुष्यों के मृत शरीर मेरे सामने पड़े थे। कुछ क्षणों के लिये नेत्रों के सन्मुख अन्धकार छा गया। मुझे सुध नहीं रही कि मैं कहाँ हूँ। तत्क्षण मुझे पुनः पकड़ लिया गया। जेल की चारदीवारी मेरी प्रतीक्षा में थी। अभियोग चला और अब की मुझे मृत्युदण्ड मिल गया। मैं जैसे पाषाण हो चुका था। मन न रोता था न हँसता था। नेत्र न बरसते थे न शुष्क थे। न जाने कैसी अवस्था थी वह? मौत सिर पर खड़ी बड़ी भयद प्रतीत होती। मुझे अलग रखा जाता था। किन्तु एकाएक देखता हूं कि मेरे जँगले से बाहर खड्गसिंह खड़ा था: वह मेरा पिछला जेल का साथी था और डकैतियों में कई बार पकड़ा गया था। एक प्रकार से जेल उसका स्थाई घर था। बाहर तो वह कभी कभी सैर सपाटे को जाया करता था। मुझे देख कर आश्चर्य से बोला--'अरे! तुम फिर कैसे?

मैंने अपनी गाथा सुनाई तो बोला—'गुरु! दिखा दे फिर अपना हाथ।'

'क्या' आँखें फाड़कर जैसे मैंने पूछा।

'हाँ हाँ! कहो तो चुटकी बजाते ही सीखचों से बाहर।'

मन ने सोचा क्या ऐसा हो सकता है। उस समय मृत्यु की निराशा न जाने कहाँ भाग गई, जीवन की आशा जग गई। साहस से मैंने पूछा—'क्या सच ऐसा हो सकता है?'

'क्यों नहीं।'

और उसी रात्रि को हम दोनों कारावास से बाहर थे। तत्क्षण जेल का विशालकाय घंटा टनटना उठा। जेल से कुछ दूर ज्वार के ऊंचे खेतों में हम छुपे बैठे थे और हमारी खोज चल रही थी। कभी कभी सिपाही के बूटों की ध्वनि बिल्कुल निकट सुन पड़ती तो मेरा अन्तराल धक्-धक् कर उठता। पर मेरा साथी निर्भय था। वह दम साधे बैठा था। बड़ी बड़ी अन्वेषक बैटरियां भी उसे विचलित न कर सकी थीं। सिपाहियों की ध्वनि दूर चली गई थी और हम खेतों ही खेतों में न जाने कहां निकल गये थे। तब से दस्युवृत्ति ही मेरा धन्धा हो गया। मैंने और मेरे साथी ने एक गिरोह तैयार कर लिया था। उसके संसर्ग में मैं पक्का डाकू हो गया। था। मन मेरा पाषाण हो गया। मांसल टुकड़ा जैसे वहां रहा ही नहीं। आज भी ऐसी ही नियत से चढ़ा था किन्तु ······ किन्तु यह कैसा परिवर्तन अकस्मात हो गया। नीलु का सम्बोधन सुना तो बहिन की स्मृति हृदय-पट पर उमड़ आई। बहिन होती तो आप जैसी ही होती। ऐसी ही आकृति उसकी थी। बहिन का मुखड़ा मेरे नेत्रों के सम्मुख घूम गया। मैं सोचता हूं मेरे भीतर का मानव जो मर चुका था; पुनः सजीव हो उठा है। मन की मृदुलता ने वर्षों की कठोरता. अमानवता को पराजित कर डाला। कोमल आर्द्र भावों का जैसे स्रोत उमड़ पड़ा है। मन चाहता है रो लूँ······इतना रो लूँ कि मन का समस्त कलुष धुल जाये किन्तु पुरुष हूं रोना मेरे लिये अपराध है। लुधियाना निकट आ रहा है। नीलु के पापा आने वाले हैं और वहीं मुझे उतर जाना होगा। उतर जाऊंगा। पर हृदय में एक मधुर टीस लिये हुये। मुझ अभागे का संसार में कौन अपना है? कहने को यह मोह के बन्धन हैं पर यह बंधन बड़े सुखद हैं। कोई मेरे जैसे से पूछे जिसका कोई नहीं न माँ, न बाप, न भाई और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिन। मेरा कोई नहीं, मेरा कोई नहीं यह समस्त वातावरण जैसे इसी की प्रतिध्वनि कर रहा है। एक अद्भुत शून्यता सी हृदय में व्याप्त रही है। किन्तु जाना ही होगा मुझे यह लीजिए बत्तियां दीखने लगी हैं। स्टेशन निकट आ रहा है। यदि आज्ञा हो तो यह अभागा कभी-कभी नीलु से मिलने आया करेगा। आप केवल 'नीलु के मामा के प्रति' शीर्षक से समाचार पत्र में विज्ञापन दे दे। मैं आ जाऊँगा। अब समाप्त करता हूँ। नीलु सदा सुखी रहे। आपका परिवार सदा सकुशल रहे......।

स्नान गृह से पति निकले तो लता को असमंजस में पाया, पूछा—'क्या है प्रिये? यह पत्र कैसा है?

लता ने पत्र पति की ओर बढ़ा दिया। पत्र पढ़ते पढ़ते उनके रोंगटे खड़े हो गये। ओह! वीरेश्वर वह बदनाम डाकू......पत्र पढ़ डाला। उन्होंने तो जैसे चैन की सांस ली।

प्रभात का उजाला झांकने लगा था और गाड़ी देहली पहुंच रही थी। उठते ही रोने लगी—'अम्मी वह कहाँ हैं?'

"कौन"

'मेरा मामा।'

'वह तो चला गया बेटी। यह देख तेरे लिये बहुत सी वस्तुए' दे गया है। साथ ही पत्र में लिख गया है कि तुझसे मिलने आया करेगा।

ऊँ......ऊँ.........ऊँ मैं मामा से मिलूँगी।

बच्ची को चुप कराना कठिन हो गया। किसी प्रकार प्रलोभन देकर नीलु को शांत किया गया। स्टेशन आ गया प्लेटफार्म पर सामान उतरवा कर अभी वे लोग खड़े ही हुये थे कि अखबार बेचने वाला छोकरा आ गया। उत्सुकता से लता के पति ने एक प्रति खरीदी...... मुख्य सुरखी थी......अम्बाला स्टेशन पर भीषण डाका.........एक लखपति लुट गया...... वीरेश्वर डाकू पुलिस के काबू न आ सका......पढ़ कर उनका मुँह फक्क हो गया। लता ने सुना तो बच्ची का मुख चूम लिया। क्यों कि उनकी सुरक्षा करने वाली वही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िला हिसार के हिन्दी सेवी :

लेखक–

श्री रमेशचन्द्र जी शान्त शास्त्री "शालिहास"

धाना कटली सिरसा।

'हिन्दी-सन्देश के रजतजयन्ती अंक (जुलाई १६५७ई०) में पंचनद निवासी जीवित साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय" दृष्टिगत हुआ। इस लेख में केवल उन्हीं लेखकों का परिचय था जो पंजाब के एक विशेष भाग में हिन्दी सेवा करते रहे। हरियाणा के प्रसिद्ध हिन्दी सेवियों का उनमें कहीं भी नाम निर्देश नहीं था जब कि अग्रोक्त साहित्यिकों ने हिन्दी को इस योग्य बनाया कि वह क्रमशः उन्नत होकर आज राष्ट्रभाषा पदासीन है।

आज आप के समक्ष कुछ ऐसी साहित्यिक विभूतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्होंने ज़िला हिसार को अपनी जन्मभूमि व साहित्यभूमि होने का गौरव प्रदान किया। प्रथम हम उन स्वर्गीय पुण्यात्माओं का स्मरण करेंगे जिन्होंने हिन्दी गद्य के शैशव काल में भारतेन्दु जी के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर हिन्दी को सर्वांगीण बनाने में प्रशस्य सहयोग दिया। [विस्तृत परिचय यदि पाठक महोदयों ने उत्सुकता प्रकट की तो काव्योद्धरण सहित प्रस्तुत किये जायेंगे।

(१) *साधु निश्चलदास*—जन्म समय अठारहवीं शताब्दि का अन्त्य भाग। स्थान—कूँगड़ तहसील भिवानी (हिसार)। शिक्षा—स्वामी दादूदयाल जी के शिष्य थे और उक्त स्थान के मठाधीश। रचना—गद्य पद्य के समान लेखक. "विचार सागर" आपकी वेदान्त विषयक पद्य पुस्तक है। "वृत्तिप्रभाकर" तथा "मुक्ति प्रकाश" भी आपकी कृतियाँ हैं। मृत्यु—सन् १८६७।

(२) स्व० पं० *माधव प्रसाद मिश्र*—जन्म—१६२८ वि० में। स्थान—कूँगड़ (हिसार) शिक्षा—संस्कृत, हिन्दी, बंगला के विद्वान्। रचना—"दैशेर् भाषा" का हिन्दी अनुवाद तथा "सुदर्शन" और "वैश्योपकारक" पत्रों का वर्षों सम्पादन, युवा सन्यासी (रामतीर्थ) आपकी ख्यात कविता है। मृत्यु—१६६४ वि० में। गद्य पद्य के आप लेखक थे "मिश्र निबन्धावली" बाद में प्रकाशित।

(३) स्व ० *राधाकृष्ण मिश्र*—आप माधव प्रसाद जी के भ्राता थे, कलकत्ते से "भारत मित्र" दैनिक का बहुत दिनों तक सम्पादन किया। मिश्र जी के समकालीन विद्वान हैं। गद्य अधिक लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) स्व० बा० बालमुकन्द गुप्त—आपकी जन्मभूमि यद्यपि रोहतक जिला थी परन्तु साहित्य साधना भूमि भिवानी ही रही। आप स्व० माधव प्रसाद मिश्र के साथ हिन्दी सेवा करते रहे। आचार्यमहाबीर प्रसाद द्विवेदी भी आपके पाण्डित्य को मानते थे।

(५) *विद्यामार्तण्ड पं० सीताराम जी शास्त्री*—जन्म विक्रम सं० १६५४। स्थान - जागुवास (रि० अलवर) साहित्य साधना भिवानी जि० हिसार में की। शिक्षा—संस्कृत के चूड़ान्त विद्वान १६६१ में ब्रह्मचर्याश्रम भिवानी की। रचना—निरुक्त—सांख्य आदि पर टीकाएं लिखी तथा सहस्र विद्यार्थियों को संस्कृत हिन्दी में शिक्षित कर, १६६४ वि० में स्वर्ग पधारे। ब्रह्मचर्याश्रम भिवानी में हिन्दी संस्कृत का पठन पाठन तथा हिन्दी सेवी तैयार करना आपके परिश्रम का फल है।

(६) *पं० नेकीराम शर्मा*—जन्म—वि० सं० १६४४। स्थान—केलंगा (रोहतक) परन्तु भिवानी साधना क्षेत्र रहा। शिक्षा-संस्कृत हिन्दी के प्रकांड ज्ञाता। रचना-'अभ्युदय' वेंकटेश्वर समाचारपत्र आदि में राजनैतिक लेख। जलियांवाला बाग के हत्याकांड के समय बम्बई से हिन्दी बुलेटिन निकालते थे जिसका गुजराती और अंग्रेजी अनुवाद क्रमशः गांधी जी व सरोजिनी जी करते थे। असहयोग आन्दोलन के दिनों में भिवानी "सन्देश" नामक पत्र निकाला। जिला हिसार की राजनैतिक चेतना के आप प्राण थे; और हिन्दी प्रचार के स्तम्भ। मृत्यु—सन् १६५६।

(७) *श्री तुलसीराम 'दिनेश'*—जन्म वि० सं० १६५३। स्थान—कैरू (भिवानी-हिसार) शिक्षा—मिडल पर्यन्त परन्तु हिन्दी का विशेष ज्ञान था। रचना-पुरुषोत्तम महाकाव्य, मतवाली मीरा, श्याम सतसई, सत्याग्रही प्रह्लाद, तिलक सन्देश, भक्त भारती, पंचामृत, बन्धु भरत आदि १२ के लगभग पुस्तकें। मृत्यु—१६६७ वि० में। मुनीमी के विद्वान् थे। बम्बई में वृत्ति थी।

(८) *श्री सूरजभान वर्मा*—जन्म—१६२६ वि०। स्थान—भिवानी (हिसार) शिक्षा—उर्दू मिडल, परन्तु हिन्दी का घर पर ज्ञान किया। आपने सांग लिखे। रचना—"दूल्हाधाड़ी, मजलूम पंजाब सांग (जो जब्त हो गया) सामयिक पत्रों में भी लिखते थे। मृत्यु—१६७६ वि०

(९) *रमेश भट्ट*—जन्म—लगभग ११२५ में। आप ने "पाण्डव वनवास" कविता सवैया में लिखी। माधव निदान का काव्यानुवाद, ज्ञान शतक आदि रचनाएँ हैं।

(१०) *श्री रामेश्वर पुजारी*—जन्म—१८८८ सन्। स्थान—सिरसा (हिसार) शिक्षा—साधारण हिन्दी संस्कृत। कथावाचक थे। रचनाएं—'रामनाटक' जिसका अभिनय रामलीला में किया जाता है तथा संगीत भागवत, 'कफन कोष' भजनावली तथा फुटकर पद्य। मृत्यु—सन १६४८। संगीतज्ञ थे।

—:जीवित साहित्यकार:—

(१) *श्री कवि केहर 'कृपाण'*—जन्म—सं० १६४३ वि०। स्थान—भिवानी (हिसार)। शिक्षा—नवमी कक्षा पर्यन्त, हिन्दी उर्दू के विशेष कवि हैं। रचनाएँ—लगभग ४५ पुस्तकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रचना की है। यथा "शिशुपाल वध (महा काव्य) नेता जी सुभाष (महा काव्य लिख रहे हैं) कमलापति (श्री नेहरू चरित काव्य) कवि और क्रान्ति, जन्मभूमि (परस्कृत कविता पुस्तक) हिन्दुत्व, देश रत्न कविरत्न, नवरत्न, पेमासिंह, भिवानी के कवि, ओजस्विनी प्रभृति। "स्नेही जी के सुहृद् हैं। पता–कृपाण कला कुटीर, पो० सीतापुर (अवध) उत्तर प्रदेश।

(२) *कन्हैया लाल मिराडां* – जन्म—सन् १९१८। स्थान बगला (हिसार)। शिक्षा–भूषण। उर्दू, हिन्दी का विशेष ज्ञान है। रचनाएँ—"चमड़े के लिये पशुओं का भयंकर वध" (पुस्तक) "ग्रामसेवक"—सेवक साप्ताहिक का सम्पादन। "अजन्ता" अवन्तिका सरस्वती, 'जीवन साहित्य' आदि में पर्वतारोहण, नकली घी, चाय तथा हरियाना से संस्कृत सम्बन्धी लेख अब भी प्रकाशित होते हैं। पता—गणेश भवन (भिवानी)

(३) *श्री चन्द्र लाल वर्मा चन्द्र*—जन्म—सन् १९०२। स्थान—भिवानी (हिसार)। शिक्षा—मिडल, उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी का ज्ञान है। रचना—३५ के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यथा—उद्योग प्रभाकर, कुबेर भण्डार, दान व्यवस्था आदि २ उद्योग सम्बन्धी पुस्तकें हैं। "सेठ प्रभाकर" 'रसायन' 'दस्तकार' आदि का सम्पादन भी किया है। पता—चन्द्र फार्मेसी, हालू भिवानी।

(४) *लाला हरदेव सहाय*—आयु ५० वर्ष के लगभग। स्थान—सातड़ोद (हिसार) हिन्दी के विज्ञाता तथा प्रचारक। आपने गौ साहित्य का हिन्दी में संवर्धन किया है। वनस्पति घी तथा गो हत्या का विरोध और हिन्दी की सेवा आपके जीवनोद्देश्य हैं। रचनाएँ—गाय ही क्यों, गाय या भैंस, दूध की नदी गायों की जरूरत आदि) आज कल "गोधन" साप्ताहिक दिल्ली का सम्पादन कर रहे हैं। साप्ताहिक 'सेवक' 'ग्रामसेवक' के सम्पादक भी रहे हैं। पता–५३३३ सदर थाना रोड, दिल्ली।

(५) *श्री ईश्वरचन्द्र पाण्डेय*—जन्म–सन् १९०२ के लगभग। स्थान—हिसार। शिक्षा–शास्त्री काव्य तीर्थ। जाट हाई स्कूल में अध्यापक हैं। रचनाएँ—"भारत ज्योति" साप्ताहिक का सम्पादन, गीता रामायण, आदि व कविता पुस्तकें तथा फुटकर गीत आदि। पुराने साहित्यिक हैं। पता जाट हाई स्कूल हिसार। हिसार में साहित्य प्रसार में आप का प्रशस्य हस्त हैं।

(६) *प्रो० उदयभानु 'हंस'*—जन्म आयु लगभग ३५ वर्ष। स्थान--मूलतः पश्चिमी पंजाब के हैं। वर्तमान में करनाल में स्थित हैं। शिक्षा—शास्त्री एम. ए.। रचनाएँ—रुबाइयाँ, धड़कन, हंस प्रभाकर गाइड तथा विविध पत्र पत्रिकाओं में लेख कविता। आप उर्दू के भी कवि हैं। पता—हिन्दी प्राध्यापक गवर्नमैंट कालिज हिसार।

(७) *श्री लीलाधर 'दुखी'*—जन्म—१९२० सन् के लगभग। स्थान—सिरसा (हिसार) शिक्षा—हिन्दी का ज्ञान। रचनाएँ—फुटकर कविताएँ साम्यवादी पत्रों में प्रायः प्रकाशित होती हैं। 'सेठ साहब' आपकी प्रसिद्ध कविता है। पता—दुखी भवन, सिरसा (पंजाब)।

(८) *श्री महावीर प्रसाद 'मधुप'*—जन्म १९२७ सन् के लगभग। स्थान—भिवानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटियाला डिवीजन के हिन्दी लेखक :

लेखक:—
श्री सत्यपाल जी गुप्त पटियाला

पंजाब की भांति पंजाब की रियास्तों (जिनको पेप्सू के पंजाब में विलय के पश्चात पटियाला डिवीजन कहा जाता है) में जहाँ प्राचीन समय में अनेक कवि व लेखक हुए जिन्होंने अपनी अपनी अमर कृतियों द्वारा हिन्दी साहित्य को भरपूर किया वहाँ आज कल भी अनेक हिन्दी कवि व लेखक अपनी अपनी बहुमूल्य रचनाओं द्वारा हिन्दी भाषा का साहित्य बढ़ाने में निरन्तर लगे हुए हैं। बहुत कम लोगों को पता है कि पंजाब के इस भू-भाग में व्रजभाषा का इतना सुन्दर साहित्य रचा गया है कि यदि उसको देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध कर दिया जाय तो वह हिन्दी साहित्य के पढ़ने वालों को आश्चर्य चकित कर सकता है।

मैंने अपने इस छोटे लेख में पटियाला डिवीजन के कुछ प्रमुख साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया है। यदि हिन्दी साहित्य के पढ़ने वाले इस भू-भाग में राष्ट्र भाषा

(हिसार)। शिक्षा मैट्रिक पर्यन्त। महाजनी का ज्ञान। कवि केहरि कृपाण जी के पट्ट शिष्य हैं। रचनाएँ—फुटकर कविताएँ, विश्व ज्योति, आदर्श आदि में प्रायः प्रकाशित होती हैं। पता—मं० साहित्य परिषद्, मधुप कार्यालय जवाहर चौक भिवानी (हिसार)।

(९) र० चं० *शांत शास्त्री 'शालिहास'*—जन्म—१९३५ सन्। स्थान—सिरसा (हिसार) शिक्षा—शास्त्री-प्रभाकर। रचनाएँ—भृगु योगावली (प्रकाशित), श्री गाँधी सतसई, वैदर्भी वन त्याग, उषा आमन्त्रण ('प्रकाश' जालन्धर में क्रमशः प्रकाशित) मरु मंगला, श्याम गीतांजलि। संस्कृत में—श्याममहिम्नस्तव मरुद्दूतम्, लघुवंशम्, आदि। 'दिव्यज्योति' शिमला, 'भारती' जयपुर में संस्कृत पद्य भी प्रकाशित होते हैं। 'हरियाणा सन्देश', 'मातृभूमि' 'प्रकाश' मस्ताना योगी में रचनाएँ छपती रहती हैं। पता सं० संस्कृत विश्व परिषद् थाना कटली सिरसा (हिसार)।

(१०) *श्री बंशीधर 'सरोज'*—जन्म—१९२४ ई०! स्थान—राणीला (दादरी) निवास भिवानी में। शिक्षा—बी. ए. प्रभाकर, लॉ पढ़ रहे हैं। रचनाएँ फुटकर कविताएँ, 'नारी' ख्यात कविता। पता—अध्यापक मिडल स्कूल, छींटावाला (पेप्सू)।

इनके अतिरिक्त श्री नीरज, पंकज, वर्क, श्री हूजा, श्री गोपाल, 'मानव' आदि कृपाण जी की शिष्य मण्डली के कवियों का परिचय तथा उदीयमान नक्षत्रों का परिचय समयाभाव से अप्राप्य होने के कारण न दिया जा सका। भविष्य में प्राप्य होने पर प्रस्तुत किया जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रगति का पूरा विवरण पढ़ना चाहते हैं तो वे मेरी पुस्तक "पैप्सू में हिन्दी की प्रगति" (जिस को पैप्सू प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रकाशित किया है) पढ़ने का कष्ट करें।

प्राचीन समय में जो साहित्यकार हुए उनके सम्बन्ध में यदि विस्तार पूर्वक लिखा जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है किन्तु यहां मैं केवल उनके नाम ही देने का प्रयत्न करूंगा।

रियास्तों में जिन लोगों ने साहित्य रचना की उनमें महाराजा नरेन्द्रसिंह, महाराजा राजेन्द्रसिंह, कवि केशवदास, भाई दलसिंह, भाई धर्मसिंह, कवि निहाल, भाई सन्तोषसिंह, भाई भगवानसिंह, बनूड़ी सरदार जयसिंह, भाई बसन्तसिंह, कवि सोहन, कवि मूलसिंह लहरी, सन्त मंगलसिंह, सरदार गुरुमुखसिंह 'ज्ञान' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्य रियासतों के साहित्यकारों में कवि गोपालसिंह 'नवीन' साधु ज्ञान दास सरदार लालसिंह, कवि ग्वाल, भाई कान्ह सिंह महाराजा रिपुदमन सिंह, भाई हजूरासिंह, भाई नारायणसिंह प्रेम निधि, कवि साहब सिंह भृगेन्द्र, मुनिमेघ राज, सरदार फतेसिंह आहलूवालिया, कुंवर विक्रम सिंह, श्री सन्तरेण जी, आदि ने अपनी अपनी रचनाएं ब्रजभाषा या हिन्दी में लिखी हैं जिन की लिपि गुरुमुखी है। इन महानुभावों के अतिरिक्त अन्य बहुत से लेखकों और कवियों ने भी रचनाएं की हैं जिन के सम्बन्ध में अभी खोज होनी शेष है।

आज के कवियों लेखकों के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पहले मैं इतना कहना चाहुंगा कि इस लेख में मैं उनके सम्बन्ध में ही कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूं जिन की रचनाएं पढ़ने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है।

प्रो० शैवाल—आपने अनेकों पुस्तकें हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी और संस्कृत में लिखी हैं। आप जहाँ एक प्रसिद्ध कवि हैं वहां एक महान लेखक भी। एक अद्वितीय शैली आप की देन है। आज कल आप "सुन्दरी सप्तशती" नामक संस्कृत महाकाव्य लिख रहे हैं। आप पटियाला डिवीजन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान हैं।

प्रो० खुशीराम शर्मा वाशिष्ठ—आप के लेख देश के चोटी के पत्रों में निकलते रहते हैं। आप जहां एक प्रसिद्ध कवि हैं वहा अच्छे आलोचक भी, आपका सम्बन्ध इस भू-भाग की कई साहित्यिक संस्थाओं से रहा है। आप ने कुछ उर्दू कविताएँ भी लिखी हैं।

श्री त्रिलोकी नाथ 'रंजन'—श्री रंजन जी एक लोक प्रिय कवि और लेखक हैं। आपकी रचनाओं में विद्वत्ता, भावुकता तथा कला और संगीत का अपूर्व समन्वय होता है। आप कवि और लेखक होने के साथ-साथ एक सफल आलोचक और अन्वेषक कोषकार भी हैं।

श्री ओम प्रकाश आनन्द—आप हास्य तथा व्यंग पूर्ण लेखों के मार्मिक लेखक कहे जा सकते हैं। आप के लेख और कहानियां प्रसिद्ध पत्रों में निकलती रहती हैं। आप एक प्रसिद्ध कवि भी हैं।

श्री यशदेव शल्य– आप की पुस्तक "पन्त का काव्य और युग" हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान रखती है। आप फरीदकोट में 'दार्शनिक' नामक पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं।

आचार्य श्री धरानन्द—आप हिन्दी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित हैं। आप ने संस्कृत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई ग्रंथों का सम्पादन किया है। आपकी 'काव्य शिक्षा' और "काव्य कौमुदी" नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री शमशेर सिंह अशोक—आप प्राचीन साहित्य सम्बन्धी खोज पूर्ण लेख लिखने में अपना विशेष स्थान रखते हैं। आपने हिन्दी पंजाबी में अनेकों पुस्तकें लिखी हैं।

इन महानुभावों के अतिरिक्त प्रो० तारानाथ जोशी (पटियाला) श्री श्यामाचरण श्री वास्तव, श्री प्रेम सागर (फरीदकोट) श्री भूरिश्रवा शास्त्री, (महेन्द्रगढ़) प्रो० किरण चन्द्र शर्मा, प्रो० टी० एन सिंगल (पटियाला) पं० सुगनचन्द शास्त्री (पटियाला) प्रो० सूतदेव हंस (मालेरकोटला) पं० चन्द्रशेखर शास्त्री पटियाला पं० अमर नाथ शर्मा, श्री रामस्वरूप शर्मा, श्री सन्तलाल अरोड़ा, श्री राम स्वरूप, कुमारी मंजु सक्सेना, श्री प्यारा सिंह पद्म, सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती, श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी (नाभा) श्री मिलखी राम रत्न (कपूरथला) श्री ईश्वर चन्द्र शर्मा (पटियाला) श्री महेन्द्र, श्री कृष्ण कुमार कृष्ण श्री त्रिलोक तृषित (गोविन्द गढ़) श्री गौरी शंकर प्रेम, श्री ओम प्रकाश "आनन्द" श्री जोगेन्द्र सिंह योगी श्री कान्ति स्वरूप आशुकवि, सुश्री कृष्णाकान्ता, सुश्री कमलेश कुमारी वेदी, श्री शिवलाल जैतो, प्रो० बी० बी० शर्मा (नाभा) प्रो० महेन्द्र जा, श्री हरवंश लाल जोशी भटिण्डा, श्री विद्यारत्न विद्यालंकार, पं० दुर्गादत्त शास्त्री श्री राम स्वरूप, श्री साधुराम शास्त्री, श्री पवनकुमार, श्री पं० नेकीराम, पं० सच्चिदानन्द जी, श्री विद्यासागर जी, पं० देवकीनन्दन जी आदि हिन्दी साहित्यकार भी समय समय पर अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य की वृद्धि करते रहते हैं।

पैप्सू के हिन्दी प्रेमी श्री सत्यपाल गुप्तः

प्रो० शैवाल, प्रधान पैप्सू हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटियाला

आपने अपना साहित्यिक जीवन बहुत ही छोटी आयु में आरम्भ कर लिया था। हम यह भी कह सकते हैं कि साहित्य रसिकता इन्हें पैतृक रूप में ही प्राप्त हुई है, क्योंकि इनके पिता श्री रोशन पटियालवी बी. ए. उर्दू के चोटी के लेखक व कवि हैं, जिनको उर्दू साहित्य-कारों में एक विशेष स्थान प्राप्त है। इनके साथ कई गोष्ठियों और मुशायरों में जाने से "रसरी आवत जात तें सिल पर परत निशान" की उक्ति इन पर लागू होने में आश्चर्य ही कैसा ? आप को बचपन से ही हिन्दी सेवा का शौक रहा है। जिसका उदाहरण इनके पिता की लिखी हुई उर्दू कहानियों का हिन्दी रूपान्तर है। जो इन्होंने बहुत छोटी आयु में ही किया है। आप के लेख और कहानियां प्रायः "वीर अर्जुन" "हिन्दी मिलाप", "हिन्दी सन्देश", "नव भारत टाइम्स", "ट्रिब्यून" आदि में प्रकाशित होते रहते हैं। प्राचीन हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में खोज पूर्ण लेख लिखने में आप का एक विशेष स्थान है। आप ने 'पाप का प्रायश्चित्त', 'पैप्सू में हिन्दी की प्रगति', 'न्याय का पथ' पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से 'न्याय का पथ' पैप्सू सरकार की ओर से तथा 'पैप्सू में हिन्दी की प्रगति' पैप्सू सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होकर जनता में बड़ी लोकप्रिय हो रही है। आपको लिखने के साथ साथ राष्ट्रभाषा की सेवा का भी आरम्भ से शौक रहा है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सन १९४८ में हिन्दी के भक्त इस दुबले पतले युवक ने हिन्दी के स्वागत के लिये पैप्सू की राजधानी के एक कोने में पैप्सू प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रूप में दीपक जलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४७ से पूर्व पंजाब से प्रकाशित समाचार-पत्रों के लेख

[१]

पंजाब केसरी (लाहौर) मई १९२९ के अंक से :

संचालक : पुरुषोत्तम दास टण्डन सम्पादक : भीमसेन विद्यालंकार

भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध

ले०—श्रीयुत राजाराम शास्त्री
सदस्य लोक सेवक मंडल, लाहौर

इधर कुछ समय से भारतबासियों को ऐसा प्रतीत होने लगा है कि अंग्रेज़ ऐतिहासिकों द्वारा भारत का जो इतिहास लिखा गया है वह पक्षपातपूर्ण तथा असत्य है। अंग्रेजों द्वारा इतिहास इस दृष्टिकोण से लिखा गया है जिससे भारतीयों के दिलों में अपने पूर्वजों के प्रति अश्रद्धा पैदा हो जाय। इसी लिये हमें बतलाया जाता है कि १८५७ ई० में जो महान विप्लव हुआ था वह केवल थोड़े से धर्मान्ध सिपाहियों का विद्रोह मात्र ही था।

हमारा यह मत है कि १८५७ ई० का विप्लव (क्रान्ति) वास्तव में स्वातन्त्र युद्ध ही था। उस समय के विप्लव वादियों का भारत को स्वाधीन बनाना ही एक मात्र उद्देश्य था। इसकी पूर्ति के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व कुर्बान कर दिया। जब हम इस घटना के सच्चे इतिहास का अबलोकन करते हैं तो हमें मालूम होता है कि सन् ५७ के विप्लव के मूल में वे कारण थे जो किसी भी महान् राजनैतिक विप्लव की तह में हुआ करते हैं। अंग्रेजों का कहना है कि इस विप्लव के कारण धार्मिक थे परन्तु बात वास्तव में यह न थी। उस युद्ध में जिन लोगों ने मुख्य भाग लिया था वह थे मुसलमान, मराठे और पुर्विया (अवधवासी)। इनके राज्यों को हाल ही में अंग्रेजों ने छीना था उनके राजाओं के साथ ऐसा कठोर तथा असभ्यता-पूर्ण व्यवहार किया था जिससे इनके दिलों में अंग्रेजों के लिये तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई थी। अंग्रेज समान शत्रु (Common Enemy) हैं, इस लिये सब को मिल कर इनके हाथ से राजशक्ति को छीन लेना चाहिये।

दूसरी बात हम यह देखते हैं कि आन्दोलन थोड़े से सिपाहियों का ही नहीं था बल्कि अधिकांश में जन साधारण का था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विप्लव का श्री गणेश सिपाहियों द्वारा ही हुआ था लेकिन बाद में यह आन्दोलन जन साधारण में फैल गया था। क्यों कि बहुत से स्थानों पर हम देखते हैं कि सिपाहियों के विद्रोह करने के पूर्व ही आमजनता ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था। और फिर सिपाहियों को जनता की तरफ से यथा सम्भव मदद दी जाती थी। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि भिश्ती आदि तक ने अंग्रेजों को अपना शत्रु समझ कर उनका पानी भरना छोड़ दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् ५७ के विप्लव को हम स्वातन्त्र्य-युद्ध इस लिये भी कहते हैं कि उस समय लड़ने वालों के अन्दर धर्म तथा इसी प्रकार के संकीर्ण भावों के कारण मतभेद नहीं था। देश-रक्षा का प्रश्न ही सर्वोपरि था। इस लिये हम भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वाले लोगों को एक ही क्रांति के झंडे के नीचे एकत्रित होते देखते हैं। उपरोक्त बात की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये हमें उस समय के निकले हुए फरमानों का अवलोकन अवश्य करना होगा। उस समय के नेताओं द्वारा देशवासियों के नाम जो फरमान निकाले जाते थे उनके प्रथम शब्द इसी आशय के हुआ करते थे कि "हिन्दु और मुसलमानो!" "देश के रहने वाले लोगों!" आदि २ इसके आगे फिर देश की आजादी के नाम पर ही उन्हें आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया जाता था।

इतिहास में उसी युद्ध को स्वातन्त्र्य-युद्ध के नाम से पुकारा जाता है जो युद्ध पराधीन जाति अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के हेतु लड़ा करती है। किसी भी आन्दोलन का वास्तविक अभिप्राय उसके मूलकारणों से ही जाना जा सकता है, तात्कालिक कारणों से नहीं। सन् ५७ के विप्लव का तात्कालिक कारण चाहे यह हो कि कारतूसों में चर्बी मिली होने की खबर पाकर सिपाही भड़क उठे हों। परन्तु केवल इसी बात से इतने व्यापक आन्दोलन का सूत्रपात नहीं हो सकता था। उस समय के सच्चे इतिहास के अवलोकन से तो ऐसा मालूम पड़ता है कि विप्लववादियों ने बहुत काल से विप्लव की तैयारी की थी। उन्होंने ईरान तथा मिश्र आदि विदेशी राष्ट्रों से सहायता पाने के हेतु वहां अपने दूत भेजे थे। उन्होंने उस समय के बड़े-बड़े देशी राजाओं को भी लिखा था कि अंग्रेजों के पंजे से भारत को छुड़ाने के लिये एक अन्तिम प्रयत्न करना चाहिये। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने तो यहां तक तय कर लिया था कि एक खास निर्धारित तिथि को ही सब जगह एक साथ विद्रोह का झंडा खड़ा किया जाय। उसके लिये फौजों को उन्होंने पहले से ही तैयार कर लिया था।

यहां पर बहुत से लोग यह भी शंका करते हैं कि जब आन्दोलन राजनैतिक था तो फिर लोगों को यह कह-कह कर कि अंग्रेज म्लेच्छ हैं, यह भारत में हिन्दु और मुसलमानों के धर्म के नष्ट करने के लिये आये हैं, क्यों भड़काया गया था? हमें तो ऐसा मालूम होता है कि अपने आन्दोलन को और भी मजबूत बनाने के लिये और दुश्मन के खिलाफ़ लोगों में जिस तरह से भी घृणा उत्पन्न हो सके उन सब साधनों को काम में लाने के लिये ही उस समय के नेताओं ने लोगों के धार्मिक भावों को भड़काया था। इतिहास में ऐसी घटनायें बहुत मिलती है जिन में राजनीतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिये लोगों के धार्मिक भावों को उत्तेजित किया गया हो। उदाहरण के लिये १९२१ ई० का असहयोग आन्दोलन ही है। वह आन्दोलन राजनीतिक था फिर भी लोगों के धार्मिक भावों से पूरा पूरा लाभ उठाया गया था।

उपरोक्त तमाम बातों पर जब हम विचार करते हैं तो हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि सन् १८५७ ई० का जो विप्लव इतिहास में "सिपाही विद्रोह" के नाम से पुकारा जाता है वह वास्तव में भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध था। पराधीन भारत की खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने, अथवा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु अन्तिम उद्योग था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

पंजाब केसरी (लाहौर) मई, १९२९ के अंक से :

भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध का प्रथम बलिदान

१८५७ ई० का साल था। बारकपुर की छावनी की देसी पलटनों में यह अफवाह फैल गई कि राणी सरकार ने गवर्नर जनरल को हुक्म दिया कि सारे भारतवर्ष को ईसाई बना लो। इस लिये तीन लाख ब्राह्मणों और मौलवियों का कतल होना चाहिये क्यों कि यह लोग हठी हैं इन के रहते और लोग ईसाइयत को स्वीकार नहीं कर सकते।

रविवार का दिन था। दुपहर के समय अंग्रेज अधिकारी व सेनापति अपने-अपने स्थानों पर आनन्द में मग्न हो रहे थे। उन्हें कुछ मालूम नहीं था, कि सिपाहियों के हृदयों में क्या-क्या भाव फैल रहे थे।

१९ नम्बर की देसी पलटन में मंगलपांडे नाम का शूर वीर सिपाही था। वह बड़ा कट्टर धर्मनिष्ठ था। इसने जब ऊपर की अफवाहें सुनीं कि गोरे सिपाही हमारी पलटन को शासन दण्ड देने के लिये आरहे हैं तो उसने 'भोलानाथ' महादेव के नाम से एक लोटा भाँग का पिया। निकर पहनी और एक हाथ में तलवार और दूसरे में भरी पिस्तौल लेकर घर से बाहर निकला। रास्ते में जो जो सिपाही मिला उसे कहा कि अंग्रेज लोग गौ की चर्बीवाली कारतूस देकर हमारा धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। तुम्हें इन कारतूसों को फेंक देना चाहिये।

रास्ते में एक बिगुलवाला मिला। उसे बिगुल बजाकर, सब सिपाहियों को इकट्ठा करने की आज्ञा दी। बिगुलवाले ने उसकी बात नहीं मानी। परन्तु इससे उसका आवेश कम नहीं हुआ। वीर मंगल पांडे सीधा आगे बढ़ता गया।

सामने एक अंग्रेज अफसर खड़ा दिखाई दिया। मंगलपांडे ने उस पर गोली चला दी। परन्तु भाग्यवश वह गोली उसके नहीं लगी।

पास ही ३४ नम्बर की पलटन के सिपाही खड़े थे, उन्होंने न तो मंगल पांडे का साथ दिया और नहीं अंग्रेज की रक्षा के लिये उसका विरोध किया। एक हवलदार ने लैफटंट बग को इस की सूचना दी कि मंगल पांडे पागल हो गया है। लैफटंट बग हडसन साहब के साथ परेड पर पहुंचे। मंगलपांडे ने इन्हें आता देख कर तोप की ओट से इन पर गोलियां चलाईं। साहब बच गए। घोड़ा गोली की मार से गिर गया। गिरते २ बग साहब ने मंगलपांडे पर गोली चलाई। बग साहब का वार निशाना चूक गया। बग साहब तलवार लेकर, मंगलपांडे पर टूट पड़ा। मंगलपांडे तलवार चलाने में बहुत प्रवीण था। हडसन भी बग की सहायता के लिये आगे बढ़ा। मंगलपांडे ने दोनों को तलवार के वारों से जख्मी कर दिया। अनेक स्थानों से लहू बहने लगा। उस समय चारों ओर ४०० सिपाही खड़े हुए थे, उन्होंने इस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया। देशी पलटन ने अपने अंग्रेज अफ़सरों को बचाने के लिये हथियार नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाया। मंगल पांडे ने लैफटंट बग को मारने के लिये तलवार उठाई। बग और हडसन दोनों में इतनी सामर्थ्य न थी कि वह इस हमले से अपने आपको बचाते। यह देख कर शेख पलटू नाम के मुसलमान सिपाही ने पीठ पीछे से मंगलपांडे का हाथ पकड़ लिया। शेखपलटू का हाथ तलवार की चोट से जख्मी हो गया परन्तु फिर भी उसने मंगलपांडे को छोड़ा नहीं। शेखपलटू के साहस के कारण दोनों साहब बहादुर वहां से भाग कर बंगले की तरफ दौड़ गये और इस प्रकार अपनी जान बचाई।

लैफ्टनएट बग के चले जाने पर, सिपाहियों ने शेखपलटू को मंगलपांडे को छोड़ देने पर लाचार किया। कोई भी सिपाही अंग्रेज अफसरों की सहायता के लिये नहीं गया, इस का कारण यह था कि फैली हुई अफवाहों के कारण यह लोग अंग्रेजों को धर्मद्रोही समझने लगे थे।

इस घटना को सुन कर, जनरल हियरसे अपने दोनों पुत्रों के साथ घटना स्थल पर पहुँचे। तीनों के हाथों में भरी हुई पिस्तौल थीं। जनरल हियरसे ने हिन्दुस्तानी अफ़सरों से पूछा कि तुमने उस पागल मंगलपांडे को क्यों नहीं पकड़ा?

हिन्दुस्तानी अफ़सरों ने कहा कि फौजी सिपाहियों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी। यह सुनकर हियरसे गुस्से से लाल हो बोला:—मैं देखता हूँ मेरी आज्ञा कौन नहीं मानता। मेरी आज्ञा न मानने वाले को जान से हाथ धोना पड़ेगा। यह कह कर जनरल हियरसे ने मंगलपांडे पर अपना घोड़ा छोड़ दिया। कुछ सिपाही भी मंगलपांडे को पकड़ने के लिये हिलने डुलने लगे। मंगलपांडे ने भी सिपाहियों को कहा कि धर्म रक्षा के लिये मेरी सहायता करो। मंगल पांडे को सामने वीरता पूर्वक बढ़ते देख कर जनरल हियरसे ने पास खड़े नौजवान जान नाम के गोरे सिपाही को कहा कि यदि मैं मंगलपांडे की गोली से मारा जाऊं तो तुमने इसका बदला लिये बिना मत रहना। हिन्दुस्तानी सिपाहियों की ओर मुख करके कहा कि यदि कोई मेरी आज्ञा नहीं मानेगा तो पिस्तौल से उसे यहीं मार दिया जायगा। जनरल की इस धमकी से कोई सिपाही मंगलपांडे की सहायता के लिये आगे न बढ़ा।

मंगलपांडें ने अपने को अकेला देख कर अपनी पिस्तौल अपनी छाती पर दागी। मंगलपांडे इस चोट से ज़ख्मी तथा खून से लथ पथ हो कर भूमिपर गिर गया। मरा नहीं। औषधोपचार करने के लिये हस्पताल भेजा गया। यह घटना २६ मार्च १८५७ रविवार को हुई।

कुछ दिनों में मंगलपांडे का स्वास्थ्य ठीक हो गया उसे फौजी कायदे के अनुसार फांसी की सजा सुनाई गई।

६ अप्रैल १८५७ ई० के दिन पलटनों के सामने मंगलपांडे को फांसी दी गई। सिपाहियों की दृष्टि में इस घटना ने मंगलपांडे को धर्म का शहीद बना दिया। मंगलपांडे के संध्या बन्दन के बरतनों की सिपाही पूजा करने लगे। जिस जगह उसे फांसी दी गई थी वह सिपाहियों के लिये तीर्थ स्थान बन गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

हिन्दी सन्देश (फरवरी १९३३) के अंक से :

संचालक, सम्पादक—भीमसेन विद्यालंकार

हिन्दी में नाट्य कला का अभाव

लेखक—
साहित्य दिवाकर श्री गोपाल कृष्ण 'वीर' लवपुर

जिस भी साहित्य में तुलसी, सूर, बिहारी सरीखे समुच्च भावयुत और सुललित भाव प्रदर्शन–पटु सुकवि होंगे, वह संसार के किसी भी भाषा के साहित्य में हेठा नहीं माना जायगा। परन्तु खेद है कि जहां पर हिन्दी भाषा के रसिकों के मनोरञ्जन तथा मन:प्रक्षालन के लिये तुलसी और सूर की रसमाधुरी विद्यमान है, जहां पर भावुक युवकों के मनोविनोद के लिये बिहारी जैसे रसिक कवियों की कामनीय कविता कौमुदी सर्वत्र विकसित हो रही है, जहाँ पर नाट्यकला का अत्यन्ताभाव देख कर हमें अचम्भा होता है। हिन्दी साहित्य में नाटक लिखने की ओर लेखकों की प्रकृति नहीं हुई। हिन्दी के साहित्य में जो भी साधारण नाटक लिखे गये वे या तो वेदान्त की परिभाषा को ही पात्रत्व में परिणत करके "एकाक्रिया द्व्यर्थ-करी प्रसिद्धा" के अनुसार मनोरञ्जन के साथ वेदान्त की पाठ्य पुस्तक का भी काम दे गये, अथवा किसी विशेष विषय के स्फुट-प्रदर्शनार्थ ही उन नाटकों का निर्माण किया गया–कहना न होगा कि हिन्दी लेखक कविता के क्षेत्र में कितने भी निपुण तथा सुयोग्य क्यों न हुवे हों 'नाटक' लिखने के लिये उन्होंने अपनी लेखनी को नहीं चलाया—

हिन्दी साहित्य में नाट्यकला के अत्यन्ताभाव का कारण यही कहा जा सकता है कि हमारे हिन्दी लेखकों को नाटक लिखने का अवकाश ही नहीं मिला—हिन्दी भाषा का जन्मकाल विद्वानों ने सम्वत् ४०० ठहराया है, यह वह समय था जब "चन्द्र" के पूर्वज अपनी प्राकृत सम्मिश्रित और नया रूप धारण करती हुई प्राकृत भाषा का प्रयोग करना सीख रहे थे। बौद्धों ने प्राकृत को सरल कर विशेष रीति से सामान्य लोगों के प्रयोगार्थ एक नया रूप दे दिया था। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के उषाकाल में निर्माण किए गए ग्रन्थों में प्राकृतिक के शब्दों का इतना अधिक सम्पुट होने पर भी उसमें 'चन्द' सरीखे कवियों की आधुनिकता आ गई है। 'चन्द' कवि के अनन्तर उसकी प्रणाली का अनुसरण करने वाले वहुत से कवि उत्पन्न हुए। चन्द ने इतिहास मिश्रित कथा लिखी थी, अनन्तर भी कविगण इतिहास तथा कथा के अंगों को पृथक कर के विशुद्ध कथात्मक तथा इतिहासात्मक रचनाएँ करने लगे। ऐतिहासिक रचनाएं तो आज हमें बहुधा उपलब्ध नहीं होतीं, हां कथोपकथन की प्रणाली आज भी विलुप्त नहीं हुई। धीरे धीरे जिस समय हम श्री तुलसीदास जी के समय तक पहुँचते हैं, तो हमें जान पड़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अब कविता में केवल कथा-प्रसंग को ही स्थान नहीं दिया जाता वरन वहां पर भक्ति रस का भी यथेष्ट सम्पुट स्थापित कर दिया है, अनन्तर महाकवि सूरदास जी ने भी भक्ति और शान्त रस के सुन्दर सम्पुट के साथ शृंगार रस की भी पर्याप्त बूंदें सिञ्चित कर दीं, बस फिर तो कविगण सूर की भक्ति घटा वर्णन को एक ओर रख कर केवल शृंगार रसोन्मज्जन परायण हो गये। यह लहर ऐसी चली कि इसने देव सरीखे साधु कवियों को भी नखशिख लिखने पर बाधित कर दिया। बिहारी भी शृंगार वर्णन में कलम तोड़ बैठे तथा वीर रस में कविता करने वाले छत्र साल और 'भूषण' कवियों ने भी अपने काव्य में शृंगार रस को काफी स्थान दिया, अनन्तर सामाजिक सुधार का कार्य प्रारम्भ हुआ, और कबीर, रहीम आदि महानुभावों ने कविता को मनोरञ्जन का साधन ही न मान कर, उससे सामान्य नीति सिखलाने का भी काम किया।

कहने का तात्पर्य यह कि हिन्दी के जन्म काल से लेकर बराबर हिन्दी साहित्य में वर्णन क्रम का ही मुख्यतया बाहुल्य रहा, हिन्दी कवि किसी रस या भाव अथवा घटना के वर्णन में ही लगे रहे। और उन्हें दो पात्र निश्चित करके आपस में वार्तालाप कराने का समय ही नहीं मिला—उसका परिणाम यह हुआ कि हमारे हिन्दी साहित्य में नाटकों का एक प्रकार से अत्यन्ताभाव रहा है। यह नहीं कि भारत में नाट्यकला ने कभी प्रसार पाया ही नहीं, प्रायः सभी हिन्दी कवि संस्कृत के अच्छे पण्डित थे, अतः यह कब हो सकता है कि उन्होंने संस्कृत के नाटककारों की कृतियां को पढ़ा ही न हो, यह कब हो सकता है कि उन्होंने भास कालिदास, भवभूति और शूद्रक के संस्कृत साहित्य-मणिभूत नाटकों को देखा ही न हो, हमारे मत में तो हिन्दी साहित्य में नाटकों के अभाव का कारण एक मात्र हिन्दी कवियों की इस ओर प्रकृति का न होना ही है। जिस समय भी किसी साहित्य में नव जीवन संचार की लहर उठती है तब विद्वान गण अपने पुराने ग्रंथों पर वर्षों से एकत्रित हुई धूल को झाड़ कर उनके पन्नों को एक अद्भुत चाव से देखा करते हैं, उनके मन में यही होता है कि अब हमारे साहित्य के किस अंग में शिथिलता है। इसी प्रकार जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी साहित्य में फिर से इस भाषा के साहित्यिक संस्कार का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तभी से कवियों ने यह अनुभव किया कि हिन्दी साहित्य में तो नाटकों का बिल्कुल अभाव सा ही है, इस क्षति को पूरा करने की उत्कट अभिलाषा ने उन्हें बाधित कर दिया कि यदि वे बिल्कुल नये मौलिक अर्थात् (Original) नाटकों का निर्माण करने का साहस नहीं कर सकते तथा ऐसा करने में सर्वथा अशक्त हैं तो कम से कम संस्कृत कवियों के कई एक प्रधान नाटकों तथा कथाओं का नाटक रूप में अनुवाद तो कर ही दें। राजा लक्ष्मणसिंह जी ने कालिदास की शकुन्तला का गद्य पद्यानुवाद कर दिया इसी प्रकार नागानन्द, मालती माधव, उत्तर-रामचरित तथा शूद्रक कृत मृच्छकटिक आदि नाटकों का भी आधुनिक कवियों द्वारा अनुवाद किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

स्व० श्रीमती पुरुषार्थवती

न्दीसन्देश (फरवरी १९३३) के अंक से

पंजाबी महिला स्वर्गीय पुरुषार्थवती आर्य के कविता संग्रह अन्तर्वेदना की समालोचना

इनकी 'कविता संग्रह' अन्तर्वेदना पुस्तक को पकड़ते ही हाथ और हृदय दोनों में सिहरन सी हो उठती है और इन कविताओं में जो वेदना है वह शतगुण हो जाती है। क्या वह आत्मा जीवन के बन्धनों से मुक्त होने के लिए ही तड़प रही थी।

दुर्गम पथ पर चल कर आई हूं, होने को चरणों में लीन।
घोर निराशा तम में अब तक, थी आशा की आभा क्षीण॥

"जिस आत्मा में यह तड़प और यह कसक हो, वह इस आभाशून्य संसार में क्या आनन्द पाती !"

सहयोगी प्रताप कानपुर लिखता है—"संग्रह की अनेक कविताएँ अत्यन्त भावपूर्ण और हृत्तन्त्री को निनादित करने वाली हैं।···अपनी ज़रा-सी उम्र में ही वह प्रतिभाशालिनी बाला कवयित्री यह जान गई थी कि जगत के सुख दुख क्या हैं, महानाविक शक्तिशाली है। जीवन सर्वांग सुखी नहीं, गुलाब कण्टकाकीर्ण है, इत्यादि।"

यह देख कर सचमुच अपार विस्मय होता है कि अपनी छोटी-सी उम्र में ही उस प्रतिभाशालिनी कवयित्री की आत्मानुभूति कितनी सूक्ष्म, कितनी निष्कलंक, कितनी तत्वाभिमुखी थी तथा उसकी अभिव्यक्ति कितनी स्वाभाविक और कितनी कलापूर्ण थी। १९ वर्ष की आयु होती ही कितनी है !

"अन्तर्वेदना" की कविताओं के दो-एक नमूने दे देना कुछ अनुचित न होगा। इस संग्रह की एक कविता है, जिसका शीर्षक है—'स्मशान का दीपक'। इस कविता का भाव है—"मेरा जी न जाने किस कारण व्यथा और निराशा से भरा था। रात का समय था, मैं सो न सकी। उठ खड़ी हुई और एक जनहीन निस्तब्ध दिशा की ओर चल दी। शुक्ल पक्ष की सातवीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चांद पश्चिम में अभी डूबा था, आसमान में तारे शुभ्र हिमकणों के समान झिलमिल कर रहे थे। पृथ्वी पर अँधियारी की काली छाया फैली हुई थी। मैं चलती चली गई, दूर सामने सघन वृक्ष श्रेणी की ओट में एक दीपक मुझे जलता हुआ दिखलाई दिया। मैं वहां पहुंची। ओह! यह तो श्मशानभूमि थी। एक गढ़े में किसी बुझी हुई चिता की राख के कुछ चिह्न-से पड़े थे। उनके पास ही नीरव दरिद्रता की जीवित प्रतिमा, जड़ जंगम की स्नेह स्निग्ध सहानुभूति से वंचित एक दीपक टिमटिमा रहा था, ठीक मुझ अबोध अभागिनी के समान! मैंने देखा तेल से भीगी बत्तियां अपने तन को जला रही थीं। न जाने किन हाथों ने इन बत्तियों को बनाया होगा। जलती हुई बत्ती के अग्रभाग से कभी-कभी तेल की बूंदें ज़मीन पर टपक जाती थीं, और हवा से छूकर वह क्षीण-सी ज्वाला धीरे-धीरे साँ-साँ करने लगती थी। मानो यह अभागा दीपक अपने किसी अतीत की विह्वल स्मृति में दुखियों की-सी करुण कथाएं गा-गा कर निरन्तर रोते रहने की ही साधना में व्यस्त हो गया हो। इस दीपक के पास जा कर मैंने पूछा—'दीपक! तुम इस तरह निरन्तर जल क्यों रहे हो? बार-बार आन्तरिक दुख के तड़प-तड़प कर आंसू क्यों बहा रहे हो? देखते नहीं, यह मध्य रात्रि की ठण्डी हवा सनसनाती हुई चल रही है; इस तेज़ हवा के पागल झोंके कहीं तुझे अचानक ही न बुझा दें। दीपक! तुझे हवा के इन झोंकों से डर नहीं लगता क्या?''

मैंने सचमुच सुना, वह दीपक बोला—''इस बुझी चिता को नहीं देखती हो क्या? मैं यहां और आया ही किस लिए हूं? मेरी इस अकथ कहानी का नायक यहां वर्षों से पड़ा सो रहा है। उसी की स्मृति में मैं रोज़ तिल-तिल कर के जलता हूं। रात ही की हवा के ये झोंके मुझे सदैव बुझा देते हैं, मगर इस नायक का प्रेमी प्रत्येक सांझ को मुझ में नई बत्ती और नया तेल आकर दे जाता है। इस सुनसान, निर्जन भूमि में मेरा एक-एक पल इस इन्तज़ारी में कटता है कि वह कभी तो जाग उठेगा! उस की निश्चल आंखें कभी तो प्रकाशमान हो उठेंगी!...... मेरी इस साधना में बाधा मत पहुँचाओ!''

''इसी समय हवा का एक झोंका आया, और दीपक बुझ गया!''

एक और कविता की कुछ लाइनें इस प्रकार हैं:—

किसी दुःख से आर्द्र गगन है,
छिद्र उसी वंशी के तारे—
व्याकुल होकर वहीं मगन हैं।
रोदन है, हँसी है या तम का अधीर आह्वान,
गरज उठे लय की लय में वह अज्ञानावृत ज्ञान।
वृक्ष लताओं, कुसुम कुंज से
गिरि गह्वर से द्विगुणित होकर
बहने लगे शब्द पुंज से।
जल, थल, नभ से गूंज उठे मानो मृदु मनहर तान॥

हमें विश्वास है कि पंजाब के साहित्य प्रेमी इस महनीय कवयित्री की साहित्यिक सत्ता को सदैव अभिमान के साथ स्मरण करते रहेंगे।

—पारखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५]

दैनिक हिन्दी मिलाप लाहौर (२६ मार्च १६३६) के अंक से :

संस्थापक—श्री म० खुशहालचन्द जी
(वर्तमान महात्मा आनन्द स्वामी जी)

सम्पादक—श्री यश जी एम. एल. सी.

हिन्दी ईमान, राष्ट्रीय एकता और आज़ादी की भाषा है !

[जमना लाल बजाज]

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, मद्रास के, छब्बीसवें अधिवेशन में २७ मार्च १६३७ को सेठ जमनालाल बजाज ने सभापति आसन से जो भाषण पढ़ा उस के जरूरी भाग नीचे दिये जा रहे हैं:—

बहिनो और भाइयो,

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन दक्षिण भारत के मुख्य नगर मद्रास में होना जितने आश्चर्य का विषय है, उतना या उससे कहीं अधिक आश्चर्य का विषय है मेरा इस अधिवेशन का सभापति बनना। साहित्य सेवा तो दूर रही, साहित्य का यत्किंचित् अध्ययन भी अपने जीवन में मैं आज तक नहीं कर पाया हूँ। साहित्य की दृष्टि से मेरी योग्यता तो प्रथम फेल तक की भी नहीं समझी जा सकती। तेरह साल का था, तभी से मुझे पढ़ना-लिखना छोड़कर व्यापार-धंधे के काम में लग जाना पड़ा। व्यापार के साथ-साथ समाज सेवा और बाद में राष्ट्रीय सेवा करने का मौका भी मुझे परमात्मा की कृपा से तभी से प्राप्त हुआ।

१६०६ ई० की ऐतिहासिक कलकत्ता कांग्रेस के समय से मैं इस कांग्रेस में शरीक हुआ था। स्व. दादा भाई नौरोजी की सदारत में इस कांग्रेस का सारा काम अक्सर अंग्रेज़ी में ही हुआ जो मैं बहुत कम समझ पाया था। उस समय मन में ये विचार आये कि यह कितने दुःख और चिन्ता की बात है कि हिन्दुस्तानी होते हुए भी अपने ही देश में हमें आपस में एक विदेशी भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा काम-काज करना पड़ता है। इसी तरह और भी कई मौकों पर ऐसे विचार आते रहे। देश का राजनैतिक आन्दोलन अंग्रेजी भाषा में चलाने से कैसा निष्फल साबित होता है, यह तो मैं भली भांति देख सका था। इस से आम जनता को न कोई शिक्षा मिलती है और न कोई प्रेरणा ही। जनता की सेवा करते-करते आज २५–३० साल के तजुरबे से मैं यह साफ देखता हूं कि बिना राष्ट्र भाषा के प्रचार के हमारा लोक-संगठन हो नहीं सकता।

मद्रास में हिन्दी प्रचार—मद्रास के कार्य के लिये गान्धी जी ने मद्रास के लोगों को ही शुरू से नियुक्त किया और उन्हें तैयार करने के लिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पास इलाहाबाद भेज दिया। टण्डन जी, श्री रामनरेश त्रिपाठी आदि लोगों ने उन को अच्छा प्रोत्साहन दिया। किन्तु यह तैयारी होने तक गान्धी जी रुकने वाले थोड़े ही थे ? उन्होंने अपने पुत्र देवदास को हिन्दी-प्रचार के लिये मद्रास भेज दिया। उन के पीछे-पीछे प्रसिद्ध परिव्राजक स्वामी सत्यदेव जी को भी भेजा और दक्षिण के हिन्दी-प्रचार की नींव डाली। उस बात को आज अठारह या उन्नीस साल हो गये हैं। इधर पं० हरिहर शर्मा आदि भी अपनी तैयारी शीघ्रता से करके आ पहुंचे। उत्तर से श्री हृषीकेश शर्मा, प्रताप नारायण बाजपेई तथा दूसरे कार्य कर्त्ता भी दक्षिण के मित्रों की सहायता के लिये दौड़ आये। श्री प्रतापनारायण तो इसी काम में शहीद भी हुए हैं। दक्षिण में हिन्दी जैसी एक नई भाषा का प्रचार करना कोई आसान काम नहीं था। नागरी लिपि का प्रचार भी इस प्रान्त में नहीं के बराबर है। तो भी संस्कृत के सबब से और साधुसन्तों की कृपा के कारण हिन्दी के प्रति जो आत्मीयता है उससे इस कार्य में कोई कम सहायता नहीं मिली है। हमारे मुसलमान भाइयों ने भी एक जुदी लिपि के द्वारा भले ही हो, हिन्दुस्तानी ज़बान का बहुत कुछ प्रचार किया है।

भाषा के अछूत शब्द—हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि हिन्दी के और तमाम प्रान्तीय भाषाओं के बीच सैंकड़ों शब्द समान हैं। इनमें से बहुत से शब्द तो संस्कृत-कुटुम्ब के हैं। कई अरबी-फारसी से लिये गये हैं और बहुत से देशज हैं, जिन में भावों को जाहिर करने की बहुत सी ताकत भरी हुई है। पर बदकिस्मती से उन शब्दों का हमने उनके प्रति हीन भावना रख कर अछूत करार दे दिया है। ये समान और समर्थ शब्द हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में बहुत सहायक हुए हैं। इनकी हमें हिफाजत करनी चाहिये। मुझे तो यहां इतना ही कहना है कि राष्ट्रभाषा के प्रचार में हमें अब भारतवर्ष की प्रान्तीय भाषाओं से बहुत कुछ मदद लेनी होगी। राष्ट्रभाषा का उज्ज्वल भविष्य कम या बेशी प्रान्तीय भाषाओं के साथ में है। इसी लिये हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन को इस बार मद्रास तक ले आये हैं। आन्ध्र तामिल नाड, केरल और कर्नाटक के हमारे देशभाइयों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को जिस गज़ब के प्रेम से अपनाया है उसका अभिनन्दन करके उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये और उनसे अधिक सहायता लेने के लिये हम उनके बीच में आये हैं। मद्रास में गत १७-१८ वर्षों के दरम्यान काफी काम हो चुका है और वह भी बड़े कम खर्चे में—चार साढ़े चार लाख रुपयों में छः सात लोगों का हिन्दी सीख जाना कोई मंहगा सौदा नहीं है। आज दक्षिण के चाहे जिस शहर में जाइए कोई न कोई हिन्दी समझने और बोलने वाला वहां मिल ही जाता है। आन्ध्र में तो हिन्दी का प्रचार देहातों तक पहुँच गया है। दक्षिण के लोग भाषा प्रेमी तो होते ही हैं। नई भाषा सीखने में उन्हें बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द आता है, क्यों कि वे जानते हैं कि भाषा-ज्ञान से सेवा-शक्ति बढ़ती है। लेकिन दक्षिण की देवियों ने जिस प्रेम से राष्ट्रभाषा को अपनाया है और जिस उमंग से वे राष्ट्रभाषा सीखती हैं उसके लिये तो मैं इस स्थान से उन्हें बहुत-बहुत बधाइयां देता हूँ। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी ईमान की भाषा है, प्रेम की भाषा है, राष्ट्रीय एकता की भाषा है, और आजादी की भाषा है। यह सब ताकत हिन्दी में प्रगट करने की जिम्मेदारी हम सभी की है। मैं देखता हूं कि हिन्दी के परिचय से दक्षिण के कई लोग उत्तर की तरफ आ रहे हैं। यह अच्छा ही है। कई लोगों ने तो हिन्दी में लिखना भी शुरू कर दिया है। यह देख कर मुझे आनन्द होता है, लेकिन अचरज नहीं। आपके शास्त्री जी, राजा जी, सत्यमूर्तिजी, तथा डा० पट्टाभी आदि जहां अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा पर प्रभुत्व जमाते हैं, वहां हिन्दी जैसी घर की भाषा को आपने अपनाया तो इसमें ताज्जुब ही क्या? मैं तो राह ही देखता हूं कि व्रजभाषा अवधी और राजस्थानी से लेकर खड़ी बोली और हिन्दुस्तानी तक के साहित्य के बड़े-बड़े प्रोफेसर हमें दक्षिण से मिलने लगें। महात्मा जी मालवीय जी, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर पं० जवाहरलाल जी अरविन्द घोष, देवी सरोजिनी और सर राधाकृष्णन जैसे महान व्यक्ति अगर अपनी भाषा से अंग्रेजों को मोहित कर सकते हैं तो आप लोग हमारा मंगलाप्रसाद पारितोषिक, क्यों न जीतें?

कांग्रेस और हिन्दी—कांग्रेस का प्रस्ताव तो हो चुका है कि उसकी कार्रवाई राष्ट्रभाषा में ही रक्खी जाय किन्तु दुःख है कि हम अब तक इस प्रस्ताव को अमली जामा नहीं पहना सके हैं। ग्रामोद्योगसंघ हरिजन सेवक-संघ, और चर्खा संघ जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं का काम भी अब तक हिन्दुस्तानी के बजाय अंग्रेजी में ही चल रहा है यह कम दुःख और शर्म की बात नहीं है।

हिन्दी और उर्दू—संस्कृति के संगठन की बात कहते समय मुझे हिन्दी और उर्दू के मेलमिलाप की बात भी याद आ जाती है। हमें अपनी अलग-अलग संस्कृतियों का एकीकरण करना होगा और उन सब के अमृत मथन से हमारी एक आदर्श संस्कृति का निर्माण होगा। इस लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है, हिन्दी और उर्दू का ऐक्य। दोनों पक्ष के विद्वानों से मेरी दरख़ास्त है कि वे एक दूसरे के नजदीक आने की कोशिश करें। भाषा के साथ-साथ लिपि के बारे में भी हमें एक दूसरे के प्रति उदारता और सहिष्णुता से काम लेना होगा। माना कि देवनागरी लिपि ही वैज्ञानिक है। फिर भी हिन्दू विद्वानों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अरबी लिपि का अध्ययन करें और मुसलमान आलिमों का भी यह फर्ज हो जाता है कि वे देवनागरी को अपनावें। इस में कोई बड़ी मुसीबत या दिक्कत पेश आने वाली नहीं है। युक्तप्रान्त और पंजाब में आज भी कई कौमी अखबार उर्दू में निकलते हैं और मुसलमानों में भी ऐसे लेखक मौजूद हैं, जिन्हों ने साबित कर दिया है कि वे उर्दू की भांति देवनागरी भी सरलता से लिख सकते हैं।

राष्ट्र सभाएं और हिन्दी—राष्ट्रभाषा का भविष्य उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से मुझे अपनी धारा सभाओं के नुमाइन्दों के साथ भी कुछ बातें कर लेनी हैं। देश के जो नुमाइन्दे धारा-सभाओं में गये हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे ऐसी कोशिश करें जिस से राष्ट्रभाषा की तालीम हरेक भारतीय के लिए लाजिमी बनाई जा सके। हमारे नुमाइन्दों का यह काम बड़े महत्व का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साबित होगा। अगर इस बारे में सचाई और लगन से कोशिश की जाय तो इसकी कामयाबी में मुझे कोई अन्देशा नजर नहीं आता। गैर मुल्कों में भी ऐसा ही हुआ है। हमारे लिये यह भी एक शर्म की बात है कि नये विधान के अनुसार हम धारासभाओं की कार्रवाई भी अंग्रेजी में ही चलाने के लिये मजबूर किये जाते हैं। परन्तु जनता के नुमाइन्दों का यह फर्ज होगा कि वे इस बात की कोशिश करें कि धारासभा का काम काज या तो प्रान्तीय भाषा में चलाया जाय या फिर राष्ट्र भाषा में।

मैं राष्ट्र-भाषा का हिमायती हूँ, अंग्रेजी का दुश्मन नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय दुनिया से व्यवहार करने में हमें आज भी अंग्रेज़ी का सहारा लेना पड़ता है। मगर गुलाम देश को अपनी सदियों की गुलामी से जल्द-से-जल्द छुटकारा पाने के लिए अपनी राष्ट्र-भाषा का ही सहारा लेना होगा। अगर हमारे व्यापारी मित्र विदेशी भाषा की गुलामी से ऊपर उठ कर राष्ट्रभाषा में अपने कारोबार चलाने का इरादा कर लेंगे तो उनको सहूलियत होगी और राष्ट्रभाषा के प्रचार का पुण्य भी वे हासिल कर सकेंगे।

साहित्य को भूलना नहीं—राष्ट्रभाषा-प्रचार की बुलन्द आवाज उठाते वक्त हमें अपने साहित्य को भूलना नहीं है। हमारा साहित्य हमारे लोक-जीवन की झाँकी है हमारी सभ्यता और संस्कृति (तहजीब व तमद्दुन) का शीशा है। जीवन परिवर्तन शील है। साहित्य अमर है। हम ने अभी ऐसा अमर और मौलिक साहित्य बहुत कम रचा है। आज बङ्गाल अपने साहित्य पर गर्व कर सकता है। परन्तु राष्ट्रभाषा के हिमायती भी संसार को कुछ मौलिक विचार भेंट करने के अरमान तो रखते हैं। हमारे लेखकों और साहित्यकारों की इज्जत न केवल भारत में बल्कि तमाम मुल्कों में हो और हमारे साहित्य से संसार में हमारा सर ऊंचा रहे. यह हमारी पवित्र अभिलाषा है। आप ने मेरे इन विचारों से देखा कि मैं राष्ट्रभाषा का उपासक हूं। उसका देशव्यापी प्रचार देखने के लिए उत्सुक हूं।

अन्त में मेरी यही कामना है कि हमारा सम्मेलन राष्ट्र के साहित्य को सुरुचिपूर्ण और लोकभाषा के पक्ष को प्रबल बनाये, सत्साहित्य का निर्माण करे और अपना सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचावे। मङ्गलमय भगवान हमारी इस अभिलाषा को अवश्य पूर्ण करेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

दिल की शान्ति :

लेखिका—कुमारी प्रकाशवती

कहां जाते हो दिल उद्भ्रान्त !
जिसका किया था वादा तुमने,
कर उस की ही याद !
ऐ चमकीले पत्थर !
तुम हो पिछली याद !!
जाते बैठते नित थें तुम पर,
करते प्रेमालाप,

वही घास जो सुख देती थी
दिल तरसावे आज !!
अब जाती हूं ऐ पत्थर !
तुम्हें देख फिर जाती हूँ,
तुम्हें देख कर ऐ प्यारे !
केवल दिल को शान्तकर जाती हूं !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६]

दैनिक शक्ति लाहौर (मई १६३८) के अंक से :

संचालिका, सम्पादिका—श्रीमती शन्नोदेवी जी

कालिदास और भवभूति की तुलना

यह दोनों कवि भिन्न भिन्न समयों में हुये हैं। कालिदास ईसा की पांचवीं शताब्दी में हुये हैं। यह काल वास्तविक विद्वानों से सुशोभित था। विद्या की वृद्धि थी परन्तु भवभूति ईसा की सातवीं शताब्दि में हुये। यह काल समालोचकों से भरपूर था। वे दूसरों की आलोचना करना जानते थे। उन्हें आए या न आये। उनका उद्देश्य समालोचना करना था चाहे वह ठीक हो या न हो। समय भेद के कारण दोनों कवियों की लेखन-शैली भी भिन्न है। कालिदास वैदर्भी शैली के आचार्य थे। "वैदर्भी—रीति-सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।" वैदर्भ-रीति में उन्हें विशेषता प्राप्त थी। वह विरले ही लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग करते थे। इनकी भाषा अत्यन्त ही सरल तथा लौकिक है। इनके विचार स्वाभाविक हैं। अतः सर्व साधारण सरलता से समझ सकते हैं। कालिदास अपने ग्रन्थों में अपने ज्ञान को दर्शित करने के अधिक उत्सुक नहीं हैं। वे उपमा देने में तो पारंगत ही थे। उपमा देते समय उन्हें उपमा तथा उपमेय के लिङ्ग वचन का भी प्रायः ध्यान रहता था।

भवभूति गौड़ी रीति के अनुयायी थे। उनके विचार में कविता का सौन्दर्य तथा पाण्डित्य वाणी के प्रौढ़त्व तथा उदारता और अर्थ की गहराई में था। अतएव उनकी रुचि लम्बे लम्बे समासों के प्रयोग की ओर थी। यहां तक कि वह प्राकृत वाक्यों में भी बहुत लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग करते थे। उनकी भाषा अत्यन्त ही क्लिष्ट है। वे चुन चुन कर कठिन शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग करते थे। कई स्थलों पर भाषा में क्लिष्टता और अस्वाभाविकता आ गई है जो नाटक में एक दोष ही है। तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि यह समय का ही दोष था और भवभूति सामयिक प्रथा का परित्याग नहीं कर सकते थे।

इनके भाव अत्यन्त ही उच्च, क्लिष्ट, सारगर्भित, आदर्श तथा अतिमानुषिक हैं। वे अपने ग्रंथों में अपने पांडित्य को दर्शाने के लिये अत्यन्त ही उत्सुक हैं। यहाँ तक कि वह कितने ही वैदिक शब्दों का प्रयोग करते हैं जो कि लौकिक भाषा में प्रयुक्त नहीं होते। पारिभाषिक शब्दों की भी प्रचुरता है। अतः जो पण्डित वैदिक साहित्य में प्रवीण हों वही उनको सरलता से समझ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास श्रृङ्गार रस के वर्णन में कुशल थे, तो भवभूति करुण तथा वीर रस के वर्णन में सिद्धहस्त थे। कालिदास की भाषा में व्यञ्जकत्व शक्ति है, जिसको कालिदास ध्वनि से सूचित कर देता है, मगर उसी बात को भवभूति खूब खोलकर वर्णन करता है। उदाहरणतया जब दुष्यन्त शकुन्तला को काम से पीड़ित होने के पश्चात् देखते हैं तो केवल इतना ही कहते हैं कि— 'अये लब्धं ते निर्वाणम्'' परन्तु भवभूति का भी निरीक्षण कीजिये ठीक वैसे ही समय पर माधव कहता है—हन्त पुण्यवानस्मि यदहमतर्कितोपनत दर्शनोल्लसित लोचनया-नयाअविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण नद्धः, स्नापित इव-च दुग्ध स्रोतसा निर्भरेण, कवलित इवकृत्स्नचक्षुषा स्फारितेन, प्रसभसमृतमेधेन सान्द्रेणासिक्तः॥

यहां विचार तो एक ही हैं परन्तु वर्णन शैली भिन्न है।

यदि कहें कि भवभूति कालिदास से कहीं बढ़कर आदर्श कवि हैं तो कहना यथार्थ होगा "कारुण्यं भवभूति रेवतनुते'' इसमें तो सन्देह ही नहीं कि भवभूति के पात्र कई स्थलों पर हमें रुला देते हैं। परन्तु कालिदास के पात्र ऐसे नहीं। भवभूति ने प्रकृति के तथा जीवन के विकट रूपों का भी निरीक्षण तथा वर्णन किया है। मगर कालिदास केवल आनन्दमय भाग की ओर ही दृष्टि-पात करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो भवभूति हास्य-रस से अनभिज्ञ थे। उनके नाटकों में हास्य का प्रायः अभाव सा है। विदूषक के लिये वहां कोई अवकाश नहीं है। परन्तु कालिदास सीमान्तर्गत हास्य करते हैं। उनके सबनाटकों में विदूषक एक बहुत ही प्रसिद्ध तथा आवश्यक पात्र है। विदूषक हास्य में प्रवीण होता है। कालिदास के नाटक तत्कालीन समाज की दशा, उसकी सभ्यता तथा देश की स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं डालते। परन्तु भवभूति के नाटक इस कार्य में दक्ष हैं। उनमें हमें उस काल की सभ्यता तथा धर्म का चित्रण मिलता है। भवभूति की प्रकृति-वर्णन की प्रियता अपनी सीमा का उलंघन कर जाती है। जिस कारण बहुत से ऐसे वर्णन नाटकीय कला के विचार से अनुपयुक्त हैं।

अन्त में यह लिखकर लेख को समाप्त करना उचित समझते हैं कि दोनों ही उच्च कोटि के नाटककार हैं। यदि कालिदास श्रृङ्गार वर्णन में अद्वितीय हैं तो भवभूति करुणा रस वर्णनमें प्रवीणतम हैं। अपने पांडित्य का ज्ञान दोनों को है परन्तु कालिदास उसको सुन्दर शब्दों में प्रकट करते हैं और भवभूति अहंकार पूर्ण शब्दों में। दोनों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है तो भी कालिदास की वाणी में मिठास, शान्ति, कोमलता और स्वच्छता है। परन्तु भवभूति की कविता समय वस्तु के अनुसार उद्धत रूप भी धारण कर गई है। कालिदास की श्रृङ्गार वर्णन शक्ति यद्यपि अति प्रशंसनीय है तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उसमें ग्राम्य दोष तथा अश्लील दोष भी कभी-कभी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु भवभूति की कविता में यह दोष कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७]

आर्य का ऋषि-बोधांक (मार्च १९३७) के अंक से :

संचालक—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (लाहौर)

ऋषि दयानन्द की बिरादरी

लेखक—पं० चमूपति जी एम. ए.

पञ्जाब में ऋषि का पदार्पण १८७७ ई. में हुआ था और आज १९३७ है। ६० वर्षों के इस अन्तर में देश की अवस्था बिलकुल बदल गई है। इस परिवर्तन का कारण कुछ तो समय स्वयं हीं है। संसार का कोई पिण्ड ऐसा नहीं जो ज़माने के साथ-साथ परिणाम अर्थात् तब्दीली का पात्र न बनता हो। फिर चेतन पिण्ड तो इधर भौतिक परिणामों में से गुज़रता है, उधर आध्यात्मिक विचार-धारा पर सवार हुआ अन्दर-अन्दर ही निरन्तर बहता जाता है, बहता जाता है। मानव समाज चेतन पिण्डों से तो बना ही है। परन्तु इन चेतन व्यक्तियों के अतिरिक्त इसका एक सामाजिक आत्मा भी है। हमें देखना यह है कि पंजाब के सामष्टिक आत्मा ने इन वर्षों में क्या प्रगति की है? और उसमें आर्य समाज के प्रचार का क्या और कितना भाग है? ऐतिहासिक का काम केवल अतीत का अध्ययन करना ही नहीं है। उसकी दृष्टि भविष्य पर भी रहती है। उसका काम यह भी है कि वह प्रवृत्तियों की भावी दिशा की ओर संकेत करे। एक प्रचारक समाज के लिये यह जानना भी आवश्यक है कि वह अपने निश्चित उद्देश्यों में कहां तक सफल हुई है? मानवीयता के अग्रिम विकास में उसका स्थान क्या है? आखिर हम विश्व का भाग हैं। हमें विश्व से पृथक् नहीं हो जाना चाहिए।

आर्य समाज का पहिला कार्य है सामाजिक सुधार। सर्व-साधारण आर्य समाज में इस लिये आये हैं कि यह एक सुधारक समाज है। आज बाल-विवाह केवल आर्य समाज ही नहीं, सनातन धर्म के मन्तव्यों से भी हट चुका है। "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" की रट अब कहीं नहीं लगाई जाती। ६ वर्ष की कन्या और ११ वर्ष वर के "वैदिक" विवाहों के विज्ञापनों का समय भी अब बीत चुका है। शिक्षित समाज में कन्याओं की शिक्षा का रिवाज चल पड़ा है। इनकी आयु १६ वर्ष तक ले जाना इतना कठिन नहीं रहा, जितना कुमारों की आयु २५ वर्ष तक पहुँचा देना। व्यक्ति चालीस-चालीस वर्ष तक भी विवाह किये रह जाते हैं परन्तु सर्व-साधारण को अभी शारदा बिल के १८ वर्ष भी दूभर प्रतीत होते हैं। आर्य समाज इस विषय में जाति का अगुआ है। यह आदर्श के निकट पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। शिक्षित समाज इसके पीछे-पीछे प्रगति करता जाता है। समाज-सुधार की गति का क्रम अब यही है—आगे आगे आर्य समाज, बीच-बीच में शिक्षित दल, उसके पीछे सर्व-साधारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा-विवाह के लिये समाज ने सीधा प्रयत्न तो नहीं किया। सम्भवतः नियोग का सिद्धान्त इस में बाधक रहा। आदर्श-वादी उपदेशक ऐसे विवाहों की अनुमति केवल शूद्रों को देते थे। कोई विधवा विवाह कर ले तो उसे अच्छा समझ कर भी कहा यही जाता था कि सिद्धान्त की दृष्टि से यह कार्य प्रशस्त नहीं है। उस समय के कुछेक विधुरों ने सचमुच संयम के आदर्श को ऊँचा कर दिया था। किन्तु सामान्य जनता ने उनके मार्ग का अवलम्बन नहीं किया। सर गंगाराम विधवा-सहायक सभा ने विधवा-विवाह की प्रथा चला दी है और उसके मुख्य कार्य-कर्ता हमेशा आर्य सामाजिक रहे हैं। नियोग अपने विशुद्ध रूप में केवल शास्त्रार्थों का ही विषय रहा है। इसके क्रियात्मक उदाहरण शून्य के बराबर हैं। इस समय विधवा-विवाह ही का प्रचार हो रहा है। मन्द-गति से चल कर भी जनता इसी ओर जा रही है। शुरू के समाचार-पत्रों में नियोग का अर्थ विधवा-विवाह लिया गया प्रतीत होता है।

विवाह के विषय में जात-पात के बन्धन तोड़ने में भी अब कठिनता नहीं रही। कोई ऐसा कर ले तो न उसकी प्रशंसा होती है न विरोध। समाज का उदार विभाग उप-जाति के अन्दर विवाह न कर उससे गोत्र का काम ले लेता है। विवाह के क्षेत्र को संकुचित करने की प्रथा अब धीरे-धीरे हटती जा रही है। इन जातों तथा उपजातों को सर्वथा हटा देने की मांग भी है परन्तु दूसरी ओर सगोत्रविवाहों द्वारा सम्मिश्रण का डर है। एक ऐसा क्षेत्र रहना आवश्यक है जिसकी सभी लड़कियां बहनें समझी जायें। आर्य जाति की यह एक पवित्र अमानत है जिसे नष्ट नहीं होने देना चाहिए। जैसे हम ऊपर कह आये हैं, आर्य-धर्म (शिरोमणि) सभा का लक्ष्य विवाह की परिधि आर्य मन्तव्यों के स्त्री-पुरुष तक ही परिमित कर देने का था, परन्तु समाज की विशाल प्रगति में ये संकुचित प्रयत्न अब विलीन हो चुके हैं। आर्य-शास्त्रों की दृष्टि में विवाह-सम्बन्ध गृहस्थ को सुखी बनाने के लिये है। इसका एक साधन सवर्णता है। जात-पात तोड़ देना अथवा धार्मिक मन्तव्य का अभेद सवर्णता का पर्याय नहीं है। सम्भव यह भी है कि मन्तव्यों की विभिन्नता में भी दम्पती के गुण कर्म स्वभाव का समन्वय हो जाय। ऐसी स्थिति में विवाह-सम्बन्ध का निरोध नहीं हो सकता।

आर्य जाति ने अब तक अपनी संस्कृति के अन्दर विभिन्न विश्वासों के वर-वधुओं के विवाह होने दिये हैं। पौराणिकों, सिखों, जैनों, बौद्धों के परस्पर विवाह होते रहते हैं। इससे प्रत्येक घर में "नानाधर्माणं यथौकसम्" की एक स्वल्प-सी सृष्टि होती गई है। आर्य समाज ने भी इस प्रथा को चलने दिया है। इस प्रकार घर-घर में मन्तव्यों का संघर्ष तो हुआ ही है। परन्तु विजय प्रायः आर्य सिद्धान्तों की ही हुई है। प्रबल मन्तव्यों का विजयी होना स्वाभाविक है। आर्य भ्रातृ सभा वर्तमान जात-पात की उपेक्षा करती हुई भी जब सामाजिक सम्बन्ध को ही आर्य समाजियों के अन्दर परिमित करती है तो यह दूसरे शब्दों में एक नई—आर्य समाजियों की—जात को जात को जन्म देती है। समाज की अब तक की गति इस के प्रतिकूल, विशालता की ओर है।

पं० गुरुदत्त का विचार था कि वे अपने लड़के का विवाह देश तथा जाति के बन्धन को तोड़ कर करेंगे। पण्डित जी तो चढ़ती जवानी में ही इस संसार से कूच कर गये। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् ऐसे अनेक विवाह आर्य समाज में हुए हैं परन्तु विदेशी महिलाएँ भी आर्य समाज में हुए हैं परन्तु विदेशी महिलाएं भी आर्य परिवारों का भाग बन गई हों, ऐसा प्रतीत नहीं होता। संयुक्त परिवारों की प्रथा शिथिल हो जाने के कारण इन दम्पतियों को विशेष कष्ट नहीं हुआ। परिवर्तन के युग में संयुक्त परिवार चल ही नहीं सकते थे। जहां भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के आदर्श भिन्न हों, वहाँ उनका एक ही छत के नीचे निर्वाह कर सकना कठिन है। परन्तु एक बार टूटी हुई प्रथा फिर से स्थापित की जा सकेगी, यह कहना भी मुश्किल है। आर्य संस्कृति के बहुत से अमूल्य आदर्श संयुक्त परिवारों की प्रथा से सम्बद्ध हैं। आर्य समाज सारे संसार का एक कुटुम्ब बनाना चाहता है। इस कल्पना का आधार घर-गिरस्थी की कुल-परम्परा है। आर्य समाज को यह परम्परा फिर से स्थापित करनी होगी। अपनी उदार भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए भी हमें अपनी पुरानी संस्थाओं की सुरक्षा के विचार को विस्मृत नहीं कर देना चाहिए। विवाह संस्कार से सम्बद्ध भ्रान्तियां हटती जा रही हैं।

इस संस्कार के अतिरिक्त अन्त्येष्टि संस्कार में खूब परिवर्तन हुआ है। स्वयं आर्य समाजियों के सिर मुँडाने की प्रथा इस शताब्दी के आरम्भ तक चलती आई है। साहसी व्यक्ति इस में अपवाद रूप रहे हैं। समाज से अब यह रिवाज मिट चुका है। अमृतसर के सज्जन ऐसे संस्कारों की कथाएं सुनाते हैं जिन्हें सनातनी अपने ढंग से और समाजी अपने ढंग से करना चाहते थे। समाजियों को सफलता इस लिए हुई कि वे भाग कर श्मशान में पहिले पहुँच गये और उन्होंने अपनी रीति से संस्कार का आरम्भ कर दिया। आज इस भाग दौड़ की आवश्यकता नहीं है। विदेश में स्थापित किये गये उपनिवेशों में तो हिन्दू-मात्र इस रीति को अपना चुके हैं। भारतवर्ष में भी आर्य समाज में इस का प्रचार हो चुका है और शेष जाति इसकी विरोधी नहीं रही। सियापा आदि कुप्रथाएं संपूर्ण शिक्षित समाज हटाता जा रहा है। हिन्दुओं ने हमारे संस्कार को अपनाया नहीं तो अपनी रीति का परिवर्तन अवश्य कर दिया है!

दलितोद्धार के क्षेत्र में आर्य समाज क्रांति लाया है। अब छूत-छात पंजाब प्रान्त में कहीं-कहीं है तो सही, पर आखिरी साँसों पर। आर्य समाज के दलितोद्धार की विशेषता यह है कि इसका आधार धार्मिक है। अस्पृश्यता चली ही धार्मिक भ्रान्तियों के कारण है। इसका वास्तविक प्रतिकार धर्म ही के रास्ते हो सकता है। आर्थिक संकट केवल अछूतों पर नहीं, और समुदायों पर भी हैं। भारतीयों में दरिद्रता का काल कहां है? यहां तो जातियों की जातियां पेट पर पत्थर बांध कर सोती हैं। छूत-छात का सार धार्मिक बहिष्कार का लोप कर दिया है। "आर्य भक्त" गायत्री के पाठ से ही आर्य समाज में प्रविष्ट होता है। वह पहिले ही दिन 'द्विज' बन जाता है। यह उसे तत्काल ऋषियों की सम्पूर्ण सम्पत्ति का दायभागी बना देता है। अब उसके वही संस्कार होंगे, वही यज्ञ याग होंगे, वही क्रिया-कलाप होगा जो अन्य समाजियों का। यह बात अस्पृश्यता-निवारण के अन्य प्रयत्नों में नहीं पाई जाती। "अछूत" जातियों का आर्थिक, सामाजिक, तथा मानसिक उद्धार तो अन्य समुदाय भी कर रहे हैं, आर्य समाज भी। इस में यदि कोई कमी है तो साधनों की स्वल्पता के कारण। दलितोद्धार के कार्य में आर्य समाज की विशेष सफलता का कारण उस की धार्मिक उदारता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले दिनों से दलितों के सम्बन्ध में एक नई उलझन पैदा हो गई है। भारतीय शासन सम्बन्धी नवीन सुधार ने दलित जातियों को पृथक् अधिकार दे दिये हैं। इन जातियों के उद्धार के मार्ग में ये अधिकार स्पष्ट बाधक हैं। पृथक् अधिकार के प्रलोभन ने आर्य जाति में इन के घुलमिल जाने की प्रक्रिया को रोक दिया तो मानवीय विकास के एक मंगल प्रयत्न के रास्ते में अड़चन पैदा हुई। इसमें न 'अस्पृश्यों' का कल्याण है न आर्य जाति का। 'अस्पृश्य' रहने में यदि विशेष अधिकारों की प्राप्ति हो तो कोई स्पृश्य काहे को बनना चाहेगा? मानवीयता का हित एकता में है।

आर्य समाज का शुद्धि-आन्दोलन किन-किन अवस्थाओं में से गुजरा है?—यह कहानी भी खूब मनोरंजक है। शुरू-शुरू में लाहौर का समाज दीक्षार्थी को अमृतसर भेज देता था। वहाँ के पण्डितों की सिफ़ारिश ले कर वह हरद्वार जाता था। वहाँ पाँधा जी की भेंट चढ़ा कर ही वहीं वह शुद्धि का प्रमाण-पत्र प्राप्त करता था। मास्टर दुर्गाप्रसाद की प्रधानता के साथ जब समाज पर "धर्मात्मा दल" का अधिकार हुआ, तभी पाँधा जी की पाँधाई बीच में से हटाई गई। तब से शुद्धि का वह रूप हुआ जो आजकल प्रचलित है। इस संस्कार द्वारा अधिक सफलता आर्य जाति से बिछड़ गये व्यक्तियों तथा समुदायों के वापस लाने में हुई है। सिरे से नये आर्य, समुदायों के रूप में समाज में नहीं आए। हां! व्यक्तियों का प्रवेश आरम्भ-काल से होता रहा है। आज अवस्था यह है कि कोई ऐसे प्रवेशों की चर्चा ही नहीं करता।

आर्य धर्म का मूल-मन्त्र है कुल की भावना। आर्य समाज इस भावना का विस्तार करना चाहता है, ह्रास नहीं। यदि किसी के गुण-कर्म अपने कुल के अनुकूल न रहें और इस कारण उस का वर्ण बदल जाय तो ऋषि उसे अपने नये वर्ण के किसी कुल ही में चले जाने का आदेश करते हैं। ऐसे परिवर्तन जो भी होंगे और जहाँ भी होंगे, वे नये कुलों की स्थापना करेंगे। ऐसे ही, मुसलमानों तथा ईसाइयों के आर्य बनने पर होगा। नवार्य किसी आर्य कुल में ही प्रविष्ट होगा। परन्तु जब तक स्वयं आर्यों में ही कुलों का आधार सवर्णता नहीं, जन्म रहता है, नवार्यों का आर्य कुलों में आना असम्भव है। ऐसी अवस्था में ऋषि का आदेश निम्नलिखित है:—

"मुसलमान आदि अन्य मत वाले वैदिक मत में आवें तो वे जिस वर्ण के गुण और कर्म युक्त हों, उसी वर्ण में रह सकते हैं। विवाह और खान पान आदि व्यवहार भी अपने समान वर्ण के साथ करें। आज कल आर्य लोग उनके साथ उक्त व्यवहार नहीं करेंगे। इस लिये अपने लोगों में ही करें और मत वैदिक रखें। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।" ("सद्धर्म-प्रचारक" में प्रकाशित ऋषि दयानन्द का पत्र—"प्रकाश" २१ माघ १९९५ में उद्धृत।)

ऋषि कुलों की रचना सवर्णता अर्थात् गुण, कर्म, स्वभाव की एकता के आधार पर करना चाहते हैं, केवल सिद्धान्त की एकता के आधार पर नहीं। क्या यह सम्भव नहीं कि भिन्न-भिन्न विश्वास के नर-नारी यथा-पूर्व अपने कुलों ही में रहा करें? विश्वासों की एकता और सवर्णता पर्याय नहीं है। फिर धार्मिक विश्वास के बदल जाते ही किसी के पारिवारिक प्रेम के पात्र भी झट-पट और के और क्यों कर हो जायें! माता-पिता की वत्सलता में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिठास है जो धार्मिक साधन में सहायक होती है। ऐहिक जननी जगज्जननी का प्रतिबिम्ब है। जगत् पिता के पास ले जाने वाला धर्म किसी को उसके ऐहिक पिता से पृथक् करके ही क्यों रहे? आजकल धर्म-सभाएँ संख्याओं की होड़ में लग रही हैं। अपने रेवड़ की संख्या बढ़ाने के लिये गडरिया मेमने को पराये रेवड़ की भेड़ से जुदा कर लेता है। मेमने को आध्यात्मिकता का विचार हो तो वह भेड़ को छोड़े ही नहीं। यदि धर्म-सभाएँ संख्याओं की होड़ को छोड़ कर सर्व-साधारण की आध्यात्मिक उन्नति को ही अपना लक्ष्य बना लें तो धर्म-परिवर्तन के साथ २ परिवार-परिवर्तन अनिवार्य न रहे। हिन्दू आर्यों की तरह, मुसलमान आर्य भी आर्य-समाजियों का एक भेद हो जायें। एक ही परिवार में भिन्न २ विश्वासों के लोग रहा करें। इस अवस्था में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक दंगे-फ़साद की सम्भावना ही मिट जाय।

इस आदर्श की प्राप्ति में कठिनाइयाँ हैं। इस समय यह कहना अत्युक्ति नहीं कि यह दशा एक मृग-मरीचिका है। परन्तु मानव जाति के उदात्त विचार की प्रगति उधर ही को है। विचारकों का कहना है कि आध्यात्मिक विश्वासों का विभेद रहते हुए भी सामाजिक व्यवहार एक किया जा सकता है। मानव जाति के इन नेताओं की सम्मति में मनुष्य समाज के विकास की आदर्श दिशा "नाना धर्माणं यथौकसम्" की ओर है। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि जब तक इसलाम और ईसाईयत का व्यवहार इस विषय में बदल नहीं जाता, अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती, नहीं हो सकती।

ऋषि दयानन्द ने समाज की स्थापना मुसलमानों के घर में की थी। पारसियों को आर्यों में फिर से हिल-मिल जाने का मार्ग दिखा गया था। आर्य समाज तथा अमेरिका की थियोसाफ़िकल सोसाइटी में अंग-अंगी सम्बन्ध स्थापित कर दिया था। ऋषि के स्थान पर सर सैयद नमाज़ पढ़ लेते थे। गिर्जे में ऋषि का उपदेश हुआ था। ऋषि का उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व को ही एक बिरादरी का रूप दे देने का था। देहली के दरबार के अवसर पर सर्वधर्म सम्मेलन इसी लिये बुलाया गया था। सार्वभौम भ्रातृत्व का यही सब से पहिला सूत्र था।

धर्म के नाम पर संसार की जातियों को एक कर देने की ध्वनि ऋषि ने उठाई है। इसी ध्वनि का श्रवण करने अलखधारी देहली गये। इसका पाठ विपाशा, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी तथा वितस्ता को पढ़ाने के लिये हमारे अभिनव विश्वामित्र ने पंजाब में पदार्पण किया। मुहम्मदअली की गायत्री और सागरमल की आस्तिकता इसी मधुर ध्वनि की मीठी गुंजार थी। इस ध्वनि के मूल-नाद की उत्पत्ति आध्यात्मिक अनुभूति से ही होती है। गुरुदत्त का योग, लेखराम की समाधि, मुन्शीराम का एकतारा आध्यात्मिक अनुभूति के भिन्न-भिन्न रूप थे। ऋषि का ऋषित्व क्या था? यास्क के शब्दों में वेद का दर्शन। ऋषि साक्षात्कृत-धर्मा थे। हमारा साठ वर्ष का इतिहास ऋषि के इसी ऋषित्व की व्याख्या-मात्र है। इस व्याख्या में भ्रान्ति भी है, भूल भी। इसकी सत्यता की साधना मूल के निकट रहने में है। आर्य समाज के सम्पूर्ण प्रचार का मूल ऋषि की आर्ष-दृष्टि है—वेद की "सर्ववारा संस्कृति" में ऋषि की आर्ष दृष्टि। हमारे इतिहास का लक्ष्य इस विश्व-वारा, विश्व-व्यापक दृष्टि का सार्वभौम प्रचार है। *विश्व-व्यापक बन्धुत्व ही ऋषि का पांचजन्य है।।* इस पाँचजन्य को पंजाब प्रान्त की पाँचों नदियों ने सुना है। आज उनकी लहरों की गुञ्जार में ऋषि का जय-जयकार है। ❃

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य का ऋषि-बोधांक (मार्च १९३७) के अंक से :

संचालक—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (लाहौर)

[आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गत २५ वर्षों से अपना मुख्य पत्र 'आर्य' प्रारम्भ में मासिक रूप में और आज भी साप्ताहिक रूप में प्रकाशित कर कर रही है। पहले सभा के पत्र अंग्रेज़ी में आर्य पत्रिका तथा उर्दू में आर्य मुसाफिर निकलते थे। पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा के सभा मन्त्री काल में आर्य हिन्दी में प्रकाशित होना शुरू हुआ। इसके विशेषांक हजारों की संख्या में निकलते रहे। समय समय पर इसके सम्पादक पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा, भीमसेन जी विद्यालङ्कार, श्री अवनीन्द्र जी विद्यालंकार, श्रीचमूपति जी एम. ए., श्री वेदानन्द जी तीर्थ, श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यावाचस्पति रहे। इस पत्र द्वारा पंजाब में हिन्दी-प्रचार में विशेष सहायता मिलती रही]

—सम्पादक

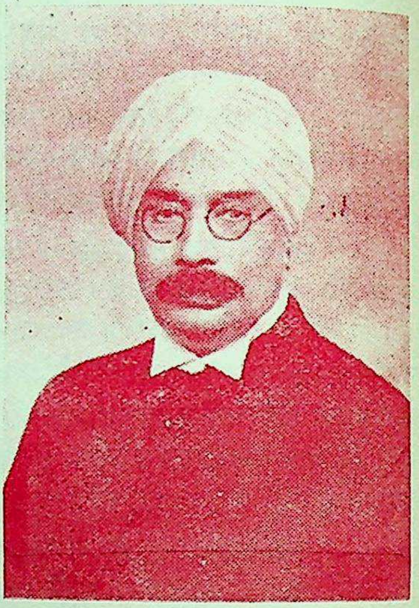

श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा

स्त्री जाति और ऋषि दयानन्द

[श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार]

कैसी ठण्डी छांह री सखि ! जोगी की कुटिया में !

(१)

कब की बेसुध मैं थक हारी,
जने जने ने ठोकर मारी।
दयावन्त इक तापस आया,
पकड़ लई झट बांह री ॥ सखि०

(२)

कहे जोगी बेटी क्यों रोवे,
ढाल बनूँ मैं तू सुख सोवे।
चलो सखी चलिये दुखिया को,
मिलती उजली थाँह री ॥ सखि०

(३)

भाग जगे सखि दर्शन पाए,
रह रह प्रेम उमड़ कर आए।
घाव भरे तन कली खिली,
नहिं अंग उमंग समांह री ॥ सखि०

(४)

निर्मल एक पहाड़ी झरना,
धोवे उस कुटिया के चरना।
मुख धोऊँ जल छलके आली,
फिर फिर नैनन मांह री ॥ सखि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवैज्ञानिक कहानी :—

विश्वबन्धु लाहौर (२७ अगस्त १९३९) के अंक से :

संचालक – श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी : सम्पादक—श्री माधव जी

शे···र······का······ब···च्चा

ले०—श्री केदार बी. एस.सी.
(आज कल रुड़की में हैं)

गाँव के बाहर कच्चे से मकान में वह बीमार पड़ा था। बीमारी क्या थी बस यही कि एक कुत्ते ने काट खाया था, घाव गहरा था, दर्द बहुत हो रहा था।

उस मकान में दो ही व्यक्ति रहते थे एक वह और एक प्रौढ़ा। प्रौढ़ा को वह जीजी कहता था और वह उसे लल्ला कहा करती थी।

उस दिन जीजी किसी कार्यवश गाँव गई हुई थी कि लीला आई और वह उसके साथ बाहर निकल गया। मैदान में जाकर एक बड़े से पत्थर पर वह दोनों बैठ गए और टहलना वहलना भूल कर बातें करने लगे। परली ओर से नम्बरदार का कुत्ता आ रहा था। वह दूसरे कुत्तों को भौंकता आता था। ऐसा प्रतीत होता था कि गाँव के कुत्तों की नम्बरदारी उस के हिस्से आई है।

नम्बरदार साहब को बड़ी आमदनी थी, वैसे भी वे जिससे जो चाहते हथिया लेते थे और रोब इतना था कि किसी को चूं तक न करने देते। उनका कुत्ता भी उनकी ही तरह मोटा ताज़ा और रोबदार था—उसे देखते ही दूसरे कुत्तों की जान निकलती थी, वह भी जब चाहता जिस कुत्ते के पास कुछ देखता उसी से छीन लेता—छीना झपटी में नम्बरदार और उसका कुत्ता दोनों बराबर थे!······गाँव के लोगों में नम्बरदार साहब चौधरी थे और कुत्तों में उनका भोलू।

भोलू सब कुत्तों को भौंकता चला आरहा था—था जो चौधरी—कभी किसी ओर मुँह करके दाँत निकाल लेता, कभी किसी ओर देख कर गुर्रा देता। यहाँ वहाँ मकानों के कोनों पर और छोटे-छोटे ढेरों पर टांग उठा उठाकर उस राह से गुज़रने के चिह्न बनाता जा रहा था। एक ओर से वह पिस्ती-सी 'पप्पी' आरही थी जिसे उस गांव के एक सज्जन अभी-अभी शहर से मोल लाये थे। छोटा-सा कद घूंघर वाले बाल और भूरी सी आंखें—वह सभी कुत्तों से अच्छी लगती थी। भोलू उसे देखते ही ठहर गया, उसने भौंकना बन्द कर दिया और दुम हिलानी शुरू कर दी। जब पप्पी ज़रा पास आई तो पहले तो भोलू को देखकर डरी, फिर कुछ संभल कर चलने लगी। भोलू भी उसके पीछे हो लिया। वह कभी तो उसका सिर सूंघता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कभी अपने अगले पंजों से उसे गुदगुदी करता। इसी प्रकार उसके आगे पीछे होता हुआ वह चला जा रहा था। सामने से तकिये वाले फ़क़ीर का डब्बू मुँह में एक हड्डी लिये जा रहा था। उसे देखते ही भोलू पर लपका और उससे वह हड्डी छीन ली। फ़क़ीर के और भी कुत्ते थे। वह भोलू पर पिल पड़े और भोलू हड्डी छोड़ कर भाग निकला।

लल्ला और लीला दोनों बड़े पत्थर पर बैठे यह सब देख रहे थे। उन्होंने देखा कि भोलू पप्पी के आगे पीछे होता हुआ भागा जा रहा है। एक स्थान पर खड़े होकर भोलू ने 'हा-ओ-हू-ऊ-ऊ' की, यह उसके स्वाभाविक भौंकने से इतना निराला शब्द था कि इसे सुन कर वह नवयुवक हँस पड़ा और लीला भी मुस्करा दी। लीला बड़ी हंसमुख और बहुत भावुक थी। वह बोल पड़ी जानते हो यह क्या कह रहा है ? लल्ला ने उत्तर दिया "नहीं तो।"

यह 'पिस्ती' को कविता सुना रहा रहा है—कहकर लीला हंस दी, और फिर बोली 'पिछले दिनों कालों' को तो यह दूसरे कुत्तों को डरा धमका कर ले आया था। उससे पहले 'लिजी' का और इसका जोड़ था।"

'अजीब कुत्ता है' कहकर लल्ला चुप हो गया परन्तु लीला ने मुस्कराते हुए कहा "कुत्ते हों या मनुष्य, मर्द जाति है जो ऐसी ही—एक स्त्री से तो इसे चैन नहीं मिलता और यह तो ठहरा यहां के कुत्तों का चौधरी। चौधरी लोग जो कुछ भी करें वही थोड़ा है। उस पर यह है भी तजरुबेकार ! सभी दाँव पेंच जानता है। पिस्ती है बड़ी भोली। वह कितनी भी चालाक क्यों न हो, बाकी सब कुत्तों के दिलों का हाल भी क्यों न जान लेती हो परन्तु भोलू के फन्देसे कभी न बच सकेगी। कविता और रागिनी का जादू बड़ी-बड़ी दिलों का हाल जान लेने वालियों को भी ले डूबता है। देखना तो अभी यह पिस्ती हाव-भाव भूल कर इस भोलू के साथ हो लेगी।

लीला कहती गई और वह सुनता गया। उसे वह बचपन से ही जानता था। तब दोनों इकट्ठे ही खेलते कूदते थे। इनमें बच्चों का सा निःस्वार्थ प्रेम था। दोनों बड़े होते गए और वह प्रेम का नन्हा-सा बीज जो दिल ही में था समय पाकर पनप उठा, उसकी जड़ें दूर दिल की गहराइयों तक चली गई थीं। कुछ अवस्था तक तो यह आपस में मिलते रहे—निःसंकोच सबके सामने और किसी भी समय। परन्तु सदा ऐसा न हो सका—गांव के लोग आपस में मिलजुल तो लेते हैं परन्तु कुमारिकाओं और सुकुमारों का बहुत समय इकट्ठे रहना भी उन्हें नहीं भाता। इसी कारण इन दोनों को कभी-कभी जीजी से छिपकर मिलना पड़ता था। मिले बिना न उसके मन को चैन होता था न इसके मन को शान्ति। अब तो यह दोनों बचपन की सीमा से निकल कर युवावस्था के साम्राज्य में चले जा रहे थे। छुटपनका वह खेलना कूदना, वह मारना पीटना—सब भूलकर यह दोनों एकांत में बातें करने में सुख प्राप्त करते थे। ज़रा-ज़रा सी बात का बड़ा-बड़ा सा भाव हुआ करता था।

लीला की बातें थीं तो भोलू के बारे में, परन्तु उनमें संकेत सब मर्दों की ओर था। लल्ला उसकी सांकेतिक भाषा को खूब समझता था। अतः उसे भोलू पर क्रोध आने लगा। वह सोचने लगा कि ऐसे ही जीवों और पशुओं के कारण, इन कुत्तों के कारण मर्दों का नाम बदनाम है। वह सोचता रहा और बोला। चते रहना उसकी आदत थी, कुछ देर यूं ही चुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे रहकर वह दोनों अपने घरों की ओर चल दिये।

प्रभात पीछे छोड़ कर सूर्य आगे निकल गया था। लल्ला अब भी सोच रहा था कि लीला क्या सभी मर्दों को कुत्ते ही—भोलू से ही समझती है। उसे दिल ही दिल में बड़ा दुःख हो रहा था। वह मनोवेदना को छिपा नहीं सका। उसका मुख उसके मन का हाल सुना-सुना कर कह सा रहा था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि भोलू ने उसका अपमान करवा दिया है, उसके मुँह पर किसी ने थप्पड़ मारा है परन्तु उसके अपने किसी दोष पर नहीं एक कुत्ते के दोष पर !

घर पर वह बैठा न रह सका बाहर जाकर टहलने लगा। उधर ही से भोलू और पप्पी भी गुजरे। भोलू को देखते ही उसका क्रोध एकदम बढ़ गया। उसने एक पत्थर उठाकर भोलू की ओर फेंका—पूरे जोर के साथ मानो अपने किसी जान के शत्रु को दण्ड दे रहा हो। वह पत्थर भोलू के लगा तो नहीं परन्तु वह एक बार भौंका और झट से लपक कर आया। वह कुत्तों का चौधरी था, नम्बरदार का कुत्ता था और अब तो उसके साथ पिस्ती भी थी—पप्पी उसकी पत्नी नम्बर तीन ! नई पत्नी, कुत्ता था तो क्या हुआ वह अपनी पिस्ती के सामने अपना अपमान कैसे सहन कर सकता था। वह लपक कर आया और उसने उस किशोर की पिंडली में दाँत गाड़ दिये। वह चिल्ला उठा परन्तु चौधरी भोलू उसकी बोटी तोड़कर ही हिला।

उसकी जीजी आई, लीला आई, लीला की माँ आई और दो एक और लोग आए। वे उसे मूर्छित अवस्था में उठा कर उसके घर ले गए। वहाँ उसे बिस्तर पर लिटा दिया। कुछ समय तो वह संज्ञाहीन रहा, फिर उसे होश आ गया। उसे कपकपी सी लग रही थी उसकी जीजी ने चिकित्सक बुलवा कर उसके घाव को धुलवा दिया। उस पर कुछ मरहम भी बाँध दिया गया।

घाव गहरा था और दर्द बहुत। अब ज्वर भी चढ़ आया था। ज्वर चढ़ा और चढ़ते ही तेज हो गया। मन जलता था उस भोलू की करनी पर जिसके कारण उसे—उस प्रेमी किशोर, नन्हें मर्द को, बातें सुननी पड़ीं। उसकी लीला की नजरों में कहीं वह स्वयं भी न गिर गया हो, यही डर था उसके मन में बना हुआ। वह घड़ी-घड़ी भोलू और उसकी करतूतों पर विचार किए बिना न रह सकता था।

उसे चुप देखकर उसकी जीजी का जी जलता था। वह समझी कि डर गया है अतः कहने लगी 'तू तो मेरा शेर लल्ला है तुझे तो इस घाव की जरा भी परवा न होनी चाहिये।" वह क्या जानती कि लल्ला मन में क्या घाव खाए बैठा है, उसके आत्म सम्मान को कितनी चोट पहुँची है। और यह सब लीला के वचनों से और उस कुत्ते की करतूतों से। लीला सब मर्दों को भोलू सा ही समझती है। वह सोचता था और बार बार सोचता था और सोचते-सोचते चिल्ला उठता था "कुत्ता है यह कुत्ता" और सोचता था कि कुत्ते मर्द नहीं होते और मर्द कभी कुत्ते नहीं होते।

जीजी उसे सांत्वना देना चाहती थी। परन्तु यह न जानते हुए कि मामला क्या है वह बस यही समझे बैठी थी कि लल्ला डर गया है। वह कहने लगी "तुम डर क्यों गए हो ? तुम तो मेरे शेर हो, शेर तो कभी नहीं डरा करते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लल्ला उसकी ओर ध्यान से देखने लगा। वह उसके माथे पर हाथ फेरती हुई कहने लगी "एक था गाँव और वहाँ रहता था भला मानुष। उसकी माँ उसे मेरा शेर बेटा कहती थी। वह तो कभी किसी से डरता न था।" लल्ला कुछ देर के लिये अपनी सब व्यथा भूल सा गया और कहने लगा "तो यह अच्छा मनुष्य था क्या ?" जीजी ने उत्तर दिया "बड़ा ही अच्छा।" और लल्ला का दिल इस वार्ता में लगता देख वह उसे उस माँ के शेर की कहानी सुनाने लगी, लल्ला ध्यान से सुनने लगा।

जीजी ने कहा "वह अपने गाँव के चौधरी का लड़का था।......"

लल्ला चिल्ला उठा "अपने गाँव के चौधरी का कुत्ता क्या कुत्ते, तो शेर नहीं होते !"

जीजी ने उत्तर देते हुए कहा—"कुत्ता नहीं बेटा, वह अपने गाँव के चौधरी का बेटा था। लोग उसे भी चौधरी ही कहा करते थे।"

लल्ला चुप रहा और जीजी आगे सुनाने लगी "वह बड़ा निडर और निर्भीक था। किसी से भी न डरता था माँ-बाप से भी नहीं। उसके पिता ने कितने जतन किये परन्तु वह बहुत पढ़ लिख न सका। रोज़ पाठशाला से भाग जाया करता था।"

"यह तो अच्छी बात नहीं होती" इतना कह कर लल्ला हैरान सा होकर देखने लगा।

"अच्छी तो नहीं होती" जीजी ने कहा, "परन्तु उसे डर किसी का न था। शेर डरा नहीं करता।"

लल्ला चुपचाप सुन रहा था अतः वह आगे कहती गई:—

"माँ-बाप ने बड़ा होते देख कर उसका ब्याह कर दिया। उनका यह विचार था कि घर वाली के ध्यान में इसे घर के धन्धों से ही अवकाश न मिलेगा। परन्तु गोदी ही में जो बिगड़ जाएं वे भी कभी सुधरे हैं ? और यह तो थे शेर। इन्हें तो किसी का डर न था अतः पिता माता का विचार बेचारा यूंही रह गया कभी पूरा न हुआ।"

लल्ला शक भरी आँखों से देख रहा था परन्तु जीजी कहानी कहती ही गई।

"पिता की आयु ने साथ न दिया, और पुत्र के विवाह के कुछ ही दिन बाद उनका देहान्त होगया। माँ पहले से ही बहुत लाड़ चाव करती थी अब तो उस का शेर ही उसके लिये सब कुछ था। गाँव का भी अब वह चौधरी बन गया। उसका रोब बहुत था, उसके सामने कोई दम न मार सकता था। कहते हैं इतने रोब-दाब वाला चौधरी उस गाँव में पहले कभी न हुआ था। गुंडों और लफंगों की तो उससे जान जाती थी।

जीजी लल्ला के ज्वर से लाल हुए मुख पर हाथ फेरती जाती थी और लल्ला चुपचाप सुन रहा था। वह कहती गई।

"एक बार चौधरी साहब को पता चला कि 'कोई गुण्डे' किसी की लड़की को भगा लाए हैं। बस फिर क्या था। उन्हें हद से अधिक क्रोध आ गया। झटपट अकेले ही गए और उसे उन लोगों से छुड़ा कर ले आए।"

लल्ला बोल उठा "यह तो उन्होंने खूब किया—बड़ा अच्छा किया।"

"हां बहुत ही अच्छा" कह कर जीजी कहने लगी "इतना ही नहीं, उन्होंने मन ही मन शायद यह सोचा कि अब इस बेचारी के मां बाप कब इसे अपने पास रखने लगे हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये उसको अपने ही घर डाल लिया। उसे शरण दी इससे सब गांव वाले उन्हें धन्य कहते थे। यदि न भी कहते तो यह क्या परवा करते। चौधरी ही, जो जी में आता करते जाते।"

लल्ला सब सुनाता रहा—सुनाता रहा और स्मरण करने लगा--काले और भोलू की बात, वही जो लीला ने कही थी वह सोचता रहा और कुछ न बोला। जीजी कहानी का क्रम न तोड़ते हुए कहती गई:—

"इतना ही नहीं। उस शेर ने और भी बहुत से साहस के कार्य किये। एक बार और भी थोड़े से साथी बना कर उसने चलती गाड़ी डाका डाला। और वह अपने नहीं देश के लिए। इतना साहस कोई ही कर सकता है"—

"जीजी! लल्ला ने बात काटते हुए पूछा "भला डाका डालने से देश को क्या लाभ हो सकता है?"

जीजी ने उसके बालों में उंगली फेरते हुए कहा "यह तो मैं जानती नहीं परन्तु यह डाका था देशहित ही के लिये।"

लल्ला ने पूछा "तो क्या यह डाका विदेशियों पर डाला गया था?"

"नहीं तो" जीजी ने उत्तर दिया "वहां तो सब देशी ही लोग थे। परन्तु यह डाका था देश के ही हित के लिए। यह राजनैतिक डाका था।"

लल्ला विचार धारा में खो सा गया। वह सोच रहा था कि 'अपने ही भाइयों, अपने ही देश वासियों से छीना झपटी करना मनुष्यों का मनुष्यों पर आक्रमण—क्या यह भी कभी देशहित की बात हो सकती है। अपने सजातियों पर कुत्ते तो झपटते हैं, उनसे हड्डिया भी छीन लेते हैं—डाका डालकर भोलू की तरह। मनुष्यों को तो ऐसा न करना चाहिये। यह सब विचार उसके मस्तिष्क में विद्युत की भांति कौंद गये। उसने फिर पूछा "जीजी, उन लोगों से इनका कुछ वैर था क्या?"

जीजी ने उत्तर दिया 'नहीं वैर तो नहीं था। तुम समझते क्यों नहीं यह राजनैतिक डाका, देश हित के लिये डाला गया था।'

लल्ला कुछ निराश सा हो गया उसने उदासीनता के साथ कहा "तो फिर?"

"फिर यह हुआ" जीजी ने कहना जारी किया कि गाड़ी ठहर गई। लोग चिल्लाने लगे, और इन लोगों को पकड़ने की चेष्टा करने लगे। अगला स्टेशन बहुत दूर न था। थोड़ी ही देर में बहुत से पुलीस वाले आ पहुँचे। पकड़ धकड़ होने लगी। बाकी लोग तो पकड़े गये परन्तु चौधरी साहब वहां से कबके भाग चुके थे!'

"इस सब से लाभ क्या हुआ जीजी?"

"लाभ तो शायद कुछ हो ही जाता परन्तु इनके हाथ कुछ लगा ही नहीं। दो एक यात्रियों के चोटें आई और बस। परन्तु देश हित की बातों में लाभ कौन देखता है। यह राजनैतिक डाका था देश से इसकी भलाई होती, परन्तु इन्हें पहले ही से वहां से भागना पड़ा। बड़ी चतुराई से वहां से भाग निकले।"

लल्ला सोचने लगा, वही भोलू की बात, हड्डी छीनने सांई के कुत्ते पर झपटा परन्तु भागना ही पड़ा। कुत्ते कुत्तों पर झपटते हैं और बस चले तो हड्डी छीन कर भाग जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यों ने भी यह कार्य कुत्तों ही से सीखा होगा। डाका डालना भी तो वही बात है, वही कुत्तों का सा काम।

जीजी कहानी समाप्त करके उठकर जाने को ही थी कि लल्ला चौंक कर पूछ उठा 'तो फिर क्या हुआ जीजी? यह भगौड़ा चौधरी क्या पकड़ा नहीं गया?'

जीजी ने फिर से बैठते हुये कहा 'पकड़ा तो गया था और कैद भी हो गया था। कोई चौधरी हो या न हो शेर हो बाँका या हो भगौड़ा गीदड़, यह सरकारी कर्मचारी कानून से भागे हुओं को बहुधा पकड़ ही लेते हैं। कोई ही होता है जो इनसे बचकर जीवन व्यतीत करले, यह चौधरी साहब हजार छुपने छुपाने पर भी पकड़े ही गये, और फिर जेल में डाल दिये गए। वहां भी यह चुपचाप बैठे बहुत कुछ करते रहे। परन्तु वह तुम्हारे काम की बात नहीं।

"तो अभी बतादो जीजी ये क्या करते रहे?"

लल्ला ने बल देकर कहा!

जीजी ने कह दी दिया 'वहां कुछ कविता इत्यादि लिखते लिखाते रहे और एक कैदी की बेटी को सुनाते रहे। वह बेचारी अपने पिता से मिलने जेल में जाती थी! इनकी कविता सुन-सुन कर इनके प्रेम जाल में फंस गई! फिर जब यह जेल से छूटे तो इन्होंने उस बालिका से ब्याह कर लिया बस यह है कहानी उस चौधरी की जिसे उसकी मां 'मेरा शेर बेटा' कहती थी! उसने बड़े साहस के कार्य किये! वह कभी डरता न था! तुम तो एक कुत्ते से डर गये हो! तुम्हें न डरना चाहिये! तुम शेर लल्ला हो!'

लल्ला ने कुछ सुना ही नहीं! जीजी क्या लैक्चर पिला रही हैं यह तो उसे पता ही न चला! वह सोच रहा था सच कहती थी लीला—उसे सब ज्ञान है! मनुष्य भी कभी-कभी कुत्तों के से काम करने लगते हैं! वह चिल्ला उठा, वह शेर नहीं था जीजी, वह कुत्ता था कुत्ता—भोलू-सा' वह एक दम बड़े आवेश में आगया था! जीजी ने उसे थपथपाते हुये कहा, ना! ना, मेरे लल्ला! ऐसा नहीं कहा करते।

'कहा क्यों नहीं करते!' कह कर वह फिर जोश में आकर उठ बैठा! जीजी ने उसे लिटा दिया! उसके मुख पर तिरस्कार सूचक चिह्न प्रकट हुए। और दांतों को पीस-पीस कर वह कहने लगा 'चौधरी कहीं का—शेर मां का—पक्का भोलू!'

जीजी के इशारे पर वह चुपतो हो गया, परन्तु उसके मस्तिष्क में जो खलबली-सी मच रही थी वह कम न हुई। जीजी उसे सो जाने को कहती रही, उसने भी सोने की बड़ी कोशिश की परन्तु सो न सका। एक बार जरा झपकी आई और उस समय भी उसे स्वप्न आया कि कुछ शेर हैं और उनमें से एक कुत्ता बन गया! मैंने ठीक समझा था' कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। उसका शरीर उस समय ज्वर से भट्टी की तरह तपा हुआ था। जीजी ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—

'क्यों लल्ला, क्या समझा था तू?'

लल्ला ने अपनी लाल लाल आंखें मलते हुये कहा 'यही कि वह शेर चौधरी था।'

'चौधरी ही तो था' जीजी ने कहा 'मैंने क्या कहा नहीं था?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहा था जीजी' कह कर लल्ला लेट गया और करवट बदल ली।

अब संध्या हो रही थी। लल्ला भी लेटा था। जीजी समझी फिर सो गया है। अतः उठी आरती का सामान लिया और कोने में रखी देवी की मूर्ति के सामने जा खड़ी हुई। एक बार लौट कर उसने देखा, लल्ला दूसरी ओर मुँह किये लेटा हुआ था। वह समझी सो गया है इस लिये आरती उतार कर प्रार्थना करने लगी।

लल्ला सो न सका था वह तो सोच रहा था। जब जीजी प्रार्थना कर रही थी तो वह चौकन्ना सा होकर सुनने लग गया जीजी कह रही थी:—

'मां, मैं कैसे कहूं इससे कि वे इस के जन्म दाता थे। कैसे रोकूं इसे उन्हें बुरे-बुरे शब्दों में याद करने से। उन्होंने मुझे निकाल दिया दूसरी को भी पास न रखा, तीसरी के लिये। तो भी यह उनका पुत्र है। वे शेर थे, यह शेर का बच्चा है। मां मैंने उनका वृत्तांत इसे सुना कर जो भूल की है, उसे क्षमा करदो और मेरे लल्ला के मन में उनके प्रति सद्भाव उत्पन्न कर दो।'

लल्ला चुप साध कर सुन रहा था पहले तो लेटा रहा फिर उठ कर बैठ गया। उसका सिर चकरा रहा था, नेत्र बाहर को निकले पड़ते थे। सिर को अपने हाथों से थाम कर वह चीख उठा 'जीजी !'

जीजी जब पास गई तो फिर उसने उसी प्रकार डरावने से स्वर में पूछा 'क्या सच ही मैं शेर का बच्चा हूं कहो जीजी ?'

उसी समय लीला उसकी मां वहां आई, वे लल्ला का हाल पूछने आई थीं। जीजी की आंखे भरी-भरी देखकर लीला की मां ने पूछा 'क्यों खैर तो है ? क्या हाल है लल्ला का ?'

जीजी ने जाने क्या कहा, लीला इतने में लल्ला के पास जा बैठी थी। लल्ला का चेहरा डरावना सा हो रहा था और शरीर जल सा रहा था। उसने लीला से कहा उसी प्रकार चीखते हुये। 'देखो लीला; सभी मर्द कुत्ते नहीं होते। मैं—मैं शेर का बच्चा हूँ परन्तु मैं कुत्तों के से काम नहीं करूंगा—मैं चौधरी नहीं हूँ......।'

यह कहते-कहते वह मूर्छित हो गया। बेचारा दर्द चोट ज्वर, और मानसिक अशान्ति को सहन न कर सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय मन्त्री :

लेखक ↓ श्री सुदर्शन

परिचय—जन्म सन् १८९६। आप पंजाब के स्यालकोट ज़िले में उत्पन्न हुये और पंजाब में ही शिक्षा-दीक्षा पाई।

प्रेमचन्द की तरह सुदर्शन जी भी हिन्दी और उर्दू दोनों के कलाकार हैं। आप की कहानियां उच्चादर्श को लिये हुये होती हैं। छोटे छोटे वाक्यों में आप व्यापक भाव भर देते हैं और संकुचित से संकुचित जीवन में भी आप मनमानी तस्वीरें खींच देते हैं।

आजकल आप बम्बई में सिनेमा लाइन में काम कर रहे हैं और इस लाइन में आप की रचनाओं ने बहुत ख्याति पाई है।

यह घटना आज से २५,०० वर्ष पहले की है। एक दिन सन्ध्या समय जब आकाश में बादल लहरा रहे थे, बुद्धगया नामक गांव में एक परदेशी, शिशुपाल ब्राह्मण के द्वार पर आया और नम्रता से बोला—"क्या मुझे रात काटने के लिये स्थान मिल जायगा।?"

शिशुपाल अपने गांव में सब से अधिक निर्धन थे। घोर दारिद्र्य ने भूखे बैल की नाईं उनकी हड्डियों का पञ्जर निकाल रहा था। उनकी आजीविका थोड़ी सी भूमि पर चलती थी। परन्तु फिर भी परदेशी को द्वार पर देखकर उनका मुख खिल गया, जैसे कमल सूर्य के उदय होने पर खिल उठता है। उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—"यह मेरा सौभाग्य है। आइए, पधारिए, अतिथि के चरणों से चौका पवित्र हो जायगा।"

परदेशी और ब्राह्मण दोनों अन्दर गये। भारतवर्ष में अतिथि सत्कार की रीति बहुत प्रचलित थी। शिशुपाल के पुत्र ने अतिथि का सत्कार किया। परदेशी मुग्ध हो गया। उसने ब्राह्मण से कहा—'आपका पुत्र बड़े काम का मनुष्य है, उसकी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।'

शिशुपाल ने इस प्रकार सिर उठाया जैसे किसी ने सर्प को छेड़ दिया हो। और नाक भौं चढ़ा कर उत्तर दिया-'आप हमारे अतिथि हैं, अन्यथा ब्राह्मण ऐसे शब्द नहीं सुन सकते'

परदेशी ने अपनी इस भूल पर लज्जित होकर कहा— 'क्षमा कीजिये मेरा यह अभिप्राय न था। परन्तु आजकल वे ब्राह्मण कहाँ हैं, अब तो आंखें उनके लिये तरसती हैं।'

शिशुपाल ने उत्तर दिया—'ब्राह्मण तो अब भी हैं, कमी केवल क्षत्रियों की है।"

"मैं आप का अभिप्राय नहीं समझा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशुपाल ने भी एक लम्बी वक्तृता आरम्भ कर दी, जिसको सुन कर परदेशी चकित हो गया। उसकी बातें ऐसी युक्तयुक्त और प्रभावशाली थीं कि परदेशी उन पर मुग्ध हो गया। इस छोटे से गाँव में ऐसा विद्वान्, ऐसा तत्त्वदर्शी पण्डित भी हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी। उसने शिशुपाल का युक्तियुक्त तर्क और शासन-पद्धति का इतना विशाल ज्ञान देखकर कहा— मुझे ख्याल न था कि गोबर में फूल खिला हुआ है। महाराज अशोक को पता लग जाय तो आपको किसी ऊँची पदवी पर नियुक्त कर दें।

शिशुपाल के शुष्क होठों पर मुस्कराहट छा गई। जिसका अन्तःकरण कुढ़ रहा हो, जिसके नेत्र आंसू बरसा रहे हों, जिसका मस्तिष्क अपने आपे में न हो, उसके होठों पर हँसी ऐसी प्रतीत होती है, जैसे श्मशान में चांदनी, वरन् उससे भी अधिक। शिशुपाल की आँखें नीचे झुक गईं। उन्होंने थोड़ी देर बाद सिर ऊपर उठाया और कहा—"आजकल बड़ा अन्याय हो रहा है। जब देखता हूँ, मेरा रक्त उबलने लग जाता है।"

परदेशी ने पैंतरा बदलकर उत्तर दिया—"शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं।"

"रहने दो, मैं सब जानता हूं।"

"दोष निकालना सुगम है, परन्तु कुछ करके दिखाना कठिन है।"

शिशुपाल ने अग्नि पर पड़े हुये पत्ते की नाईं झुलस कर उत्तर दिया :—

"अवसर मिले तो दिखा दूँ कि न्याय किसे कहते हैं।"

"तो अवसर आप चाहते हैं?"

"हाँ अवसर चाहता हूँ।"

"फिर तो कोई अन्याय न होगा?"

"सर्वथा न होगा।"

"कोई अपराधी दण्ड से न बचेगा?"

"कदापि नहीं बचेगा।"

परदेशी ने सहज भाव से कहा—"यह बहुत कठिन है।"

"ब्राह्मण के लिये कोई कठिन नहीं। न्याय का डंका बजाकर दिखा दूँगा।"

परदेशी के मुख पर मुस्कराहट थी, नेत्रों में ज्योति। उसने हँस कर उत्तर दिया—"यदि मैं अशोक होता तो आपकी इच्छा पूरी कर देता।"

सहसा ब्राह्मण के हृदय में एक सन्देह उठा, परन्तु दूसरे क्षण में वह दूर हो गया, जिस तरह वायु के प्रबल झोंके अभ्रखण्ड को उड़ा ले जाते हैं।

(२)

दूसरे दिन महाराज अशोक के दरबार में शिशुपाल बुलाया गया। इस समाचार से गांव भर में आग-सी लग गई। यह वह समय था जब महाराज अशोक का राज्य आरम्भ हुआ था और दमन नीति का प्रारम्भ था। उस समय महाराज ऐसे निर्दय और निठुर थे कि ब्राह्मण और स्त्रियों को फाँसी पर चढ़ा दिया करते थे। उनकी निष्ठुर दृष्टि से बड़े बड़े वीरों के भी प्राण सूख जाते थे। लोगों ने समझ लिया कि शिशुपाल के लिये यह बुलावा मृत्यु का सन्देश है। उनको पूरा पूरा विश्वास था कि अब शिशुपाल जीवित न लौटेंगे। परिणाम यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि शिशुपाल के सम्बन्धियों पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा और वे फूट-फूट कर रोने लगे। लोगों ने धीरज बंधाना आरम्भ किया। परन्तु शिशुपाल के माथे पर बल न था। वे कहते थे—"जब मैंने कोई अपराध नहीं किया, तब कोई मुझे क्यों फांसी देने लगा। निस्सन्देह राजा ऐसा अन्यायी और अन्धा नहीं हो सकता कि निर्दोष ब्राह्मणों को दुःख देने लगे।" दुःख और कष्ट की लहरों के मध्य में वे इस प्रकार मौन खड़े थे जिस प्रकार समुद्र की शिला। उन्होंने पुत्र और स्त्री को समझाया, और पाटलिपुत्र की ओर चले।

जब शिशुपाल पाटलिपुत्र पहुँचे तो साँझ हो गई थी, और जब राजमहल में पहुँच गये तो उस समय तक उनको किसी बात का भय न था। परन्तु राजमहल की चमक दमक का उन पर भय छा गया; जिस प्रकार मनुष्य थोड़े जल में निर्भय रहता है, परन्तु गहराई में जाकर घबरा जाता है। उनके हृदय में कई प्रकार के विचार उठने लगे। कभी सोचते किसी ने कोई शिकायत न कर दी हो। जो दिल में आता है बेधड़क होकर कह दिया करता हूं। कहीं इसका फल न भुगतना पड़े, कई शत्रु हैं। कभी सोचते—यह परदेशी पता नहीं कौन था। हो सकता है, कोई गुप्तचर ही हो; और यह आग उसी की लगाई हुई हो। तब तो उसने सब कुछ कह दिया होगा। कैसी मूर्खता की, जो एक अपरिचित से घुल-मिल कर बातें करता रहा, अब पछता रहा हूं। कभी सोचते कदाचित मेरी दरिद्रता की कहानी यहाँ तक पहुँच गई हो, और महाराज ने मुझे कुछ देने को बुला भेजा हो। यह भी तो हो सकता है। इस विचार से हृदय कमल खिल जाता, परन्तु फिर दूसरे विचार से मुर्झा जाता। इतने में प्रतीहार ने कहा "महाराज आ रहे हैं।"

शिशुपाल का कलेजा धड़कने लगा। उनको ऐसा प्रतीत हुआ, मानों प्राण होठों तक आ गए हैं। राजा का कितना प्रताप होता है, इसका पहली बार अनुभव हुआ। दृष्टि द्वार की ओर गई, महाराज अशोक राजकीय ठाठ से कमरे में आये और मुस्कराते हुये बोले—

"ब्राह्मण देवता, मुझे तो आप ने पहचान ही लिया होगा।"

शिशुपाल घबराकर खड़े हो गये। इस समय उनका रोम-रोम काँप रहा था. ये वही थे!

(३)

हाँ, ये वही थे। शिशुपाल कांप कर रह गये। कौन जानता था कि शीतकाल की रात को एक ब्राह्मण के यहाँ आश्रय लेने वाला परदेशी भारत का सम्राट् हो सकता है। शिशुपाल ने तुरन्त ही अपने हृदय को स्थिर कर दिया और कहा—'मुझे पता न था कि आप ही महाराज हैं, अन्यथा उतनी स्वतन्त्रता से बातचीत न करता।'

महाराज अशोक बोले—'हूँ'।

'परन्तु मैंने कोई बात बढ़ा कर नहीं की थी।'

'हूँ'

'मैं प्रमाण दे सकता हूं।

महाराज ने कहा—'मैं नहीं चाहता।'

"तो मुझे क्या आज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं आप की परीक्षा करना चाहता हूं।'

शिशुपाल के हृदय में सहमा एक विचार उठा—"क्या यह सच हो जायगा।"

महाराज ने कहा—"आप ने कहा था कि यदि मुझे अवसर दिया जाय तो मैं न्याय का डंका बजा दूँगा! मैं आपकी इस विषय में परीक्षा करना चाहता हूं। आप तैयार हैं?"

शिशुपाल ने हंस की तरह गर्दन ऊँची की, और कहा—'हां, यदि महाराज की इच्छा है तो मैं तैयार हूं।"

'कल प्रातः काल से तुम न्याय-मन्त्री नियत किये जाते हो। सारे नगर पर तुम्हारा अधिकार होगा।'

'बहुत अच्छा।'

पाटलिपुत्र की पुलिस का प्रत्येक अधिकारी तुम्हारे आधीन होगा, और शान्ति रखने का उत्तरदायित्व केवल तुम्हीं पर होगा।'

'बहुत अच्छा।'

"यदि कोई घटना हो गई अथवा कोई हत्या हो गई तो उसका उत्तरदायित्व भी तुम पर होगा।"

'बहुत अच्छा।'

महाराज थोड़ी देर चुप रहे और फिर हाथ से अँगूठी उतार कर बोले—"यह राज-मुद्रा है, तुम कल प्रातःकाल से सूर्य की पहली किरण के साथ न्याय-मन्त्री समझे जाओगे। मैं देखूँगा तुम अपने आपको किस प्रकार सफल शासक सिद्ध कर सकते हो?'

(४)

एक मास व्यतीत हो गया। न्याय-मन्त्री के न्याय और सुप्रबन्ध की चारों ओर धूम मच गई। शिशुपाल ने नगर पर जादू डाल दिया है, ऐसा प्रतीत होता था। उन्होंने चोर डाकुओं को इस प्रकार वश में कर लिया था जिस प्रकार बीन बजा कर सपेरा सर्प को वश में कर लेता है। उन दिनों यह अवस्था थी कि लोग दरवाजे तक खुले छोड़ जाते थे। परन्तु किसी को हानि न होती थी। शिशुपाल का न्याय अन्धा और बहरा था, जो न सूरत देखता था और न सिफ़ारिश सुनता था। वह केवल दण्ड देना जानता था और वह भी शिक्षाप्रद। नगर की दशा में आकाश पाताल का अन्तर पड़ गया।

रात्रि का समय था आकाश में तारे खेलते थे। एक अमीर ने एक विशाल भवन के द्वार पर दस्तक दी। दरीचे से किसी स्त्री ने सिर निकाल कर पूछा—'कौन है?"

"मैं हूं, दरवाज़ा खोल दो।"

"परन्तु वे यहां नहीं हैं।"

"परवाह नहीं, तुम दरवाज़ा खोल दो।"

स्त्री ने कुछ सोच कर उत्तर दिया—'मैं नहीं खोलूँगी, तुम इस समय जाओ।'

अमीर ने क्रोध से कहा—'दरवाज़ा खोल दो, नहीं तो मैं तोड़ डालूँगा।"

स्त्री ने उत्तर दिया—'जानते नहीं हो, नगर में शिशुपाल का राज्य है। अब कोई इस प्रकार बलात्कार नहीं कर सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीर ने तलवार निकाल कर दरवाज़े पर आक्रमण किया। सहसा एक पहरेदार ने आकर उसका हाथ थाम लिया, और कहा— क्या कर रहे हो?

अमीर ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे भेड़िया भेड़ को देखता है, और क्रोध में बोला—'तुम कौन हो?'

'मैं पहरेदार हूँ।'

"तुमको किसने नियत किया है?

"न्याय-मन्त्री ने।"

"मूर्खता न करो। मैं उसे भी मिट्टी में मिला सकता हूँ।"

पहरेदार ने साहस से उत्तर दिया—"परन्तु इस समय महाराज अशोक भी आ जाये तो भी न टलूँगा।"

'क्यों मृत्यु को बुला रहे हो?"

"मैंने जो प्रण किया है उसे पूरा करूँगा।"

"किससे प्रण किया है?"

"न्याय-मन्त्री से।"

"क्या?"

"यही कि जब तक तन में प्राण हैं और जब तक रुधिर का अन्तिम बिन्दु भी मेरे शरीर में शेष है, अपने कर्तव्य से कभी पीछे न हटूँगा।"

अमीर ने बलवार खींच ली। पहरेदार ने पीछे हटकर कहा—"आप ग़लती कर रहे हैं, मैं नौकरी पर हूँ।"

परन्तु अमीर ने सुना अनसुना कर दिया, और तलवार लेकर झपटा। पहरेदार ने भी तलवार खींच ली। परन्तु वह अभी नया था, पहले ही वार में गिर गया, और मारा गया। अमीर का लहू सूख गया। उसके हाथों के तोते उड़ गये। उसकी यह इच्छा न थी कि पहरेदार को मार दिया जाय। वह उसे केवल डराना चाहता था। परन्तु घाव मर्मस्थान पर लगा। अमीर ने उसकी लाश को एक ओर कर दिया और आप भाग निकला।

[५]

प्रातःकाल इस घटना की घर-घर में चर्चा थी। लोग हैरान थे कि इतना साहस किसे हो गया कि पुलिस के कर्मचारी को मार डाले और फिर शिशुपाल के शासन में! राजधानी में आतङ्क छा गया। पुलिस के आदमी चारों ओर दौड़ते फिरते थे, मानो यह उनके जीवन और मरण का प्रश्न हो। न्यायमन्त्री ने भी मामले की खोज में दिन-रात एक कर दिया। यह घटना उसके शासन-काल में पहली थी। उनको खाना-पीना भूल गया, आँखों से नींद उड़ गई। घातक की खोज में उन्होंने कोई कसर उठा न रखी, परन्तु कुछ पता न लगा।

असफलता का प्रत्येक दिन अशोक की क्रोधाग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित कर रहा था। वे कहते—तुमने कितने ज़ोर से न्याय का दावा किया था, अब क्या हो गया। न्यायमन्त्री लज्जा से सिर झुका लेते। महाराज कहते, "घातक कब तक पकड़ा जायगा?" न्याय-मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर देते, "यत्न कर रहा हूं, जल्दी ही पकड़ लूँगा।" महाराज कुछ दिन ठहरकर फिर पूछते, "हत्यारा पकड़ा गया?" न्याय-मन्त्री कहते, "नहीं।" महाराज का क्रोध भड़क उठता। उनकी आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगतीं, बादल की नाईं गरज कर बोलते—"मैं यह 'नहीं' सुनते-सुनते तंग आ गया हूँ।"

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया, परन्तु हत्यारे का पता न लगा। अन्त में महाराज अशोक ने शिशुपाल को बुलाकर कहा "तुम्हें तीन दिन की अवधि दी जाती है। यदि इस बीच में घातक न पकड़ा गया तो तुम्हें फांसी दे दी जायगी।"

इसी समाचार से नगर में हलचल-सी मच गई। एक ही मास के अन्दर-अन्दर शिशुपाल लोकप्रिय हो चुके थे। इनके न्याय की चारों ओर धाक बँध गई थी। लोग महाराज को गालियां देने लगे। जहां चार मनुष्य इकट्ठे होते, इसी विषय पर बातचीत करने लगते। वे चाहते थे कि चाहे कुछ भी हो जाय, परन्तु शिशुपाल का बाल बाँका न हो। शिशुपाल स्वयं बड़ी उत्सुकता के साथ घातक की खोज में लीन थे, परन्तु व्यर्थ। यहां तक कि तीसरा दिन आ गया—अब कुछ ही घण्टे बाकी थे।

रात्रि का समय, परन्तु शिशुपाल की आंखों में नींद न थी। वे नगर के एक घने बाजार के अन्दर घूम रहे थे। सहसा एक मकान की खिड़की खुली और एक स्त्री ने झांककर बाहर देखा। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। स्त्री ने धीरे से कहा—"तुम कौन हो? पहरेदार?"

निराशा के अन्धकार में आशा की एक किरण चमक गई। शिशुपाल ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं न्याय-मन्त्री हूं।"

"ज़रा यहीं ठहरो।"

स्त्री खिड़की से पीछे हट गई, और दीपक लेकर दरवाजे पर आई। न्याय-मन्त्री को साथ लेकर वह अपने कमरे में गई; और बोली—"आज अन्तिम रात्रि है?"

न्याय-मन्त्री ने चुभती हुई दृष्टि से स्त्री की ओर देखा और उत्तर दिया—"हां, अन्तिम।"

शब्द साधारण थे, परन्तु इनका अर्थ साधारण न था। स्त्री तिलमिलाकर खड़ी हो गई और बोली—"मैं इस घटना को अच्छी तरह जानती हूँ।"

शिशुपाल की मृतप्राय देह में प्राण आ गये, धैर्य धरकर बोले—"कहो।"

"रात्रि का समय था। घातक ने इस मकान का दरवाज़ा खटखटाया। वह यहां प्रायः आया करता है।"

"परन्तु क्यों?"

"उसका आचार अच्छा नहीं।"

"फिर आगे।"

"मैंने उत्तर दिया, जिसके पास तुम आये हो वह यहां नहीं है। परन्तु उसने इसे झूठ समझा, और दरवाज़ा तोड़ने को उद्यत हुआ। पहरेदार ने उसे रोका, और उसके हाथ से मारा गया।"

न्याय-मन्त्री ने पूछा—"परन्तु घातक कौन है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री ने उनके कान में कुछ कहा और सहमी हुई कबूतरी की नाई चारों ओर देखा।

[६]

दूसरे दिन दरबार में तिल धरने को स्थान न था। आज न्याय-मन्त्री का भाग्य-निर्णय होने को था। अशोक ने सिंहासन पर पैर रखते ही कहा—"न्याय-मन्त्री !"

शिशुपाल सामने आये, इस समय उनके मुख पर कोई चिन्ता, कोई अशांति न थी।

महाराज ने पूछा—"घातक का पता लगा ?"

न्याय-मन्त्री ने साहस पूर्वक उत्तर दिया—"हां, लग गया।"

"पेश करो।"

न्याय-मन्त्री ने सिर झुकाकर सोचा। इस समय उनके हृदय में दो विरोधी शक्तियों का संग्राम हो रहा था। यह उनके मुख से स्पष्ट प्रतीत होता था। सहसा उन्होंने दृढ़ संकल्प से सिर उठाया और अपने एक उच्च अधिकारी को लक्ष्य करते हुए कहा—"धनवीर !"

'श्रीमन् !"

"गिरफ्तार कर लो, मैं आज्ञा देता हूं।"

इशारा महाराज की ओर था। दरबार में निस्तब्धता छा गई। अशोक का चेहरा लाल हो गया, मानो वह तपा हुआ तांबा हो। नेत्रों से अग्नि-कण ! वे तिलमिलाकर खड़े हो गये और बोले—"अरे ब्राह्मण ! तुझे यहां तक साहस हो गया।"

न्याय-मन्त्री ने ऐसा प्रकट किया, मानो कुछ सुना ही नहीं, और अपने शब्दों को फिर दोहराया—"मैं आज्ञा देता हूँ, गिरफ्तार कर लो।"

धनवीर पुतली की नाईं आगे बढ़ा। दरबारियों की सांस रुक गई। महाराज सिंहासन से नीचे उतर आये। न्याय-मन्त्री ने कहा—"यह घातक है। मेरी अदालत में पेश करो।"

धनवीर ने अशोक को हथकड़ी लगा ली और शिशुपाल की कचहरी की ओर ले चला। वहां सारा नगर उपस्थित था। शिशुपाल ने आज्ञा दी—'अपराधी राजकुल से है, अतएव अकेला पेश किया जाय।"

महाराज अशोक ने संकेत किया, मन्त्रीगण पीछे हट गये। महाराज उस जंगले में खड़े हो गये, जो अपराधी के लिए नियत किया गया था। छत्रपति नरेश के अपने राज्य में स्वयं उसके नौकर के हाथों यह सम्मान हो सकता है, इसकी किसी को आशंका न थी। परन्तु शिशुपाल दृढ़ संकल्प के साथ न्यायासन पर विराजमान थे। उन्होंने नेत्रों से महाराज को प्रणाम किया। हाथों को न्याय-रज्जु ने बाँध रखा था। वे धीरे से बोले—"तुम पर पहरेदार की हत्या का अपराध है। तुम इसका क्या उत्तर देते हो ?"

महाराज अशोक ने होठ काटकर उत्तर दिया—"वह उद्दण्ड था।"

'तो तुम अपराध स्वीकार करते हो ?"

"हां, मैंने उसको मारा है। परन्तु मैंने जान-बूझकर नहीं मारा।"

"वह उद्दण्ड नहीं था, मैं उसे चिरकाल से जानता हूँ !"

"वह उद्दण्ड था।"

"तुम झूठ बोलते हो। मैं तुम्हारे वध की आज्ञा देता हूं।"

अशोक के नेत्र लाल हो गये। मन्त्रियों ने तलवारें निकाल लीं। कई आदमी शिशुपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गालियां देने लगे। कई एक ने यहां तक कह दिया—न्याय-मन्त्री पागल हो गया है। एक आवाज़ आई; तुम अपना सिर बचाओ।' अशोक ने हाथ उठाकर मौन रहने का संकेत किया। चारों ओर फिर वही निस्तब्धता छा गई। न्याय-मन्त्री ने कड़ककर कहा—"आपका क्रोध करना सर्वथा अनुचित है। मैं इस समय न्याय-मन्त्री के आसन पर हूं और न्याय करने बैठा हूँ। महाराज अशोक की दी हुई मुद्रा मेरे हाथ में है। यदि किसी ने शोर किया तो मैं उसको अदालत के अपमान में गिरफ़्तार कर लूँगा।"

"अशोक! तुमने एक राज-कर्मचारी का वध किया है। मैं तुम्हारे वध की आज्ञा देता हूँ।"

महाराज ने सिर झुका दिया। इस समय उनके हृदय में ब्रह्मानन्द का समुद्र लहरें मार रहा था। सोचते थे, यह मनुष्य स्वर्ण है, जो अग्नि में पड़कर कुन्दन हो गया है। कहता था—मेरा न्याय अपनी धूम मचा देगा, वह वचन झूठा न था। इसने अपने कहने की लाज रख ली है। ऐसे ही मनुष्य होते हैं, जिन पर जातियां अभिमान करती हैं और जिन पर अपना तन-मन निछावर करने को उद्यत हो जाती हैं। उन्होंने एक विचित्र भाव से सिर ऊँचा किया और उपेक्षापूर्वक कहा—"मैं इस आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं बोल सकता।"

न्याय-मन्त्री ने एक मनुष्य को हुक्म दिया। वह एक स्वर्णमूर्ति लेकर उपस्थित हुआ। न्याय-मन्त्री ने खड़े होकर कहा—"महाशयो! यह सच है कि मैं न्याय-मन्त्री हूं यह भी सच है कि मेरा काम न्याय करना है। यह भी सच है कि एक राज-कर्मचारी की हत्या की गई है। उसका दण्ड अवश्यम्भावी है। परन्तु शास्त्रों में राजा को ईश्वर माना गया है। उसे ईश्वर ही दण्ड दे सकता है। यह काम न्याय-मन्त्री की शक्ति से बाहर है। अतएव मैं आज्ञा देता हूं कि महाराज चेतावनी देकर छोड़ दिये जायें और उनकी मूर्ति फांसी पर लटकाई जाय, जिसमें लोगों को शिक्षा मिले।"

न्याय-मन्त्री का जय-जयकार हुआ, लोग इस न्याय पर मुग्ध हो गये। वह कहते थे, यह मनुष्य नहीं देवता है, जो न किसी व्यक्ति से डरता है और न किसी शक्ति के आगे सिर झुकाता है। अन्तःकरण की आवाज़ सुनता है और उस पर निर्भयता से बढ़ा चला जाता है। और कोई होता तो महाराजा के सामने हाथ बाँधकर खड़ा हो जाता। परन्तु इसने उन्हें 'तुम' कहकर सम्बोधित किया है, मानो कोई साधारण अपराधी हो। उनके शरीर में रोमांच हो गया। सहस्रों नेत्रों ने आनन्द के आँसू बहाये और सहस्रों जिह्वाओं ने जोर-जोर से कहा—'न्याय-मन्त्री की जय।'

रात हो गई थी, न्याय-मन्त्री राजमहल में पहुँचे और अशोक के सम्मुख अंगूठी और मुद्रा रखकर बोले—"महाराज, यह अपनी वस्तुएं सम्भालें। मैं अपने गांव वापिस जाऊँगा।"

अशोक ने सम्मान दृष्टि से उनकी तरफ़ देखकर कहा—"आज आपने मेरी आंखें खोल दी हैं। अब यह कैसे हो सकता है?"

"परन्तु श्रीमन्!……"

अशोक ने बात काटकर कहा—"आपका साहस मैं कभी न भूलूँगा। यह बोझ आप ही उठा सकते हैं। मुझे कोई दूसरा इस पद के योग्य दिखाई नहीं देता।"

न्याय-मन्त्री निरुत्तर हो गये। ❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी और पंजाब का जैन समाज :

लेखक—
प्रो० पृथ्वीराज जैन, एम. ए. शास्त्री,
जैन कालेज अम्बाला शहर

जैन संस्कृति की यह एक विशिष्ट विशेषता है कि इसने लोकभाषा को सदैव सम्मान और आदर प्रदान किया है। जैन आगमों में तीर्थंकरों की वाणी के ३५ अतिशय बताये गये हैं, जिनमें कुछ ये हैं-सरलता, हृदयंगमता, प्रस्ताव औचित्य अर्थात् वाणी का देशकाल के अनुसार होना। जैन श्रमणों का यह परम कर्तव्य समझा जाता था कि वे उन सब स्थानों की भाषाओं से सुपरिचित हों, जिनमें विहार कर उन्हें धर्म-प्रचार करना है। (औपपातिक सूत्र १६) यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती, तामिल, कन्नड़ आदि सभी भाषाओं में जैन आचार्यों और विद्वानों ने उच्चकोटि के साहित्य की रचना की है।

आज हिन्दी उदीयमान भारत राष्ट्र की महती शक्ति है। लगभग बीस करोड़ व्यक्ति इसे जानते, समझते, बोलते और व्यवहार में लाते हैं। जैनों ने अपभ्रंश काल से लेकर अब तक इसकी सेवा की है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का निश्चित मत है कि अपभ्रंशकाल (८वीं से ११वीं शती) हिन्दी भाषा का आद्यकाल है। जैन साहित्य में हिन्दी काव्य शैली के अंकुर निहित हैं। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने १९२७ ई० में 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास लिखा था। परन्तु अब भी अनेक शिक्षित जन जैनों की इस देन से अनभिज्ञ हैं। जैन कवि स्वयंभू ८ वीं शती का 'हरिवंश पुराण' और 'रामायण' पुरातन हिन्दी के माने आदि काव्य हैं। पंजाब में जैन यतियों ने हिन्दी कथा साहित्य आयुर्वेद, ईश्वर भक्ति आदि विषयों पर अनेक रचनाएँ की हैं जो अब तक पूरे रूप में प्रकाश में नहीं आईं। बीकानेर निवासी इतिहासज्ञ श्री अगरचन्द नाहटा शोध कर रहे हैं। इस लेख में आधुनिक पंजाब जैन समाज की हिन्दी सेवा पर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

१९ शताब्दि भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण और पुनरुत्थान के सूत्रपात का समय है। उस समय देश में अनेक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों का श्रीगणेश हुआ। इनका उद्देश्य यह था कि भारतीय शिक्षित युवकों को भारतीय सभ्यता, धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य की ओर आकृष्ट किया जाए। इन आन्दोलनों के प्रवर्तकों ने विभिन्न विचारधाराओं के प्रचार और समर्थन के लिये हिन्दी गद्य-पद्य को अपना विशेष वाहन बनाया। राजा हरिश्चन्द्र इस राष्ट्रीय युग के प्रवर्तक समझे जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने गुजराती होते हुये भी हिन्दी भाषा को अपनाया वे इसे आर्य भाषा मानते थे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने भी कुछ पुस्तकें लिखी। ये जैन थे। इनकी भाषा में उर्दू का मिश्रण भी था। आर्यसमाज के कारण हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्य का पंजाब में भी पदार्पण हुआ और ब्रह्म समाजी नवीनचन्द्र राय पंजाबी ने भी समाज सुधार पर विशुद्ध हिन्दी में पुस्तकें लिखीं।

पंजाब-जैनसमाज इस समय किसी दूसरे समाज से पीछे नहीं रहा। इसी शताब्दि में वीर प्रसवा इस भूमि में एक क्रान्तिकारी जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि (प्रसिद्ध नाम श्री आत्माराम जी) ने धर्म-प्रचार और समाजसुधार का अनुपम कार्य किया। वे जन्म से क्षत्रिय थे। उन्होंने १७ वर्ष की अवस्था में जैन संन्यास ग्रहण किया। वे भारतीय धर्म, दर्शन और इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा एवं विद्वत्ता की ख्याति युरोप व अमेरिका भी पहुंची। १८९३ ई० में सर्व धर्म विश्वपरिषद् के चिकागो के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये उन्हें निमन्त्रण मिला था। जैन साधु किसी भी वाहन का प्रयोग नहीं करते, इस लिये वे स्वयं न जा सके। उन्होंने बैरिस्टर श्री वीरचन्द राघव जी गाँधी को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा जिन्होंने युरोप व अमेरिका में सैकड़ों व्याख्यान दिये।

प्रात: स्मरणीय न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री श्री १००८ स्व० श्री मद्विजयानन्द सूरीश्वर जी (प्रसिद्ध नाम श्री आत्माराम जी) जिन्होंने १९ वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में हिन्दी का प्रचार किया और अनेक धार्मिक दार्शनिक ग्रंथों की गद्य-पद्य में रचना की। आप की स्मृति में अनेक जैन शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हैं।

श्रीमद्विजयानन्द सूरि (१८३७ ई० से १८९७ ई०) ने हिन्दी गद्य-पद्य के निर्माण व प्रचार में विशिष्ट सहयोग दिया। परन्तु दुःख है कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने उनकी हिन्दी सेवा की उपेक्षा की है। जैन समाज भी इस युग द्रष्टा आचार्य के साहित्य का प्रचार सीमित क्षेत्र से बाहर न कर सका। अतः दोष सर्वथा इतिहास लेखकों का नहीं। कुछ विद्वान् अवश्य यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक युग में जैन समाज ने हिन्दी में जो यथेष्ट भाग लिया है, उसका सर्वोपरि श्रेय श्री विजयानन्द सूरि को है। पं० रघुनन्दन शास्त्री ने एक बार नागरी प्रचारिणी पत्रिका में लिखा था कि "पंजाब में हिन्दी के प्रसार में जैन धर्म का कार्य भी विशेष रूप से श्लाघनीय है। आचार्यों ने जैन धर्म का प्रचार विशेषतः हिन्दी द्वारा ही किया है। जैन धर्म के पचासों जीवन चरित्र, धार्मिक उपदेश, गीत कविता भजन आदि हिन्दी में प्रकाशित हुये हैं। इनके आचार्य श्री विजयानन्द जी सूरि अथवा श्री आत्मानन्द जी ने बीसों ग्रंथ हिन्दी में लिखे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जिस विशाल; गम्भीर, विद्वत्ता पूर्ण, आकर्षक और ज्ञान निधि रूप साहित्य की रचना की, वह उनकी दिव्य आत्मा के तेज को आज भी अक्षर रूप में संगृहीत किये हुये हैं। वे तुलनात्मक विशाल अध्ययन को प्रोत्साहन देते थे। जैन धर्म के विषय में प्रसारित भ्रांतियों को दूर कर उसके सम्यक् रूप से सर्व साधारण को परिचित करना उनका विशेष लक्ष्य 'नामूलं लिख्यते किञ्चित्' सरल शैली सुबोध उदाहरण, आकर्षक वर्णन उनकी विशेषताएं हैं। उनकी कुछ रचनाएँ ये हैं:—

गद्य—नवतत्त्व, जैन तत्वादर्श, अज्ञानतिमिर भास्कर, तत्त्व निर्णयप्रासाद, सम्यक्त्वशल्योद्धार, जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर, चिकाको प्रश्नोत्तर, ईसाई मत समीक्षा आदि।

पद्य—आत्म बावनी, स्तवनावलि, अनेक पूजाएँ आदि।

दार्शनिक विषयों को सुबोध भाषा में वर्णन करने में वे सिद्धहस्त थे। जैन धर्म ईश्वर को जगतकर्ता नहीं मानता, वे इस विषय में लिखते हैं—"वाह! अच्छा ईश्वर तुमने माना है जो अपनी खेल वास्ते जीवों को अनेक दुःखों में गेरता है। अपनी खेल वास्ते गरीब जीवों को नरक में गेरना, पिटाना, रुवाना, रोगी, दरिद्री करना यह दयावान् का काम नहीं! 'सच है चिड़ियों की मौत, गंवाँरों की हँसी' (अज्ञान तिमिर भास्कर)।

उनकी कविता व्रजभाषा में है परन्तु इसमें पंजाबी मारवाड़ी व गुजराती के प्रयोग भी हैं। राग भी अनेक प्रान्तों के हैं। तृष्णा का सुन्दर चित्रण देखिये:—

तृष्णा तरंग चरी अति भारी, बहे जात सब जन तन धारी।
मानफेन अति उमंग चढ़्यो है, अब प्रभु शान्त कीजो जी॥

आचार्य आत्माराम जी दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार भगवान् महावीर को अर्ध मागधी में तथा भगवान् बुद्ध को पाली में अपने उपदेशामृत की धारा को सर्वत्र प्रवाहित करना पड़ा था। वर्तमान युग की माँग थी कि लोक भाषा या राष्ट्रभाषा हिन्दी में धार्मिक व दार्शनिक ज्ञान का प्रचार किया जाए। लोककल्याण के उपासक जैन श्रमण लोकभाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते। संस्कृत व प्राकृत के विद्वान् होते हुये भी हिंदी में अपनी रचनाएँ लिखीं। वे स्वयं इस विषय में लिखते हैं—"......कितनेक भव्य जीवों की प्रेरणा से तथा स्वकर्म निर्जरा के आशय से, जिनको प्राकृत व संस्कृत पढ़नी कठिन है, तिनों के उपकारार्थ देव, गुरु और धर्म का स्वरूप किंचित्मात्र इस भाषा ग्रंथ में लिखते हैं।" वे हिन्दी को 'स्वदेश गिरा' अर्थात् अपने राष्ट्र की वाणी कहा करते थे। उनकी भाषा में लौकिक प्रचलित भाषाओं का समावेश है जो भिन्न भिन्न फूलों से संचित मधु के समान मधुर है। डा० बनारसीदास जी एम. ए. पी. एच. डी. ने लिखा है—"उनकी भाषा में साहित्यिक भाषा के सब गुण विद्यमान हैं। इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म और गूढ़ से गूढ़ शास्त्रीय अर्थ प्रकट करने की पूर्ण क्षमता है। महाराज जी की गद्य लिखने की शैली अति गम्भीर और परिपक्व है। यह शिथिलता, विषमता आदि दोषों से रहित है।"

उनकी मनःकामना थी कि पंजाब में संस्कृत, प्राकृत हिन्दी की शिक्षा के लिये एक विशाल सरस्वती मन्दिर की स्थापना की जाय। परन्तु आयु ने उनका साथ न दिया। स्वर्गवास के समय उन्होंने अपने परम मेधावी शिष्य जैनाचार्य श्री मद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार करने का विशेष सन्देश दिया। गुरु के मिशन की पूर्ति के लिये इस महाश्रमण ने तन-मन की बाजी लगा दी। पंजाब, राजस्थान व गुजरात में अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। १६२६ ई० में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने के लिये गुजरांवाला में श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पंजाब की स्थापना हुई। यह विशुद्ध धार्मिक और राष्ट्रीय संस्था थी। जिसका हरेक कार्य हिन्दी में होता था। काँग्रेस के नेता गण वहाँ प्रायः आते थे। लुधियाना, अम्बाला शहर, मालेरकोटला आदि स्थानों में हाईस्कूलों, कन्या पाठशालाओं व कालेजों की स्थापना हुई जिनमें संस्कृत-हिन्दी की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध था। स्थानकवासी जैन समाज ने १६२७ ई० में श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला की स्थापना की और इस संस्था ने भी हिन्दी प्रचार का महान् कार्य किया।"

धार्मिक साहित्य का प्रचार करने के लिये श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला की स्थापना हुई। इस संस्था ने अनेक पुस्तकें हिन्दी भाषा में प्रकाशित की हैं। 'प्रभात' व 'आत्मानन्द' नामक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। श्री आत्माराम जैन महासभा पंजाब अम्बाला शहर आज भी 'विजयानन्द' नामक मासिक पत्र हिन्दी में प्रकाशित कर रही है। बनारस से प्रकाशित 'श्रमण' भी श्री पूज्य सोहनलाल धर्म प्रचार अमृतसर का मुख्य पत्र है।

जैन साधु, साध्वी पंजाब में हिन्दी माध्यम से जगह-जगह उपदेश देकर धार्मिक व नैतिक जागृति उत्पन्न कर रहे हैं। श्री वर्धमान श्रमण जैन श्रमण संघ के प्रधानाचार्य श्री आत्माराम जी (जो आज कल लुधियाना में विराजमान हैं) ने जैन आगमों का हिन्दी में विद्वत्ता पूर्ण सम्पादन किया है। उपाध्याय श्री अमर मुनि जी ने बीसियों ग्रंथ आधुनिक हिन्दी गद्य-पद्य में लिखे हैं। उनकी भाषा में प्रवाह है, माधुर्य है आकर्षण है। श्री ज्ञानमुनि, श्री चन्दनमुनि आदि मुनिवरों ने भी धार्मिक व सामाजिक विषयों पर गद्य-पद्य में रचनाएं की हैं। जैन साधु साध्वी अपने संयम, चरित्र, सादगी व विद्वत्ता के लिये सर्वत्र विख्यात हैं। हिन्दी माध्यम से वे यथार्थ जन सेवा कर रहे हैं। स्व० श्री विजय वल्लभ सूरि जी ने गुजराती होते हुये भी हिन्दी में रचनाएँ कीं। तीन वर्ष पूर्व ८४ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हुआ।

स्वर्गीय डा० बनारसीदास जैन एम. ए. पी. एच. डी. वर्षों तक ओरियण्टल कालेज लाहौर के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं और उन्होंने पंजाब में हिन्दी साहित्य की शोध के लिये स्तुत्य प्रयास किये हैं। श्री अभयकुमार 'यौधेय' ने उपन्यास, काव्य व नाटकों की रचना की है। डा० इन्द्रचन्द्र एम. ए. पी. एच. डी. ने जैन कहानियों को आधुनिक पद्धति से लिखा है। जैन संस्कृति विषयक उनकी अन्य रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं। पंजाब में जैन धर्म के वक्ता, प्रचारक व लेखक हिन्दी भाषा द्वारा ही अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि पंजाब का जैन समाज हिन्दी भाषा की मूक परन्तु ठोस सेवा करने में तत्पर रहा है। इतिहास साक्षी है कि अनेक शताब्दियों से जैन धर्म मिशनरी धर्म नहीं रहा। शायद् इसी कारण जैन समाज अपनी साहित्य सेवा से भी शिक्षित जनता को यथोचित रूपेण परिचित नहीं करा सका। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों से मेरा निवेदन है कि वे अब तक अप्रकाशित और अज्ञात अनमोल साहित्य निधि को प्रकाश में लाने का सतत प्रयास करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरुण साहित्यकार सुरेश एम. ए. :

लेखक:—
श्री रामरत्न जी शर्मा, एम. ए. बी. टी.
गवर्नमेंट हाइ स्कूल लुधियाना।

सुरेश जी पंजाब प्रांत के एक प्रसिद्ध विद्वान और हिन्दी प्रेमी पं० अमरनाथ जी लुधियाना निवासी के सुपुत्र हैं। पं० अमरनाथ जी वैसे तो तहसील ऊना के निवासी हैं, परन्तु अब स्थाई रूप से यहीं निवास करते हैं। पं० अमरनाथ जी विश्व संस्कृत परिषद् पंजाब शाखा के प्रधान हैं और पर्वत प्रांतीय सेवक सभा पंजाब के भी प्रधान हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन पंजाब के भी आप उपप्रधान हैं। अत: यही कारण है कि सुरेश जी की साहित्यिक सूझ बहुत कुछ पैतृक है।

आपका जन्म छ: फरवरी १६३४ को पसरूर जिला स्यालकोट में हुआ। चार वर्ष की आयु में ही आपको माता के स्नेह से बंचित रहना पड़ा। मैट्रिक तक की शिक्षा आपने फिरोज़पुर में पाई। आरम्भ से ही आपकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि आप अपनी श्रेणी में प्रथम रहते थे। अत: मैट्रिक में आपने छात्रवृत्ति प्राप्त की। स्कूल में ही आपके मन में साहित्यिक भाव उभर रहे थे अत: आपने नवीं कक्षा में ही 'रोशनी' शीर्षक से एक एकांकी लिखा और उसके अभिनय में भी स्वयं भाग लिया। भाषणों और साहित्यिक रुचियों के कारण आपको स्कूल की ओर से स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। एम० ए० तक की महाविद्यालय की शिक्षा लुधियाना के राजकीय विद्यालय में प्राप्त की। इन छ: वर्षों में पंजाब की इस सर्व प्रमुख शिक्षण संस्था में साहित्यिक रुचियोंको अंकुरित होने और पनपने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इंटर-मीडियेट से ही अन्तर्विद्यालयीय भाषण प्रतियोगताओं में भाग लेना आरम्भ कर दिया और इस छात्रावधि में सोलह प्रतियोगताओं में तेरह व्यक्तिगत पुरस्कार और आठ चलविजयोपहार जीते। बी० ए० में ही कालेज मैगजीन के हिन्दी विभाग के सम्पादक के नाते कार्य किया। इस अवधि में प्रकाशित मेगजीन के चार अंकों में पृष्ठ संख्या चौबीस से बढ़ती-बढ़ती पचासी तक पहुँच गई। वार्षिक अंक में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्राध्यापक महता वसिष्ठ ने लिखा था:—

"हिन्दी विभाग की इस तीव्र प्रगति का श्रेय हमारे सम्पादकों और विशेष कर सुरेश को है, जो अपने आप को बाण भट्ट का वंशज बताता है और शायद यही कारण है कि उसका शब्द भण्डार ऐसा विशाल है और भाषा पर उसका ऐसा अधिकार है। मुझे विश्वास है कि सुरेश हिन्दी साहित्य का उज्ज्वल रत्न सिद्ध होगा।"

पंजाब हिन्दी सम्मेलन के १६५३ में संपन्न लुधियाना अधिवेशन पर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन की अध्यक्षता में कवि मार्तण्ड की उपाधि वितरण की गई। १६५४ ई० में गवर्नमैंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज के सोलह सौ छात्रों ने प्रथमबार एक हिन्दी छात्र को छात्र परिषद् का अध्यक्ष चुना। इस निर्वाचन से हिन्दी के विकास की दृष्टि से कालेज में एक क्रांति आई। यह क्रान्ति एक अधूरा सपना रह जाती यदि प्रिंसिपल विद्याचन्द्र और प्रो० महता वसिष्ठ सरीखे दूरदर्शी गुरूजनों और साम्प्रदायिकता से ऊपर उठे हुए सिख साथियों का सहयोग सुरेश के साथ न होता Dare to be true के स्थान पर सत्यमेव जयते आज कल रात के समय कालेज के तोरण पर न जगमगाता। इस बड़े कालेज की पत्रिका में हिन्दी विभाग सर्व प्रथम होता है। जहां पहले सर्वप्रथम अंग्रेजी विभाग होता था। हिन्दी और पंजाबी सभाओं को अब डेढ़ सौ की बजाए पांच सौ रु० वार्षिक सहायता मिलती है। हिन्दी और पंजाबी के सम्पादकों को अब दीक्षान्त समारोहों में सम्मानित किया जाता है। यह सब कार्य सुरेश की साहित्यिक रूचि का था। यह हिन्दी के लिए एक रचनात्मक कार्य है। बाधाओं और कष्टों को सहन करने वाले इस नूतन साहित्यकार ने अपने कालेज के दिनों के वैभव को, तिलांजलि देकर जब कि अन्य विद्यार्थी प्राय: ऐसी बातों में लीन रहते हैं, साहित्य की महान सेवा की। यह कार्य भारतेन्दु के आरम्भिक जीवन की याद कराता है।

एम० ए० करने के पश्चात आप राजकीय विद्यालय धर्मशाला में अस्थाई प्राध्यापक नियुक्त हुए और १९५६ में पब्लिक सर्विस कमीशन से साक्षात्कार के अनन्तर गवर्नमैंट, कालेज फरीदकोट में प्राध्यापन के लिए नियुक्त हुए। इन स्थानों पर भी हिन्दी साहित्य की गोष्ठियां का आयोजन करते रहे और एक रचनात्मक कार्यकर्ता के रूप में हिन्दी की महनीय सेवा करते रहे। जीवन के संघर्ष में भी कवि, हृदय के भावों की अभिव्यक्ति से कैसे वंचित रह सकता है। धर्मशाला प्रकृति की गोद में पहुँच कर इस तरुण कवि का हृदय प्रकृति से आलिंगित होने को द्रवित हो गया। वहां पहुँचते ही स्वछन्द छन्द में कविता फूट पड़ी।

कागज पर धान के इन खेतों के, लिखा हुआ है तरु लिपि में,
वन राजी का वह गीत, वही है! वही है! इस शैलबाला का उर्मिल उरपुर,
जहां बहते झरनों में हैं मुखर, इस गीत का संगीत,
बिताते हुए रात, इस घाटी के घर में,
इक थके बटोही सा बादल, सुनता है जब गीत,
लेट कर किसी झरने के किनारे, मिलते हैं उससे जब,
लहरों की इस शय्या पर करते शयन।

❀ ❀ ❀

तब पलक में मुंद जाती है, उसकी पलक,
निर्धूम से जलते हैं, जुगनुओं के कुछ दीप।
दबे पांव चलता है मलयानिल, कि कहीं लयतान में इस गीत की,
ले आए न व्यवधान, इसके पांव की आहट॥

प्रकृति का प्रेम कवि के हृदय से निर्मल जल की धारा की भांति बह निकलता है। जैसे:—

बैठती है कभी विधु वदना चांदनी, पहिन निज दूधिया दुकूल,
जब पास इस शैल बाला के औ, मनाती है शुक्ल का त्योहार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब निर्झर सा निर्मल उर, इस शैल बाला का ,
बन जाता है दर्पण, झांक-झांक कर जिस में निज मुख ,
चांदनी करती मुसकानों का तर्पण, और निखर कर ।

कवि की उड़ान और देखिए—

रूप प्रभा में विधु बदना की, शैल बाला करती उसका आलिंगन ,
बजाता मलयानिल तब, बांसों की बीन,
करती दोनों सखियां नर्तन, अनजाने निर्झर के तब गान ,
छू देते हैं, नर्तन की लय तान ।

❀ ❀ ❀

इन सखियों से चंचल उच्छृंखल, इन जैसे ही धीर ।
हां सच गंभीर, मेरे ओ प्यार,
छू देती हैं उर को, जब तेरी सुधियां ,
हो जाता तब बरबस, मैं हाय अधीर ,
पर फिर भी विधुवदने, चंदा की शीतल किरणों से चमक रही ।

कवि का हृदय इतना कोमल है कि होटल पर और घरों में काम करने वाले छोटे-छोटे बालकों को देख कर द्रवित हो जाता है। यह इस बात का परिणाम है कि आपका लगाव पहाड़ी लोगों की ओर पैतृक है। सीधे शब्दों में वर्णन करते हैं।

फिर भी मुझे भूल नहीं पाती, जीवन की वह तसवीर,
जो है चांद से इस देश का कलंक, वही भोली सी मुसकान,
निरीह वह मुसकान, सिर पर वह टोपी पहाड़ी ,
वैसा ही मैला, वह घोर कुचैला ,
वह चिथड़ा कुरता, वह हाय लंगोट ,
बस यही पहन, करता रहता है साफ़ ,
होटल पर बरतन, वे जूठे बरतन ,
वह नन्हा सा बालक, उसका देश है सुन्दर ,
तन मैला मन सुन्दर मन्दिर, जीवन ने उसको दे डाला मैले पन का अभिशाप ,
मेरे उर में बस इतनी ही है पीर, कई बार जो इस उर को देती है चीर ,
फिर भी दे जाती है मुझ को वरदान, उस मुंह के ओठों पर खिलती ,
भोली भाली मुसकान, जिस में है छिपा हुआ ;
इस धवल धार का गीत, जहां बहते झरनों में मुखर, इस गीत का संगीत ।

कविता में नए प्रयोग सुरेश की पैनी सूझ का परिणाम है। आपकी दृष्टि बहुत स्वच्छन्दता में बिहार करती है। अभी अंग्रेजी सॉनेट को चतुर्दशी नाम से लिखना आरम्भ किया हुआ है।

उर्दू रूबाई की संक्षिप्त भाव सम्बद्धता को लेकर 'षट्पदी' का प्रयोग किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दगी की बात कह भी दूँ किसे मैं, समय किसके पास सुनने के लिए है।
बात जिससे की उसी को देखता हूं, बहुत उसके पास कहने के लिए है।
समय का करघा कि उस पर ज़िन्दगी का, सूत सब के पास बुनने के लिए है ॥

सुरेश जी ने अंग्रेजी में भी कुछ कविताएं रची हैं एक कविता अमेरिका के प्रमुख साप्ताहिक में उनके एक मित्र ने मुद्रित करवा दी है।

❀ ❀ ❀

आपने कांगड़ा के पहाड़ी गीतों का सुन्दर संकलन किया है। जैसे:—

जली जायो पहाड़ियों दा देस।
अम्मां जी मैं नहीं बसना ॥

अन्य:— डुग्घी डुग्घी नदियां सैली सैली धारा।
बांके बांके गब्भरू ते बांकियां नारां ॥

व्यवहार क्षेत्र में भी आप इतनी छोटी आयु में ही बहुत बारीक दृष्टि रखते हैं। हँस लेना कविता में सरल शब्दों में गम्भीर भाव प्रकट होते हैं।

रो लेना दुख के आंसू, हंस लेना सुख की सांसों में।
है ऐसी एक कहानी बस, जीवन का वरदान यहां ॥

'आंसू कभी न रोएं' शीर्षक कविता में आपके भाव कितने हृदय स्पर्शी हैं।

स्नेह डालकर अपने उर का, मानवता के मन्दिर में कुछ।
दीप जलाए और संजोए हैं, मैंने आंसू कभी न रोए हैं ॥

कविता क्षेत्र के अतिरिक्त आपकी लेखनी गद्य की ओर भी गई है। प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक लेख कई रसिकों को आकर्षित कर रहे है। आपने कहानी क्षेत्र में भी पदार्पण, करने का प्रयत्न किया है आपकी कई कृतियां विश्वबन्धु और सरस्वती में छप कर पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बन रही हैं।

गद्य में सांस्कृतिक आधार पर गीतों भरी कहानी और निबन्ध रचना पर आपका विशेष रुझान है।

इसमें संशय नहीं कि प्रत्येक साहित्यकार में कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य होती है और मैं समझता हूँ सुरेश जी के बारे में कई लोगों के अपने अपने दृष्टिकोण होंगे। परन्तु एक अंकुरित होती हुई कोंपल के नाते, मैं यह जोरदार शब्दों में कह सकता हूँ कि उनकी त्रुटियां त्रुटियां नहीं परन्तु गुण ही समझे जाने चाहिए। मुझे जब भी कभी सुरेश जी को मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ है मैंने उन्हें बहुत मधुर हिन्दी में वार्तालाप करते पाया। आप हिन्दी भाषा में ही वार्तालाप करते हैं इससे भी समझता हूँ कि आप हिन्दी साहित्य की एक महान् सेवा कर रहे हैं। जितने भी सज्जन आपसे वार्तालाप करते होंगे स्वाभाविक तौर पर हिन्दी में ही वार्तालाप करते होंगे तो यह एक हिन्दी के लिए रचनात्मक कार्य है। सारांश यह है कि सुरेश हिन्दी के लिये उत्पन्न हुए हैं और समय आएगा जब कि यह कोंपल बड़ा वृक्ष बनकर हिन्दी साहित्य प्रेमियों को मीठे मीठे फल खिलाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब के सन्त कवि अमीचन्द जी :

[स्वर्गीय पं० चमूपति जी एम. ए. हिन्दी, उर्दू के सर्वमान्य कवि थे। उन्होंने स्व० अमीचन्द की भजन, कविताओं का संग्रह 'अमीरस सार' नाम से पुस्तकाकार में छापा था। यह लेख उसमें से उद्धृत किया गया है]। —सम्पादक

अमीचन्द का जन्म स्थान हरणपुर था, जो जेहलम जिले की पिंडदादनखां तहसील में एक छोटा सा ग्राम है। इन का वंश "बाली" था—यह मोहयाल ब्राह्मणों के अन्तर्गत एक विख्यात उपजाति है।

अमीचन्द को गायन का अनुराग बाल्यकाल से था। कदाचित् इसी कारण से इन का संग मीरासियों और वेश्याओं से हो गया, यह गानविद्या पर दैव का अत्याचार है कि यह विद्या दुराचारियों के हाथ जा पड़ी है। अमीचन्द गान रस का रसिया! यही रस उसे दुराचारियों में ले गया और उन में ऐसा फंसाया कि वहीं तन्मय कर दिया। मांस खाता, मद पीता, और दिन रात दुर्व्यसनियों की कुसंगति में रहता।

अपने समय के मुन्शियों की भांति अमीचन्द उर्दू पढ़ा था। जेहलम तहसील में वासिल बाकी नवीस हो गया। बीस बाईस वर्ष की निरन्तर कर्मचारिता के पश्चात् चुंगी का दारोगा बना और स्थानापन्न नाइब तहसीलदार भी नियत किया जाने लगा। एक बार एक सेठ के गुमाश्ते के साथ मिल मिला कर वस्तुओं का कृत्रिम भाव लिख दिया, जिस से उस गुमाश्ते को सरकार की ओर से उचित से बहुत अधिक रुपया मिलने की संभावना थी। भेद खुल जाने से इन पर और तहसीलदार पर अभियोग चला। तहसीलदार तो बन्दीगृह भेजा गया और इन्हें त्याग पत्र देने को बाधित किया गया। गुमाश्ते ने ४०) रु० मासिक के स्थान में ६०) रु० अपने सेठ के हां से दिलवा दिये और उधर नौकर करा दिया। इस नौकरी में अमीचन्द कलकत्ते आदि अनेक स्थानों में गया और इस प्रकार लगभग ३ वर्ष जेहलम से बाहर रहा।

जब लौटा तो अब वह अमीचन्द पुराना अमीचन्द न था। अब आर्यसमाज का सभासद हो चुका था और पुराने दुराचार सब छूट गये थे। अब तो न मांस था, न मद्यपान था, न दुराचारियों का संग था।

कहते हैं एक डाक्टर महाशय अमीचन्द को गुजरात लेगए। वहां उसे ऋषि दयानन्द के दर्शन हुए। ऋषि के सामने अमीचन्द ने भजन गाया। ऋषि बोल उठे, 'है तो हीरा परन्तु कीचड़ में पड़ा है'। इतने ही में आंख खुल गई और जो दुर्व्यसनी अमीचन्द था, वहीं रागविद्या व्यसनी अमीचन्द सचमुच "अमीचन्द्र" हो गया और जहां तहां "अमी रस" की वृष्टि करने लगा। कुछ हो ऋषि की अपनी-अथवा समाज द्वारा परंपरागत-कृपा से अमीचन्द की काया पलट गई, और जो अनुराग उसे पहले विषय भोग में था वह अब ईश्वर भक्ति में हो गया।

पहले गजलें लिखते थे, अब भजन लिखने लगे। गवैये थे ही। स्वर मनोहर पाया था। जिन्होंने सुना है कहते हैं, कोकिल की सी ध्वनि थी। आप ही भजन बनाते और आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गाते। आर्यसमाज के सत्संगों और नगर कीर्तनों की शोभा का एक भाग अमीचन्द के भजन होते। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर, जो प्रान्त के समाजों का केन्द्र-उत्सव होता था, प्रतिवर्ष जाते और अपने गान की धूम मचा आते।

जेहलम में अमीचन्द की ससुराल थी। अब वहीं डेरा लगा लिया। कुछ भूमि भी ले ली। दस वर्ष तक निरन्तर आर्य समाज के अधिकारियों में रहे। अपनी आयु के अन्तिम कई वर्ष उसी समाज के प्रधान भी रहे।

२९ जुलाई सन् १८९३ ई० को अमीचन्द का देहान्त हुआ। इससे पूर्व स्वीकार पत्र लिख चुके थे, जिससे उनकी सारी दाय पहले उनकी धर्मपत्नी के, और उस देवी की भी मृत्यु के पश्चात् डी० ए० वी० कालेज के अधिकार में चली जानी थी। कहते हैं कि इस स्वीकार पत्र के अनुसार कार्य नहीं किया गया।

अमीचन्द के जीवन काल में अभी आर्यसमाज के दो भाग न हुए थे और कालेज सारे समाज की साँझी संस्था थी। अतः कालेज को दाय दान दे देने से उनका किसी पार्टी विशेष से सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

अमीचन्द के भजन—अमीचन्द के भजन भक्ति का भण्डार है। शब्द-योजना सुन्दर और रसीली है। आश्चर्य होता है कि उस समय बिना संस्कृत ज्ञान के इन्हें ऐसी सरस आर्य भाषा कैसे आई।

अमीचन्द की शब्द-योजना कविवर सूरदास की सी है, यद्यपि भाषा पर वह अधिकार नहीं। छन्दो भंग स्थान स्थान पर हुआ है। इस में अमीचन्द कबीर और नानक के नाम से कविता करने वाले कवियों से मिलते जुलते हैं। उर्दू कविता में जो दीर्घ स्वरों को ह्रस्व और ह्रस्वों को दीर्घ कर लेने की खुली आज्ञा है, अमीचन्द ने उस आज्ञा का पूरा उपयोग आर्य भाषा में किया है। तो भी कबीर की भान्ति इन्हें कवि मानना ही होगा। भला जिस की उक्ति हो—

गूंगेकी रसनाके सदृश अमीचँद।
कैसे बताए कि क्या रस उड़ाया॥

उसे कैसे कवि न कहें? इस पद्य के पूर्वार्ध में छन्दोभंग है परन्तु कविता में तो भाव ही प्रधान रहता है। छन्दोभंग को मिटाने के लिये हमने इस पद्य की रचना को यों बदला है:—

रसरक्त ज्यों मुग्ध गूँगा अमीचँद।
कैसे बताए कि क्या रस उड़ाया॥

ऐसा ही संशोधन हमने और भजनों का भी किया है। इस संग्रह में केवल वही भजन लिये गए हैं जो थोड़े से परिवर्तन से—या उस के बिना ही—छन्दोदोष से रहित हो सकते थे।

कहीं-कहीं अमीचन्द ने आर्यभाषा के अज्ञान के कारण आर्य भाषा के शब्दों के स्थान में पंजाबी शब्द जड़े हैं। जैसे 'विछड़ना' क्रिया से 'विछोड़ा' पद बना लिया है। आर्य भाषा में यह शब्द 'विछोह' है। हमने इसे 'विछोहा' कर दिया है। भजन में तुकान्त 'रा' होने से अनुप्रास की हानि हो गई है, जैसे 'मोरा' को 'मेरा' करने से भी हुई है, परन्तु यह अनुप्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्खलन भाषा के बड़े-बड़े कवियों में भी पाया जाता है। और हमारे लिये इस से छुटकारे का रास्ता ही न था। रसिक गण क्षमा करें।

हमने अमीचन्द के भावों की पूरी रक्षा की है और जहां तक संभव था, भाषा भी वही रहने दी है। न व्यर्थ बनाने और न बिगाड़ने की चेष्टा की है। कविता के मर्मज्ञों को संशोधित भजनों में अमीचन्द की अपनी ही ध्वनि सुनाई देगी–सपादक या संशोधक की नहीं।

हम यह भी जानते हैं कि जो भजन एक वार एक रूप में जिह्वा पर चढ़ जाए, उस में अभ्यास मात्र से ही एक रस अनुभव होने लगता है। परिवर्तित रूप में वह आनन्द भान नहीं होता। परन्तु नए रूप के थोड़े से अभ्यास से यह भ्रान्ति मिट जाती है। हमने संशोधित भजनों में 'अमी रस' वैसे का वैसा सुरक्षित रखने का यत्न किया है।

अमीचन्द के भजन आर्य समाज की तो स्थिर संपत्ति हैं ही। हमारी इच्छा थी कि यह आर्य भाषा के शुद्ध संगीत साहित्य का भी स्थिर भाग हों। यह यत्न इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया गया है।

अमीचन्द में पश्चात्ताप और आत्मापमान की मात्रा अधिक है। यही बात नानक, कबीर, तुलसी, सूर, सब भक्तों में पाई जाती है। यही नहीं, फ्रांसिस आदि यूरोपियन भक्त भी अपने आप को सदैव पाप-ताप का पुतला मानते थे।

(१)

जैजैवन्दी—ताल झप।

नमः सृष्टि कर्ता नमस्ते नियन्ता।
नमः कष्ट हर्ता नमः पाप नाशी॥
नमो दुःख भंजन नमस्ते निरंजन।
नमः सच्चिदानन्द निर्मल प्रकाशी॥
अविद्या करो नष्ट सारे जगत् की।
विमल ज्ञान फैले, कटे भ्रान्ति फाँसी॥
अमीचन्द की बात स्वीकार कीजे।
करे प्रार्थना दीन भारत निवासी॥

(२)

रागिणी आसा—ताल रूपक।

सखियो! प्राणनाथ से कहियो,
जो देखी मम चित-अभिलाषा।
निशिदिन दर्शन को तरसूँ मैं,
विना वारि ज्यों चातक प्यासा॥
विना कान्त सब लगता फीका,
भूषण छादन मलमल खासा।
क्षमा करो अपराध प्रभो! मम,
दो चरणों में अपने वासा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य सुहागिन अति बड़ भागिन,
करे पूर्ण जिसकी प्रभु आशा ॥

(३)

भैरवी—ताल रूपक

नैया कैसे उतरे पार ? ॥ टेक ॥
वार न दीखे पार न सूझे,
आन पड़ी मँझधार ॥
बिजली चमके बादल गरजे,
उलटी चले बयार ॥
गहरी नदिया नाव पुरानी,
खेवट अति मतवार ॥
द्रुपदसुता वत् सुने न कोई,
मेरी कूक पुकार ॥
वेगवती दुस्तर जलधार,
उठी तरंग अपार ॥
जिन हाथों से सब जग थामा,
सो प्रभु ! हाथ पसार ॥
अमीचन्द की तारो नौका,
डूब रही मँझधार ॥

(४)

रागिणी देशकार—ताल झप

तुम हो प्रभो ! चांद, मैं हूं चकोरा ।
तुम हो कमल फूल, मैं भक्त भँवरा ॥
हूं ज्योति का, मैं तुम्हारी पतंगा ।
तुम शान्ति-घन, मैं विकल वन्य मोरा ॥
पानी विना ज्यों न हो मीन को कल ।
तड़फाय यों नाथ ! तेरा विछोहा ॥
हूँ बूंद जल हेत प्यासा पपीहा ।
कर स्वाति-वर्षा, हरो ताप मेरा ॥

(५)

रागिणी सिंध काफ़ी—ताल धमार

सखि ! मैं प्रिय सँग खेलूं फाग ॥टेक॥
जिसकी खिली सकल फुलवाड़ी ।
वन उपवन औ' बाग ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख देख प्रभु—चरित मनोहर।
उपजे मन अनुराग॥
जिसके मंदिर ज्योत जगावें।
चन्द्र सूर्य औ' आग॥
जिस के बजते अनहत बाजे।
भाँत भाँत के राग॥
अमीचन्द खेलो वह होली।
जिस से हो बड़ भाग॥

(६)

रागिणी सोहनी—ताल रूपक

त्राहि त्राहि रखले करुणाकर!
त्राहि त्राहि रखले ॥टेक॥
सुत दारा सब सुख के साथी।
भागें विपद पड़े॥
माला लकड़ी ठाकुर पत्थर।
कौन सहाय करे॥
भिक्षा मांगूं केवल तुम से।
तुम बिन और न दे॥
कष्ट क्लेश नहिं उसे सताए।
जो तव नाम जपे॥
दास जानकर करिए पालन।
हैं तव भले बुरे॥
अमीचन्द विनती चरणों में।
कर जुग जोड़ करे॥

(७)

रागिणी मध्यमात सारंग—ताल रूपक

मैं उन की छबि की प्यासी॥टेक॥
जिनका ऋषि मुनि ध्यान धरें नित,
योगी योगाभ्यासी॥
जिनको कहते अजर अशोकी।
आश्रय जिनके सदा त्रिलोकी।
जन्म मरण से रहित सदा शिव।
काल-मुक्त अविनाशी॥
आविष्कर्ता अमर वेद का।
लेश न उस में भेद छेद का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचल अमूर्त अलौकिक अनुपम।
परिभू विश्व निवासी॥
अतुल राज्य है जिसका जग पर।
सकल सृष्टि है जिस के अन्तर।
अमीचन्द जिस से होते हैं॥
रवि शशि अग्नि प्रकाशी॥

(८)

राग भैरव—ताल गात

क्यों पड़ी है स्वप्न में? लख भोर निद्रा त्याग री।
सास ननदें हैं जगाती जागरी तू जाग री॥
स्नान कर उठ धार अंबर कर सिंगार लगा सुगन्ध।
प्रभु रीझें जिस भाँति से उस भाँति कर अनुराग री॥
कर सफल यौवन न खो, दुर्लभ समय आलस्य में।
फिर अमीरस वृष्टि कब हो चार दिन का फाग री॥

(९)

रागिणी जोगिया, धीमा तीन ताल

जो हरि गीत प्रीति से गाए।
तिस के शोक निकट नहिं आए॥
सुधासरस तव चरित मनोहर।
मन का ताप बुझाए॥
हे प्रभु हम अत्यन्त दुखी हो।
तव चरणों में आए॥
मंगल दाता, प्रेम प्रदाता।
तू ने नाम धराए॥
मांग रहे द्वारे पर याचक।
फिर क्यों देर लगाए॥
विषयों से उपराम रहे नित।
भक्ति हृदय में छाए॥
वेद शास्त्र का पाठ अमीचँद।
संशय सकल मिटाए॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक खोज :—

दातारपुर के वीर क्षत्रिय :

लेखक :-
श्री टिक्का उदयभानुचन्द्र जी, दातारपुर
बाबा परसराम हाउस आर्य नगर, होशियारपुर

राज्यवंश दातारपुर बहुत पुराना ऐतिहासिक क्षत्रियबंश है जिसका इतिहास परम्परापूर्ण वीरत्व, निस्वार्थ देशप्रेम तथा अपने देश व जाति के ऊपर बलिदानों की ऐसी घटनाओं से भरी पड़ी है; जिन पर जितना गौरव किया जाए कम है। इस वंश की उत्पत्ति कांगड़ा जालन्धर पीठ के विख्यात क्षत्रिय वंश त्रिगर्त से है। इस वंश के राजा सुशर्माचन्द जो वंश के उत्तराधिकारियों में २३४ नं० पर थे, को दुर्योधन की बहिन ब्याही थी तथा सुशर्माचन्द ने कौरव पक्ष से युद्ध किया था; इसका विवरण महाभारत में आता है। इस वंश की कालान्तर में पांच शाखाएँ बन गई जिनके नाम यह हैं—(१) कटोच (२) गुलेर के गुलेरिये डाडा (३) सीवा के सिवेए (४) अम्ब जस्वा के जस्वाल तथा (५) दातारपुर के डडवहाल राजपूत वंशों से ख्यात हुये। मुसलमानों के आक्रमण के समय इस त्रिगर्त वंश का राज्य मुलतान तक फैला हुआ था। एक पुरानी हिस्टिरी राजा बलदेव सिंह जी हरिपुर गुलेर के पास विद्यमान है, जिसमें इन वंशों के राजाओं की मुसलमान सम्राटों से सन्धि विग्रह का काफी विवरण है। त्रिगत वंश के ४२६ नं० के उत्तराधिकारी राजा हरिश्चन्द के समय से इस वंश का नाम बदल कर गुलेरिया कटोच बना। गुलेर से डाडा सीवा वा दातारपुर के वंश चालू हुये। राजा हरिश्चन्द से पांचवी पुश्त पर राजा ज्ञानचन्द गुलेर का राजा था। उसका छोटा भाई फीमीचन्द अपने भाई से जुदा होकर डाडा सीवा की रियासत का वानी बना। राजा फीमीचन्द से आठवीं पुश्त पर राजा नषोद चन्द हुये उनके भाई मषोदचन्द ने डढवाल वंश की नीव डाली तथा राजधानी अपनी तलवाडा बनाई। डढवाल खानदान ने अपने वीरत्व से होश्यारपुर की शिवालक की पहाड़ियों तथा दरिया व्यास के आर पार मुकेरियां गुरदासपुर में अपना अधिकार जमाए रखा। राजा मषोदचन्द का उत्तराधिकारी चतुर्थ नम्बर पर राजा गणेशचन्द आता है। इस राजा से अकबर सम्राट द्वारा बैरमखां की सलाह पर मित्रता जोड़ने का विवरण अकबर नामा में आता है। उस समय भी दातारपुर वंश का अधिकार बटाला गुरदासपुर तक था। अकबर कलानौर के किला को सर करने आया था। पीछे से हुमायूँ की मौत तथा साथ ही पठानों के एक बड़े विद्रोह की सूचना पहुँची। बादशाही फौजें आगरा में थीं। विद्रोहियों ने देहली पर कब्जा कर आगरा के रास्ते को काट दिया था। विपक्षी पानीपत के मैदान से होते हुये अकबर को मारने के लिये बढ़ रहे थे। सूचना मिलने पर बैरमखां ने राजा दातारपुर की शरण ग्रहण की। राजा दातारपुर ने एक पौलिटीकल एग्रीमैंट, मुगल बादशाहों वा कांगड़ा शिवालक के राजाओं से तय कराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी रू से एक दूसरे के इलाकों में पूर्ण स्वतन्त्रता व कभी भी हस्ताक्षेप न करने का मुहादा तय पाया और इस मुहादा को मुगल बादशाहों ने, एक के बाद दूसरों ने तसदीक की तथा अमली जामा पहनाया। इस मुहादा के कारण ही मुगल जमाने में इस प्रान्त में सुख शान्ति का राज्य रहा। कांगड़ा हिन्दू सभ्यता की रूढ़ियों की नितान्त रूप से पालना करने में जुटा रहा। कांगड़ा में अंग्रेज़ों द्वारा भी हजारों यत्न करने पर भी केवलमात्र चार प्रतिशत जनता इन पहाड़ों में मुसलमान बन सकी थी। काँगड़ा की चित्रकला मुगल बादशाहों के ज़माने में विकसित या तरक्की पाकर अपना स्वतन्त्र सुन्दर रूप धारण कर चुकी थी।

राजवंश दातारपुर की तीसरी पीढ़ी में राजा दाताचन्द हुये। उन्होंने दातारपुर, सातवीं पीढ़ी में राजा पृथ्वीचन्द हुये। जिन्होंने पृथ्वीपुर बसाया। राजा गणेशचन्द के ज़माने की एक घटना का उल्लेख अकबर नामा में भी मिलता है। जब मुगल सम्राट् अकबर को उसके कुछ मुँहलगे अमीरों ने अपने पुराने तजर्बाकार जरनैल बैरमखां से बदजन कर दिया तो बैरमखां अपना सिर छुपाता भागता एक राजा से दूसरे राजा के पास शरण लेने के लिये गया। बादशाही फौजें उसको गिरफ्तार करने के लिये पीछा कर रही थीं। हर जगह से मदद या शरण पाने से हताश होकर वह पुराने मित्र राजा दातारपुर के पास पहुंचा तो राजा ने शरण दी। बादशाही फौजों ने राजा गणेशचन्द पर चढ़ाई कर दी। मगर राजा गणेशचन्द ने बड़ी चालाकी से बैरमखां के दुश्मन जरनेल को मरवा कर उसका सिर बैरमखां को पेश कर दिया, जिस पर बैरमखां ने अपने मनोरथ को पाकर लड़ाई बन्द करने तथा खुद को अकबर के हवाले करने की मनशा जाहिर की। क्योंकि बादशाह अकबर का बैरमखां से जिसने उसको स्वयं पुत्रों की तरह पाला-पोसा था, कोई वैमनस्य न था। लड़ाई बन्द होने पर जब अकबर और बैरमखां मिले तो पुरानी यादें ताज़ी हो गईं। पिता पुत्र की तरह मिलन हुआ। बैरमखां यहां से ही हज को चला गया। अतः इस जगह का नाम हाजीपुर रखा जो दातारपुर से चार मील के फासले पर एक छोटा सा कसबा है। दातारपुर राजाओं की बारहवीं पीढ़ी पर राजा गोविन्दचन्द हुये यह महाराजा संसारचन्द कटोच कांगड़े वाले का समकालीन था। इसके ज़माने में पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की छत्रछाया में जन्म ले रहा था। राजा गोविन्दचन्द ने दातारपुर में एक किला के रूप में बाबा लालदयाल जी, जो इस समय के बड़े प्रसिद्ध योगी थे; और जिनकी योगविद्या से प्रभावित हो मुगल शाह जहांगीर ने ध्यानपुर में एक बड़ी गद्दी कायम कराई थी; के नाम पर बड़ा मन्दिर बनवाया, जो आज तक कायम है। मन्दिर के नाम पर १८०० एकड़ ज़मीन लगा दी गई। राजा गोबिन्दचन्द के बाद उनके पुत्र राजा जगतचन्द हुए। उनको महाराजा रणजीतसिंह ने अपनी पेशावर की मुहिम पर जरनैल बना कर भेजना चाहा मगर उन्होंने इस लिये कि एक क्षत्रिय जाट के आगे सिर नहीं झुका सकता; जाने से इन्कार कर दिया।

महाराजा रणजीतसिंह ने इनका बहुत सा मैदानी इलाका छीन अपने रिश्तेदारों में बांट दिया। ताहम राजा दातारपुर का अधिकार कोह शिवालक की पहाड़ियों तथा उसके निकट-वर्ती स्थानों पर रहा। १८४६ ई. में जब सिक्खों को लड़ाई में हरा कर अंग्रेज़ पंजाब पर अधिकार जमाने लगे; तो राजा दातारपुर ने एक बड़ी साजिश विदेशी आधिपत्य का विरोध करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये बनाई और अंग्रेज के आगे न झुकने पर मौत को स्वीकार किया। १८४८ ई० में राजा दातारपुर, राजा कांगड़ा, राजा जस्वां, वेदी ऊना ने मिलकर विरोधी आन्दोलन को संगठित किया। इस आन्दोलन का सम्बन्ध मूलराज की मुलतान वाली बगावत से जोड़ा। जिसका ध्येय अंग्रेज के आधिपत्य से पंजाब को छुड़ाना था। लड़ाइयां लड़ी गईं। जिसका विस्तारपूर्वक हाल भारत सरकार के सरकारी कागज़ों की फाइलों में मिलेगा। थोड़ा सा हाल कांगड़ा होशियारपुर गज़ट में भी इन वंशों का ब्रिटिश दृष्टिकोण से अंकित है। परिणामतः राजा दातारपुर, जस्वां, कांगड़ा वेदी, ऊना को बन्दी बना लिया गया। उनके सदियों से चले आये अधिकारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। राजा दातारपुर का क़िला वाक्यादंगोह, राजा जस्वां के किला राजपुरा वा राजा कांगड़ा के किला महल मोरियाँ को तोपों से उड़ा दिया गया। राजा दातारपुर जो इस तहरीक में शिरोमणि थे; तथा दूसरे राजाओं के समेत सारे परिवार को, उनके चुने हुये साथियों को पकड़ कर राजनैतिक बन्दी बना कर अलमोड़ा नैनीताल जेल में रखा गया। राजा जस्वां रणसिंह ने काफ़ी अंग्रेज़ों को मौत के घाट उतारा था। उनको आगरा में, दस सेर पुख्ता लोहे का गोला उनके गले में बांध कर रखा गया। राजा देवीचन्द दातारपुर वाले तथा राजा परमोधचन्द कांगड़े वाले नैनीताल जेल में रखे गये। गवर्नमैंट आफ़ इण्डिया लैटर नं० ५०० तिथि १८-७-१८८६ ई० में सरजेम्सलायल ने इन वंशजों के बारे में भारतीय सरकार की नीति की घोषणा इन शब्दों में की:—

"पंजाब की जनता को यह दिखाने के लिये ब्रिटिश सरकार राजद्रोहियों को सिक्ख राज का विद्रोह करने वालों की अपेक्षा ज्यादा सख्त सजा मिलती है इन तीन राजाओं की जागीरें जब्त कर उन्हें पंजाब से बाहर निकाल दिया गया है।"

राजा दातारपुर के वृद्ध पिता जगतचन्द जी को बनारस में नज़रबन्द रखा गया। उनका देहान्त वहाँ ही हुआ। जिन दिनों १८५७ ई० की आज़ादी की लड़ाई शुरू हुई। दातारपुर के वंशज सरदार चौकी पटयारी नजद हरियाना (जो रियासत दातारपुर की सीमा पर थी) ने बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। सरदार को कड़ी सजा दी गई। फांसी की सजा दी गई और साथ ही उसकी सारी जायदाद ज़ब्त की गई। इस तरह से अंग्रेज ने इन वंशों के देश की आज़ादी की खातिर लड़ने वालों को खतम करने में पूरी शक्ति लगा दी। इन राजाओं के वंशजों को भी, जो शमा आजादी पर कुरबानी के मुजस्समा थे। हर प्रकार से हर तरह की कानूनी पेशबन्दियों से जकड़ दिया गया। जंगलात, जिस पर सदियों से इन शूर वीरों का कब्जा था, छीन लिये गये। छोटे तबका के लोगों में नीच भावों को प्रलोभनों द्वारा, कई एक को जेलदारी सफेद पोशी जागीरदारी में फँसा कर लोकप्रिय नेताओं के अनुयाइयों में इन्तशार पैदा किया गया। दातारपुर के ज़ैलदार के वंशजों को अभी तक भी एक जागीर गवर्नमैंट से इस बारे में मिलती है तथा एक प्रमाण पत्र विद्यमान है जिसमें लिखा है—

"चौ० जस्सासिंह ने राजा दातारपुर को गिरफ़्तार करने में ब्रिटिश गवर्नमैंट की सहायता की है।"

समय का फेर है कि ऐसे कई देशद्रोही परिवार; जिन्होंने स्वतन्त्रता पर बलिदान होने वाले वंशजों को शूली पर आरोपित किया गया था, आज भी लाखों रुपया अपनी स्वतन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार से किसी न किसी रूप में इनाम के तौर पर मिल रहा है जब कि शहीदों के बचे खुचे वंशज गरीबी वा तंगदस्ती का जीवन काटने पर मजबूर हैं। मजबूर इस लिये कि अंग्रेज के बनाए हुये सज़ा देने वाले कानून रूपी नागपाश अभी तक भी अपनी जकड़ बनाए बैठे हैं।

राजा दातारपुर का साथी राजा कांगड़ा नि:सन्तान मर गया। राजा जस्वां रणसिंह को महाराजा कश्मीर ने रिश्तादारी होने के कारण गवर्नमैंट आफ़ इण्डिया से अपना असर रसूख वर्तकर १८७७ ई० में उसके मकबूजात अम्ब में वापस दिला दिए और अपनी जमानत पर राजा रणसिंह वा उसके लड़के रघुनाथ सिंह को छुड़ा लिया। जम्मू ले गये। राजा दातारपुर को; राजा मण्डी जो इसके रिश्तेदार थे, की जमानत पर मण्डी में रिहाइश रखने की शर्त पर छोड़ दिया गया। रियासत मण्डी के राजा देवीचन्द के दो सुपुत्र थे। एक राजा सूर्मचन्द दूसरे रघुवीरचन्द। सूर्मचन्द महाराजा जम्मू के पास फौज में मुलाजम हुये और जरनैली ओहदा से ३६ साल की शूरवीरता के कर्तव्य पालन से पूर्ण फौजी ड्यूटी देकर रिटायर हुये। इनकी पलटन ने गिलगत व हुनजा नगर के युद्धों में बड़ी सफलता प्राप्त की। उस सफलता में जरनैल सूर्मचन्द की निजी शूर वीरता का बड़ा दखल है। अंग्रेज सेना जो महाराजा जम्मू की सहायता के लिये इन युद्धों में गई थी; इन लड़ाइयों में बुरी तरह हार चुकी थी। अंग्रेजी कमाण्डर ने जब अपने सेना सम्बन्धी कागज़ात में जम्मू के जरनैल की बहादुरी के गुणानुवाद लिखे तो उनसे प्रभावित होकर क्वीन विक्टोरिया ने ऐसे बहादुर जरनैल से मिलने की मनशा प्रकट की। मगर जरनैल सूर्मचन्द जी ने विक्टोरिया के समीप जाने से इस लिये इन्कार कर दिया कि वह बिदेशी मल्का के पास अपना सिर झुका कर अपने देश व वंश को बट्टा नहीं लगाना चाहते थे। कहा जाता है कि सूर्मचन्द जी का शरीर बड़ा बलिष्ठ और भारी था। शेर का शिकार वह ढाल तलवार से अकेले करते थे। ज़िरहबक़्तर यानी लोहे की वरदी पहनने वाले वह एक ही थे। उन्होंने गिलगित की लड़ाई को पैदल द्वन्द्व युद्ध कर के जीता था। उनका चपरासी जिस को मरे कोई १५ साल हुये बताता था कि उस लड़ाई से आन कर उनका हाथ, जिससे तलवार चलाई गई तीन-चार दिन मालिश करने पर अपनी असल हालत में आया था। उस मार में दुश्मन की सारी नफरी १२०० सिपाहियों की थी जो तलवार के घाट उतारी गई। और आधे से ज्यादा जरनैल साहिब के तलवार के शिकार हुये। मल्का के चाँदी रूपया के निशान वह अँगूठे से रगड़ कर मिटा देते थे। उनके औलाद कोई न हुई। उनके भाई रघुबीरचन्द जो राजा मण्डी के पास ए. डी. सी, थे के औलाद हुई जो अब दातारपुर राजवंश की उत्तराधिकारी है। अंग्रेज़ ने अपने स्याह दामन को सफा करने के लिये तथा ऐसे बहादुर राजवंश को नैतिक दृष्टि से पतित करने के लिये इस वंश के, परम्परा से चली आई सारी सम्पत्ति को छीन कर केवल जीवन निर्वाह के लिये दो सद रुपया माहवार की पेन्शन जनरलसूर्मचन्द को लगाई।

कुछ कालानन्तर अंग्रेज हकूमत ने राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित हो इस पोलिटीकल मासिक वेतन को जागीर के रूप में परिवर्तन कर दिया और २४०० रुपये की जागीर अभी तक दातारपुर के विभ्रंश राजवंश के उत्तराधिकारी को मिल रही है। महात्मा गाँधी के युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी राजा दातारपुर के इस वंश व इलाके ने पूरा पूरा भाग लिया है। चूँकि ठाकुर मुन्शीराम, ठाकुर ऊधम सिंह, ठाकुर वरयाम सिंह जैसे निःस्वार्थी व्यक्ति इस वंश को विभूषित कर रहे हैं; जिन्होंने अपना सारा जीवन गांधीवाद की पूजा में अर्पण कर दिया।

इन्होंने कांग्रेस तहरीक में कई प्रकार की यातनाएँ झेल कर भी आजादी की पताका को इस प्रान्त में लहराये रखा। उनके दूसरे साथी व सेनानी—जीवित शहीद—पंडित जगतराम जी हरियाना, महन्त बृजभूषण दास जी मुकेरियां, महन्त गोवर्धनदास जी हाजीपुर पं० भक्तराम जी कोटला जैसे प्रतिष्ठित सज्जनों ने गांधी जी की विचारधारा के आधीन अपनी जीवनियां विताते हुये कई लम्बी लम्बी यात्राएँ कांग्रेस आन्दोलन के सम्बन्ध में बरदाश्त कीं तथा इस शिवालक प्रान्त की देशभक्ति की परम्परा को जीवित रखा।

पं० किशोरीलाल जो दातार पुर के समीपवर्ती ग्राम से हैं। सरदार भक्तसिंह जी के साथ फाँसी के सजावार हुये। मेजर सूबेदार बाबूराम जो दातारपुर राजवंश हैं; जनरल मोहनसिंह के साथ आई. एन. ए. खड़ा करने में आगे थे। उन्होंने अंग्रेज की आई. एन, ए. की सरकारी कहानी या पक्ष को बड़ी चतुराई से छिन्न-भिन्न कर के रख दिया था। आई. एन. के अभियोग में सूबेदार बाबूराम जो ने बड़ा नुमायां पार्ट अदा किया है। इस बंश के आधुनिक उत्तराधिकारी टिक्का उदय भानु चन्द्र बी. ए. हैं, जिन्होंने १९४१—४२ ई० में कमीशन मिलने पर भी अपने नेशनल लीडरी की आज्ञा शिरोधार्य करते हुये फौज में जाने से इन्कार कर दिया। इस वजह से उनकी जागीर जब्त कर दी गई। उन्होंने हर धमकी की, जो उस समय हकूमत दे सकती थी परवाह नहीं की। उनके बन्दूक लाइसैंस जब्त कर लिये गये परन्तु इन्होंने अपनी चतुरता से अंग्रेज डी. सी. को बन्दूकें समर्पित नहीं की बल्कि अपने सम्बन्धी राजा गुलेर की सहायता से बन्दूकों को जब्त होने से बचा लिया; जो उनके वंशज मिलट्री में पकड़े जाकर आई. एन. ए. में शामिल हो चुके थे उनके पीछे बच्चों, बूढ़ों को यथाशक्ति सहायता का प्रबन्ध करते रहे।

१९४६ ई० में टिक्का उदयभानुचन्द जी ने हिमालय प्रदेश रक्षासंघ की बुनियाद रखी। मुसलिम लीग के विद्रोह-आन्दोलन के परिणामों से अपने पहाड़ी इलाके को बचाने के लिए यह सोसाइटी काम करती रही। इस सोसाइटी ने अपनी खिदमत लाहौर के रईस ला० गोपालदास, रूपचन्द जी व किशनकिशोर दाढ़ीवालों को पेश कीं। मगर ये सब सज्जन समय की नजाकत को अनुभव न कर सके और सोसाइटी की सेवाओं से लाभ न उठा सके। सोसाइटी की ओर से टिक्का साहब ने महाराजा हरिसिंह जम्मू वालों को बड़े लाभकारी रक्षा सम्बन्धी सुझाव तथा प्रेरणाएं दीं; परन्तु उन पर मूर्ख वायुमण्डल में घिरे होने के कारण ध्यान न दिया गया और फिर क्षति तथा जलालत उठानी पड़ी। १९४६ ई० में शिमला कांगड़ा के राजाओं को एक पहाड़ी प्रान्त बना कर आने वाले जमाने के मसलों का हल पैदा करने की प्रेरणा की एक बड़ी सुन्दर चिट्ठी बांटी गई मगर प्रान्त के राजाओं में समय के मसायल का अनुभव उपस्थित न होने से इस चिट्ठी का यथार्थ रूप में फल न निकला। १९४७ ई० को १५ अगस्त के दिन जब भारत में आजादी आई। मुकेरियां दसूहा मुसलिम लीग के लगभग दो लाख अनुयायियों ने उपद्रव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी उर्दू का संघर्ष :

स्वर्गीय लाला लाजपतराय का सन्देश

स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी ने अपनी आत्म कथा में हिन्दी उर्दू के सम्बन्ध में यह भाव अङ्कित किये हैं। यह आत्म कथा—श्री पुरुषोत्तम दास जी टंडन प्रधान लोक सेवक मण्डल के निरीक्षण में लाहौर के राष्ट्रीय पत्र पंजाब केसरी में लेखमाला के रूप में छपी थी—पीछे से पुस्तकाकार भी प्रकाशित की गई थी।

"उर्दू हिन्दी की बहस में, मैं और गुरुदत्त तथा लाला हंसराज इकट्ठे थे। यह कहना चाहिए कि हमारे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ उर्दू हिन्दी की बहस से हुआ।

मैंने और पंडित गुरुदत्त ने सहस्रों विद्यार्थियों से मैमोरियल पर हस्ताक्षर कराए। मैंने अम्बाला जाकर एक वक्तृता दी जिसमें देहली के प्रसिद्ध विद्वान् राय हुक्मचन्द एम० ए० उपस्थित थे। वह हिन्दी के विरोधी थे और उस समय पंजाब में एक्स्ट्रा असिस्टेंण्ट कमिश्नर थे। उन्होंने मेरे सम्बन्ध में डाक्टर साहब को जो कॉलेज के प्रिंसिपल थे, लिखा। प्रिंसिपल ने मुझ से पूछताछ की और मुझे समझाया कि विद्यार्थियों को किसी सार्वजनिक आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहिए। यह घटना सम्भवतः अप्रैल अथवा मई, १८८२ की है।"

(पृष्ठ संख्या ५३ आत्मकथा)

मचाने की ठान ली। भयंकर उत्पात की खबरें दातारपुर में पहुंची। टिक्का साहिब दातारपुर ने जो इस भयंकर उत्पात को आगे ही भांप रहे थे. संगठित रूप से रक्षा की योजना लेकर मैदान में आए। घातक आततताई जो संख्या में कई गुणा ज्यादा थे, उनके मुकाबिला की दाव न पाकर भाग निकले। परन्तु टिक्का साहिब के जत्थों ने आततताइयों को पूरी-पूरी सज़ा देने की ठान ली। १५ बीस दिन तक जब कि हकूमत नितान्त अमन बहाल करने में असमर्थ थी, इलाके का अमन बखूबी संभाले रखा तथा घबराए हुए लोगों को सान्त्वना देने में सफल रहे। गुण्डों के लाख यत्न करने पर भी इलाका की शान्ति को भंग न होने दिया गया। जब भारत सरकार ने आबादी के तबादले का प्रस्ताव पास किया। हिमालय प्रदेश रक्षा संघ के स्वयं सेवकों ने पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों से इलाका को खाली करा कर तथा शरणार्थियों के लिए मुसलमानों की छोड़ी हुई सम्पत्ति को कमेटियों द्वारा संभाले रखा तथा उन कमेटियों के द्वारा वांट माल की गई। इलाका दातारपुर की देन है कि शहीदों के खून से यह इलाका पुनीत है। यह ठीक है कि इस इलाका को अंग्रेजों ने पिछड़ा हुआ अविकसित रखने में खास मनशा पूरा किया है परन्तु स्वतन्त्रता मिलने के बाद इलाका दिन दूनी रात चौगनी तरक्की कर रहा है। पं० रलाराम जी प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालिज इस इलाका के लोक प्रिय एम. एल. ए. हैं, जो मनुष्यता की मूर्ति हैं और जो अपने इलाका तथा तथा इसकी चली आई आन को को वरकरार रखने में सदैव अग्रसर रहते हैं। आशा है देशभक्ति का जो अनवरत प्रवाह इस इलाके के राजवंश में खसूसन तथा आम जनता में अमूमन चला आ रहा है तथा जिस वृत्ति के कारण इस इलाका का विशेष व्यक्तियों का राष्ट्रीय इतिहास बनाने में हाथ रहा। वह सद्वृत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ेगी फिर से उन्नति शिखर को प्राप्त होगी। ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर सबसे ज़ोरदार असर मेरे चरित्र पर उर्दू हिन्दी के आन्दोलन का हुआ। इस आन्दोलन ने मेरे हृदय में जातीय प्रेम का उद्वेग पैदा कर दिया। मैंने संस्कृत भाषा की प्रशंसा में, व्याख्यान सुने और उसके सम्बन्ध में, कुछ पढ़ा। बाबू नवीनचन्द्र राय साहिब के प्रभाव से पंजाब का ब्रह्मसमाज हिन्दी के पक्ष में था। उनकी इस राय की जड़ में राष्ट्रीय विचार थे।

वह हिन्दी को कुल हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा समझते थे। और चाहते थे कि भारतीय राष्ट्रीयता की इमारत उस पर बनाई जावे। इन विचारों ने मेरे दिल पर गहरा असर किया और वह मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ था। (पृष्ठ सं० ५५ आत्मकथा)

* * *

उर्दू की अपील का उत्तर

श्री स्वर्गीय बालमुकन्द गुप्त द्वारा

यू० पी० में हिन्दी को सरकार द्वारा अपनाने पर एक उर्दू प्रेमी ने अवध पंच में "उर्दू की अपील" नाम से यह कविता प्रकाशित की थी:—

खुदा या न क्यों मुझको मौत आ गई,
कहां से मेरे सिर पै सौत आ गई।
यह सौदा वहुत हमको महँगा दिया,
कि खिल्लअत मैं हाकिम ने लँहगा दिया।

उत्तर में भिवानी के स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त जी ने यह पंक्तियां लिखीं:—

न बीवी बहुत जी में घबराइए,
सम्भलिये ज़रा होश में आइए।
कहो क्या पड़ी तुम पे उफ़ताद है,
सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या,
सुनूं हाल मैं भी तो उसका ज़रा।
न उठती में, यों मौत का नाम लो,
कहां सौत! मत सौत का नाम लो।
बहुत तुम पे हैं मरने वाले यहां,
तुम्हारी है मरने की बारी कहां।
जना था तुम्हें मां ने बाज़ार में,
पली शाह आलम के दरबार में।
मिली तुमको बाजारी पोशाक भी,
वह थी दोगले काट की फ़ारसी।
यह सरकार ने दी है जो नागरी,
इसे तुम न समझो निरी घाघरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी यह हर्गिज नहीं सौत है,
न हक में तुम्हारे कभी मौत है।
अदब और हुकूमत की चादर है यह,
चढ़ी गोद में मिल ले मादर है यह।
यही आपकी मां की पौशाक थी,
ये 'आजाद' से पूछना तुम कभी।

प्रोफेसर मुहम्मद हुसेन आजाद ने अपनी "आबेहयात" नामक पुस्तक की भूमिका में उर्दू को व्रजभाषा की बेटी कहा है।

गुरु नानक देव जी ने ग्रन्थ साहब में लिखा है—

खत्रिआ तू धरमु छोड़िया म्लेच्छ भाषा गही।
सृष्टि सम इक वर न होई धर्म की गति रही॥ महला १।घसर।

खत्री—पंजाब निवासियों ने:—म्लेच्छ भाषा-फारसी उर्दू अपनाकर अपना धर्म छोड़ा। उस समय की पंचनद निवासी जनता को, फारसी उर्दू म्लेच्छ भाषा के प्रभाव से मुक्त करने के लिये गुरु जी ने अपनी रचना तत्कालीन पंजाब की देहाती बोली और महाजनी लंडा से मिलती जुलती पैंती में की है और अपने ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर अखरावट में ५२ देवनागरी वर्णमाला द्वारा भी उपदेश दिये। परन्तु मुसलमानों के साथ लगातार संघर्ष होने से हिन्दी संस्कृत का विशेष प्रचार न हो सका। आपद्धर्म के रूप में फारसी उर्दू में काम चलता रहा। दसवें गुरुगोविन्द सिंह जी ने दशम पादशाही रचना द्वारा तथा अपने हिन्दी कवि दरबार द्वारा इधर कुछ सुधार करना चाहा परन्तु उन्हें भी समय न मिला। महाराजा रणजीतसिंह भी युद्धों में लगे रहने से उर्दू फारसी का बहिष्कार न कर सके। इतने में अंग्रेजों ने आकर उर्दू फारसी अंग्रेजी को अपनाया। फिर भी पंजाब यूनिवर्सिटी के ओरियण्टल विभाग के कारण और आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज ने हिन्दी को अपनाया। पंजाब विभाजन से पहले लाहौर में हिन्दी का काफी प्रचार हो गया था। मुसलमानों ने पाकिस्तान बनते ही उर्दू को पाकस्तानी भाषा बनाया। पूर्वी पंजाब के स्कूलों से उर्दू फारसी का निर्वासन हुआ। परन्तु अब पंजाबी हिन्दी संघर्ष के कारण कुछेक लोग उर्दू को फिर बढ़ावा दे रहे हैं। हिन्दी को किसी से खतरा नहीं हैं, खतरा है तो उर्दू और अंग्रेजी से—उर्दू फारसी—मुसलमानों की राजनैतिक गुलामी की सूचक है और अंग्रेजी अंग्रेजों की। यदि हम विशुद्ध राजनैतिक भारतीय संस्कृति पर आश्रित स्वाधीनता का उपयोग करना चाहते हैं, तो हमें उर्दू-अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को अपनाना चाहिए। उर्दू अंग्रेजी लिपियां, पंजाब को शेष भारत की सांस्कृतिक विचार धाराओं से पृथक करने वाली इस्लामी और क्रिश्चियन सभ्यता की प्रतीक हैं। इस दृष्टि से गुरुनानक देव जी ने म्लेच्छ भाषा उर्दू छोड़ने की प्रेरणा की और स्वर्गीय लाला लाजपतराय जैसे देशभक्तों ने पंजाबियों को उर्दू छोड़कर हिन्दी अपनाने की प्रेरणा की—पंजाब के उर्दू दैनिक समाचार पत्रों के, स्वदेश संस्कृति अभिमानी संचालकों को उर्दू फारसी के समाचार पत्र बन्दकर हिन्दी राष्ट्र भाषा में प्रकाशित समाचार पत्रों को अपनाना चाहिए तभी हिन्दी पंजाब की साहित्यिक और सार्वजनिक जीवन की लोक भाषा बन सकेगी।

भीमसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक, कवि तथा पत्रकार :-

रणदेव पंडित :

[ले०—आचार्य श्री धरानन्द, प्रधानाध्यापक
रणधीर ओरियण्टल कालेज, कपूरथला]

कपूरथला के वातावरण में जो कलात्मकता के दर्शन होते हैं, उसके मूल का यदि सावधान अन्वेषण किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि कि वह हैं रणदेव पण्डित। उनका जीवन ही कलामय है, संगीत, नृत्य और साहित्य कला के वे पुजारी हैं। भक्ति के क्षेत्र में आज उसके प्रधान अङ्ग कीर्तन की प्रधानता है, रणदेव पण्डित उस में भी कला का पुट जिस सफल रीति से देते हैं, वह बहुत ही आकर्षक और सराहणीय है।

रणदेव पण्डित का जीवन कलामय क्यों हो गया ? यह भी एक अद्भुत और कलात्मक संयोग है। वे बनना चाहते थे इंजीनियर और वन गये कला के प्रेमी और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आचार्य हजारी प्रसाद त्रिवेदी जी के जीवन में भी ऐसी ही, घटना घटित हुई है, जिसका उद्घाटन द्विवेदी जी ने इन पंक्तियों के लेखक के 'आप तो ज्योतिष पढ़ते रहे, ज्यौतिषाचार्य परीक्षा आपने पास की थी, फिर हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में किस प्रकार पहुंच गये ?' इस प्रश्न के संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित इस उत्तर में 'गाड़ी ने लाइन वदल दी है' किया था। इस प्रकार के अप्रत्याशित संयोग को ही विधि का विधान कहते हैं।

रणदेव पण्डित का जन्म ६ जनवरी १९२६ को कपूरथला में लोक और राजदरबार में प्रतिष्ठित एक परिवार में हुआ। कपूरथला के रणधीर कालेज में एफ० एस० सी० की पढ़ाई समाप्त करके डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर में पहुँचे और वहां से १९४५ में बी० एस० सी० परीक्षा उत्तीर्ण की। विज्ञान पढ़ने का उद्देश्य इनका इंजीनियर बनने का था जैसा कि पहले बताया गया है। अध्ययन कर और इसके पश्चात् भी ये इंजीनियरिंग सम्बन्धी बहुत सी सामग्री का संकलन करते रहे, पर वह सम्पूर्ण सामग्री अब उनके कागजों के ढेर के नीचे दबी कराह रही है। बात यह है कि गाड़ी ने लाइन बदल दी और कला ने विज्ञान पर विजय प्राप्त की।

रणदेव पण्डित जब दशवीं श्रेणी में थे, तभी से उन्होंने लिखना आरम्भ कर दिया था, पर तब वे लिखते थे उर्दू और अंग्रेजी में। हिन्दी से तो उस समय उनका ३६ का ही सम्बन्ध था। पर आज ये पंजाब में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, कवि और पत्रकार हैं। रणदेव पण्डित का पंजाब की पत्रकारिता में विशेष स्थान है। तीन वर्ष तक वे 'हिन्दी मिलाप' के संयुक्त सम्पादक भी रहे हैं। आजकल वे विभिन्न पत्रों के प्रतिनिधि के रूप में काम कर रहे हैं। उनके गवेषणा पूर्ण लेख कवितायें आदि विभिन्न समाचारपत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं।

हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम के साथ रणदेव पण्डित में त्याग की भावना भी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल है। आरम्भ में वे सरकारी नौकर के रूप में जीवन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे, पर उन्हें वह दासता का वातावरण पसन्द नहीं आया। यद्यपि अब भारत स्वतन्त्र है, पर फिर भी नौकर नौकर ही है, उनका कलाप्रेमी हृदय दासता के उस वातावरण में घुटने लगा। कपूरथला राज्य के पेप्सु में विलीन होने के संक्रमण काल में, जब सभी सरकारी कर्मचारी वेतनस्तर के बढ़ जाने से अपने भाग्य को सराह रहे थे, तब इधर रणदेव पण्डित कई मास का अपना शेष वेतन और सरकारी नौकरी का मोह सदा के लिये त्याग कर उन्मुक्त वातावरण में आ पहुँचे। यह हिन्दी के लिये शुभ हुआ हिन्दी को एक स्वतन्त्र निःस्वार्थ सेवक मिल गया।

रणदेव पण्डित में संस्थाओं के संचालन और संघटन की अद्भुत क्षमता है। इसी कारण वे प्रान्त की विभिन्न संस्थाओं के सदस्य निर्वाचित होते रहते हैं। आजकल वे पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्यकारिणी सभा के सदस्य हैं। पेप्सु हिन्दी साहित्य सम्मेलन का संघटन भी इन्होंने कुछ समय पूर्व किया था। अपने प्रधान मन्त्रित्व काल में पेप्सु हिन्दी साहित्य सम्मेलन को इन्होंने बहुत उन्नत बनाया। कपूरथला की हिन्दी प्रचारिणी सभा के संस्थापक भी रणदेव पण्डित ही हैं। सच पूछिये तो उक्त हिन्दी प्रचारिणी सभा के प्राण हैं, अधिकारी कोई रहें, पर सूत्रधार वे ही सदा रहते हैं।

पंजाब प्रान्त में संगीत और नाट्य कला के स्तर को उन्नत करने और उसके प्रसार के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इसी उद्देश्य से वे आजकल सारे पंजाब प्रान्त की संगीत, नाट्य और साहित्य की संस्थाओं के एक सुदृढ़ संघटन में संलग्न हैं, उनका प्रयत्न है कि प्रान्त में एक ऐसी सुदृढ़ संगीत नाट्य अकादमी स्थापित की जाय, जिसका सम्बन्ध केन्द्रीय संगीत नाट्य अकादमी से हो।

रणदेव पण्डित में कर्मण्यता इतनी अधिक है कि आप जब भी उनसे मिलिए उन्हें कार्य-व्यस्त ही पायेंगे, वे निष्क्रिय न कभी रहे, न रहते हैं और उनका जैसा विचार है— न रहेंगे ही।

इस सतत कार्य-व्यस्तता के कारण रणदेव पण्डित को कभी अपने व्यक्तिगत जीवन की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। फल स्वरूप वे अभी तक अविवाहित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, विवाह की बात संभवतः वे भूल ही गये हैं। विवाह के सम्बन्ध में कविवर दिनकर जी का यह सुभाषित उन्हें अत्यन्त प्रिय है—

शादी वह नाटक अथवा वह उपन्यास है।
जिसका नायक मर जाता है पहले ही अध्याय में॥

परन्तु जब मित्रगण रणदेव पण्डित से उनके विवाह के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं तो वे गोलमोल उत्तर देकर बात को टाल देते हैं।

अन्त में इस बात का उल्लेख करना भी अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि रणदेव पण्डित कला की साधना में शरीर की साधना को नहीं भूले हैं, वे एक स्वस्थ युवक हैं और इसका कारण है उनका खिलाड़ी होना। वे कलाप्रेमी होते हुये खिलाड़ी भी हैं। खेलों में उनकी विशेष अभिरुचि बास्केट बाल और हाकी के खेल में है। कालेज के अध्ययन काल में बास्केट बाल और हाकी में वे पंजाब विश्वविद्यालय के चैम्पियन रहे हैं। ❀ ❀ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन खे सके भारत नैया ?

(श्री पं० चेतराम जी शर्म्मा उपाध्याय कन्या महाविद्यालय)

जून १९३३ में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के जम्मू अधिवेशन में पढ़ी गई

जीवन-सुख से नाथ, हाथ धोकर बैठे हैं।
अपने अँग को स्वयं, मार ठोकर बैठे हैं ॥
शिर से फूल उतार, धूल को धर बैठे हैं।
अपनी भाषा भूल, मूल खोकर बैठे हैं ॥१॥

माँ तो हिन्दी कहे, पिता अरबी लिखते हैं।
भाई सात समुद्र पार के ही दिखते हैं ॥
माता किसकी सुने पिता-सुत तन बैठे हैं।
अपने घर में स्वयं विदेशी बन बैठे हैं ॥२॥

इसी देश में रहें, इसी से पले हुए हैं।
ऊँचे इस में हुए, इसी में तले हुए हैं ॥
भिन्न-भिन्न भी इसी देश में मिले हुए हैं।
और नहीं, लड़ने भिड़ने तो हिले हुए हैं ॥३॥

स्वदेश में ही निज भाषा व्यवहार नहीं है।
उसे तार व्यापार कहीं अधिकार नहीं है ॥
पत्नी-हित टूटी-फूटी भाषा चलती है।
हाय ! हाय !! वह भी लोगों को अत्र खलती है ॥४॥

निजी फूट से चोर लुटेरा पला जाय है।
जो आता है अपना जूता चला जाय है ॥
उनके छल से देश विचारा छला जाय है।
उनको सुविधा, कान हमारा मला जाय है ॥५॥

हिन्दी अपनी देवनागरी बहुत पुरानी।
अति पवित्र संस्कृत वाणी है जिसकी नानी ॥
डार-डार, पत्ती-पत्ती में वह रससानी।
लिखी उसी की, हृदय हारिणी करुण कहानी ॥६॥

राजपूत हो मस्त नहीं जो हिन्दी धुन में।
अति पवित्र रजपूत रक्त क्या रहा न उनमें ॥
हिन्दी चर्चा से जिनका कँपता तन-मन है।
कैसे रजपूत, न जिनमें हिन्दीपन है ॥७॥

जो न प्रजा की एक भावना भाषा होगी।
नहीं देश में पूर्ण शान्ति की आशा होगी ॥
जिसमें कंस को देते थे ललकार कन्हैया।
उस हिन्दी बिन कौन खे सके भारत-नैया ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय हिन्दी जननी

जय जय जय हिन्दी-जननी !
मातृ-भूमि-गौरव-विस्तारिणी, ऐक्य भाव भरणी ॥१॥
भक्त, साधु, सज्जन गुणि वन्दित, दुरित-दुःख दलनी।
सूरा लोकित, तुलसी-सुरभित, दयानन्दबलिनी ॥२॥
सदाचार सद्भाव-विकासिनी, देश भक्ति वरणी।
देश-वेश-साहित्य रक्षिणी, राष्ट्र-सूत्र सरणी ॥३॥
देवि भारती जय हिन्दी, जय स्वतन्त्रता जननी।
दिव्य शक्ति तू, स्वर्गसिद्धि तू, ज्ञानामृत-भरणी ॥४॥
मनुष्यता की अगम सम्पदा, भवसागर तरणी।
प्राण रूपिणी, हृदय-दर्पणी, जय भाषा जननी ॥५॥
जय जय जय हिन्दी जननी !

—चेतराम शर्मा, जालन्धर

"हँसना रोना"

मैं क्या लिख दूँ, किस पर लिख दूँ, किसको गुण दोषों से मढ़ दूँ,
कविता लिख या बन आलोचक, इन पृष्ठों को काला कर दूँ।
हँसती तो दुनियाँ खुश होकर, पर रोती क्यों रोना रोकर,
रोने में ही तो निहित हँसी, क्या यह सोचा तन्मय होकर ?
हैं एक लड़ी के दो मोती, कैसे फिर दो को अलग करूँ,
जब रहते ये दो साथ साथ, किसको रख लूँ किसको छोड़ूँ !
मेरा रोना मेरा हँसना, दोनों ही हैं अद्भुत न्यारे,
कितना अन्तर, क्या विषम स्थिति, फिर भी ये मित्र बने प्यारे !
उल्लास लिए हँसी आती, रोने में दिल की आह छिपी,
इक इन्दुरूप इक दीनरूप, ब्रह्मा की इनमें थाह छिपी।
बिना हँसी के जीवन सूना, बिन रोने के भी है फीका,
जिसने लवणों का स्वाद लिया, वह क्या जाने कैसा मीठा !
दोनों जीवन संगी मेरे, दोनों का हो मुझ में प्रवेश,
इन बिन निर्वाह नहीं मेरा, दोनों का ही हो समावेश।
मेरा हँसना मेरा रोना

—कुमारी प्रभा विद्यालंकृता, कमालिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश-वाणी

महात्मा गाँधी का बलिदान ! निर्माण काल वसन्त का श्री गणेश

[रचयिता—श्री धर्मभानु सुकुमार शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल० अमृतसर]

यह देवलोक क्यों चंचल है, कैसा कलरव; क्यों हलचल है—

[१]

विधि, आसन पैं आसीन हुए,
उत्फुल्ल वदन, सुख पीन हुए।
श्री शिशिरदेव कुछ भेंट लिये,
पहुँचे सुरपुर श्री हीन हुए॥

[२]

नीरव वह वातावरण हुआ,
उत्कण्ठा का अवतरण हुआ।
पूछा विरञ्चि ने शिशिर बन्धु !
कैसा भू पर सञ्चरण हुआ॥

[३]

क्या मधुर भेंट ले आए हो,
वन-उपवन में भटकाए हो।
उस धर्म क्षेत्र से सौम्य ! कहो,
ये दृग्जल क्यों भर लाये हो॥

[४]

क्या मिला कोई उपहार नहीं,
या भीषण पड़ा प्रहार कहीं।
या ऋषि मुनियों की अवनी पर,
अघटित घटना धाराएँ बहीं॥

[५]

सब देव समुत्सुक देख रहे,
उस नवल भेंट को पेख रहे।
खादीय-वसन में से निकाल,
उस दिव्य मूर्त्ति को लेख रहे॥

[६]

हुए पूर्वकाम वे प्रजापति,
कृतकृत्य हुए अमराधिपति।
जिनकी गुणगाथा गूँज थकी—
ये यही हैं गाँधी राष्ट्रपती॥

[७]

थे दिव्य गुणों के निधान,
भूतल पर अनुपम प्राप्तमान।
वे क्षमा प्रेम के थे प्रतीक,
हुआ धन्य देवपुर भासमान॥

[८]

गुरुदेव बृहस्पति स्वस्थ हुए,
गम्भीर वदन; ध्यानस्थ हुए।
'गाँधी-विरुदावलि' कर बखान,
जनु सुर-समाज अन्तःस्थ हुए॥

[९]

पर शिशिर-नेत्र दोनों ही सजल,
भारत को देख परम विह्वल।
कर सूनी डाली कानन की,
जब तोड़ चले थे उज्ज्वल फल॥

[१०]

वह बिडला-भवन अचेत हुआ,
भूमण्डल सकल विचेत हुआ।
सम्पूर्ण राष्ट्र चिन्तातुर थे,
सचराचर शोक-निकेत हुआ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४७ ई० के बाद पञ्जाब के शिक्षा मन्त्री

श्री गुरबचन सिंह जी बाजवा

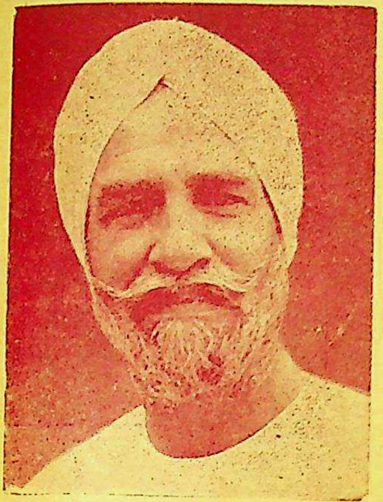

आपने भी संयुक्त दायित्व के सिद्धान्त के अनुसार सच्चर फार्मूले का संचालन किया। खेर लैंगवेज कमीशन के सामने आपने उच्च शिक्षा तथा हाई कोर्ट में हिन्दी माध्यम रखने का समर्थन किया।

श्री जगतनारायण जी एम. एल. ए.

आप ने भी अपने शिक्षा मन्त्री काल में मन्त्रि मण्डल के संयुक्त दायित्व के सिद्धान्त के अनुसार इसका चालू रखना आवश्यक समझा। इस सच्चर फार्मूला के विरोधी आन्दोलन में जेल में बन्द रहे।

श्री डा० गोपीचन्द जी भार्गव

आप के शिक्षामन्त्री काल में राजनैतिक दृष्टि से सच्चर फार्मूले का निर्माण किया गया था। इस समय श्री भीमसेन सच्चर मुख्य मन्त्री थे।

श्री प्रो० शेरसिंह जी

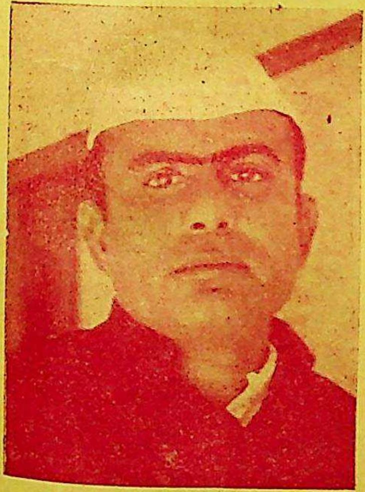

आपने अपने शिक्षा मन्त्री काल में मन्त्रिमण्डल के संयुक्तदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार सच्चरफार्मूले को अपनाया। कुछ काल बाद इसका विरोध करने के कारण जेल में बन्द रहे।

श्री अमरनाथ जी विद्यालंकार

आप वर्तमान पंजाब मन्त्रि मण्डल में संयुक्त दायित्व के आधार पर सच्चर फार्मूले का समर्थन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवान अलखधारी जी

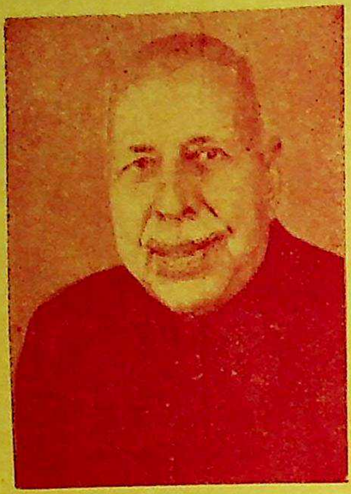

अम्बाला छावनी के हिन्दी प्रेमी
भीष्मपितामह

दानवीर रा. ब. सोहनलाल जी

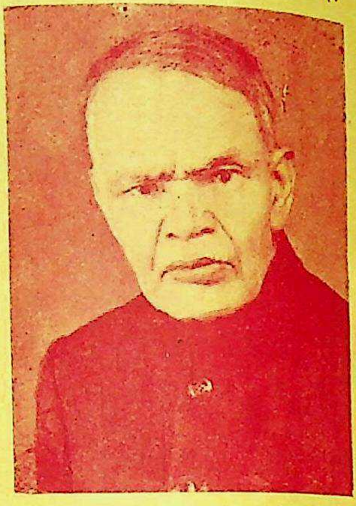

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के
आजीवन सदस्य
प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री तथा हिन्दी प्रेमी

स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

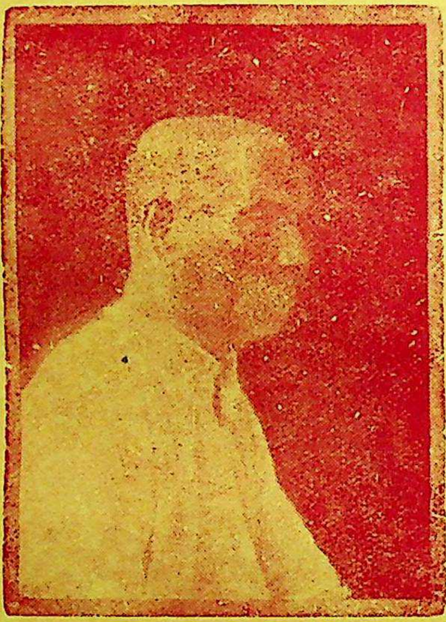

आपने देश की विविध स्थानीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिन्दी के संघर्ष विरोध को दूर करने का एक मात्र उपाय, दूरदर्शी नेता की दृष्टि से, देवनागरी लिपि में पूना से मराठी ''केसरी'' को प्रकाशित कर दिखाया।

श्रीमती सुदर्शन बाहरी एम. ए.

अम्बाला छावनी की
प्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री
आज कल आप पंजाब पब्लिक रिलेशन विभाग में कार्य कर रही हैं।

श्रीमती पुष्पा महाजन,
गुरदासपुर

हिन्दी कहानी साहित्य क्षेत्र की उदीयमान लेखिका संघर्ष और शान्ति नाम से कहानियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११]

देवों ने हर्ष-विलास किया,
नन्दन-वन ने उल्लास पिया।
गन्धर्व सिद्ध-किन्नर-गण ने,
आनन्द-विभोर सुहास किया॥

[१२]

पर शिशिर शिथिल था खिन्नभात,
मनु शीकर मिश्रित सुप्रभात।
धूमिल, आतुर सा, पाणि जोड़,
बोले मन्द्र-स्वर हो उदात्त॥

[१३]

भू पर तो अत्याचार हुआ,
दारुण अनम्र परिहार हुआ।
वह सत्य अहिंसा-मूर्तिमान्,
कलियुग में प्रेमाकार हुआ॥

[१४]

वह राजनीति का विशद रूप,
हिन्दुत्व धर्म का विमल स्तूप।
सम दृष्टि-भावना का परिमल,
बिखराता था सम रंक-भूप॥

[१५]

आशामय राष्ट्र मसल डाला,
ज्यों कञ्ज पुञ्ज पर हो पाला।
स्वतन्त्रता-वधू के गृह प्रवेश पर,
निगल गई दारुण ज्वाला॥

[१६]

विधि, सुरगण ने सुन करुण गाथ,
सन्तप्त क्षुब्ध सा हुआ माथ।
देवाधिदेव पर दृष्टि डाल,
देते क्या उत्तर आज 'नाथ'॥

[१७]

वह जीर्ण-शीर्ण कृश-काया था,
बस आत्म रूप बन आया था।
दुर्दान्त समाज कुपित हुआ,
जो कुछ 'गाँधी' समझाया था॥

[१८]

बसुधा पर माधव जाएगा,
नव सुषमा सी बरसाएगा।
उस राष्ट्र-क्षितिज पर अरुणोदय की,
नवल - लालिमा लाएगा॥

[१९]

कितनी आत्माएँ चमकेंगी,
गाँधी स्फुलिंग बन दमकेंगी।
वह मुक्त पुरुष उन्मुक्त हुआ,
आभाएँ उसकी चमकेंगी॥

[२०]

यह यज्ञमयी रचना सारी,
आशा-कुसुमों से है न्यारी।
निर्माण-काल, नादान शिशिर,
काटे छाँटे क्यारी क्यारी॥

[२१]

अब दुःखों का बस अन्त हुआ,
जो उजड़ा पुनः बसन्त हुआ।
स्वागत-तेरा ओ नव वसन्त,
'सुकुमार' रूप विलसन्त हुआ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

रचयिता—
पंजाब के प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार
श्री रणदेव पण्डित

यह श्री रणदेव पण्डित की प्रथम प्रकाशित कविता है, जो दैनिक "विश्व बन्धु" लाहौर में छपी थी]

मेरी भी बात सुनोगे या अपनी ही कहते जाओगे।
माना मैंने तुम कलाकार पर पीछे तुम पछताओगे॥
तुम टूटी वीणा पर चाहो गाना जीवन का प्रेम-राग।
क्या हाँकोगे ऐसी गाड़ी, जिसके घोड़े की नहीं बाग॥
होगा क्षण-भंगुर क्षीण राग, जब यन्त्र नहीं क्या गाओगे॥ मेरी...

हो सावधान तुम या दिन में ही छाया है यह रात्रि-रंग।
पर एक बता दूँ बात तुम्हें होते हैं दिन के स्वप्न भंग।
कब तक तुम इस सूनेपन में, स्वप्नों से मन बहलाओगे॥ मेरी...

आधुनिक गीत

कला नहीं अब गला चाहिए!
सुन्दरता की बात करो ना, मुँह अब 'पौडर'-मला चाहिए!
कला नहीं अब गला चाहिए!
सुनते थे है कठिन प्रेम-पग। पर अब भीड़ पूर्ण है यह मग॥
आना जाना बहुत बढ़ गया। इस पथ पर 'सीमिंट' चढ़ गया॥
उठो चलो तुम भी यात्रा पर, टिकट नहीं दिल जला चाहिए!
कला नहीं अब गला चाहिए!

सीता का युग नहीं रहा अब। सावित्री भी नहीं फब॥
'मैडम' की अब माँग बढ़ गई। उसकी कीमत बहुत चढ़ गई॥
विज्ञापन दे रहे युवक सब, बीवी रूपी बला चाहिए!
कला नहीं अब गला चाहिए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतावनी

रणदेव पंडित

तुमको आज बदलना होगा !
नये सवेरे की आभा में उदित हुआ है नया जागरण।
धर परिधान सुगम एके का निखरा है सहकारी जीवन।
पग के पत्थर पिघल रहे हैं,
समतल पथ पर अब चलना है,
आगे ही आगे बढ़ना है,
किन्तु खेद है तुम अचेत हो, मानव होकर बने प्रेत हो।
पूँजी के मतवालो, सुन लो,
परिवर्तन के तूफानों से,
बच न सकोगे. सँभलो सँभलो,
अब भी समझो, अब भी समझो, वरना तुमको गिरना होगा ॥ तुमको···
तुमने भूखों के भोजन को अपना है आहार बनाया।
अपने प्रासादों की नींवें भरीं डाल निर्धन की काया।
मदमस्ती में भूल स्वयं को,
गाते हो तुम शनि के स्वर से,
अकड़ रहे हो धन के ज्वर से,
पर अब उथल-पुथल है झंकृत, पल पल में है हलचल अंकित।
बदला युग है तुम्हें बदलना,
तुम भी अपना रंग बदल लो,
जग के संग तुम्हें है बढ़ना,
शोषण के भीषण दांवों पर पोषण को अब जड़ना होगा ॥ तुमको···

आंसू स्मिति का द्रव हो जाना !

आंसू स्मिति का द्रव हो जाना !
रवि का द्रव होना है हिमकण, सूने पन का द्रव है शबनम,
शूलों की द्रवतामय प्रवृत्ति, में फूल मधुर मंजुल मृदुतम !
जब युग मानव द्रव हो जाता, होता ईश्वर का जन्म सखी,
निशि के द्रव होने में ही है, उषा किरणों का मर्म सखी !
उत्थान कभी द्रव हो जाता तो कहलाता है गिरजाना ! आंसू, स्मिति का·········
जब द्रव होने को हुई सखी, यह मानव की दृढ़तम काया,
बन गई तभी ये दो आँखें जिनमें सागर आ लहराया !
द्रव होते होते विस्तृत भू कितनी छोटी रह गई प्राण,
पर तेरा दिल द्रव हुआ नहीं, द्रव होना जीवन का प्रमाण !
उस निराकारका द्रव होना साकार सृष्टि का बन जाना ! आंसू, स्मिति का········

(१९४६ ई०)

—सत्यभूषण 'योगी' एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीश चढ़ाने कौन चलेगा !

[कवयित्री—श्रीमती सुदर्शन बाहरी एम. ए. अम्बाला छावनी (आजकल नीलोखेड़ी करनाल में हैं) १९५४ ई.]

यह डगमगाती भारत नैय्या, उस पार लगाने कौन चलेगा।
डूब गई जब यह नैय्या तो उसे बचाने कौन चलेगा ॥

घनघोर घटाएं छाएंगी, आंधी तूफान लाएंगी।
उस गड़गड़ तड़तड़, गर्जन में, रक्षा करने कौन चलेगा ॥

जर्जर भारत जीवन नौका, जब बीच भँवर बह जाएगी।
उस प्रबल आंधी के झोंकों में फिर रक्षा करने कौन चलेगा ॥

जब मूक वेदनाएं झुक-झुक कर चरण चूमने आऐंगी।
उपवन में पतझड़ छाएगी मधुमास मनाने कौन चलेगा ॥

भारत के भूखे बच्चों की जब हड्डी-हड्डी रोएगी।
आंसू की बहती धारा का प्रवाह रोकने कौन चलेगा ॥

जब धन अन्न के अभाव में सब तड़प-तड़प मर जाएंगे।
उस दयनीय भारत भूमि पर फिर नीर बहाने कौन चलेगा ॥

रण में जब रणचण्डी की भैरवी तान ललकारेगी।
तब रणचण्डी की ज्वाला में, बलिदान चढ़ाने कौन चलेगा ॥

वीरों की इन हुँकारों से आकाश पाताल थर्राएगा।
रण में केसरी बाना पहिने, तलवार उठाने कौन चलेगा ॥

माता की लोरी कानों में जब मधुर गीत भर जाएगी।
भगिनी के रक्षाबन्धन की तब लाज बचाने कौन चलेगा ॥

जल-थल में पृथ्वी नभ पर जब बन्देमातरम् लहराएगा।
तब आज़ादी के गीतों से जयहिन्द बुलाने कौन चलेगा ॥

प्रकृति अभिनन्दन छूटेगा, वायु का स्पन्दन टूटेगा।
जब सब का धैर्य्य छूटेगा, तब धीर बंधाने कौन चलेगा ॥

पाँवों में कांटे चुभ-चुभ कर पीड़ा का भेद बता देंगे।
तब उन का चिर सौहाग, बिन्दु सिन्दूर लौटाने कौन चलेगा ॥

लाखों ही अनाथों की लाशें, जब गलियों में बिछ जाएंगी।
तब सूनी कब्र समाधि पर फिर दीप जलाने कौन चलेगा ॥

कौन हथेली पर, अपने जीवन की होड़ लगाएगा।
मरने से पहिले मृत्यु में, नवजीवन पाने कौन चलेगा ॥

कौन देश जाति पर अपना जीवन रक्त बहाएगा।
आज़ादी की वेदी पर, निज शीश चढ़ाने कौन चलेग ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बाला छावनी में १४ सितम्बर १९५५ में किए गए भोज कवि दरबार का एक दृश्य

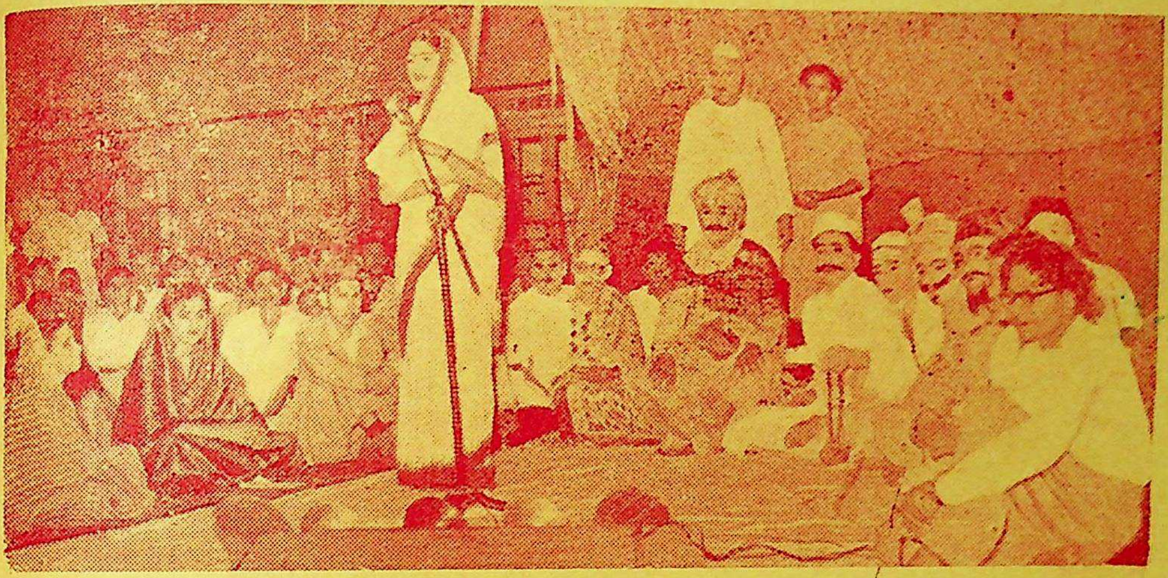

श्री भगतराम जी शुक्ल राजा भोज के आसन पर विराजमान हैं। दांई ओर कोने में श्री प्रो० मधु प्रसिद्ध हिन्दी कवि, भोज कवि दरबार का अभिनय करा रहे हैं। आज कल आप सपत्नीक मास्को में हिन्दी रेडियो एनाउन्सर हिन्दी शिक्षक तथा समाचार विस्तार का कार्य कर रहे हैं। विविध व्यक्ति सूर, तुलसी, कबीर, भूषणादि कवियों के अभिनय वेश में बैठे हैं। शान्ताकुमारी बी. ए. आनर्स गांधी कालेज, अम्बाला छावनी सुभद्रादेवी चौहान की, "खूब लड़ी मर्दानी, झाँसी वाली रानी" कविता पढ़ रही हैं। जनता समुद्र, कविता की विविध लय तानों के साथ तरंगित हो रहा है।

श्री सत्यपाल जी गुप्त, पटियाला

प्रिंसिपल हरबंश लाल जोशी
महात्मा हंसराज हाई स्कूल भटिण्डा

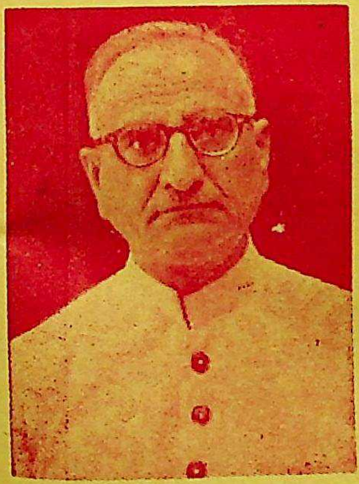

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उपप्रधान

भू० पू० प्रधान पैप्सू हिन्दी सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री स्वामी केशवानन्द जी एम. ए.

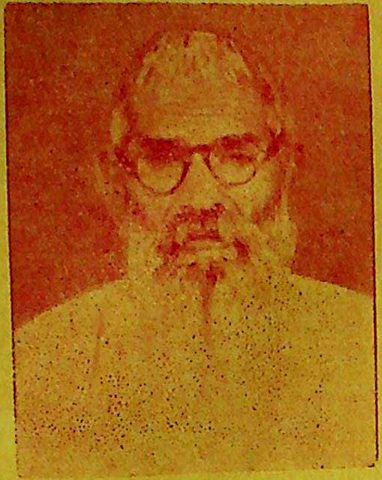

साहित्यसदन अबोहर के संस्थापक

साहित्य सदन अबोहर का विशाल भवन

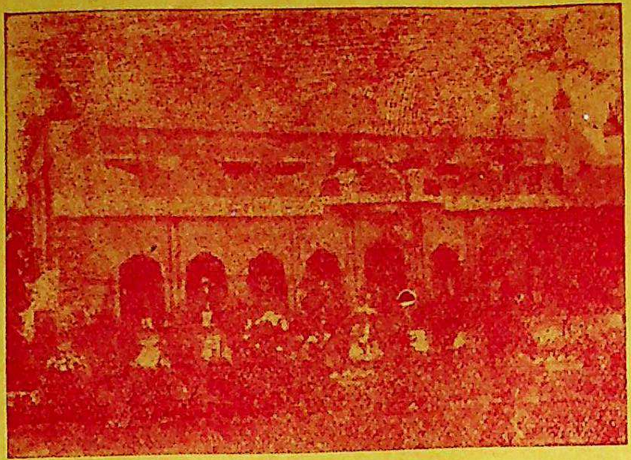

श्री तेगराम जी भू० पू० एम. एल. ए.

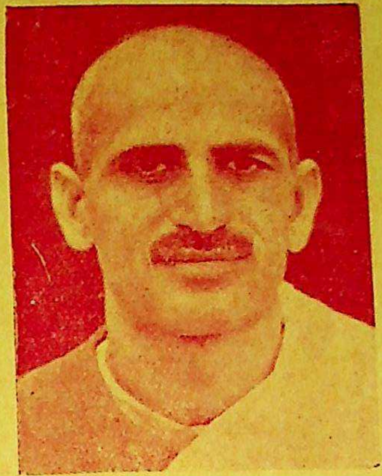

स्वामी केशवानन्द जी के दाएँ हाथ
अनथक हिन्दी प्रेमी

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के अमृतसर में १९५४ में हुए वार्षिक अधिवेशन का एक दृश्य

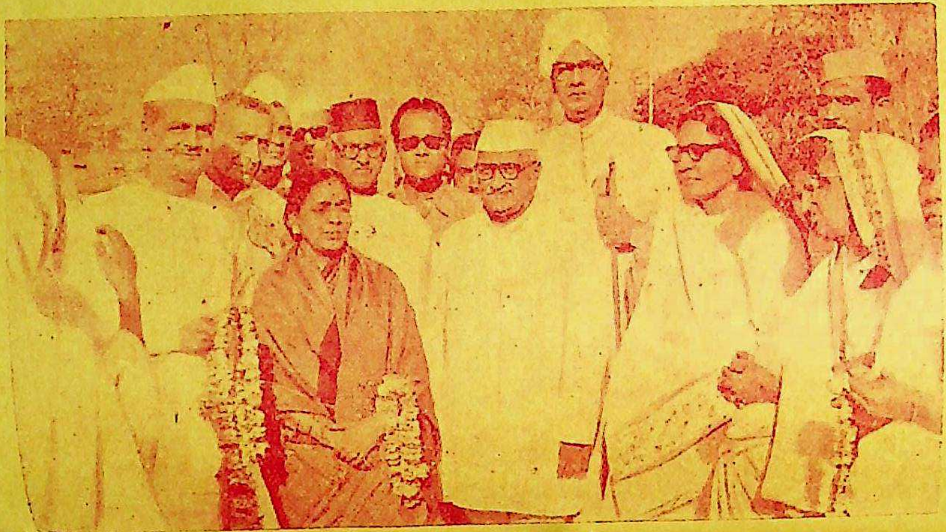

उद्घाटनकर्त्ता—
बाईं ओर खड़े हुये
स्वर्गीय श्री मावलंकर तथा
उनके पास श्रीमती मावलंकर

सभापति—
स्व० डाक्टर सत्यपाल जी
स्पीकर विधान सभा
उनके पास
श्रीमती शन्नोदेवी जी
स्वागताध्यक्ष

श्री सुनामराय जी एम. ए.

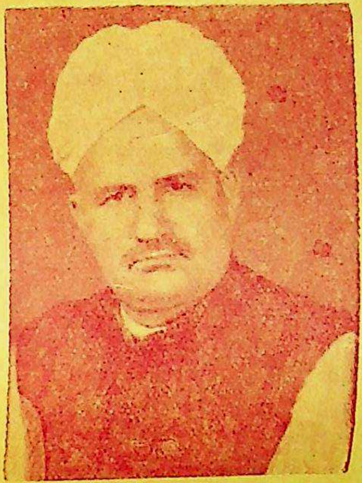

पंजाब के हिन्दीप्रेमी देश-भक्त पत्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हरिकृष्ण प्रेमी :

(जन्म सम्वत् १९६५)

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' का जन्म-स्थान ग्वालियर राज्य का गुना नामक स्थान है। बचपन से ही उनकी प्रवृत्ति कविता लिखने की ओर रही है। वस्तुत: उनकी अंतर्वेदना ही काव्य के रूप में अपने आप फूट पड़ी है। कविता की देन उनको प्रकृति से मिली है।

प्रेमी जी की माता का देहांत उनकी तीन साल की आयु में ही हो गया था, उन्हें बचपन से ही एक अभाव अपने जीवन में प्रतीत हुआ जिससे वह हाहाकार कर उठा। वही हाहाकार 'कविता' बन गया।

प्रेमी जी ने हृदय की मर्म-व्यथा, देश-प्रेम, छायावाद और रहस्यवाद, सभी कुछ अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। उनकी "आंखों में" पुस्तक में हृदय की मर्म-व्यथा बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित की गई है। उनकी 'स्वर्ण-विहान' नामक नाटिका, जो ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा ज़प्त हो गई, देश-प्रेम-संबंधी उत्कृष्ट कथानक है, 'जादूगरनी' पुस्तक छायावाद का और 'अनंत के पथ पर' काव्य रहस्यवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। अब उनकी वेदना ने उग्र रूप धारण किया है और वे क्रांतिमयी भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएं लिखते हैं जिनका संग्रह 'अग्निगान' नाम से है। कवि के साथ ही वे सफल नाटक-कार भी हैं उनके रक्षा-बंधन शिव-साधना, प्रतिशोध और आहुति नामक नाटकों का अच्छा स्वागत हुआ है।

अनुभूति की गहराई, प्रवाह, और भाषा की सरलता उनके काव्य के विशेष गुण हैं। उनकी अपनी मौलिक भावनाएँ हैं, मौलिक शैली है। वह अनेक वर्षों तक लाहौर में ही रह कर साहित्य साधना करते रहे हैं आजकल आल इंडिया रेडियो में काम कर रहे। १९४७ ई० से पहले लिखी गई उनकी एक प्रसिद्ध मार्मिक 'रक्षा बन्धन' कविता नीचे अङ्कित की जाती है।

रक्षा बन्धन

बहन, बाँध दे रक्षा-बंधन मुझे समर में जाना है।
अब के घन-गर्जन में रण का भीषण छिड़ा तराना है।
दे आशीश जननि के चरणों में यह शीश चढ़ाना है।
बहन, पोंछ ले अश्रु गुलामी का यदि दुःख मिटाना है।
अंतिम बार बाँध ले राखी, कर ले प्यार आखिरी बार—
मुझ को, ज़ालिम ने फांसी की, डोरी कर रक्खी तैयार ॥ १ ॥

रक्षा, रक्षा कायरता से, मर मिटने का दे वरदान।
हृदय-रक्त से टीका कर दे, कर मस्तक पर लाल निशान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जीवन का स्रोत आज कर मेरे मानस में संचार।
काँप न जाऊँ देख समर में रिपु की बिजली-सी तलवार।

अपना शीश कटा जननी की, जय का मार्ग बनाना है।
बहन, बाँध दे रक्षा-बंधन, मुझे समर में जाना है ॥ २ ॥

जिसने लाखों ललनाओं के पोंछ दिए सर के सिंदूर।
गड़ा रहा कितनी कुटियाओं के दीपों पर आँखें क्रूर।

वज्र गिराकर कितने कोमल हृदय कर दिए चकनाचूर।
उस पापी की प्यास बुझाने, बहन, जा रहे लाखों शूर।

मृत्युविटप की शाखा पर मैं, डाल हिंडोला झूलूँगा।
दो पैंगों में अमरलोक की, अंतिम सीढ़ी चूमूँगा ॥ ३ ॥

बहन, शीश पर मेरे रख दे स्नेह-सहित अपना शुभ हाथ।
कटने के पहले न झुके यह ऊँचा रहे गर्व के साथ !

उस हत्यारे ने कर डाला, अपना सारा देश अनाथ !
आश्रयहीन हुई यदि तू भी, ऊँचा होगा तेरा माथ !

दीन भिखारिन बन कर तू भी, गली-गली फेरी देना !
'उठो बंधुओ, विजय-वधू को, वरो तभी निद्रा लेना !!' ४ !!

आज सभी देते हैं अपनी बहनों को अमूल्य उपहार !
मेरे पास रक्खा ही क्या है आँखों के आँसू दो-चार !

ला, दो-चार गिरा दूँ, अपना अंचल विमल पसार !
तू कहती है, 'ये मणियाँ हैं इन पर न्योछावर संसार !'

बहन, बढ़ा दे चरण-कमल मैं, अंतिम बार उन्हें लूँ चूम !
तेरे शुचि स्वर्गीय स्नेह के, अमर नशे में लूँ अब झूम !! ५ !!

जिस कर में अब बाँध रही है तू अपनी राखी के तार,
उसे हृदय पर रख देना तू मुझे चिता पर रखती बार !

'मृत्यु गुलामी से सुन्दर है, कायरता से शुभ संहार !'
अपनी राखी के तारों में, बहन, यही भर दो झंकार !

कभी इसी राखी के धागे, पर कट गए हजारों शीश !
इस धागे की लाज रखूँगा, दे बहना, मुझको आशीश !! ६ !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री उदयशंकर भट्ट :

(जन्म संवत् १९५५)

पंजाब के लाहौर नगर में निवास करने वाले साहित्य-सेवियों में पंडित उदयशंकर भट्ट का कवि और नाटककार के रूप में अपना अलग स्थान है। न केवल पंजाब बल्कि सारे हिंदी जगत में आप का नाम प्रसिद्धि पा चुका है।

आप हिंदी और संस्कृत के विद्वान् हैं इस लिए आपकी कविताओं में भी पांडित्य का प्रभाव पड़ता है। पहले आपकी भाषा कुछ जटिल और संस्कृतमयी होती थी, किंतु अब उर्दू शब्दों का प्रयोग भी बहुलता से होने लगा है।

भट्ट जी बहुत पहले से हिन्दी भाषा की साधना कर रहे हैं। आपने प्राचीन दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन किया है, इस लिए आपकी प्रारंभिक रचनाओं में दार्शनिक भाव बहुलता से पाए जाते हैं। उन रचनाओं में कहीं-कहीं रहस्यवाद नज़र आता है। किन्तु अब भट्ट जी की मनोवृत्ति में ज़माने की गति के अनुसार परिवर्तन हुआ है और सर्वसाधारण के हृदय को व्याकुल रखने वाला असंतोष अब आपकी रचनाओं में हाहाकार करने लगा है।

आपके "राका" और "विसर्जन" नाम के दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त "विश्वामित्र", "मत्स्यगंधा" नाम की दो भिन्नतुकांत गद्य-नाटिकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। तक्षशिला नाम का एक खंडकाव्य भी छपा है। देश विभाजन के बाद आप आल इंडिया रेडियो में काम कर रहे हैं। १९४७ ई० से पहले लिखी गई आपकी एक कविता नीचे अङ्कित की जाती है।

कवि के साथ ही आप नाटककार भी हैं।

जगत् की उथल पुथल

अरे, फेंक दो सुधा रसीली, मैं अब विष पीने आया हूँ।
किसी नशे की चाह नहीं, पी सर्वनाश, जीने आया हूं।
भड़क-भड़ककर आग जगत् की पल को पीकर बढ़ती जाती।
किसी सृजन के लिए नाश के सोपानों पर चढ़ती जाती॥

संचित मलयानिल से जिसने कलि के अधरों को खोला था,
रजनी के उन्मुक्त हृदय से जीवन जहाँ फूट बोला था।
जिसने सुख के मंदिर जीत में आशा का आसव घोला था,
जहाँ बड़ों ने गिरे हुए के क्रंदन से निज यश तोला था॥

वहां आज यह उथल-पुथल क्यों वहाँ जली क्यों दावानल है।
अंधा भी यह देख रहा है 'ऊँचे' की आँखों में जल है।
चिनगारियाँ तुच्छ सी उड़ क्यों नभ में आग लगाने चल दीं।
और चटक कर घास, फूँस, तरु के अरमान जलाने चल दीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज काँप क्यों रही महल की नभ-चुंबी यह शान न जाने !
आज झोंपड़ी के आगे क्यों मूर्छा से अरमान न जाने।
आज हिमालय से भी ऊँचे किसके जागे पाप न जाने !
डगमग हुआ नियति का आसन देखा क्या अभिशाप न जाने !

कौन पुकार रहा ऊँचे को 'नीचे आओ, नीचे आओ।'
कौन कह रहा है स्वामी से, 'मेरे पैरों पर गिर जाओ।'
कौन कह रहा है सिंहासन लकड़ी के कुछ सुन्दर टुकड़े ?
कौन कह रहा है कानों में 'नृप के पैर धरा से उखड़े।'

बढ़ता ही जाता कोलाहल गिरता क्यों जाता है 'ऊँचा' ?
उठता क्यों जाता है 'नीचा' क्या हो गया समूचा !
क्या अंबर के सभी गर्व मिल इसे धूल में मिला सकेंगे ?
क्या विभूति के शतशत बल मिल पीड़ा-पर्वत हिला सकेंगे ॥

समय हुआ क्या अश्रुबिन्दु में सागर समा जायेंगे सारे।
व्यथित हृदय की आहों में हो राख रहेंगे दिनकर, तारे,
समय हुआ क्या आज धर्म को आडंबर से हटना होगा !
और रूढ़ियों का, भविष्य की पावक में जल मिटना होगा !

समय हुआ क्या विषम हटाकर सम की लय पर गाना होगा !
या वैभव को महानाश में नाम शेष हो जाना होगा !
देखो, सब विश्वास जगत् के एक फूँक में उड़े जा रहे,
देखो, सब जीवन परिवर्तन की लहरों से जुड़े जा रहे।

दिवस, दिवस भी जले जा रहे रजनी के लघु अंगारों से।
और मरण भी लगे उगलने जीवन अपने उपचारों से।
भू-विस्फोट, मेघ-गर्जन, औ सर्वनाश हमसे कह जाते,
'महामरण' में महासृजन का क्या तुम कोई तार न पाते।'

आज देह भी उपादेय है आज गरल मेरा जीवन है !
आज प्राण की विकल मूर्छना नए काव्य का आवाहन है।
आज धूल में बीज मिलाना कल के कल्पद्रुम का फल है।
आज जगत् की उथल पुथल में छिपा हमारा सुन्दर कल है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतसर में हिन्दी सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के समय हुए कवि सम्मेलन का एक दृश्य

पंजाब के प्रसिद्ध हास्य रस कवि श्री देवराज दिनेश कविता पढ़ रहे हैं।

मैंने वह दीपक देखे हैं

मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं।
वह नदियाँ देखी हैं जिनमें, कहने को रह गई रवानी।
वह जवान देखे हैं जिनकी, धूमिल-सी हो गई जवानी।
देखे सुमन अनेकों जिन पर कभी न भौंरे मँडराते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥
वह रातें देखी हैं जिनमें, नहीं रही तारों की छाया।
वह शव भी देखे हैं जिन पर कभी न कोई रोने आया।
उनको देखा ! प्रिय प्रिय कहते, जिनके प्राण निकल जाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥
वह आँखें देखी हैं जिनका, वह बह सूख गया है पानी।
कभी भूल से चार हुईं थीं, और कर गईं थीं नादानी।
ढूंढ रही अब पन्थ निरन्तर-किन्तु न प्रियतम मिल पाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥
मधुर अधर देखे थे जिन पर, कभी न आई स्मित की रेखा।
पैदा होने से पहले ही, मरा हुआ शिशु मैंने देखा।
वह दिल भी देखे हैं-जो जिन्दा ही मुर्दा कहलाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार कह कर प्रिय अपना, देख रही है उसका सपना।
मैंने जीवन में देखा है अलि! उस दीवानी का तपना।
उनको देखा सोते में ही, छोड़ जिन्हें साजन जाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥

वे भग्नावशेष देखे हैं, केवल अब कहने को गाथा।
कभी गगन को चूम रहे थे, गौरव से ऊँचा कर माथा।
अब गीदड़ रहते हैं उनमें, उल्लू यहाँ गीत गाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥

कभी यहां रहती थी सुन्दर, परियाँ जैसे राजदुलारी।
ऊपर से देखा करते थे, तारे सूरत प्यारी प्यारी।
अब झांका करते हैं तो फिर बैठे चोर नज़र आते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥

उनको देखा जिनको जग में जीने का अधिकार नहीं है।
उनको देखा जिनसे जग में करता कोई प्यार नहीं है।
जो औरों को अपना बतलाते बतलाते मर जाते हैं।
मैंने वह दीपक देखे हैं, जिन पर शलभ नहीं आते हैं॥

(१९४७ ई० से पहले लाहौर में रहते हुए गाई गई थी)

कितनी रँगीली है!

रश्मि—वेला आज की कितनी रंगीली है।
किरण जगमग नाचती-सी, उतरती भू पर।
स्वर्ण-सा बिखरा लजीला-नीला अम्बर पर।
पवन ने भी आज कितनी गंध पीली है।

इन सघन अमराइयों में, मंजरी डोली।
तड़पती—सी बावली—सी, कोकिला बोली।
भ्रमर दल की प्यास भी मद—गंध—गीली है।
एक सिहरन सी तड़पती, आह तन-मन में।
फिर नया उन्माद जागा, आज जीवन में।
कामना प्यासी बनी कितनी सजीली है।

(१९४७ ई० से पहले लाहौर में रची गई)

—प्रो० जयनाथ नलिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के संस्मरण :

लेखक :—आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ कुलपति
महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार

है पुरानी बात, बीसियों, पचासों वर्ष की पुरानी बात तब की, जब मैं नया नया पंजाब में गया था। होगी कोई १८६८ की बात। मैं अपने साथियों के साथ आर्यसमाज जालन्धर नगर में बैठा था—दिन के दो बजे होंगे एक जाट हुशियारपुर की तरफ़ का आया और बोला—

जाट इस लिफ़ाफ़े दे उत्ते शास्त्री विच पता लिख दे, तैनूं शास्त्री आवंदी है?

(इस लिफाफे पर शास्त्री में पता लिख दे। तुझे शास्त्री तो आती है।

मैं—क्या शास्त्री (संस्कृत) में पता लिख दूं। सस्कृत में पता लिखने से क्या फायदा?

जाट—मैं कहना! शास्त्री विच पता लिख दे।

तैनूँ शास्त्री आवंदी नहीं?

मैं हैरान रह गया कि यह संस्कृत में क्यों पता लिखाना चाहता है। मैंने साथियों से पूछा कि यह क्या बात है। साथियों ने मुझे बतलाया कि इधर हिन्दी को ही शास्त्री कहते हैं। मैं खूब खिलखिलाया और उस जाट के लिफाफे पर हिन्दी में पता लिख दिया तब वह प्रसन्न हुआ, पता था किसी फौजी जाट का, जो पूने में मिलिटरी में नौकर था।

मैं—यह पता शास्त्री में क्यों लिखवाया।

जाट—यह चिट्ठी पूने जायगी, जहां उर्दू नहीं जानते शास्त्री में पता लिखने से ठीक पहुँच जायगी।

मैं—वहां कौन रहता है पूने में।

जाट—इक साडे पिंड दा आदमी फौज विच नौकर है।

मैं—तू क्या करता है।

जाट—मैं बी ओथे ही सां। तैनूं मरहटी आवंदी है?

मैं—मैं उधर का ही रहने वाला हूं।

फिर वह जाट मरहटी में बोलने लगा और मुझे भी थोड़ा सा आनन्द मिला।

* * * *

जब मैं लाहौर में था १८६४ से १८६८ तक तब स्कूलों में हिन्दी पढ़ने वालों की बहुत कमी थी। अन्य स्कूलों में तो नहीं के बराबर थे। हिन्दी पढ़ने वाले छात्र अधिक संख्या में मास्टर दुर्गाप्रसाद जी के दयानन्द हाई स्कूल में थे अथवा महात्मा हंसराज के डी० ए० वी० स्कूल में थे।

उस समय हिन्दी के सम्बन्ध में छात्रों में यह बात मशहूर थी कि पण्डित भानुदत्त नामक एक पण्डित हिन्दी के परीक्षक हैं। वे बड़े दयालु हैं। चाहे परीक्षा पत्र में खाली राम राम ही लिख कर आओ तो भी पास कर देते हैं। हिन्दी की प्रेरणा में पं० भानुदत्त जी का नाम भी सहायक रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

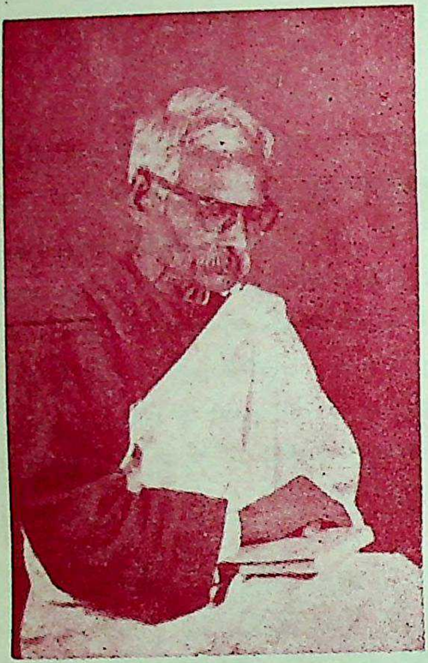

आचार्य नरदेव जी

कहाँ वह १८६४ कहाँ वह १८६८ और कहाँ आज १६५७ बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। मानना पड़ेगा कि इस परिवर्तन का बड़ा कारण आर्य समाज के सैंकड़ों स्कूल कॉलेज, कन्या पाठशालाएँ, कन्या महाविद्यालय हैं जिनमें हिन्दी अपरिहार्य रूप में पढ़ाई जाती थी।

दूसरा बड़ा कारण स्वयं आर्य समाज है जिस में सब कार्य हिन्दी लिपि में होते थे। व्याख्यान उपदेश आदि सभी हिन्दी में होते थे।

पीछे आर्य समाज के मुकाबले में सनातन धर्म सभा आई, उसने भी आर्य समाज का ही ढर्रा अपनाया।

तीसरा बड़ा कारण पंजाब की हिन्दी परीक्षाएं थी। इन परीक्षाओं को पंजाब की कन्याओं देवियों ने अपनाया और परिणाम यह हुआ कि पंजाब के हिन्दुओं के घर में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि घुस गई। हाँ सिक्ख हिन्दी को छूते तक नहीं थे। आज पंजाब में हिन्दू कन्याएं हिन्दी रत्न, हिन्दी प्रभाकर सहस्रों की संख्या में है।

आप किसी पंजाबी हिन्दू से पूछते कि महाशय जी आप हिन्दी (शास्त्री) जानते हैं तो वह यही कह देता था कि 'मैं तां नहीं जानदा, साडी धर्मपत्नी जाणदी है।'

वह इस बात के कहने में गौरव अनुभव करता था। पिछले ७०–७५ वर्षों में जब से पंजाब में आर्य समाज की स्थापना हुई और पंजाब में सर्वत्र आर्य समाज की शाखाएं खुली तभी से यह ज्ञात होने लगा था कि पंजाब की वीरभूमि फिर आर्य भूमि बनने लगी हैं।

जब हम पंजाब में थे तब आर्यसमाज के अखबार या तो अंग्रेजी में निकलते थे अथवा उर्दू में निकलते थे। पत्र उर्दू के थे किन्तु इनके द्वारा भी हिन्दी शब्दों का, मुहावरों का अच्छा प्रचार हुआ जिससे सर्वसाधारण में हिन्दी चल गई। यह कहिए कि लिपि उर्दू के रहने पर भी भाषा हिन्दी रहती थी।

सबसे पहिले महात्मा मुन्शीराम ने अपने सद्धर्म प्रचारक को हिन्दी किया किन्तु वे उसको हरिद्वार ले आये। फिर सद्धर्म प्रचारक बन्द होकर उसके स्थान में सत्यवादी निकलने लगा था। कुछ काल पश्चात् बन्द होगया। महाशय कृष्ण का वह उर्दू प्रकाश भी बन्द होगया अब 'हिन्दी प्रकाश' चलता है मासिक रूप में पर उसका प्रचार नहीं हैं। आर्य गजट उर्दू अब भी जालन्धर में किसी प्रकार सांस ले रहा है। उसका हिन्दी आर्य जगत् चल रहा है। प्रतिनिधि सभा का 'आर्य' भी चल रहा है। जालन्धर से वीर अर्जुन (हिन्दी) और हिन्दी मिलाप दैनिक भी चल रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब प्रदेश के बटवारे के पश्चात् पंजाब का डी. ए. वी. कॉलेज और उसकी सैंकड़ों शाखा-प्रशाखाएं नष्ट हो गईं। नये पंजाब में फिर से स्कूलों, कॉलेजों, समाजों का निर्माण करना पड़ा। बटवारे की मार के पश्चात् अब कहीं पंजाब की कमर सीधी हुई थी कि अकालियों ने 'पंजाबी सूबे' का नारा लगाना प्रारम्भ किया-अकालियों को पंजाबी सूबा, तो नहीं मिला खालिस खालसा राज्य भी नहीं मिला—एक ही पंजाब रहा पर उसमें दो भाग हो गये, हिन्दी रीजन और पंजाबी रीजन। किसी प्रकार नीति बरतकर, गुरुमुखी की बात मानकर सिक्खों को प्रसन्न किया गया। यह हो ही रहा था कि आर्य समाज खड़ा हो गया, पंजाब के हिन्दू खड़े हो गये और सात मास से इस बात पर डटे हुए हैं कि पंजाब के हिन्दू अथवा हरियाना आदि के हिन्दुओं पर गुरुमुखी क्यों लादी जा रही है।

पंजाब में आर्य समाज के प्रचार और प्रभाव के कारण पंजाबी भाषा के रहते भी हिन्दी दूसरी मातृभाषा बनने लगी थी। आर्यों के बच्चे पीढ़ी दर पीढ़ी हिन्दी के अभ्यस्त होने के कारण फिर अशक्त, अपूर्ण गुरुमुखी को आडा-ईडी नहीं पढ़ना चाहते। हां यदि भाषा कोई हो पर देवनागरी लिपि अपनाई जाय तो यह झगड़ा मिट सकता है, झगड़ा मिटाने का इससे अधिक सुगम उपाय नहीं दिखलायी पड़ रहा है।

आश्चर्य और परमाश्चर्य कि काल कराल ने एक पंजाब के दो पंजाब किये। पश्चिमी पंजाब तो हिन्दी विहीन हो गया और रहे सहे पूर्व पंजाब के भी दो विभाग हो गये एक हिन्दी विभाग दूसरा पंजाबी विभाग। अब आगे क्या होता है कालके गर्भ में है—

स्वराज्य के आते ही, स्वभाषा का प्रश्न खड़ा हो गया। साथ राजभाषा का भी प्रश्न खड़ा हो गया। और हिन्दी (देवनागरी लिपि) राजभाषा घोषित हो गई। अब चाहे किसी प्रदेश वालों की मातृभाषा कोई भी हो, हिन्दी को पढ़ना ही पड़ेगा।

भारत में सर्वत्र हिन्दी में राजकाज चलाने के लिए १५ वर्ष नियत हुए थे, दक्षिण के लोग कहते हैं कि और मियाद बढ़ाओ। हिन्दी आयोग कहता है १९६५ तक हिन्दी में, सब काम काज प्रारम्भ हो। मद्रास आदि के लोग कहते हैं १९९० तक कर दो। इस तरह झमेले चल ही रहे हैं।

सारांश मैं पंजाब में १८६४ में आया था। पंजाब आने के पूर्व पिता जी ने हम को हिन्दी की ५ पुस्तकें पढ़ाई थीं—उस समय की हिन्दी और आजकल की छलांग मार मार कर चलने वाली हिन्दी में बड़ा अन्तर है।

उस समय की हिन्दी पर उर्दू की छाप थी तो आजकल की हिन्दी अपनी दादी की दादी संस्कृत-भाषा की ओर दौड़े जा रही है। किन्हीं किन्हीं को यह भी अखर रहा है। चहुँ ओर से उर्दू का उच्चाटन हो रहा है और ऊर्दू वाले फिर उसको पुराना स्थान दिलाने की चिन्ता में है, अंग्रेजी भी अब वह पुरानी अंग्रेजी कहां रही है? फिर भी जिनके हाथ में शासन है वे अंग्रेजी को वरदान देने के लिए कटिबद्ध हैं कि 'अभी हम बैठे हैं, अभी कई वर्ष भारत में खुलो तरह विचरो"—चाहे ये वरदान भले ही दे देवें, अंग्रेजी अपने स्थान से बहुत कुछ नीचे खिसक गई और खिसक रही है। शम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी रत्न–हिन्दी प्रभाकर परीक्षाओं का प्रारम्भिक रूप तथा प्रथम पाठ विधि

हिन्दी के प्राचीन प्रेमी और नागरी के प्रबल प्रचारक स्वर्गीय बाबू नवीनचन्द्रराय जी के अविश्रान्त उद्योग से सन् १८६४ ई० में सर्व गुण आगरी नागरी एवं हिन्दी भाषा को पंजाब यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान मिला। और जितना समय बाबू जी का सम्बन्ध पंजाब यूनिवर्सिटी से रहा तब तक तन मन धन से वह हिन्दी की उन्नति और प्रचार करते रहे। पर खेद है कि इनके लाहौर से चले जाने के पीछे हिन्दी के प्रचारार्थ विशेष रूप से किसी ने भी आन्दोलन नहीं किया इसी से आज दिन हिन्दी परीक्षाओं की विशेष उन्नति और प्रचार नहीं हुआ।

पाँच छः वर्षों से मैं हिन्दी परीक्षाओं के प्रचार में निरन्तर लगा हुआ हूं। इनके प्रचारार्थ समय समय पर हिन्दी के प्रसिद्ध २ समाचार पत्रों में मैंने लेख भी छपवाए हैं, और इससे बहुत कुछ सफलता भी हुई है परन्तु यूनिवर्सिटी के प्रास्पेक्टस (नियमावली) अंग्रेजी में होने से और परीक्षाओं के (कोर्स) पाठ्य पुस्तकें, लखनऊ. प्रयाग, काशी, बम्बई, कलकत्ता आदि भिन्न भिन्न स्थानों में मिलने के कारण तथा परीक्षा सम्बन्धी अन्यान्य बातें न जानने से सैकड़ों हिन्दी प्रेमियों की इच्छा होने पर भी "परीक्षा" नहीं दे सकते थे। अब यह पढ़ कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि, हिन्दी परीक्षाओं के (कोर्स) पाठ्य पुस्तकें एक ही स्थान पर मिलने का प्रबन्ध मैंने अमृतसर के पं० तीर्थराम जोशी, बुक्सेलर की दूकान पर कर दिया है। जिन्हें इच्छा हो वह वहां से मंगा सकते हैं। और विद्यार्थियों के लिये (हिन्दी कोचिङ्ग स्कूल) अर्थात् केवल हिन्दी परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें पढ़ाने के लिये (शाला) के प्रबन्ध में हूँ। जिन महानुभाव हिन्दी प्रेमियों की इच्छा हिन्दी परीक्षाएँ देने की हो, वह अब प्रसन्नता से दे सकते हैं।

हिन्दी प्रौफ़ीशेन्सी, परीक्षा का शुल्क (फ़ीस), ४) चार रुपये है और हाई प्रोफ़ीशेन्सी का शुल्क (फ़ीस) ७) सात रुपये। परन्तु इसके अतिरिक्त प्रथम नई नई परीक्षा देने वाले विद्यार्थी (छात्र) को रजिस्टर नम्बर अर्थात् नाम रजिस्ट्री करवाई २) रुपये अधिक देने पड़ते हैं। स्मरण रहे कि यह २) दो रुपये रजिस्टर्ड (फ़ीस) केवल एक ही वार देने होंगे।

पंजाब यूनिवर्सिटी की १ हिन्दी प्रोफ़ीशेन्सी, (योग्यता) और हाई प्रोफ़ीशेन्सी (उच्च योग्यता नामनी परीक्षाओं के लिए निम्न लिखित (कोर्स) पाठ्य पुस्तकें नियत हैं, परन्तु आवश्यकतानुसार "सिण्डीकेट" (पाठ्य निर्वाचन समिति) निम्न लिखित (कोर्स) पाठ्य पुस्तकों को अथवा इन में से किसी पुस्तक को "सैनिट" कि सम्मति से परिवर्तित (बदल) कर सकती है। और जिन पुस्तकों के साथ × ऐसा चिह्न है, वह "अप्राप्य" हैं अर्थात् अब मिलती नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण, छन्द, और अलंकार,	१. नवीन चन्द्रोदय—स्वर्गीय बाबू नवीन चन्द्ररायजी रचित, चारों भाग। धातु-विवेक और व्युत्पत्ति सम्बन्धी परिशिष्ट को छोड़कर	१म, पत्र
काव्य	२. तुलसी रामायण—स्वर्गीय गो० तुलसीदासजी, रचित, प्रथम ३काण्ड ३. सभाविलास-स्वर्गीय पं० लल्लूलालजी कवि रचित, (पद्य) समग्र,	२य. पत्र
नाटक	४. शकुन्तला नाटक—× श्रीयुत ला० बिहारीलाल वर्म्मा रचित समग्र. ५. मुद्राराक्षस नाटक—(ग० प०) स्वर्गीय भा० बाबू हरिश्चन्द्र जी अनुवादित.।	३य. पत्र
साहित्य	६. भारत मञ्जरी—× श्रीयुत ज्वालाप्रसाद जी रचित, समग्र. ७. दुर्गेशनन्दिनी—१म, और २य, भाग, स्वर्गीय बाबू गदाधरसिंह जी अनुबादित।	४र्थ, पत्र
विज्ञान (साइन्स)	८. चारुपाठ—१म. और २य, भाग, स्वर्गीय पौष्कर पं० भानुदत्त जीअनुवादित ९. आरोग्य नियमावली—जो मबादि उल-उल्म का अनुवाद है, समग्र	५म, पत्र
कम्पोजिशन (प्रस्ताव)	किसी विषय पर सरल, सरस, और मधुर हिन्दी भाषा में कम्पोजिशन अर्थात् निबन्ध, (प्रस्ताव) रचना करना आदि।	६ष्ठ पत्र

जो पुस्तकें अप्राप्य अर्थात् मिलती ही नहीं उनके अभाव में निम्न लिखित पुस्तकें भी काम दे सकती हैं।

शकुन्तला नाटक—×के अभाव में. (शकुन्तला नाटक) स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह जी रचित
भारत मञ्जरी—×के स्थान में, (बाल महाभारत) पं० द्वारकाप्रसाद जी चतुर्वेदी रचित

हिन्दी २ हाई प्रोफीशेन्स, (उच्च योग्यता) नाम्नी परीक्षा के लिये निम्न लिखित (कोर्स) पाठ्य पुस्तकें नियत हैं और जिन पुस्तकों के साथ × ऐसा चिह्न है वह अप्राप्य हैं।

व्याकरण. छन्द, और अलंकार	१. नवीन चन्द्रोदय—स्वर्गीय बाबू नवीन चन्द्ररायजी रचित, चारों भाग। २. छन्दार्णव (भाषा छन्द)—स्वर्गीय भिखारीदास कवि रचित, समग्र, ३. व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी—स्वर्गीय प्रताप कवि रचित, समग्र.	१म. पत्र
काव्य	४. रसराज (काव्य)—स्वर्गीय मतिराम कवि रचित, समग्र, ५. तुलसी रामायण—स्वर्गीय गो० तुलसीदास जी रचित समग्र, ६. भाषा काव्य संग्रह—श्रीमान् महेशदत्त जी कवि संगृहीत समग्र, ७. बिहारी सतसई—स्वर्गीय बिहारीलाल जी कवि रचित समग्र,	२य, पत्र
नाटक	८. प्रबोध चन्द्रोदय नाटक—(ग० प०) स्वामी श्रीगोपालदास जी अनुवादित ९. उत्तर रामचरित नाटक—(ग० प०) लाला सीताराम जी बी० ए० अनुवादित। १०. रणधीर और प्रेम मोहनी नाटक- ×स्वर्गीय लाला श्री निवासदास रचित।	३य, पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाहोर के ट्रिब्यून १९४१ ई० में से उद्धृत :—

[पंजाब की वर्तमान भाषा की समस्या का हल ढूढ़ने में इससे सहायता ली जा सकती है।]

—सम्पादक

How to End Language Controversy

Deputation Meets Premier

Lahore, Feb. 13 1941 A representative deputation waited upon the Premier of the Punjab, Sir Sikander Hyat Khan, and the Education Minister, Mian Abdul Haye, in connection with the language controversy in the Punjab.

In the course of the representation, the deputationists said :—

The Hon'ble the Premier is reported to have informed some journalists. who approached him for a clarification of the position, that the agitation was unwarranted and unjustified and that there was no intention on the part of the Government to depart from the *status quo*.

This assurance has allayed the apprehensions of the Hindus and Sikhs, to some extent, but it is felt by them that this cryptic statement requires amplification. They feel that an enunciation of Government position in the matter, in absolutely unambiguous terms, should be made to allay the apprehensions of the communities vitally interested in the future of Hindi and Punjabi and the scripts. The undersigned made the following suggestions for the consideration of the Hon'ble the Premier and Government :—

(1) The *status quo*; which the Hon'ble the Premier has pledged himself to maintain. is as follows :—

गद्य काव्य	११. महाभारत—(भाषा-गद्य) हिन्दी (उद्योगपर्व) बाबू शरतचन्द्र सोम,	
	१२. पृथ्वीराज चरित—बाबू रामनारायण जी दूगड़ रचित,	…४र्थ, पत्र
विज्ञान	१३. चारुपाठ—३य, भाग स्वर्गीय पौष्कर पं० भानुदत्तजी अनुवादित,	
	१४. खेतीसार— ×श्रीयुत काशीनाथ खत्री अनुवादित समग्र,	…५म, पत्र
(साइन्स)	१५. प्राकृत भूगोल — ×पं० राधारमण चौधरी रचित समग्र,	
कम्पोज़ीशन	किसी विषय पर सरल, सरस और मधुर हिन्दी भाषा में कम्पोज़ीशन	
(प्रस्ताव)	निबन्ध— (प्रस्ताव) रचना करना आदि	…६ष्ठ, पत्र

जो पुस्तकें "अप्राप्य" अर्थात् मिलती नहीं उनके अभाव में निम्न लिखित पुस्तकें भी काम दे सकती हैं।

खेतीसार—×के स्थान में, (खेती विद्या के मूल सिद्धान्त) स्वर्गीय बाबू काशीनाथ खत्री रचित

प्राकृत भूगोल—×के अभाव में (प्राकृत भूगोल दर्शन) श्रीमान् पं० राधारमण चौबे रचित

पताः—जगन्नाथ पुच्छरत, एफ़० टी० एस०, अमृतसर, (पंजाब)

[२६ नवम्बर १९१४ को प्रकाशित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Punjab Education Code X Edition—the most authoritative piece of legislation in regard to Education—lays down the syllabus for primary classes. In the first three classes, *one and only one* modern Indian Language must be taught. This language may be Urdu, Hindi or Punjabi. Besides this language, children to be taught Arthmetic in the first class, and Arithmetic and Geography in the 2nd and 3rd class. Both these subjects do necessarily require the knowledge of a written language. As children are permitted to be taught only one language, it follows that the language in question must be the medium of instruction in these two subjects as well. A child who is taught Urdu does all his work in Urdu and, similarly, a child who reads Hindi or Punjabi has the whole of his instruction through Hindi or Punjabi. In the fourth and fifth classes, option is given to the pupils to take a second language on condition that, in such cases, Urdu must be one of the two languages. It is not obligatory for any child to take up a second language. Some more subjects are added to the course of instruction. If a child does not take up a second language, medium of instruction in his case continues unchanged as a matter of course. If he takes up a second language, it is possible that he may adopt this new language as the medium of instruction, but is extremely improbable that would do so. He cannot receive comparatively advanced instruction in 4 or 5 subjects in a language, which he is just trying to learn

The present position, therefore, is that a child can start his education with any one of these recognised languages, and that language is for him the medium of instruction in all that he reads, for the first three years, as a matter of necessity, and for the following years as a matter of convenience, almost amounting to necessity. So far as Primary Education is concerned, the Education Code recognised the three languages as of equal status and position.

EQUAL STATUS

Equal status of these languages is also very definitely recognised as media of the Vernacular Final Examination—the first public examination conducted by the Department of Education. Para 9 of the Government Notification No. 14222-X dated 30th July, 1934, runs as follows :—

"The examination may be taken through the medium of Urdu, Hindi or Punjabi, at the option of the candidate"

We request that the position, as outlined above, may be re-affirmed as Government position.

(2 Quite a large number of schools imparting primary education are maintained by religious organisations, and individuals concerned with them. The impulse is expected to stimulate charity and public work on a large scale when compulsion is introduced. The main object of the Bill is to liquidate illiteracy. This object cannot be realised unless that impulse referred to above, is harnessed and taken advantage of to the fullest possible extent. In order to achieve this end, it is neeessary that schools of all the three types be placed on the same footing so far as the recognition and grants-in-aid are concerned

This assurance will go a long way to allay the apprehensions that have been aroused.

(3) We do not desire to minimise the importance of developing unity and solidarity in the province as a whole. We submit, however, that any attempt at making one of the languages as the exclusive medium of instruction for boys schools will not achieve this end. It will, instead, aggravate the communal bitterness that

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

unfortunately, is already quite intense. The more practical way to secure the end is to make an attempt to bring children of all communities nearer, without wounding the self-respect of the communities and threatening their cultures. We beg to suggest the following measures :—

(a) All teachers working at present in primary schools should be required within a prescribed period of one year, to acquire good working knowledge of at least two scripts out of Urdu, Hindi and Gurmnkhi. This will mean a lot of economy and will remove a very great barrier in the way of unity.

(b) Arrangements should be made in all training institutions to impart a good working knowledge of all the three scripts and every pupil, and teacher must be required to acquire a working knowledge of at least two of them.

(c) The Government should consider the advisability of requiring all pupils at the middle stage to acquire some knowledge of second vernacular written in the appropriate script. Such a system obtains in U. P. and pointed attention to this was drawn by the Statutory Commission.

(d) In urban areas there are schools with considerable enrolments. They should be encouraged and, if necessary, enabled to have different sections for pupils desiring instruction through different languages. It is much better to have a school imparting instruction in two languages than having the segregate schools, each confining itself to one language. This need was stressed by the Statutory Commission in regard to the conditions prevailing in the Punjab

(e) In all schools maintained by local bodies a provision may be made to impart instruction in at least two scripts where there is a demand for it. The Kashmir State has decided that if 15 percent of pupils demand instruction in a particular language and script, a provision would be made for them. In some British India provinces a much smaller number is deemed adequate

(4) It is probable that many schools, particulrly in rural areas, will be mixed schools. Such schools may be regarded as girls' schools for the purposes of the Bill, provided the number of girl students is 25 per cent or more.

Lahore, Feb. 13. 1941. The Director of Information Bureau, Punjab has issued the following communique :—

A deputation of prominent Hindu and Sikh M.L.A s and educationists waited on the Hon'ble the Premier of the Punjab this afternoon and sought from him a clarification of the Government's policy in regard to the medium of instruction in schools which may be opened in future under the scheme of compulsory primary education in the province.

Among the members of the deputation were Sardar Jodh Singh, Principal, Khalsa College, Amritsar; Lala Diwan Chand, President, D. A. V College, Managing Committee, Lala Brij Lal, Inspector D. A. V. Schools; Rai Bahadur Mukand Lal Puri M. L. M.; Ch. Suraj Mal, M. L. A ; Sardar Joginder Singh Man, M. L. A ; Sardar Tara Singh, M. L. A ; Tikka Jagjit Singh, M L. A.; Sardar Gurbachan Singh. M.L.A ; S,B. Ujjal Singh, M.L A.; R.B Sohan Lal, M.L.A.; Sardar Keshmer Singh, Vice-Principal, Khalsa National College, Lahore; Sardar Shiv Dev Singh, Secretary, Sikh Educational Committee, Amritsar; and R B. Gopal Das, M.L.A.

The Hon'ble the Minister of Education and the Director of Public Instruction, Punjab, were also present.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Premier explained that it was a cardinal principle of the present Government's policy to adhere to 'status quo' where the conflicting claims and demands of different communities could not be settled by mutual agreement. Government had no intention of departing from this policy as far as the question of the medium of instruction in the schools of the province was concerned Compulsory primary education had been in force in various areas of the province since 1919 There were about 2,000 areas where the old Compulsory Primary Education Act never gave rise to disputes or complaints such as were now being put forward He assured the members of the deputation that the position under the new Punjab Primary Education Bill would remain exactly what it was under the old Act as far as the question of medium of instruction was concerned The Education Department had in the past considered applications for the opening of Urdu, Hindi and Gurmukhi schools at suitable centres on merits. Applications for the opening of such schools would continue to be judged by the same criteria and according to the same rules as had been applied in the past. There is an instance in which the Department had recognised a school in which the medium of instruction is Telugu,

As far as the statement made by the Hon'ble the Minister of Education in the Legislative Assembly that Urdu was the medium of instruction in the Punjab. the Premier explained that it would have given no cause for controversy because the statement was to be taken in general sense and subject to the modification made by the Education Minister himself aud repeatedly emphasised by the Premier that the 'status quo' was not to be disturbed Provision already existed for a certain amount of flexibility in the medium of instruction. There was no intention to alter it.

Lahore, Feb 13. 1941 Principal Diwan Chand has issued the following statement.

A deputation composed of the gentlemen named below waited upon the Hon'ble the Premier today at 3-30 p m in the Council Chamber : S. B. S. Ujjal Singh M.L.A., S. Jodh Singh, S. Kashmira Singh, S Shive Dev Singh, R B Lala Sohan Lal. M.L A , R B L Mukand Lal Puri, M.L.A , R. B. Gopal Dass, M L.A. R S. Chaudhry Suraj Mall, M L A , L Brij Lal, Inspector of Arya Schools, L. Dewan Chand, S Gurbachan Singh, M.L A , Tikka Jagjit Singh, M.L A and S. Tara Singh, M L.A , S. Jogindra Singh Man, M L A

Tha Hon'ble the Minister for Education, the Director of Public Instruction and the Director of Information Bureau were also present. The main object of the deputation was to seek clarification of the position of the Government in regard to the status of Urdu, Hindi and Punjabi as media of instruction for Primary Education

The Premier gave a patient hearing to the deputation and stated the position of the Government in the matter He said that after the speech of the Minister for Education he had stated on the floor of the House that in regard to these vernaculars the 'status quo' that is the position before the introduction of the bill would be maintained He had later repeated this assurance twice, and he repeated it now As coming from the Head of the Government, this assurance, and not any other statement, should be accepted as the last word in regard to Government position.

Poona, Jan. 12. 1941 At the annual session of the All-India Hindi Sahitya Sammelan held at Poona during the least week of December, 1940, the following resolution was passed regarding the Punjab Primary Education Bill.

The Sammelan also considers a duty to draw the attention of the Hindi -loving people of the Punjab towards their shortsightedness whicn is reponsible for this present misfortune. The sammelan is confident that if even now the Hindi public make Hindi the medium of instruction in their educational instructions and

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

fearlessly disregard this unjust policy of the Government, the Punjab Government will not dare oppose the strong will of the people for long.

The sammelan direct the standing committee to give special attention to this difficult problem of the Punjab and take proper action in this respect."

The resolution was proposed by Dr: Raghbir and seconded by Shri Uday Shanker Bhatt.

Lahore, Jan. 22, 1941. This meeting of the Executive Committee of the Arya Pratinidi Sabha, Punjab, protests most strongly and earnestly against the declaration of the Hon'ble Mian Abdul Haye, Education Minister, that Urdu alone will be the medium of instruction in the Punjab. In the opinion of this Sabha, Hindi and Gurmukhi also should be recognised and adopted as the media of instruction in the Punjab, if demanded by a sufficient number of persons living in a particular locality. Arrangements should, accordingly, be made for teaching Hindi and Gurmukhi in all the schools which may be started under the scheme of the Compulsory Primary Education Act," provided a sufficient number of students want it

Lahore, Jan. 12 1941. "Our struggle for the protection of Hindi and Gurmukhi is the first 'morcha' in our campaign against the Pakistan Scheme. If we lose here, through our carelessness or weakness, we would lose the first battle because the present move to do away with Hindi and Gurmukhi is a well designed step towards the establishment of Pakistan," said Lala Khushal Chand Khursand, President of the Arya Pradeshak Pratinidhi Sabha, whole presiding at a meeting in the Lajpat Rai Hall to night

The meeting was held under the auspices of the Punjab Aryan Youth Congress in connection with the Hindi Day celebrations

The meeting adopted a resolution, moved by Mr. Yash of the "Hindi Milap" condemning the declaration made by the Minister of Education in making Urdu the medium of instruction in schools in the Punjab and in giving a secondary place to Hindi and Gurmukhi. His Exeellency, the Governor of the Punjab was requested not to give assent to the Punjab Primary Education Bill.

The resolution was seconded and supported by Pandit Satya Vrat Vidyalankar Prof Abdul Majeed Khan, Prof Dewan Chand Sharma, Shrimati Sita Devi and Mr. Dev Chand Narang

Mr Bharati and others recited poems in Hindi

In accordance with the instructions of the Shromani Akali Dal and in order to lodge a vigorous protest against certain measures of the Punjab Government, the local Akali Jatha celebrated the "Protest Day" by holding a largely-attended public meeting in Guru Ka Bagh last night.

The meeting adopted three resolutions opposing the Gurdwara Act Amendment Bill, describing it as destructive of the democratic constitution of the S G P C. and declaring the intention of the Sikh Panth to make every sacrifice in order to end this measure, condemning the Punjab Primary Education Bill as it suppressed the claims of Hindi and Gurmuukhi, condemning the action of the Sargoda authorities for the lathi charge on the Sikh procession and expressing sympathy with the arrested Sikh workers.

Lahore, Dec. 18, 1941. To consider the situation arising out of the passage of Primary Education Bill in the Punjab Legislative Assembly, a meeting of the Executive Committee of Punjabi Provincial Sabha was held under the presidentship of R. B. Durga Dass, Advocate Amritsar Jan. 14, 1941.

It was resolved that the passage of Primary Educalicn Bill was a challenge to the culture of Hindus and Sikhs and its object was to ruin Punjabi and Hindi literature in the province.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अरुण' की कविता :

लेखक—
श्री श्यामसुन्दर एम. ए. चावला ट्रिब्यून अम्बाला छावनी

पंजाब के उदीयमान कवि 'अरुण' के "सवेरा और साया" का जैसा हार्दिक स्वागत साहित्यिकों द्वारा हुआ है उस से ज्ञात होता है 'अरुण' अब सार्वदेशिक कवि है। उस की कविताओं की मूल प्रेरणा युग-चेतना के अनुकूल होने से "सवेरा और साया" जनता का काव्य बन गया है। इन कविताओं में आत्म प्रकाशन कम, समाज-दर्शन अधिक हैं, इनमें व्यष्टि का अमंगलकारी स्वर नहीं, समष्टि का उद्घोष ही प्रकट है। प्रस्तुत लेख में 'अरुण' की कविता के कुछ प्रगतिशील तत्त्वों का दिग्दर्शन किया गया है।

—सम्पादक

× × × ×

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के साथ साथ साहित्यिक सरणियाँ भी बदलती रहती हैं। कवि और लेखक अपनी परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं और यह प्रभाव उनकी कृतियों में प्रकट हुए बिना नहीं रहता। कवि तो विशेष रूप से भावुक प्राणी होता है। उसके आस पास के दुःख दैन्य उस के मास्तिष्क पर अमिट छाप डालते हैं। और उसके मनोभावों का अभिन्न अंग बन जाते हैं। इसी अवस्था से ही प्रगतिशीलता का जन्म होता है। आत्मकेन्द्रित कृतियाँ न लिख कर सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार तथा समाज हित के लिए साहित्यसृजन करना ही सच्ची प्रगतिशीलता है। कम्युनिस्ट पार्टी के दल-गत-साहित्य (पार्टी लिटरेचर) की सृष्टि करना तथा मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, लाल सेना आदि के स्तवगान में ही प्रगतिशीलता की इतिश्री समझना भारी भूल है। सामाजिक विशृंखलताओं की ओर सजग रहना ही प्रगतिशीलता का मूलतत्त्व है। आज का कोई भी समझदार साहित्यिक छायावादी काल्पनिक दुनियाँ में नहीं रहता – उसकी कल्पना यदि, ऊँची उड़ती भी है तो बहुत शीघ्र लौट कर पृथ्वी का स्पर्श पा लेती है। आज का प्रत्येक वह लेखक जो केवल मनोविनोद के लिए कागज, कलम और स्याही का प्रयोग नहीं करता आस पास शाश्वत निर्धनता, रोग, भूख, घूँस शोषण अत्याचार, अनाचार तथा धूल धूसरित जीवन का चित्र उतारे बिना नहीं सकता। 'अरुण' की मान्यता है—"आज हम जिस युग में साँस ले रहे है" वह बड़ा ही विषाक्त है। कुछ लोगों के चाँद-चाँदनी, फूल और सुगंध के जीवन की अपेक्षा करोड़ों लोगों का धूल-धुआँ और दैन्य-दुर्गन्ध का जीवन ही आज अधिक सत्य है। कवि के सामने आज दो रास्ते हैं। या तो वह इस सामाजिक यथार्थ का ऐतिहासिक बोध प्राप्त कर प्रगतिशील सामूहिक चेतना को प्रकट करे और करोड़ों लोगों के दुःख, दैन्य और संघर्ष में उनका साथ दे या 'आत्म-प्रकाशन', 'कला' और 'अमर सौन्दर्य' के नाम पर प्रतिगामी शक्तियों को आत्म समर्पण कर जीवन को नरक बनाए रखे।" उसका कहना है कि 'आत्म-प्रकाशन' के नाम पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन की प्रच्छन्न वासनाओं की तृप्ति के लिए ही मार्ग निकाला जाता है। 'अरुण' आत्मकेन्द्रिता या चरमगति को साहित्य के लिए अमंगलकारी मानता है।

वैषम्य से उत्पन्न देश की आर्थिक करुण अवस्था से आज का सजग कवि आंखें कैसे मोड़ सकता है? देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् भी यह वैषम्य दूर नहीं हो पाया। आज जन मन का उल्लास नैराश्य में परिणत हो रहा है। इस वस्तु-स्थिति का अवसाद पूर्ण शब्द-चित्र 'अरुण' ने "सवेरा और साया" शीर्षक कविता में इस प्रकार खींचा है—

—"सोचते थे मित्र हे,
यह अमा की रात भागे गी, समेटे जाल अपना
और पूरब में होगा
वह सवेरा—
रात भर जिसकी प्रतीक्षा में विकल आँखें रही हैं,
हम अभागों की विकल आंखें रही हैं।
पर—क्षितिज पर
एक धूसर-वर्ण साया
रात के आवशेष-सा अब भी पड़ा है,
या कि फिर किस्मत हमारी अधजगी हो सो गई है।"

इसी कविता के नाम पर 'अरुण' का अपने संग्रह का नाम करण करना भी कवि की प्रगति शीलता का द्योतक है। उसे प्रेयसी के प्यार की अपेक्षा सामाजिक अन्याय को दूर करने की अधिक चिन्ता है जुल्म पर ही उसकी दृष्टि अधिक टिकती है। तभी तो वह कहता—

"सत्य है, प्रिय! प्यार का यह स्वर्ग तेरा।
सत्य ही रूप की चिर-प्यास हास-विलास नव नव,
किन्तु पीड़ा और क्रन्दन की य' धरती सत्य सब से।
मैं इसी से गीत इसके आज गाना चाहता हूँ।"

इतना ही नहीं, उसका तो कहना है—

"चाहता हूँ कान तेरे भी सुने यह मर्मघाती आज हाहाकार का रव
और आँखें भी या, ज़िन्दा जुल्म की दीवार देखें।
भूख, निर्धनता, गुलामी और शोषण के भयानक दृश्य ये सब!"

कवि प्रेयसी से प्यार न माँग कर यही चाहता है कि वह कहे—

"गा न मधु के गीत, कवि! मेरे लिए अब
आग बरसा—
ज़ुल्म की दीवार बह जाये पिघल कर।"

'अरुण' की "रिक्शावाला" शीर्षक कविता 'निराला जी' के "भिक्षुक" के टक्कर की है। जेठ की कड़कती दुपहरी और लपलपाती धूप में कलकत्ते के सदृश पिघलती हुई तारकोल वाली सड़क पर जब रिक्शेवाला नंगे सिर नंगे पैरों दौड़ता है तो पाठक का हृदय बरबस चीत्कार कर उठता है: वर्तमान आर्थिक व्यवस्था पर 'अरुण' की टिप्पणी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"थोड़े से पैसों के बदले मानव को ढोर बना डाला
नंगे सिर नंगे पैरों यह दौड़ा जाता रिकशावाला।"

'बेबसी' नामक कविता का चित्र देखिये—

"आह मेरी कोठरी यह सील बदबू से भरी
है जहां बैठा दुबुक कर यंत्र-युग का अंधकार !
एक नन्हा-सा दिया, वह—टिमटिमाता ही रहा
बेबसी पर मुस्कराता ही रहा !
आह ! वह भी बुझ गया !
तेल उस का चुक गया—
आज ही लाया जिसे था एक बनिए से उधार !!"

अन्तिम पंक्ति में कितना तीखा व्यंग है ! और कवि की कोठरी के बाहर।

"इस गली के मोड़ से कुछ दूर वह
कमकमों की जगमगाती है कतार"

इस पर यदि कवि कहे कि "वीणा की झंकार नहीं, अब झंझाराग मुझे भाता है" तो क्या आश्चर्य ! यदि उसे प्रलय और क्रान्ति सामने आती स्पष्ट दिखायी दे तो कौन सी बड़ी बात है ?

—'देख रहा हूँ इन्कलाब के आज कदम तेज़ी से बढ़ते।
देख रहा हूं लाखों और करोड़ों जीवन धारे चढ़ते।
देख रहा हूँ काँप रहे हैं गुम्बद, कलसे और मीनारें।
देख रहा हूँ ऊँचे ऊँचे महलों की गिरती दीवारें।
यह तूफानी बाढ़ किसी के रोके आज न रुक सकती है।

इस प्रकार 'अरुण' युग चेता कवि ही नहीं युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा कवि भी है। जन-गीत आज के प्रगतिशील काव्य का प्रमुख अंग है। 'अरुण' के अनेक जन-गीत युग-चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जैसे—

—"उठने को तूफान क्षितिज से,
सखि हमको भी चलना होगा।"

या—"आज करोड़ों पैर कर रहे जन-युग की अगवानी।"
अथवा—"ऊषा ने झण्डा झुला दिया।" इस शैली पर लिखी गई "सिपाही" शीर्षक कविता सामयिक युद्ध और शान्ति समस्या पर एक अनूठी रचना है। युद्ध-भूमि में बम-वर्षण तथा खन्दकों के भयानक जीवन के सजीव वर्णन के पश्चात् कवि सैनिक के मुखसे कहलवाता है—

कौन स्वार्थ ? हम खेल रहे हैं लोहे लोहू की होली ?
कौन स्वार्थ ? नर दाग रहा है नर के सीने में गोली ?
....
कौन स्वार्थ ? हम बम बरसाते हैं निर्दोष-नगर-जन पर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध, किसलिये युद्ध ? प्रश्न यह गूँज उठा उर अम्बर में···आधी रात मगर खन्दक उत्तर में कवि कहता है—

'चन्द बड़ों' की हित रक्षा में तोप टैंक, एटम तत्पर।
'चन्द बड़ों' की हित रक्षा में हम गुलाम हैं, सेवा-पर।
'धर्म' नाम पर हमें प्रतारित करती थी राजाशाही।
'राष्ट्र' नाम पर हमें प्रतारित करती अब पूंजीशाही।
आज समय है कह दे जनता—'युद्ध न हम करने देंगे।
इधर बमों से, उधर भूख से, लोग न अब मरने देंगे।

हाइड्रोजन और अणु-बम के युग में युद्ध लोलुप शक्तियों पर कितनी करारी चोट है।

'अरुण' सामाजिक विषमताओं से क्षुब्ध है पर निराश नहीं। उसका विश्वास है कि समाज की प्रगतिशील और मंगलकारी शक्तियां विभीषिकाओं और वैषम्य का अन्त करने में समर्थ होंगी। उसे अपने देश और जनता पर अटल विश्वास है।

—हमारे बाजुओं में बल,
हमारे कण्ठ-स्वर में बल
हमारे पाँव बढ़ते हैं लिये विश्वास का सम्बल
बताओ फिर युगों का भी य' जादू क्यों न टूटेगा ?

'अरुण' के दृष्टिकोण में पर्याप्त सन्तुलन है। जहाँ वह समाज के अन्दर कुरूपता देखता है वहाँ समाज की उर्ध्वगामी शक्तियों पर भी ध्यान देता है। वह 'कला के लिये' कला के सिद्धान्त का अनुगामी नहीं। वीभत्स के लिये ही वीभत्स का चित्रण उसे प्रेय नहीं। वह वीभत्स का चित्रण करता है तो केवल उसके उन्मूलन के उद्देश्य से। अन्य अनेक प्रगतिशील लेखकों की तरह 'शाकिंग' ढंग की नवीनता लाने का प्रयत्न 'अरुण' नहीं करता। वह उत्पीड़न के मूलोच्छेद और मानव मात्र के सुख-शान्ति के लिये कृत-प्रयत्न तो है पर—'अंचल जी के शब्दों में "उसने अन्य अधकचरे नये कवियों की भाँति जान बूझ कर केवल सनसनी के लिये प्राचीन संस्कारों, संस्थाओं, आदर्शों और मान्यताओं पर आघात नहीं किया है।"

राष्ट्रीयता 'अरुण' की कविता का एक उभरा हुआ तत्व है। स्वदेश और स्वातन्त्र्य प्रेम आरम्भ से ही 'अरुण' की कविताओं की मूल प्रेरणा रहे हैं। सन् '४२ के क्रान्तिकारी दिनों में 'अरुण' का यह गीत पंजाब के कोने कोने में गूँजा था—

"माँ युगों से बंदिनी तुम, बन्धनों को आज खोलूँ।"

राष्ट्रीय भावना से सिर से पाँव तक सनी हुई अनेक कविताएँ 'अरुण' की लेखनी से निकली हैं। "पन्द्रह अगस्त" नामक कविता में वह कहता है—

"हिन्द मेरे, हिन्द हे !
हे करोड़ों हाथ वाले, हे करोड़ों पाँव वाले
आज बन्धन मुक्त हो तुम
आज तुम आज़ाद हो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया के जागरण ! जन-क्रान्ति के हे अग्रदूत !
यह तुम्हारे नव-उदय की रश्मियाँ
पड़ रही हैं आज बर्मा और जावा द्वीप पर
आज सम्भव है कि जाएँ फैल सारे एशिया भूखण्ड पर
हिन्द मेरे. हिन्द हे।"

गाँधी जी के निधन पर लिखी हुई "कलंक पत्र" शीर्षक कविता कवि के राष्ट्रीय विचारों का सुन्दर उदाहरण है।

परन्तु राष्ट्रीयता के बारे में भी 'अरुण' की दृष्टि एकान्तिक नहीं। वह राष्ट्रीयता की संकीर्णता तथा अन्य त्रुटियों से पूर्णतया अवगत है। वह जानता है युद्ध-लोलुप शक्तियाँ राष्ट्रीयता के नाम पर ही भोली भाली जनता को युद्ध की आग में झोंकती हैं। इसी से उस की दृष्टि उदार है। वह अपने देश की जनता को स्वतन्त्र सुखी समुन्नत एवं समृद्ध देखना चाहता है तो अन्य देशों की जनता को भी। सदियों की गुलामी के बाद जब वह 'नया चीन' उठते हुये देखता है तो उसे भारत की स्वतन्त्रता से कम प्रसन्नता नहीं होती। उसे अपने राष्ट्र बन्धुओं से ही नहीं, मानव मात्र से प्रेम है—

"मैं विहग उन्मुक्त नभ का, निलय सीमा हीन मेरा
डाल पर तरु की तृणों का घोंसला लघु क्यों बनाऊँ
क्यों कहूं 'आवास मेरा' जो पहर निशि का बसेरा।
……………मैं विहग उन्मुक्त नभ का

देश की दीवार मुझको बाँध सकती आज क्यों कर
उठ चुका हूं भूमि से मैं अब बहुत ऊँचे गगन पर
देखता हूं भूमि को भी एक रेखा-हीन घेरा।
—मैं विहग उन्मुक्त नभ का………

भारत की तरह, समस्त एशिया, भूखण्ड की स्वतन्त्रता उसे अभीप्सित है—

फूटने लगा प्रकाश—
नव नव उज्ज्वल !
जाग उठे हिन्द, चीन, मलाया और कोरिया
तिब्बत की घाटियाँ, चोटियाँ नेपाल की
गूँज उठीं एक महास्वर से—
आज सारा जागता है एशिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब यूनिवर्सिटी और हिन्दी परीक्षाएँ :

लेखक—
श्री जगन्नाथ पुच्छरत सारस्वत साहित्य भूषण,
हिन्दी सेवी, अमृतसर,

हिन्दी के प्राचीन प्रेमियों में से सम्भवत: कदाचित कोई सज्जन होगा कि जिसने स्वर्गीय बाबू नवीनचन्द्रराय जी का नाम न सुना हो। क्योंकि श्री बाबू राय जी की मातृभाषा बङ्गला होने पर भी वह नागरी (हिन्दी) के बड़े पक्षपाती एवं प्रबल प्रचारक तथा अनन्य भक्त और सच्चे सेवकों में से थे। श्री बाबू जी ने तनमन और यथासाध्य धन से पंजाब सरीखे विवाद ग्रस्त जटिल प्रान्त में जहां ऊर्दू, अंग्रेजी, और गुरुमुखी (पंजाबी) की प्रधानता थी, उस समय में हिन्दी प्रचार आरम्भ किया कि जब ब्राह्मणों एवं कतिपय आर्य महानुभावों के अतिरिक्त अन्यान्य मनुष्यों को यह भी ज्ञान नहीं था कि "नागरी" किसे कहते हैं और हिन्दी किस बला का नाम है ? इतना ही नहीं. श्री बाबू जी की मातृभाषा बङ्गला होने पर भी उन्होंने हिन्दी को ही अपनाया। और स्वयं हिन्दी में सर्व प्रथम नवीनचन्द्रोदय (व्याकरण) और विज्ञान, शिल्प (इञ्जीनियरिंग) स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विविध विषयों में पुस्तकें लिखकर उसके भण्डार को भरपूर किया।

श्री बाबू नवीनचन्द्र राय जी बंगला, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वान् प्रखर विद्याबुद्धि और सौजन्यता के कारण अन्त में पंजाब यूनिवर्सिटी के आफिश्येटिङ्ग रजिस्ट्रार पद पर आसीन (आरूढ़) हुए, और यूनिवर्सिटी से श्री बाबू जी का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इनकी प्रेरणा एवं प्रबल उद्योग से सन १८६४ ई० में यूनिवर्सिटी में सर्व प्रथम "हिन्दी प्रोफीश्येन्सी" और हाई प्रोफीश्येन्सी यह दो हिन्दी परीक्षाएं नियत हुईं।

श्री बाबू जी की प्रेरणा और अनुरोध से सर्वप्रथम श्री भानुदत्तजी शर्मा और योगीराज श्री शिवनाथ जी विशारद, दोनों महानुभाव हिन्दी परीक्षा में प्रविष्ट हुए। और पर्याप्त अंक (नम्बर) प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए और यूनिवर्सिटी ने उक्त दोनों सज्जनों के साम्मानार्थ ७०) के ८०) रुपये और पुरस्कार से इन्हें प्रोत्साहित किया ; ताकि अन्यान्य विद्यार्थी भी हिन्दी परीक्षा में प्रविष्ट हों।

अन्त में स्वरचित सब पुस्तकों का सम्पूर्ण स्वत्व (कापी रायट) अधिकार पंजाब यूनिवर्सिटी को अर्पण कर सन् १८८० ई० में श्री बाबू जी ने पैंशन लेकर लाहौर से प्रस्थान किया। किन्तु खेद का विषय है कि इनके चले जाने के पश्चात् उक्त परीक्षाओं के सम्बन्ध में किसी ने भी हिन्दी प्रचार की ओर ध्यान नहीं दिया। हिन्दी पढ़ने का उत्साह क्यों नष्ट हुआ, इसके निम्नलिखित कारण थे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम हिन्दी परीक्षाओं के संस्थापक एवं परमोत्साही उद्योगी प्रचारक श्री बाबू जी के लाहौर से चले जाने के कारण पीछे किसी ने भी परीक्षाओं के प्रचारार्थ प्रयत्न नहीं किया।

२—पंजाब यूनिवर्सिटी के प्रास्पेक्टस (पाठ्य क्रम). सूची अंग्रेजी में छपे रहने से, और जो पाठ्य पुस्तकें नियत थीं वह प्राय: मथुरा, मुरादाबाद, प्रयाग, काशी आदि भिन्न २ स्थानों से छपी होने से साधारण विद्यार्थी उन्हें प्राप्त करने असमर्थ थे। यदि कोई व्यक्ति मंगवा भी लेता था, तो उनके पढ़ाने का उचित प्रबन्ध नहीं था। किन्तु कतिपय उद्योगी छात्र परिश्रम करके एक दो वर्ष परीक्षाओं में प्रविष्ट होते भी रहे परन्तु अनेक अड़चलों के कारण असफल ही रहे, अतएव पुन: किसी भी छात्र ने हिन्दी परीक्षाएं देने का साहस नहीं किया।

३—यह कि जो कतिपय प्रतिभाशाली छात्र प्रथम हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण (पास) हुए थे उन्हें गवर्नमैंण्ट ने अपने स्कूल कालिजों में अध्यापन कार्य (पोस्ट) स्थान देने में उपेक्षा की। अत: ऐसे ही कारणों से प्राय: हिन्दी प्रेमी छात्र परीक्षा देने से हिचकने लगे और इससे पंजाब यूनिवर्सिटी से हिन्दी परीक्षाओं का तिरोभाव ही हो गया।

सन् १६१० ई० में स्थानीय अमृतसर के कतिपय उत्साही हिन्दी प्रेमी सज्जनों के सहयोग और परिश्रम से नागरी प्रचारिणी सभा का स्थापन (प्रादुर्भाव) हुआ और सर्व सम्मति से मुझे मंत्री चुन कर सभी कार्य सञ्चालन भार सौंपा गया।

एक दिन अधिवेशन समय मैंने सभी के माननीय सदस्य प्रसिद्ध साहित्य सेवी वयोवृद्ध श्रीमान् गोस्वामी पं० हरसुखराय जी से प्रसंगवश कहा कि गोस्वामी जी पंजाब यूनिवर्सिटी में संस्कृत में प्राज्ञ, विशारद, और शास्त्री ऊर्दू में मुन्शी; मुन्शी आलम, और मुन्शी फाज़ल, और पंजाबी में विद्वान, बुद्धिमान् और ज्ञानी परीक्षाएं नियत हैं ? वैसे सभा द्वारा हिन्दी में भी परीक्षाएं लेने का प्रबन्ध होना चाहिये। तब उसके उत्तर में श्री गोस्वामीजी ने कहा कि पुच्छरत जी सम्भवत: आपको ज्ञान न हो, चिरकाल की बात है पंजाब यूनिवर्सिटी में हिन्दी परीक्षाएं नियत हुई थीं, उन्हें कोई पूछता नहीं, आप और हिन्दी परीक्षाएं नियत करवा कर क्या करेंगे ? श्री गोस्वामी जी का यह स्फुट उत्तर सुन मुझे बहुत आश्चर्य और खेद हुआ।

तदनन्तर मैंने प्रभात, अभ्युदय, श्री वैंकटेश्वर, आदि हिन्दी पत्रों में धारा-प्रवाही परीक्षा सम्बन्धी निबन्ध लिखे और सन् १६१४ ई० में "हिन्दी परीक्षाओं के नियम" लिख यूनिवर्सिटी की अनुमति से निजव्यय से प्रकाशन कर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "विना मूल्य" भारत भर में वितरण करवाए ? और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी ना० प्र० सभा आदि, सभाओं द्वारा पंजाब यू० व० को आग्रह किया गया कि हिन्दी परीक्षाओं के नाम हिन्दी में ही होने चाहिये

अतएव सन् १६१० ई० में पंजाब यू० व० ने १. हिन्दी रत्न, २. हिन्दी भूषण, और ३. हिन्दी प्रभाकर, आदि परीक्षाओं के नाम नियत किये।

नवीन चन्द्रोदय व्याकरण, अप्राप्य था, बहुत खोज करने पर ज्ञात हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री बाबू नवीन चन्द्रराय जी की ज्येष्ठ कन्या श्रीमती हेमन्तकुमारी जी चौधरानी जी विक्टोरिया कन्या महाविद्यालय पटियाला में हैं, अत: मैंने पटियाला पहुंच कर श्री चौधरानी जी से भेंट कर श्री बाबू जी प्रणीत पुस्तकों के सम्बन्ध में बातचीत की और नवीन चन्द्रोदय व्याकरण पुन: प्रकाशन करवाने का आग्रह किया, श्रीमती बहन चौधरानी जी ने कहा, कि मुझे समय नहीं यदि आप इसके छपवाने में योग दे तो मैं प्रबन्ध कर देती हूँ । अतएव मैंने प्रकाशन श्रम स्वीकार कर सन् १९१४ ई० में उसकी भूमिका लिख प्रूफ देखने की सेवा की तब कहीं पुस्तक छपकर प्रकाशित हुई ।

तदनन्तर पाठ्य पुस्तकें एक ही स्थान पर प्राप्त होने एवं पढ़ाने का भी प्रबन्ध करने पर, बहुत संख्या में छात्र छात्राएं हिन्दी परीक्षाओं में प्रविष्ट होने लगीं । और कुछ ही वर्षों में हजारों छात्र छात्राओं में इनका बहुत प्रचार हुआ ।

संवत् १९९३ वि० से मैंने हिन्दी रत्न में सर्व प्रथम उत्तीर्ण छात्र छात्राओं के प्रोत्साहनार्थ "पुच्छरत रजत पदक" देना प्रारम्भ किया है, और इस वर्ष से "प्रभाकर" में उत्तीर्ण सर्व प्रथम छात्र छात्रा के लिए भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, द्वारा पदक देने का प्रबन्ध किया है ।

अत: अब यह परीक्षाएं सर्व प्रिय हो रही हैं ? और प्राय: भारत के प्रसिद्ध प्रान्तों से छात्र छात्राएं इन परीक्षाओं में उत्साह से प्रविष्ट हो रही हैं, और पंजाब यूनिवर्सिटी की आय का स्रोत बन गई । परीक्षार्थियों की दृष्टि से भी, इनसे पहिले प्रचलित पंजाबी, उर्दू, फारसी परीक्षाओं की अपेक्षा हिन्दी परीक्षार्थियों की संख्या बहुत ज्यादा है ।

× × × ×

मेरी कनिष्ठ कन्या प्रियपुत्री श्री कमलावती के असमय निधन के पश्चात् जिन बन्धु बान्धवों सुहृदय सज्जनों तथा साहित्यिक इष्टमित्रों ने इस विपद ग्रस्त संकट काल में पत्र भेज समवेदना प्रकट की है, उन सब महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, क्योंकि ऐसे आपद् काल में उनके शान्तिसिक्त वचनों से ही मुझे बहुत कुछ ढाढ़स तथा धैर्य प्राप्त हुआ है ।

अत: मुझ अकर्मण्य और हृद्रोगी के लिये इन सब महानुभावों की सेवा में भिन्न भिन्न उत्तर लिखना मेरी सामर्थ के बाहर है । अतएव मुद्रित पत्र द्वारा ही सब की सेवा में कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं ।

विनीत
व्यथित हृदय दु:खित
जगन्नाथ पुच्छरत सारस्वत,
साहित्य सदन अमृतसर

३१-१२-५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का संक्षिप्त परिचय :

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी के विषय में अधिक परिचय देने की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अपनी विशेषताओं के कारण विश्वविद्यालय तथा फार्मेसी दोनों ही संस्थाएँ भारतवासियों के हृदय में अपना अमिट स्थान बना चुकी हैं। फिर भी फार्मेसी के सम्बन्ध में यहां थोड़ी सी जानकारी देना अनुपयुक्त न होगा।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की स्थापना ईस्वी सन् १६२२ में हुई। इससे पूर्व भी अनेक आयुर्वैदिक औषधियां तैयार करने वाली फार्मेसियां विद्यमान थीं परन्तु अपने उच्च आदर्श तथा जनता के प्रेम के कारण आज इसकी यह स्थिति है कि यह गणना में भारतवर्ष की बड़ी-बड़ी फार्मेसियों में प्रमुख मानी जाने लगी है।

फार्मेसी में औषध निर्माण का कार्य शास्त्रानुसार योग्य वैद्यों के निरीक्षण में होता है। कूटने पीसने तथा गोली बनाने आदि का काम मैशीन से होता है। बहुत सी जड़ी बूटियां आसपास के जंगलों में ताज़ी उपलब्ध हो जाती हैं। उनसे बनी औषधियां उत्तम फल दर्शाती हैं। उच्च अधिकारियों के अतिरिक्त लगभग एक सौ से अधिक श्रमिक और तीस लेखक प्रतिदिन काम करते हैं।

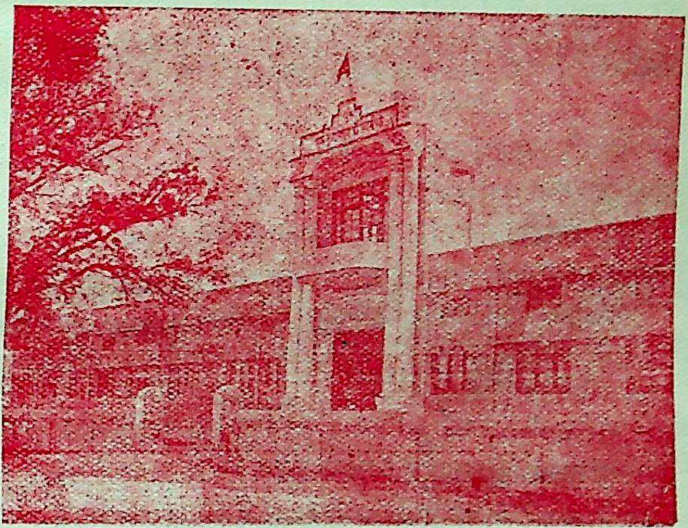
गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का भवन

फार्मेसी में लगभग चार सौ औषधियों का निर्माण होता है। फार्मेसी की औषधियों की बिक्री के लिये समूचे भारतवर्ष में एजेन्सियां स्थापित हैं। अधिक बिकने वाली औषधियों में च्यवनप्राश, भीमसेनी सुरमा पायोकिल, द्राक्षासव, शिलाजीत, मकरध्वज, ब्राह्मीतैल, रक्तशोधक सुपारीपाक, गुरुकुल चाय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

फार्मेसी की औषध बिक्री से जो लाभ होता है वह किसी विशेष व्यक्ति की जेब में न जाकर ब्रह्मचारियों की शिक्षा में व्यय होता है।

बिक्री के लिये प्रत्येक औषधि भिन्न-भिन्न परिमाण के मुहर बन्द पैकिंग में तैयार की जाती है। प्रत्येक पैकिंग पर औषधि के बनने तथा यहां से जाने की संख्याएँ भी अंकित रहती हैं। ख़रीदने से पूर्व धोखे से बचने के लिये देख लेना चाहिए कि पैकिंग व मुहर ठीक हैं। औषधि में कोई शिकायत हो तो उस पर अंकित संख्याओं सहित रिपोर्ट करनी चाहिए। विशेष जानकारी के लिये पत्र व्यवहार करें—गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी, डा० गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आयुर्वैदिक औषधियाँ सेवन कीजिये !

हमारी कुछ प्रसिद्ध औषधियाँ

च्यवनप्राश

कमज़ोरी की प्रसिद्ध औषधि है। इससे बिगड़ा जुकाम, स्वर भंग खाँसी, दमा, फेफड़े की निर्बलता तथा क्षयरोग आदि को लाभ पहुंचता है।

द्राक्षासव

पुरानी खांसी, भूख न लगना, कुब्ज़, थकावट तथा शरीर की शिथिलता में यह आसव विशेष गुणकारी है। इसके प्रयोग से शरीर में स्फूर्ति आती है।

सिद्ध मकरध्वज

शरीर की किसी भी प्रकार की निर्बलता में यह लाभ पहुँचाता है। विधि पूर्वक सेवन करने से बुढ़ापे में भी शक्ति बनी रहती है।

चन्द्र प्रभावटी

शिलाजीत, गुग्गुल, लोह भस्म आदि से यह बनी हैं। यह पत्थरी, भगन्दर, दर्द-गुर्दो, जिगर की कमज़ोरी, बदहज़्मी खून की कमी आदि रोगों पर लाभ दायक है।

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिये इससे बढ़कर कोई, सुरमा नहीं है। यह आंखों की सब बीमारियों का आराम लाता है। स्वस्थ आदमी भी उसका प्रयोग करें तो उन्हें चक्षु रोग नहीं होगा।

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा, बनाया जाता है। यह दिमाग को ठण्डक व तरावट देकर ताज़गी लाता है। दिमागी काम करने वाले व्यक्तियों को इसका नियम पूर्वक सेवन करना चाहिये।

पायोकिल

पायोरिया रोग की परीक्षित औषध है। उसके प्रयोग से मसूढ़ों से खून व पीप आना रुकता है और दाँत चमकीले और दृढ़ होते हैं।

गुरुकुल चाय

दैनिक प्रयोग के लिये उत्तम पेय है। यह शरीर के साधारण रोग खांसी, नज़ला, जुकाम, हरारत को आराम देती है। और स्फूर्ति लाती है।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव समाज और उसके संस्थापक द्वारा पंजाब में हिन्दी साहित्य की सेवा :

लेखक—
श्रीयुत आचार्य प्रेम बल
देव समाज, गर्ल्स कालेज अम्बाला शहर

भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् हिन्दी देश की राष्ट्र-भाषा मानी गई है। भारत सरकार तथा प्रदेशों की सरकारों ने इस दिशा में प्रयत्न करने आरम्भ कर दिये हैं कि सारे देश में यह भाषा राजभाषा व संघभाषा के रूप में प्रचलित हो जाए।

१९४७ ई० से पहले पंजाब प्रदेश में अंग्रेजी और उर्दू दो ही भाषाएं प्रचलित रही हैं। हिन्दी प्रचार के लिए बहुत कम लोगों ने आन्दोलन किये। आज से लगभग तीन-चौथाई शताब्दी पहले जब कि भारतवर्ष में हिन्दी आन्दोलन का नाम निशान भी न था; और पंजाब प्रदेश इस पहलू में बहुत पिछड़ा हुआ था; देव समाज के परम पूजनीय संस्थापक ने हिन्दी का प्रचार करने के लिए घोर प्रयत्न किया। इस समय उनका तीव्र विरोध किया गया किन्तु उन्होंने इसकी कोई परवाह न की और पूरे वेग के साथ हिन्दी का प्रचार किया। उन्होंने जून, ८७५ ई० में 'हिन्दू बन्धु' नाम का हिन्दी मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया जिसमें चरित्र-निर्माण सम्बन्धी अनेक लेख छापने के अतिरिक्त, प्राचीन विषयों के संस्कृत श्लोक भावार्थ सहित छपते रहे।

जिस समम पंजाब युनिवर्सिटी में अन्य भारतीय भाषाओं जैसे उर्दू, फारसी आदि की पढ़ाई का प्रबन्ध था, परन्तु खेद ! कि हिन्दी संस्कृत पढ़ाने का कोई प्रबन्ध न था, तब पूजनीय भगवानदेव ने इस विषय में बहुत ज़ोर का आन्दोलन किया और लार्ड रिपन के शिक्षा आयोग तक हिन्दी की आवाज़ पहुँचाई। उस समय वे सरकारी स्कूल में पढ़ाते थे और उनके अफसर उनके इस आन्दोलन से बहुत असन्तुष्ट थे परन्तु उन्होंने इसकी कोई परवाह न की। ऐसे समय में यह भी भय था कि शायद् नौकरी से हाथ धोना पड़े। परन्तु देव समाज संस्थापक जिस बात को उचित समझते थे उसमें किसी भय अथवा प्रलोभन की परवाह न करते थे। इस संघर्ष का बहुत हितकर फल हुआ और युनिवर्सिटी में हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था हो गई।

पंजाब प्रदेश में सरकारी अदालतों में उर्दू के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग के लिए भी उन्होंने आन्दोलन किया और उसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। उस समय के बहुत से मुसलमान उनसे रुष्ट हुए और उन्हें बहुत सी धमकियां भी दी गईं कि यदि उन्होंने यह संघर्ष जारी रखा तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

१८८२ ई० में जीवन-व्रत ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने विशेष तौर पर हिन्दी का प्रचार किया। सन् १८८७ ई० में जब उन्होंने देव-समाज की स्थापना की तब देवसमाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैंकड़ों सभासदों ने हिन्दी भाषा पढ़नी और लिखनी सीखी। उनके हिन्दी प्रेम ने देव-समाज में ९८ प्रतिशत स्त्री पुरुषों को हिन्दी पढ़ने व लिखने के लिये प्रेरित किया।

उन्होंने अपने मूल ग्रंथ हिन्दी में ही लिखे, यथा :—१. पूजनीय देवसमाज शास्त्र, चार खंड। २. मुझमें देव जीवन का विकास, दो खंड। ३. अपने जीवनव्रत की सिद्धि में मेरा अद्वितीय त्याग, सात खड। ४. मनुष्य आत्मा के सम्बन्ध में; चार महातत्व।

उन्होंने इन मूल ग्रंथों के अतिरिक्त ४० और पुस्तकें भी हिन्दी में लिखीं और उनका प्रचार किया। बच्चों के लिये अनेक महाहितकर पुस्तकें लिखीं जो बहुत से स्कूलों में प्रचलित हुईं। आज से ६० वर्ष पहले से देवसमाज का मासिक पत्र 'जीवन पथ' हिन्दी में छपता आ रहा है।२० वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में जब भगवान देवात्मा ने देव समाज में शिक्षा संस्थाएं आरम्भ कीं तो उनमें भी हिन्दी को ही मुख्य भाषा रखा।

अपने बहुत से सेवकों के नाम, जो उन्हें पत्र लिखा करते थे, उन्होंने यह आज्ञा जारी की कि उनके जो सेवक यह चाहते हैं कि उनके पत्र स्वयं भगवान देवात्मा पढ़ें वे हिन्दी में ही उन्हें पत्र लिखें। इससे हिन्दी के प्रचार में बहुत सहायता मिली।

इस प्रकार देव समाज और उसके परम पूजनीय संस्थापक द्वारा पिछले लगभग ७० वर्षों से हिन्दी साहित्य की सेवा का काम निरन्तर होता रहा है और अब भी जारी है।

परिचय:

श्री प्रेमप्रकाश सिंह—जन्म स्थान पंजाब (मालवा) प्रदेश है। आपने पांचवर्ष तक काशी में निवास किया जहां के "राजकीय क्वींस कालिज" से संस्कृत की प्रथमा और मध्यमा परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। वहां ही "हिन्दु विश्वविद्यालय" से "प्रवेशिका" की परीक्षा दी। पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० संस्कृत और पंजाबी, ऐम० ओ० ऐल० (प्राच्य विद्याविशारद) शास्त्री, प्रभाकर, ज्ञानी परीक्षाएं पास कीं।

'रणधीर कालेज कपूरथला' से शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण होकर रियासत भर में प्रथम रहे परिणामत: कपूरथला नरेश स्व० महाराज जगतजीतसिंह द्वारा "रजत पदक" प्रदान किया गया। आप के लेख और गीत "साप्ताहिक हिन्दुतान" "हिन्दी मिलाप" 'सैनिक समाचार' "सप्त सिन्धु" हिन्दी सन्देश" आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। पंजाबी के गीत और भाषा-वैज्ञानिक व साहित्यिक लेख, पंजाबी के पत्र : पंज दरिया, आलोचना, कविता, लोक साहित्य, पंजाबी दुनिया, जागृति, कहानी इत्यादि में स्थान प्राप्त करते रहते हैं।

पंजाबी भाषा में लिखित "पंजाबी भाषा : उद्गम व विकास" आपकी सुप्रसिद्ध पुस्तक है जो एम० ए० (पं०) के लिए" "पठनीय" रूप से स्वीकृत है।

सर्वप्रथम "खालसा कालेज अमृतसर" में हिन्दी-पंजाबी प्राध्यापक के रूप में चार वर्ष सेवा की। डेढ़ वर्ष तक आफीसर इंचार्ज अनुवाद, शिक्षा विभाग, पंजाब के रूप से कार्य किया। आजकल सहायक डायरैक्टर, भाषा विभाग पंजाब, के पद से सेवा की जा रही है।

विशिष्ट रुचियां हैं :—भाषा विज्ञान के क्षेत्र में गवेषणा और हिन्दी-पंजाबी में सरल गीतों की संरचना! साथ ही धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक समागमों के अवसर पर हिन्दी पंजाबी में अभिभाषण।

—सत्यपाल गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में हिन्दी का उन्नायक :
डी० ए० वी० आन्दोलन

लेखक —
श्री कृष्ण कुमार धवन, अध्यक्ष हिन्दी विभाग
डी. ए. वी. कालिज अम्बाला शहर।

आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द का कोई स्मारक स्थापित करने का प्रश्न पंजाब के आर्यनेताओं के सम्मुख आया तो सर्व सम्मति से यही निश्चय हुआ कि स्वामी जी के सिद्धान्तों एवं आदर्शों के अनुकूल एक ऐसी संस्था की स्थापना की जावे जिस में भारतीय नवयुवकों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा दी जावे। डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर तथा उसके उपरान्त अन्य अनेक दयानन्द विद्यालय तथा महाविद्यालय एवं अन्य अनेक संस्थाएं उसी निश्चय का प्रयत्त रूप हैं। आर्यसमाज विशेषतः डी० ए० वी० प्रबन्धकर्तृ सभा के अधीनस्थ सभी संस्थाओं का जन्म से ही एक मात्र उद्देश्य, शिक्षा द्वारा आर्यसंस्कृति का प्रसार करना, रहा है। डी० ए० वी० शिक्षण केन्द्रों के संस्थापक महात्मा हंसराज जी का सदा यह ध्येय रहा कि युवकों को इस विधि से "आधुनिक शिक्षा" दी जावे कि वह अपनी संस्कृति तथा भाषा को भूलें ना, वह विदेशी शिक्षा पाकर भी सच्चे भारतीय बने रहें।

इसी ध्येय को अपने सम्मुख रखते हुए डी० ए० वी० कॉलेज प्रबन्धकर्तृ सभा जन्म से ही आर्य भाषा-हिन्दी तथा संस्कृत के अध्ययन अध्यापन के सन्तोषजनक प्रबन्ध की ओर ही जागरूक नहीं रही अपितु इन दोनों भाषाओं के अध्ययन पर विशेष बल देती रही है। दयानन्द स्कूलों तथा कॉलेजों के अध्यापक, आचार्य एवं अन्य कार्यकर्त्ता स्वयं स्फूर्ति एवं आत्म प्रेरणा के साथ उत्साह पूर्वक हिन्दी के प्रचार में संलग्न रहे हैं। जिन दिनों (विदेशी राज्यकाल में) हिन्दी का अध्ययन व्यर्थ एवं ऊँची २ पदवियां पाने के लिए सर्वथा अनुपयोगी समझा जाता था, उन दिनों में जनता की अनिच्छा एवं सरकार द्वारा उपस्थित अनेक बाधाओं के बावजूद भी डी० ए० वी० आन्दोलन के संचालक सहस्रशः देशवासियों को हिन्दी के प्रेम-पाश में आबद्ध करने में सफल रहे। यह उनके परिश्रम, त्याग तथा निष्ठा का ही फल था कि उस विषम परिस्थिति में भी उर्दू के गढ़ पंजाब में उन्होंने हिन्दी की पताका को ऊँचा उठाया। हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए आर्थिक संकट को जानबूझ कर आह्वान करना भी उनके साहस की ही बात थी। लाखों रुपये का वार्षिक सरकारी अनुदान ठुकरा कर अपनी सभी शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाना तथा केवल हिन्दी को ही शिक्षा के माध्यम रूप में प्रचलित कराना डी० ए० वी० प्रबन्धक-सभा के अखंड हिन्दी प्रेम का द्योतक है। इस संस्था के आधार स्तम्भ ला० लाजपतराय तथा सुयोग्य छात्र सरदार भक्त सिंह आदि की स्मरणीय हिन्दी सेवा का भारत सदा चिर ऋणी रहेगा। डी० ए० वी० कॉलेज के आचार्य पं० मेहरचन्द जी ने भी अपनी संस्था में सभी विद्यार्थियों (मुसलमानों को छोड़कर) के लिए हिन्दी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन अनिवार्य बना दिया था और सभी छात्र विवशता के कारण नहीं, अपितु निज भाषा-प्रेम के कारण सहर्ष इसे पढ़ते रहे। अपनी मृत्यु तक उन्होंने (प्रिं० मेहरचन्द जी) ने इस नियम को सफलता से निभाया। प्रिंसिपल भगवान् दास जी ने सन् १९४७ ई० में शरणार्थियों की सेवा करने के साथ २ कैम्पों में रह रहे, १५०० शरणार्थियों को हिन्दी पढ़ाई उस विकट काल में अपने सभी कष्टों को भूल कर निज उद्देश्य पूर्ति का यह कितना महान उदाहरण है।

डी. ए. वी. कालेज के संस्थापक

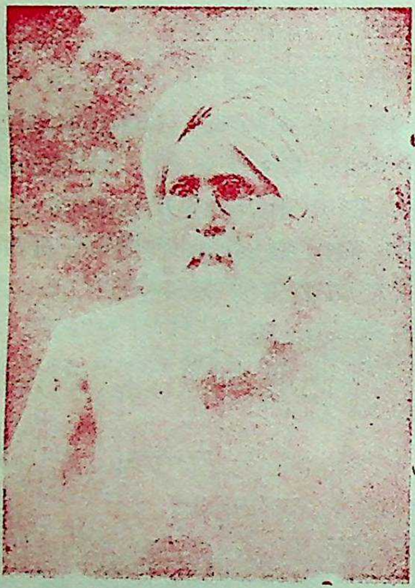

स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी
पं० प्रा० हि० सा० सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान

लोकसेवक मण्डल के संस्थापक

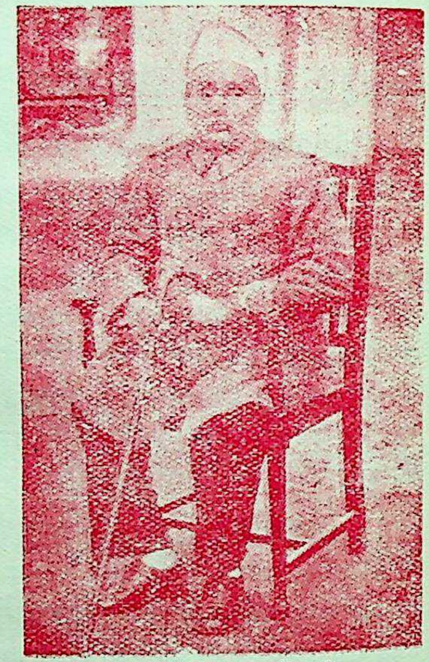

स्वर्गीय पंजाब केसरी
लाला लाजपतराय जी

केवल हिन्दु बहु संख्यक प्रदेशों में ही नहीं, अपितु लाहौर, रावलपिंडी, पेशावर तथा क्वेटा के भी डी० ए० वी० स्कूलों कॉलेजों में शिक्षा माध्यम सफल रूपेण हिन्दी रहा। डी० ए० वी० संस्थाओं में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य करने के साथ उर्दू का अध्यापन सर्वथा बन्द कर दिया गया था, भले ही इसके लिए अनेक क्षेत्रों में उन्हें सरकार का शिकार होना पड़ा। पर धन्य है वह जनता जनार्दन भी, कि जिसके सहयोग से अधिकारी गण अपने कार्य में डटे रहे।

डी० ए० वी० प्रबन्ध कर्तृ सभा का यह उद्देश्य सदा सर्वदा अक्षरशः सफल रहा कि उसकी संस्थाओं में से कोई भी व्यक्ति हिन्दी का समुचित ज्ञान पाए बिना न निकले। केवल अध्यापन के क्षेत्र में ही नहीं, अपने अधिकतर कार्यों के लिए भी यह सभी बढ़ चढ़ कर हिन्दी का प्रयोग करती रही। हिन्दी तथा संस्कृत के अध्ययन, अन्वेषण एवं प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए इस संस्था ने अनेक पुरस्कार, पदक तथा अनुदान निर्धारित कर रखे थे। संस्कृत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में इंडियन प्रेस का स्थान :

लेखक—विश्वमित्र वैद, अम्बाला छावनी

इंडियन प्रेस, प्रयाग हिन्दी की सेवा के लिए हमारे साहित्य में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। वर्तमान हिन्दी साहित्य के अभ्युत्थान में 'सरस्वती' का महत्त्व तो स्पष्ट है ही, इसके अतिरिक्त धार्मिक और साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वयस्कों ने 'सरस्वती तथा उच्चकोटि की पुस्तकों से हिन्दी का सुबोध संस्कार पाया। इस तरह हिन्दी के रिक्त भण्डार को भरने में जितना इंडियन प्रेस ने प्रयास किया है, शायद् ही किसी ने किया हो।

जिस युग में अंग्रेज़ी का बोल बाला था, हिन्दी में लिखना बोलना सम्मानजनक नहीं समझा जाता था, उस युग में भी इंडियन प्रेस हिन्दी-साहित्य की श्री वृद्धि में संलग्न रहा। अहिन्दी भाषा भाषी प्रकाशक होकर भी उसने हिन्दी को शिरोधार्य किया।

इंडियन प्रेस की सुरुचि का परिचय इसी से मिलता है कि एक बार लाला लाजपतराय ने गुस्से से भरा एक पत्र इंडियन प्रेस के संचालक श्री हरि केशव घोष को लिखा था। लाला जी की पुस्तक "दुखी भारत" जो लगभग ६०० पृष्ठों की थी, इंडियन प्रेस ने एक महीने के अन्दर

उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों से कोई शुल्क न लिया जाता था। हिन्दी प्रचार के लिए अनेक पुस्तकालयों सम्मेलनों नाटकों तथा कवि गोष्ठियों का आयोजन भी इन के द्वारा होता रहा। डी० ए० वी० विद्यालयों में तो सभी विषयों का अध्यापन पूर्ण रूपेण हिन्दी में ही करवाया जाता था। उपरोक्त सभी प्रथाओं का पालन आज तक सभी डी० ए० वी० संस्थाओं में हो रहा है।

यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि केवल लाहौर में प्राईमरी हिन्दी स्कूलों तथा अन्य हिन्दी माध्यम के विद्यालयों की घाटा पूर्ति के लिए डी० ए० वी० प्रबन्धकर्तृ सभी हिन्दी प्रेम के कारण चिरकाल तक ५०००००/- (पांच लाख) रुपए व्ययार्थ देती रही।

वर्तमान समय में हिन्दी को पंजाब में सम्मान पूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय डी. ए. वी. कालेज लाहौर के प्राध्यापकों को ही है। श्री प्रो० राजाराम जी, प्रो० महा० आर्यमुनि जी, श्री प० भगवद्दत्त जी, श्री प० विश्वबन्धु जी आदि ने वैदिक साहित्य का हिन्दी में अनुवाद किया तथा विविध विषयों पर ग्रन्थ लिखे। इसी कालेज के ग्रेजुएट स्व० डा० बालकृष्ण जी एम. ए. तथा स्व० आचार्य रामदेव जी ने अर्थ शास्त्र तथा इतिहास के मौलिक ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राष्ट्र भाषा के प्रसार प्रचार एवं संरक्षण के लिए किसी भी कठिनाई आर्थिक, सामाजिक, शासन संबन्धी को डी० ए० वी० आन्दोलन के अग्रदूत तुच्छ ही समझते रहे हैं। उनके लिए हिन्दी-सेवा सदा सर्वदा सर्वोच्च रही है। अब भी हमें पूर्ण विश्वास है कि वह राष्ट्र भाषा के विकास में अपने कर्त्तव्य का पालन करने में जागरूक रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद कर, प्रकाशित कर देने का वचन दिया था ! १५ दिन बीत गए थे और पुस्तक की कम्पोजिंग भी शुरू नहीं हुई थी ! लाला जी को विश्वास नहीं रह गया था कि पुस्तक समय पर निकल सकेगी। इसी से उन्होंने कड़ा पत्र उन्हें लिखा था। जिस पर उन्होंने उत्तर दिया था— "इसका हमें खेद है कि इससे पहले आपके निकट हमें अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने का अवसर नहीं मिला।" इस उत्तर की लाला जी ने बहुत प्रशंसा की और जब ठीक तिथि पर उनके हाथ में पुस्तक पहुँच गई, तब तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। तभी उन्होंने कहा था कि इंडियन प्रेस स्वच्छ, सुन्दर तथा शुद्ध मुद्रण के लिए, प्रकाशन क्षेत्र में सदैव एक आदर्श स्थान बनाए रखेगा।

इन के हिन्दी तथा देश प्रेम का परिचय इससे मिलता है कि पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी, 'बालसखा" की १००० प्रतियाँ खरीदती थी। परन्तु जब "बालसखा" में राष्ट्रीय कविताएँ और राष्ट्रीय नेताओं के चरित छापने प्रारम्भ किये गए तो उसने आश्वासन माँगा कि 'बालसखा' में आगे ऐसी रचनाएँ नहीं छापी जायँगी ! किन्तु श्री हरिकेशव घोष पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी को यह आश्वासन न दे सके कि "बालसखा" में आगे राष्ट्रीय कविताएँ और नेताओं की जीवनियाँ नहीं छपेंगी ! परिणाम यह हुआ कि पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी ने बालसखा लेना बन्द कर दिया। फिर भी कोई परवा न करते हुए उन्होंने बालसखा को, आगे भी अधिक राष्ट्रीय रूप में प्रकाशित करने का संकल्प किया। इस राष्ट्रीय रूप को देखकर स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इतना पसन्द किया कि उन्होंने उसे अपनी पुत्री इन्दिरा नेहरू के नाम जारी करने की आज्ञा दी और स्विटजरलैंड से लौटने पर इसमें बच्चों के मनोरंजन के कई लेख लिखे !

इंडियन प्रेस की पंजाब ब्रांच पहले लाहौर में थी किन्तु आजकल अम्बाला में है। यहां के मैनेजर श्री एम. बैनरजी लगभग तीस वर्षों से इस ब्रांच का कार्य्य सुचारु रूप से कर रहे हैं। आप भी हिन्दी का स्तर उन्नत करने में प्रयत्नशील रहते हैं। लेखकों की कदर करते हैं केवल सबके साथ सद्व्यवहार ही नहीं करते, बल्कि अपनी उचित राय भी देते रहते हैं।

स्वर्गीय चिंतामणि घोष इंडियन प्रेस के संस्थापक थे। उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी, परन्तु वह भारतीय थे, हिन्दी के भविष्य का आभास उन्हें उसी समय मिल चुका था, जब हिन्दी के केन्द्र उत्तर प्रदेश में उर्दू का बोल बाला था। उन्होंने तब ही राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति के लिए प्रतिज्ञा की। तथा उन्होंने अपनी लगन से अपने व्यवहार-कौशल से, हिन्दी-सेवा द्वारा व्यावसायिक सफलता प्रत्यक्ष कर दी। वह सफल व्यावसायिक ही न थे, कई पुत्र-पुत्रियों के पुण्यात्मक पिता भी थे। दुर्भाग्यवश उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिपद घोष का उनके सामने ही स्वर्गवास हुआ, परन्तु उनके निधन के पश्चात् चिंतामणि जी के जीवनकाल में ही इनके दूसरे पुत्र श्री हरिकेशव घोष ने जिस योग्यता से प्रेस का कार्य-भार सँभाल लिया, उससे उनके वयोवृद्ध पिता बहुत कुछ अपना पुत्र-शोक भूल से गये।

इंडियन प्रेस के संचालक की हैसियत से श्री हरिकेशव घोष हिन्दी के सर्वोच्च प्रकाशक थे। इन्होंने हिन्दी की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। हिन्दी के इतिहास में उनके सत् प्रकाशन और "सरस्वती" का अपना एक अलग स्थान है। अपनी संस्था के इस गौरव को वे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्प्रयत्नों से अधिकाधिक विकसित ही करते रहे। सत्साहित्य का प्रसार करने में उन्होंने अपना पैर सदैव आगे ही रक्खा! सचित्र हिन्दी महाभारत, सचित्र हिन्दी श्रीमद्भागवत, सरस्वती सीरीज़, हिन्दी ऋग्वेद, हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश, उमर खय्याम जहाँ उनकी सुरुचि और कलात्मक बुद्धि के परिचायक हैं, वहां पन्त, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, श्रीमती महादेवी वर्मा, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, डा० मंगलदेव शास्त्री, पं० शान्ति प्रिय द्विवेदी, श्री संतराम, श्री धर्मवीर, भाई परमानन्द और बहुसंख्यक कवियों और ग्रन्थकारों के प्रकाशनों से उनके सत् साहित्य प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। प्रतिभाशील होकर वे उत्कृष्ट प्रतिभा के सच्चे पारखी थे। सम्भवतः ऐसा कोई उच्च कलाकार न बचा होगा, जिसकी सुन्दर कृति उनके द्वारा प्रकाशित न की गई हो।

श्री हरिकेशव जी घोष दयालु भी कम नहीं थे!

भारत के विभाजन के समय में पंजाब में अशान्ति की आग लगी! लाहौर शाखा को तार दिया गया कि स्टाक किसी के भी हवाले कर के चले आओ। अक्सर कहते थे-हमारा तो बहुत बड़ा घर है। हमें तो सभी को देखना है। एक बार किसी ने उनसे कहा कि मेरे एक आत्मीय लाहौर की सरहद में फौजी अफसर होकर गए हैं। आप कहें तो मैं वहाँ जाकर, स्टाक का पता लगवाऊँ? उन्होंने उत्तर दिया—रहने दो, हमारा आदमी सकुशल आ गया, यही बहुत है! अब किसी को खतरे में नहीं डालना है। जितनी जल्दी हो सका, अम्बाले में शाखा खोल दी और 'हमारा आदमी' अर्थात् श्री एम० बैनर्जी वहाँ अत्यन्त योग्यता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

एक बार दफ़्तर में क्लर्क ने प्रत्यक्ष खयानत की। तमाम दफ़्तर में सनसनी थी कि उसका क्या होगा। आखीर घंटे में उसे बुलाया गया और डाँट-डपट कर उसको बहाल रखा—तनज्जुली तक न की। आज श्री हरि केशव जी घोष नहीं हैं पर उनके यश और कीर्ति का स्तम्भ सदैव गगन चुम्बी रहेगा।

आजकल श्री हरिप्रसन्न जी घोष इंडियन प्रेस का संचालन कर रहे हैं। अपने पूज्य पिता व भाई की तरह हिन्दी में उत्तम से उत्तम धार्मिक तथा अन्य सभी विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन करने में संलग्न हैं।

मैंने पिछले वर्ष प्रयाग में जाकर देखा कि श्री हरिप्रसन्न जी घोष, मैनेजिंग डायरेक्टर निरन्तर काम में लगे रहते हैं। भोजन करना और सोना भी, काम के आगे, इन्हें तुच्छ जँचता है। मिलने-जुलने वालों से भी उनको बातचीत करनी पड़ती है। सभा-समितियों में भी जाना पड़ता है। बड़ी बड़ी व्यापारिक चिट्ठियां पढ़ते और उनके उत्तर लिखते हैं। प्रेस के भीतर मुद्रण व्यवस्था देखते, जहां त्रुटि पाते उसे संभालते, पुस्तकों की बिक्री का प्रबन्ध तथा भारत में लगभग तीस ब्रांचों का निरीक्षण करते और समय निकाल कर काशी, और कलकत्ता आदि जाकर वहां का कामकाज संभालते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि स्वस्थ रहें, दीर्घजीवी हों, राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में सफल हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक-समालोचना-आलोक :

आत्मकथा अर्थात् आप-बीती जगबीती—लेखक श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ज्वालापुर महाविद्यालय (सहारनपुर) २०×३०/८ साइज। पृष्ठ संख्या ६५०। कीमत—५)

२१ अक्तूबर १८८० से लेकर १९५७ के नवम्बर मास तक की आप बीती समाचार पत्रों से ज्ञात घटनाओं का तत्काल स्फुरित होने वाली टिप्पणियों के साथ उल्लेख किया गया है। पुस्तक की समाप्ति, २२ नवम्बर ५७ दिवाली की छुट्टियां, और इस ग्रंथ से भी छुट्टी से की गई है। अन्तिम पृष्ठ पर 'चलते चलते छपते छपते' शीर्षक के नीचे हस्तलिखित मूलकापी के मुद्रणालय में जाने के अन्तिम क्षण में ' आज हम स्वेच्छा से ही तुम्हें मुक्त कर रहे हैं। अब तुम मुक्त होकर, 'मुक्तसंगः समाचर' अङ्कित कर—ग्रंथ को समाप्त किया गया है। श्री आचार्य नरदेव जी जन्म से महाराष्ट्रीय हैं मूलनाम श्री नरसिंहराव था। इनके पूजनीय पिता जी पं० लेखराम जी के सम्पर्क में आए तो इन्हें आर्यसमाज की शिक्षा दीक्षा में दीक्षित होने के लिये लाहौर भेजा। ज्योतिषी ने भी इन्हें देश-त्याग की बात कही थी। इन्होंने ज्योतिषी की वाणी को आत्म संयम और तपस्या से सत्य सिद्ध किया। पुस्तक में, गुरुजनों, की पितृजनों की वंशावलियां अंकित की गई हैं। समकालीन गुरु शिष्य, साथियों की चित्रावलियां भी दी गई हैं। मराठी मातृभाषा होते हुये भी आत्मकथा देवनागरी हिन्दी में लिखी है। आत्मकथासमकालीन युग का, कोई सार्वजनिक नेता होगा; जिसके आप सम्पर्क में न आये हों। राजनैतिक—सामाजिक, धार्मिक तथा शिक्षा शास्त्रियों के सम्बन्ध में सुन्दर संस्मरण संगृहीत किये गये हैं। आर्य संस्कृति का पुनरुत्थान वैदिक साहित्य का प्रचार, राजनैतिक स्वाधीनता के लिये संघर्ष, जनता जनार्दन की अर्चना के लिये आत्मसमर्पण की पवित्र भावना आत्मकथा के प्रत्येक पृष्ठ में दिखाई देती है। आत्मकथा में 'अहं भाव' का सामान्य मात्रा से अधिक होना अनिवार्य था। आचार्य नरदेव जी इंजीनियर बनते बनते डाक्टर बनने लगे, परन्तु घटनाक्रम से भगवान् की इच्छानुसार देश के भिक्षु बन गये। अब अनेक डाक्टर इञ्जीनियर इस देश-भिक्षु की शिष्य मण्डली में हैं।

"पितृकुल से क्रोध व मातृकुल से हठ यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है। अब हमारा यह क्रोध शुद्ध सात्विक स्वरूप का होता जा रहा है। इस क्रोध ने भी हमको युवावस्था में बहुत हानि पहुंचाई। हठ वृत्ति ने भी अनेक काम बिगाड़े। अब विवेक द्वारा हम इन शत्रुओं की चलने नहीं देते हैं। कई बार जीवन में अपने से अधिक हठी व क्रोधी जनों से पाला पड़ने पर ये दोनों दुर्गुण स्वयं ही ढीले पड़ते रहे हैं।" अब मुक्त संग की भावना से विधान सभा छोड़ कर लोकैषणा भी छूट रही है। आत्मकथा में लोकमान्य तिलक, और महात्मा गांधी के प्रिय तथा अपने दीर्घ स्वाध्याय पारायण में पढ़े गये जीवनोपयोगी सिद्धान्तों के सूचक, संस्कृत मराठी हिन्दी गुजराती के सुभाषित पर्याप्त मात्रा में संगृहीत किये गये हैं। इस आत्मकथा को लेखक के सम्पर्क में आए हुये सार्वजनिक आन्दोलनों का गद्य मय महाभारत कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। महाभारत की भाँति कई बातों की पुनरावृत्ति तथा अनेक घटना प्रसंगों का संग्रह अनावश्यक प्रतीत होता हुआ भी आत्मकथा का अनिवार्य भाग बना हुआ है। ब्रह्मचारियों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानप्रस्थियों को इस पुस्तक का अनुशीलन अवश्य करना चाहिए। गृहस्थियों व तथाकथित संन्यासियों के लिये यह आत्मकथा एक पहेली है। आचार्य नरदेव जी अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं, अतः इनकी हिन्दी में राष्ट्रभाषा हिन्दी का मनोहर सरल निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। इस आत्म कथा को लिखकर आचार्य जी ने हिन्दी भाषा के लोक जन सम्बन्धी साहित्य में वृद्धि की है। पुस्तक संग्रहणीय है। आदर्शवादियों के लिये विशेष रूप से पथप्रदर्शक तथा उन्हें एकान्तिक प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग से हटकर मध्यम मार्ग अपनाने की ओर प्रेरणा देने वाली है।

अणुव्रत—निर्माण अङ्क–सम्पादक श्री सत्यनारायण। १५ अक्टूबर १९५७ पोर्चुगीज चर्चस्ट्रीट कलकत्ता १। १८×२२/८ साइज के ३०० पृष्ठों से ऊपर वार्षिक मूल्य ६) इस अङ्क का मूल्य १) आवरण पृष्ठ आकर्षक सत्व रज तम की साम्यावस्था के आदर्श को मनोरञ्जक ढंग से चित्रित करने वाला है।

इस समय देश में जनता की भौतिक मानसिक आवश्यकताओं तथा अभावों की पूर्ति के लिये बड़े बड़े यन्त्रों द्वारा नए २ नगर तथा जल बिजली के स्रोत तथा बांध कायम किये जा रहे हैं। राजनैतिक स्वाधीनता को सुरक्षित करने के लिये पंचायतों, विधान सभाओं तथा भारतीय संसद् की रचना तथा आराधना हो रही है। परन्तु राष्ट्र के नैतिक स्तर को उन्नत करने के लिये कोई संगठित यत्न नहीं हो रहा। शिक्षणालयों और परिवारों में अर्थ की प्रधानता के कारण गुरु-शिष्य, पति-पत्नी पिता-पुत्र पूँजीपति-मजदूर बड़े छोटे के सम्बन्धों में सामंजस्य के स्थान पर वैषम्य अनबन तथा तनाव दिखाई दे रहा है। अणुव्रत ने इस निर्माण अङ्क में नैतिक स्तर को उन्नत करने के लिये प्रवचनात्मक कवितात्मक तथा कहानी प्रधान लेखों द्वारा जनमत को शिक्षित करने के लिये उत्तम लेखों का आकर्षक ढंग से संग्रह किया है। यह निर्माणांक माता पिताओं, संरक्षकों, गुरुओं तथा लोक सेवकों के लिये मार्गप्रदर्शक है। सफल प्रकाशन पर सम्पादक महोदय साधुवाद के पात्र हैं।

दिव्य ज्योति—संस्कृत भाषा का मासिक पत्र। अर्वाचीन संस्कृत कवि परिचयांक विशेषाङ्क। वार्षिक मूल्य ६) इस विशेषांक का मूल्य ५) पृष्ठ संख्या ८०। साइज २०×३०/८ दिव्य ज्योति कार्यालय आनन्द लाज जाखू शिमला से प्राप्त हो सकता है। भारतवर्ष के संस्कृत के विद्वान् लेखकों तथा संस्कृत प्रेमी धनी दानी महानुभावों के उत्तम चित्र भी दिये गये हैं। वर्तमान युग के जीवित संस्कृत कवियों तथा लेखकों का सचित्र परिचय भी इस विशेषांक की विशेषता है। लेखों में पाश्चात्य साहित्य तथा संस्कृत साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा भी की गई है। विशेषांक के अन्तिम पृष्ठों में राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी कुछ लेख प्रकाशित किये गये हैं। इनमें हिन्दी भाषा के शोध सम्बन्धी लेख संस्कृत भाषा के विद्वान लेखकों के लिये विशेष रूप से रुचिकर हैं।

"भारतीय ललनासु सरस कविता निर्माण कौशलम्" नाम का लेख महत्वपूर्ण है। इसमें संस्कृत में कविता करने वाली कवयित्रियों की रचनाओं का आकर्षक ढंग से सन्निवेश किया गया है। वर्तमान समय की शिक्षित महिलाओं में इस लेख को पढ़ कर संस्कृत में भी काव्य रचना करने की प्रवृत्ति पैदा होने की सम्भावना तथा प्रोत्साहना होनी अनिवार्य है। संस्कृत भाषा में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों तथा संस्कृत भाषा के परीक्षार्थी विद्यार्थियों के लिये यह विशेषांक मनोरञ्जक तथा उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के सर्प—ले० जगपति चतुर्वेदी किताब महल इलाहाबाद प्रकाशन १८×२२/८ पृष्ठ सं० १६२। कीमत चार रुपये। प्रस्तुत पुस्तक में वर्तमान संसार के विविध भूभागों में उपलभ्यमान सांपों की विविध श्रेणियों का सचित्र विवरण अङ्कित किया गया है। भारत के प्राचीन साहित्य में उपलभ्यमान सर्प सम्बन्धी साहित्य का, विशेषतया महाभारत के आदि पर्व में जनमेजय के सर्प सत्र के सम्बन्ध में किये गये विवरण का भी उल्लेख हो जाता तो पुस्तक अधिक मनोरंजक बन जाती। पुस्तक के अन्त में या प्रत्येक अध्याय के अन्त में सर्प विषय सम्बन्धी जिन पुस्तकों का लेखक ने उपयोग किया है उनके नाम भी दे दिये जाते तो अच्छा होता और पुस्तक अधिक उपयोगी भी हो जाती। साथ ही यदि परिशिष्ट में सर्प श्रेणियों के नाम देवनागरी अंग्रेजी में देने के साथ-साथ रोमन अक्षरों में भी दिये जाते तो पाठकों को पढ़ने में ज्यादा सुविधा होती। छपाई, कागज तथा चित्रों की दृष्टि से पुस्तक संग्रह योग्य है। पुस्तकालयों तथा स्कूलों के पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय है। हिन्दी भाषा में इस विषय में बहुत कम ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इस पुस्तक से उनकी संख्या में वृद्धि हुई है।

बुझे दीप—लेखिका–विमला रैना, कहानियों का संग्रह। लेखिका ने 'राजा रानी' की कहानियों की प्रथा को तिलांजलि देकर, मानव जीवन, विशेषतः भारत की पारिवारिक, सामाजिक समस्यायों तथा पहेलियों का कहानी के ढंग से–वर्तमान परिवर्तित–परिस्थितियों से आक्रान्त वातावरण में–विश्लेषणात्मक विवरण अङ्कित करते हुए पुराने युग और नए युग का सुनहरी समन्वयात्मक मिश्रण करने की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। कहानियां मनोवैज्ञानिक और सांसारिक दाम्पत्य जीवन की प्रेम कथाओं को विविध आदर्शों के प्रतिनिधि रूप में चित्रित करती हैं। पुस्तक का नाम अन्तिम कहानी 'बुझे दीप' से रखा गया है। समाज की ओर से विधवा के साथ किए गये निठुर व्यवहार की युक्ति हीनता का प्रभावोत्पादक वर्णन साधारण से साधारण पाठक को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। ग्रामीण शृंगारी वासनाओं को न्यायोचित आदर्शवादों की सुनहरी छवि से अङ्कित किया गया है। युवक युवतियों के लिये कहानियां पथदर्शक हैं। मूल्य २) ५० नए पैसे।

धरती माता—लेखक श्री सूरज। प्रकाशक किताब महल इलाहाबाद। इस में धरती माता की आत्म कथा के रूप में भूमि की उत्पत्ति कैसे हुई; उसके अन्दर दीख रही वनस्पतियों और जीवजन्तुओं के विकास क्रम की कहानी अङ्कित की गई है। सूर्य चांद ग्रह जल-थल नदियों के भी विवरण दिये गये हैं। स्कूलों के विद्यार्थियों को प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा देने वाले अध्यापकों तथा प्रौढ़ विद्यार्थियों के स्वाध्याय के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

पशु जीवन का मानवीय रूप—लेखक डा० प्रसाद। किताब महल इलाहाबाद–चेतन-जगत् का कैसे विकास हुआ? विकासवाद के प्रवर्तक डार्विन की विचारधारा के अनुसार पशु तथा मानव जाति के विकास का मनोरंजक उदाहरणों के साथ विवेचन किया गया है। सांख्य दर्शन के 'आत्मा अनन्त तथा अमर हैं; की वर्तमान विज्ञान के सिद्धान्तों की सहायता से व्याख्या की गई है। 'जीवो जीवस्य भोजनं तथा मत्स्यन्याय की (बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है) Survival of the fittest "जीवन संघर्ष में सब से अधिक शक्तिशाली प्राणी ही जीवित रहता है" की स्थापना की गई है। प्रारम्भ में शंकर भाष्य के "पश्वादिभिश्चाविशेषात्"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आहार निद्राभय मैथुनं च सामान्य मेतत् पशुभिः नराणां'' के अनुसार पशु जगत् में विद्यमान भोजन-छादन निद्रा परस्पर प्रेम भावनाओं के विवरण दिए गए हैं। पशु जगत् की अपेक्षा से विवेक के परिणाम रूप-धर्म परस्परसमाज को धारण करने के लिये आवश्यक प्रवृत्ति की विशेषता को, मनुष्य के मानसिक विकास का उन्नत तम रूप बताया गया है। अन्त में यह सिद्ध किया है कि चाहे आधुनिक सभ्यता का विलीनीकरण हो जाय परन्तु मानव-मनुष्य विपरीत तथा परिवर्तित परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना कर उन पर विजय प्राप्त करता रहेगा; और अनन्त काल तक अनन्त संख्या में जीवित रहेगा। पुस्तक की विषय प्रतिपादनशैली आकर्षक तथा अनेक प्रत्यक्ष परीक्षणों पर आश्रित है। छपाई, कागज उत्तम है। पुस्तक साधारण जनता में वैज्ञानिक मनोवृत्ति तथा विज्ञान के लिये रुचि पैदा करने में अत्यन्त सहायक हो सकती है।

राजधानी के अंचल से—ले० श्री राजेन्द्रलाल हांडा। मूल्य २॥) किताब महल प्रकाशक इलाहाबाद ३। लेखक के सन्बन्ध में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी एम. पी. की यह सम्मति, ''कुशल पत्रकार श्री राजेन्द्रलाल हांडा, हास्य रस के अत्यन्त सफल लेखक हैं'' पाठक को इनकी किसी भी कृति को प्रारम्भ कर, समाप्त किये बिना पुस्तक को न छोड़ने के लिये विवश करती है। प्रस्तुत पुस्तक में, भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिलने तथा दिल्ली की जन-संख्या तथा क्षेत्र विस्तार में वृद्धि होने के कारण; जो सामाजिक परिवर्तन; विविध श्रेणियों में हुए हैं उनका मनोरञ्जक रूप में वर्णन किया गया है। इंगलिश साहित्य को लोक साहित्य बनाने में इंगलैंड निवासी अनेक लेखकों के डायरीनुमा लेखों ने पर्याप्त भाग लिया है। उसी प्रकार से साहित्यिक हिन्दी को राष्ट्रभाषा लोकभाषा बनाने में श्री हांडा जी की इस प्रकार की पुस्तकें विशेष रूप से सहायक हो रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक को यदि दिल्ली के होटलों, क्लबों, सिनेमाघरों और बसों के इन्स्पैक्टर का मनोरञ्जक रोजनामचा कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। पुस्तक का नाम तथा टाइटल देखते ही अन्दर किन्हीं रसीली कविताओं को पढ़ने की आकांक्षा हृदय में उभर आती है। परन्तु अन्दर गद्यमयी रोजनामचा नुमा कहानियां मिलती हैं। इस बात के कहने में संकोच नहीं कि इन कहानियों को पढ़ने के बाद पाठक का मन व हृदय आशावाद, क्रियाशीलता और परिवर्तन के स्वागत अभिनन्दन के लिये सहसा उत्कण्ठित हो उठता है। कागज़ छपाई बढ़िया आकर्षक है। कुशल पत्रकार हांडा जी सफल कहानीकार के रूप में इसके पन्ने पन्ने पर पाठक को आकृष्ट कर रहे हैं।

गांधी विचार—प्रकाशक-लेखक दी इण्डियन पब्लिकेशंस अम्बाला छावनी। मू० १) पृष्ठ संख्या ८०। १६ प्वाइंट हिन्दी मोटे टाइप में। राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की जीवनघटनाओं तथा उन द्वारा जीवन के हरेक पहलू के सम्बन्ध में दिये गए निर्देशों का सुन्दर संग्रह है। घरों, पाठशालाओं तथा पुस्तकालयों के लिये संग्रह योग्य है। प्रथम पृष्ठ पर गांधी जी का, डांडी यात्रा का भावपूर्ण रेखा चित्र है। छपाई स्वच्छ और स्पष्ट है।

नवीन राष्ट्रभाषा व्याकरण—श्रीदेव शर्मा तथा श्री श्यामसुन्दर जी। प्रकाशक दी इंडियन पब्लिकेशन्स हिल रोड, अम्बाला छावनी। मूल्य २।) पृष्ठ संख्या २१०। साइज २०×३०।१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के युवक कवियों में अग्रणी :-

श्री परमानन्द जी शर्मा एम. ए. :

श्री परमानन्द शर्मा का जन्म १७ जून १९२४ ई० को जालन्धर जिले में घोड़ियाल गाँव में हुआ। बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा जालन्धर से पास करके आपने गवर्नमैंट कालेज लाहौर से एम० ए० (अंग्रेजी) पास किया और द्वाबा कालेज जालन्धर में प्राध्यापक नियुक्त हुए। गत दो वर्ष से आप गवर्नमैंट कालेज धर्मशाला (कांगड़ा) में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। हिन्दी-संस्कृत के विद्यार्थी होते हुये भी आपने स्कूल-काल में उर्दू में कविता करना आरम्भ कर दिया था। विद्यार्थी-युग में आपने भर्तृहरि के "वैराग्य शतक" का अनुवाद सरल उर्दू में किया जो "ओ३म्" में छपता रहा।

लेखक युगल ने भूमिका में इस बात का उल्लेख किया है कि इस व्याकरण में, हिन्दी के उपलभ्यमान व्याकरणों की अपेक्षा कई नई बातों का विनिवेश किया गया है। उदाहरणार्थ—अक्षर वर्ण का भेद इत्यादि। हमारी सम्मति में इस प्रकार के सूक्ष्म भेद साधारण विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी नहीं। हां, अध्यापकों के लिये विशेष उपयोगी हो सकते हैं। प्रस्तुत व्याकरण में Direct method प्रत्यक्ष उदाहरण से पढ़ाने की पद्धति अपनाई गई है। अधिकांश में हिन्दी व्याकरण को संस्कृत व्याकरण के नियमों पर आश्रित किया गया है। इस स्थिति में हमारी सम्मति में संधि प्रकरण में १४ प्रत्याहार सूत्रों का प्रारम्भ में विद्यार्थियों को याद कराना ज्यादा उपयोगी होगा। इससे उन्हें सन्धि प्रकरण समझने तथा याद करने में अच् आदि प्रत्याहारों का बोध सरलता से होगा। पुस्तक में "प्राण" शब्द का अर्थ ऋण लेने वाला किया गया है यह समझ में नहीं आया कैसे? निस्सन्देह पुस्तक की विषय प्रतिपादन शैली सरल स्पष्ट तथा अध्यापकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। विशेषतः परीक्षार्थियों को इससे बहुत लाभ हो सकता है।

भारत के आदिवासी—प्रकाशक श्री ओ. पी. वैद, इंडियन पब्लिकेशन्स अम्बाला छावनी। कीमत ३ रुपए ५० नये पैसे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के आदिवासियों की ओर राष्ट्र का विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। विदेशी शासन काल में हरेक विदेशी राजशक्ति इन आदिवासियों तथा साधारण भारतवासियों को एक दूसरे से पृथक रखने में ही अपना कल्याण समझती थी और इन्हें ईसाई धर्म प्रचार तथा लोककल्याण आदि साधनों द्वारा भारतीय राष्ट्र की साधारण जनता से पृथक् रूप में चित्रित करती थी। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने इस कमी को दूर करने के लिये आदिवासियों तथा अन्य राष्ट्रवासियों में विद्यमान सांस्कृतिक शैक्षणिक समानताओं का उल्लेख आकर्षक ढंग से किया है। लोकसेवक कार्यकर्ताओं—विशेष कर इन जातियों में भारतीय सभ्यता व संस्कृति का प्रचार करने वालों के लिये पुस्तक उपयोगी तथा सहायक है। प्रथम पृष्ठ पर एक आदिवासी का तिरंगा चित्र भी है।

भीमसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री परमानन्द शर्मा

एम० ए० पास करने के तुरन्त बाद आपकी रुचि हिन्दी की ओर आकृष्ट हुई जिसके फल स्वरूप आपने हिन्दी जगत् के सम्मुख "छत्रपति" प्रस्तुत किया। इस वीर-रस-प्रधान प्रबन्ध काव्य में आपने वीर-शिरोमणि छत्रपति शिवा जी महाराज की अमर गाथा को छन्दो-बद्ध किया। यू० पी० सरकार ने आपको इस स्फूर्तिदायी ग्रंथ पर ५००) रुपये का पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। "छत्रपति" के पश्चात् आपने पंजाब केसरी वीर बन्दा बहादुर के अनुपम बलिदान की कहानी 'वैरागी' लिखी है। आजकल आप एक और वीर काव्य 'पोरस' लिख रहे हैं। समय समय पर आप मुक्तक रचनाएं तथा फुटकर गीत भी लिखते हैं। हिन्दी के युवक कवियों में आप अग्रणी हैं और पंजाब के हिन्दी कविता लिखने वालों में आपका विशेष स्थान है। आपकी 'वैरागी' में से एक "पंजाब" शीर्षक नामक कविता नीचे अंकित है :—

हे जरा-जर्जरित जन्मभूमि, हे जन-जननी ! शत नमस्कार।
हे शताब्दियों के अमर चिह्न, हे पुण्य पंचनद नमस्कार।
मेरे प्रियतम पंजाब देश ! भारत भू के गौरव ललाट !
हे चिर-संस्कृति के चिर-रक्षक ! हे खड्गपाणि, योद्धा विराट !
कुण्ठित तेरी तलवार आज बैरी के सतत प्रहारों से,
मुड़ चुकी तीव्र असि-धार आज, या नटी नियति के वारों से।
तू भग्नहृदय हो खण्ड खण्ड लेता क्यों अन्तिम श्वास आज ?
तेरे मुख से, ओ वीर धीर ! क्यों निकल रहा निःश्वास आज ?
निज अतुल शौर्य पर क्यों तुझको उठ चुका, वीर ! विश्वास आज ?
तू शौर्य्यपुञ्ज, तू शक्तिमूर्ति, फिर किसका मन में त्रास आज ?
मेरे भारत के मुकुट सौम्य, मेरे पावन पञ्जाब प्रान्त !
क्या हुआ तुझे इस दुर्दिन में यों राक्षस करते पदाक्रान्त।
मत हो हताश, मत हो निराश यदि कालचक्र का फेर पड़ा।
हरने को तेरी व्यथा आज हो गया पुनः इक वीर खड़ा।
क्या ? यदि अवश्य हो गये भङ्ग, क्या ? टूट गये यदि अङ्ग-अङ्ग।
अणु-अणु एकत्रित करने की बन्दा निकला लेकर येकर उमंग।
माँ वृद्धे ! अब न बहा आंसू तू वयोवृद्ध इन आंखों से।
माँ ! देख न बन कर करुणा-सी जिन भीगी भीगी पांखों से।
हत हरिणी क्रन्दन-क्षत होकर थी जिसने जगमाया त्यागी,
माँ वृद्धा के व्रण देख पुनः बन गया खड्गधर वैरागी।
बन्दा ने दारुण दुःख तेरे सुन, छोड़ दिया माला जपना,
लेकर कृपाण है निकल पड़ा पूरा करने शुभ प्रण अपना।
चम चम दिल्ली तक चमकेगा क्षण-बिजली सी लहर लहर।
दानव दल-बल पर छहर छहर अब बन्दा की तलवार प्रखर।
वह अरि से स्वयं निकालेगा गुरुपुत्रों के वध का बदला।
उन दुष्ट यवन हत्यारों को, कर देगी भस्म यही चपला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी प्रेमी लेखक साधु महात्मा :

श्री स्वामी रामस्वरूप जी उदासी, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी
श्री स्वामी सत्यानन्द जी :

संयुक्त पंजाब में इन तीनों की संरक्षा में अमृतसर में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। श्री राम स्वरूप जी उदासी अमृतसर अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, सभापति थे। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के नाम से उनके भक्तों:—स्वर्गीय लाला राधाकृष्ण जी गुरू बाजार ने स्वतन्त्रानन्द हिन्दी पुस्तकालय अमृतसर में स्थापित किया था। अपने ढंग का यह अनूठा पुस्तकालय है। श्री स्वामी रामस्वरूप जी उदासी मंडल, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के गुरु भाई थे, अपने मठ के आधीन स्थानों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था की थी। स्वयं हिन्दी के लेखक तथा व्याख्याता थे।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आचार्यत्व में, दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर में मद्रास, बंगाल हैदराबाद, सिंध के अनेक छात्र, हिन्दी पढ़ते थे। उनमें से अनेक छात्र आज दक्षिण में हिन्दी प्रचार द्वारा लोक सेवा कर रहे हैं। नारायण आदि अनेक विद्यार्थी ब्रिटिश गायना मौरिशस में भी हिन्दी प्रचार करते रहे।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने १६०६–१० के लगभग मौरीशस फिजी में धर्म प्रचार के सिलसिले में वहां की राज भाषा फ्रैंच के मुकाबले में वहां रहने वाले भारतीयों को हिन्दी अपनाने के लिये क्रियात्मिक कार्यक्रम से प्रेरित किया। डाकखाने वालों को हिन्दी में लिखे पते भिजवाने का आन्दोलन किया। इससे वहां की सरकार तथा डाकखाने को हिन्दी अपनानी पड़ी। आज यह आन्दोलन सफल आन्दोलन के रूप में वहां के भारतीयों को हिन्दी पढ़ने की सुविधा दे रहा है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पंजाबी संस्कृत उर्दू फारसी हिन्दी के विद्वान् थे। आपने हिन्दी में आर्य समाज विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे। सिखों का इतिहास नाम का ग्रन्थ हिन्दी भाषा में स्वामी वेदानन्द जी के साथ मिलकर लिखा। वह अभी तक मुद्रित नहीं हो सका। इसके इलावा 'महाधन' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। पुराने पंजाबी हिन्दी सन्त कवियों के विषय में विविध पत्रिकाओं 'हिन्दी सन्देश में गिरिधर कविराय पंजाबी साधू थे'। पंजाबी साधु हिन्दी कवि निश्चलदास (नवम्बर १६५३ हिन्दीसन्देश) तथा साधु गुलाबसिंह जी निर्मले (मद्रदेश माझा) (जनवरी १६५४ हिन्दीसन्देश) आदि विद्वानों के विषय में मौलिक लेख लिखे।

स्वामी सत्यानन्द जी—जैन सम्प्रदाय के मठ के मुख्य व्यक्ति थे पीछे आर्य समाज के नेता बने। आप द्वारा रसीली हिन्दी में की गई धर्म भक्ति कथाओं ने लाहौर के सार्वजनिक जीवन में हिन्दी को महत्व पूर्ण स्थान दिलाया। इसके इलावा आपने हिन्दी में अनेक ग्रन्थ लिखे। आपका लिखा 'दयानन्द प्रकाश'–ऋषि दयानन्द का जीवन चरित लगभग छः सौ पृष्ठों का, पंजाब के हिन्दी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि है। इसकी भाषा ओजस्विनी भावमयी जीवन संचारिणी और फबीली है। इसके इलावा आपने 'भक्ति प्रकाश' नाम का पद्यात्मक भक्ति काव्य भी लिखा है।

यह ४७१ पृष्ठों का पद्य ग्रन्थ कबीर राय बुल्ला शाह आदि सन्तों की हृदय हारिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु भाषा में लिखी कृतियों का स्मरण कराता है। उदाहरणार्थ इसके कुछ पद्य नीचे अङ्कित किये जाते हैं।

*** एकता ***

एक भाव भाषा जहां, वेश देश हो एक।
भोजन सुधर्म्म एक हो, वहीं ऐक्य विवेक ॥१॥
स्वार्थ सांझे हों जहां, हो सुमिलित व्यापार।
सम ही सुख दुःख हों जहां, वहां एकता प्यार ॥२॥
यथा राघव सुग्रीव का, सम दुःख में हो मेल।
सम भय हानि विपत्ति में, बसे मेल का खेल ॥३॥
स्व-जातीय सधर्म्मी में, हो ऐक्य ही जाय।
इन में हो जब विषमता, तभी फूट फल लाय ॥४॥
ज्ञान बढ़ावे एकता, धर्म्म जाति के भाव।
सेवा पर उपकार भी, उन्नति प्रेम बनाव ॥५॥
एकता में सुगुण बसें, जन-हित प्रेम विशेष।
विजय विद्या कौशल सभी, उन्नत होवे देश ॥६॥
तारें कच्चे सूत्र की, मिल बान्धें गजराज।
तृण रस्से का रूप धर, रखते बान्ध जहाज ॥७॥
लोहे के कण खान से, निकलें रेत समान।
मिल जुल कर संघट्ट हो, थाम्भे बोझ महान् ॥८॥
एक एक ही बूंद मिले, बने नदी नद सिन्ध।
सुजन एकता में मिले, जीतें द्वेषी-वृन्द ॥९॥
नभ से गिर बून्दे मिलें, बनें नदी का पूर!
कोट किले ढाहे बड़े, पर्वत कर दे चूर ॥१०॥
वंश, कलह से नष्ट हो, कौरव रावण देख।
फूट बिगाड़े देश को, जय-चन्द्र का लेख ॥११॥
कलह अग्नि सुलगाय कर, जन करते निज-नाश।
घर में आग लगाय कर, कौन करे सुख आश ॥१२॥
अपने भीतर से हिले, उबल डूबते द्वीप।
अपने घर को आग से, अपना जलाय दीप ॥१३॥

स्वर्गीय प्रोफेसर सुधाकर जी एम० ए०—आप फोरमैन क्रिश्चियन कालेज लाहौर में पढ़ते थे। उनका जन्म जेहलम में हुआ था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में युरोपियन फिलासफी के प्रोफेसर थे। हिन्दी माध्यम से युरोपियन फिलासफी पढ़ाते थे। इसी विषय पर, 'मनो विज्ञान' नाम का ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक की सराहना में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें मंगला प्रसाद पारितोषक दिया। पीछे से दिल्ली में शारदा मंदिर नाम से हिन्दी प्रकाशन संस्था चलाते रहे। विविध विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें लिखीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० भगवद्दत्त जी तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा की गई हिन्दी सेवा

[ले०—श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु काशी]

निःसन्देह पं० भगवद्दत्त जी ने लाहौर में रिसर्च, जो अंग्रेजी में हो रही थी, उसका कांटा बड़े साहस से मोड़ कर हिन्दी की ओर किया। नहीं तो हिन्दी में कोई सुनने को तैयार न था। पं० भगवद्दत्त जी की पुस्तकें पढ़ने के लिये विदेशियों को हिन्दी सीखनी पड़ी। वैदिक वाङ्मय का इतिहास (कई भागों में) जैसी ऊँची रिसर्च की पुस्तकों को पण्डित जी ने हिन्दी में लिख कर हिन्दी को रिसर्च संसार में स्थान दिलाया। जिसमें अभी तक स्कालर कहे जाने वाले लोग नाक भौं चढ़ाते हैं।

स्वर्गीय डा० लक्ष्मण स्वरूप जी, डा० रघुवीर जी, डा० सूर्यकान्त आदि को प्रेरणा देने वाले पं० भगवद्दत्त जी ही हैं। मुझे तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसक को वैदिक खोज की प्रेरणा देने वाले पं० भगवद्दत्त जी हैं। सन् २५ में रिसर्च हिन्दी में लिखी जा सकती है इसको कोई मानता भी न था। पं० भगवद्दत्त जी ने सब स्कालरों को अपनी तीव्र आलोचनाओं से वाधित कर दिया कि वे हिन्दी में लिखें।

रहा मैं, सो मैंने तो सीधी हिन्दी का कोई काम किया नहीं। हाँ, संस्कृत व्याकरण हिन्दी में पढ़ाया और अब बिना रटे 'संस्कृत सरलतम पद्धति' को हिन्दी में ही लिखा। वेद वाणी द्वारा वैदिक जानकारी हिन्दी में ही दी जा रही है। १० वर्षों से चल रही है। मेरे गुरु स्वर्गीय पूज्य स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती ने (जो पंजाबी थे) महाभाष्य का हिन्दी में अनुवाद किया जो इस समय तक अमुद्रित है और मेरे पास पड़ा है। 'संस्कृत की सरलतम पद्धति हिन्दी में' का द्वितीय संस्करण छप रहा है। संस्कृत व्याकरण को हिन्दी में पढ़ाने की यह पुस्तक अद्भुत लाभकर सिद्ध हुई है। पाणिनि महाविद्यालय में बराबर श्रेणी चलती है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से कई वर्षों से पंचनद यन्त्रालय में ऋषि दयानन्द के हिन्दी में लिखे ग्रंथ प्रचारार्थ लागत मूल्य पर छापकर पंजाब में देवनागरी लिपि का प्रचार किया गया है। पार्टीशन के बाद यह सारा काम अमृतसर में हो रहा है।

हिन्दी और राधा स्वामी सत्संग :

अंग्रेजों के शासनकाल में आगरा के राधा स्वामी दयाल सत्संग के शिवदयाल जी गुरु तथा उन्हीं के सम विचारों वाले पंजाब के व्यास के राधा स्वामी मत के श्री जयमलसिंह ने पंजाब में इसका प्रारम्भ किया और श्री सावनसिंह जी ने इसका प्रचार किया। इनके सिद्धान्त ग्रंथ भी अधिकांश में हिन्दी देवनागरी में ही हैं। यह ग्रंथ कबीर दादू की सिधक्कड़ी भाषा वाली कवित्त दोहों में है। इनकी शिष्य मण्डली तथा भक्त मण्डली में अधिकांश हिन्दी जानने वाले हैं। सार वचन छन्द वचन दूसरा भाग की कविता के कुछ उद्धरण ये हैं—

चार खान चौपड़ जग रची। अण्ड जेर सेदज उद्भिजी।
माया ब्रह्म पुरुष पिरकिरती। मन इच्छा से लें शिव शक्ती।
सुरत नई तामे बहुत मची। धूम खेल की अतिकर मची।
तीन गुनन का पासा लीन्ह। रज गुन तम सतगुन चीन्ह।
भोग धरे राधास्वामी आगे। लीन्हे विजन अमी रस पागे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानवीर रा० ब० सोहनलाल जी की आपबीती :

श्री दिवाकर दत्त जी और पं० आर्य मुनि जी हमें संस्कृत
सिरसा और लाहौर में, शौक से पढ़ाया करते थे

मेरा जन्म १३ जुलाई १८८३ को सिरसा जिला हिसार में एक साधारण घराने में हुआ था। उन दिनों सिरसा जिला का सदर स्थान था। पर मेरे जन्म के थोड़े दिन पश्चात् सिरसा का ज़िला तोड़ कर डिप्टी कमिश्नर तथा जिले के महकमे हिसार ले जाये गए। मेरे पूज्य पिता ला० बैजनाथ जी को जो स्थानीय जिला बोर्ड में हैड क्लर्क थे, सिरसा छोड़ कर हिसार जाना पड़ा।

मेरे पिता जी का वेतन बहुत थोड़ा था पर अपनी आयु भर उन्होंने इसी वेतन में अपने सारे परिवार का गुजारा किया। अपने परिवार के अतिरिक्त उन्हें अपने एक भाई के परिवार का जिन की मृत्यु हो गई थी, पालन-पोषण भी इसी वेतन में करते थे। वह भगवान् पर विश्वास करते थे और इसी सहारे ५०) मासिक में इतने बड़े परिवार का गुज़ारा कर लेते थे। उस समय उन पर कर्जा भी था। पर वह अपने रास्ते पर से भटके नहीं। एक बार एक व्यक्ति को कोई कार्य उनसे आ पड़ा। उसने रिश्वत देनी चाही। पर पिता जी ने उसे स्वीकार नहीं किया। उसका कार्य कर दिया। उन्हें अपने चरित्र बल पर बड़ा भरोसा था। १८९७ में उन की मृत्यु हो गई।

Sir William Mackworth young श्रीयुत यंग जो बाद में पंजाब के लफटैंएट गर्वनर भी बने, हमारे जिले में डीं० सी० रह चुके थे। मेरे पिता जी को उनके साथ जिला बोर्ड में काम करना पड़ा था। वह पिता जी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे और कहा करते थे कि 'मैंने श्री बैजनाथ जैसा ईमानदार मनुष्य अपने जीवन में नहीं देखा।' यही कारण था कि उन दिनों सरकारी कामों में वह पिता जी से सहायता लेते थे। उनका विश्वास पात्र होने के कारण ही सरकारी बंगलों के लिये जो वस्तुएं तथा सामान आदि बनाया जाता था वह पिता जी की मार्फत बनाया जाता था।

जहां पिता जी के चरित्र का मुझ पर प्रभाव पड़ा वहां मेरे चचा श्री जगन्नाथ जी का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा था। आप १८९६ ई० में जिला कचहरी में अहल्मद थे। उनका वेतन उस समय केवल २५ रुपये था। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का इतना शौक था कि प्रति मास वह २ या २॥ रुपये की पुस्तकें खरीदा करते थे। वह फार्सी तथा अर्बी में भी निपुण थे।

परमात्मा पर उनके दृढ़ विश्वास के सम्बन्ध में एक बात मुझे याद है। उनके एक मित्र ला० विशनदास जैनी थे। परमात्मा के बारे में उनके साथ उनका वार्तालाप हुआ करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। जब मेरे चाचा जी की मृत्यु का समय समीप आया, उन्होंने श्री विशनदास जी को जो बाहर गये हुए थे, अपने पास बुलाया और कहा परमात्मा के अस्तित्व के बारे में हमारी आपस में बात चीत होती रहती थी। अब मेरा अन्तिम समय समीप आ रहा है। मैं आप को बता देना चाहता हूं कि परमात्मा का अस्तित्व है। वह सत्य है और इस सृष्टि का रचने वाला है।

केवल यही शब्द उन्होंने कहे थे।

मैं छटी कक्षा में था जब मेरे पिता जी का देहान्त हो गया और ८ वीं में था जब मेरे चचा भी चल बसे। ऐसी दशा में छात्रवृत्ति में ही मुझे गुजारा करना पड़ा। मेरी शादी, जैसा कि उस समय रिवाज था, छोटी आयु में ही हो गई थी। इस कारण न केवल अपना, अपने घर का भी भार मुझ पर था।

उस समय गवर्नमैंट हाईस्कूल हिसार में हिन्दी संस्कृत के अध्यापक श्री दिवाकर दत्त जी शास्त्री थे। वह बड़े शौक से हमें यह दोनों भाषाएं पढ़ाया करते थे। व्याकरण के वह योग्य शिक्षक थे। मुझे भली प्रकार याद है कि हाई कक्षाओं में संस्कृत व्याकरण की जो शिक्षा श्री शास्त्री जी ने हमें दी थी, बी० ए० तक वह हमारे काम आई। वह बड़े प्यार तथा शौक से पढ़ाते थे और उन की प्रेरणा से संस्कृत तथा हिन्दी पढ़ने का शौक हमारे दिल में पैदा हो गया।

एफ० ए० में मैं डी० ए० वी० कालेज लाहौर आ कर दाखल हो गया। यहां हमारा सम्पर्क पं० आर्य मुनि जी से हुआ। आप प्राचीन भाषा-संस्कृत के अध्यापक थे। वह बड़े प्यार से पढ़ाते थे। इस भाषा में उन के कारण मेरी श्रद्धा और भी बढ़ी। इस का फल मुझे यह मिला कि मैं छात्र वृत्ति प्राप्त करने में सफल हो गया। बी० ए० में भी मैंने अंग्रेज़ी तथा गणित के साथ संस्कृत भी लिया था। १९०५ ई० में मैंने बी. ए. पास कर लिया। में सारे पंजाब में तीसरे नम्बर पर पास हुआ।

मैंने १९०६ में लाहौर ट्रेनिंग कालेज मे बी० टी० पास की। और बटाला लोक पालिका के हाई स्कूल में मुख्य अध्यापक लगा। $1\frac{1}{2}$ वर्ष पश्चात् मैं गवर्नमैंट सेण्ट्रल माडल स्कूल लाहौर में तीसरा अध्यापक बन कर आ गया। कई बार मैं मुख्य अध्यापक की जो अंग्रेज थे; अनुपस्थिति में उन के स्थान पर काम करता था। यहां मैं उच्च विज्ञान तथा भूगोल की शिक्षा दिया करता था। $1\frac{1}{2}$ वर्ष पश्चात् सेन्ट्रल ट्रेनिङ्ग कालेज लाहौर में अध्यापक के रूप में मेरी नियुक्त हो गई। यहां मैं एस० ए० वी० तथा बी० टी० की कक्षाओं को इतिहास तथा भूगोल पढ़ाया करता था। भूगोल उस समय ही पढ़ाया जाना आरम्भ हुआ था। मैंने इसका ध्यान से अध्ययन किया। इस विषय पर बहुत सी पुस्तकों का अध्ययन किया। और काफी सोच विचार के पश्चात् Regional Method of Teaching शिक्षण की प्रादेशिक पद्धति तथा भौगोलिक यात्रा exersions पर जोर दिया जिस से विद्यार्थियों में भूगोल के अध्ययन तथा अपने देश का ज्ञान प्राप्त करने का शौक पैदा हो। उन दिनों बी. ए. में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०० विद्यार्थी पढ़ा करते थे जिन में से ७० छात्र विशेष विषय के तौर पर भूगोल तथा इतिहास लिया करते थे। उन में शौक पैदा करने के विचार से हर वर्ष में उन्हें सैर के लिये बाहर कई स्थानों पर ले जाया करता था। इन पार्टियों में लाहौर के अतिरिक्त, अमृतसर, सियालकोट तथा रावलपिंडी के छात्र छात्राएं भी सम्मिलित होते थे। मेरी धारणा होती थी कि पंजाब के छात्र निम्नलिखित स्थान अवश्य देखें।

१. *बंदरगाह*—इसे देखकर वह समुद्री जहाज को देखेंगे। मैं विद्यार्थियों को कराची, बम्बई, कलकत्ता, रंगून, मद्रास में से एक बन्दरगाह दिखाने ज़रूर ले जाता था।

२. *खानें*—प्रतिवर्ष चार पाँच बार मैं विद्यार्थियों को खियूड़ा में नमक की खान दिखाने ले जाता। यह स्थान अब पाकिस्तान में रह गया है। जहाँ से नमक निकाला जाता है।

३. *खैबर का दर्रा*—यह बड़ा महत्त्व पूर्ण स्थान है वहां जा कर विद्यार्थी देखते थे सरहद पर हमारे सैनिक किस प्रकार हमारी रक्षा करते हैं।

४. *जोगेन्द्र नगर का बिजली पैदा करने का स्टेशन*—पानी के गिरने की शक्ति से बिजली किस प्रकार पैदा होती है, इसे देख कर ही पता लग सकता था।

५. *ऐतिहासिक स्थानों की सैर*—मैं अपने विद्यार्थियों को प्रति वर्ष लाहौर किला, जहांगीर का मकबरा, वजीर खां की मसजिद तथा शालामार बाग, महाराजा रंजीतसिंह की समाधि देखने के लिये जरूर ले जाता। यह स्थान देख कर छात्र समझ लेते थे कि मुगल साम्राज्य के समय अच्छी २ ईमारतें किस प्रकार बनती थीं। लाहौर में जो प्रसिद्ध व्यक्ति बाहर से आते थे, उन्हें यह ऐतिहासिक स्थान मैं ही दिखाया करता था। मुझे ठीक प्रकार से याद है कि एक बार जब प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री यदुनाथ सरकार लाहौर आये थे, तो लाहोर किला दिखाने के लिये मैं उन के साथ गया था।

६. *भारतवर्ष में अजन्ता की गुफाएं*—अजन्ता केव, सांची के स्तूप तथा आबू पर्वत के जैन मन्दिर दिखाने भी कई बार मैं अपने विद्यार्थियों को ले गया था। इन पार्टियों में छात्राओं के अतिरिक्त अन्य लोग भी कई बार शामिल हो जाया करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पुस्तकालयों द्वारा हिन्दी प्रचार :

श्री लाला राधाकृष्ण जी की हिन्दी सेवा–

ला० राधाकृष्ण जी अमृतसर के सम्पन्न व्यक्ति थे। आर्यसमाज के बड़े भक्त थे। मरते दम तक उन्होंने स्वाध्याय नहीं छोड़ा। उपनिषद्, वेदभाष्य तथा दर्शनों का अनेक बार जीवन में पारायण किया और दूसरों को कराया। हिंदी के वे इतने भक्त थे कि उस ज़माने में जबकि प्रत्येक सम्पन्न व्यक्ति अपने बच्चों को संस्कृत इङ्गलिश और उर्दू की शिक्षा देता था, इन्होंने अपने बच्चों को संस्कृत तथा हिन्दी की शिक्षा दी तथा हिन्दी और संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सदा सहायता प्रदान करते रहे, उनकी सहायता से कितने ही व्यक्ति हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् हुए। इनके घर में भी हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय था और उन्होंने अपने जीवन में हिन्दी के लिए जो सबसे बड़ा काम किया वह अमृतसर में स्वतन्त्रानन्द पुस्तकालय की स्थापना है। इसमें लाला राधाकृष्ण जी ने अपनी पर्याप्त सम्पत्ति लगाई तथा दूसरों से भी इसके लिये सहायता प्राप्त करते रहे। उनका विचार था कि हिन्दी तथा संस्कृत का इसे विशाल पुस्तकालय बना दिया जाए। वह यावज्जीवन इसके लिये सयत्न रहे। प्रकाशित अप्रकाशित जो भी पुस्तक उनको उपलब्ध होती उसे वह पुस्तकालय में लाने का यत्न करते थे। पुस्तकालय निर्माण के लिए उन्होंने पंजाब के तत्कालीन विद्वानों का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त किया। स्वा० श्रद्धानन्द, स्वा० स्वतन्त्रानन्द, स्वा० वेदानन्द, रा. सा. ला. गङ्गाराम, पं० तिलक राम भिषगाचार्य पुस्तकालय संचालन में इनके विशेष सहयोगी रहे हैं। उनके इस प्रयत्न का यह फल है कि स्वतन्त्रानन्द पुस्तकालय पंजाब का महत्वपूर्ण पुस्तकालय बन गया है। इस समय इसमें साढ़े दस हजार से अधिक पुस्तकें विद्यमान हैं। इसमें हस्तलिखित ग्रंथों का भी अच्छा संग्रह है। पुस्तकालय के साथ वाचनालय भी खुला हुआ है जिसमें हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक अनेक पत्र आते हैं। काफ़ी जनता इससे लाभ उठाती है। ला० राधाकृष्ण जी ने आर्यसमाज के सहयोग से एक कन्या पाठशाला भी चालू की जो इस समय आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर में वैदिक कन्या पाठशाला के नाम से चल रही है और लगभग सौ कन्याएं शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। लाला जी ने अपनी दूकान का बहीखाता भी हिन्दी में कर दिया था। इस प्रकार से लाला जी का हिन्दी प्रचार में भारी भाग है।

*　　*　　*

सिरसा में बाल अमर हिन्दी पुस्तकालय तथा हिन्दी युवक समिति पुस्तकालयों द्वारा वर्षों तक स्वयं बालक, युवक पाठक सदस्य हिन्दी प्रेमी अपने शुल्क से हिन्दी पुस्तकालय चला रहे हैं।

*　　*　　*

अबोहर में भी साहित्य सदन पुस्तकालय द्वारा हिन्दी प्रचार हो रहा है।

*　　*　　*

हिन्दी पुस्तकालयों तथा हिन्दी वाचनालयों द्वारा जनता में हिन्दी का पर्याप्त प्रचार हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचय :

लाहौर के हिन्दी प्रकाशकों का सूत्रधार :

(राजपाल एण्ड संस १८६१ ई०)

हिन्दी साहित्य के प्रकाशकों में राजपाल एण्ड सन्स (काश्मीरी गेट, दिल्ली) का प्रमुख स्थान है। इस प्रकाशन-गृह की स्थापना आज से ६० वर्ष पूर्व सन् १८६१ ई० में लाहौर में हुई थी। आर्यसमाज के प्रसिद्ध हुतात्मा महाशय राजपाल जी संस्था के संस्थापक थे। उनके सफल संचालन में इस फ़र्म ने अब से बहुत पहले ही प्रसिद्धि और व्यवसाय में उल्लेखनीय सफलता हासिल की थी। न केवल भारत में ही अपितु दक्षिण अमेरिका, फिजी, मौरीशस, अफ्रीका आदि विदेशों में भी इस प्रकाशन-संस्था की एजेन्सियाँ स्थापित हो गई. जो आज तक कायम हैं।

सन् १६४७ का वर्ष देश के लिये दुर्भाग्यपूर्ण था। देश का विभाजन हुआ, पाकिस्तान बना, फलस्वरूप लाखों हिन्दुओं को अपने प्रियजनों, सम्पत्ति, घर, कारोबार को छोड़, अपनी सुरक्षा के लिए भारत आना पड़ा। ऐसी विषम परिस्थिति में राजपाल एण्ड सन्स को भी—बहुत—घाटा उठाना पडा। पुस्तकों का सारा स्टाक, प्रेस, जमीन, जायदाद, दुकान, मकान आदि सभी लाहौर में पाकिस्तान को अर्पित हो गया। अनेक कठिनाइयों का सामना करते और कष्टों पर कष्ट झेलते महाशय राजपालजी का परिवार किसी प्रकार दिल्ली पहुंचा।

दिल्ली में आकर पुनः इस फर्म के जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ। स्व० महाशय जी के सुपुत्र श्री विश्वनाथ एम. ए. और श्री दीनानाथ एम. ए. ने अपने सुचारु संचालन और देखरेख में इस फर्म को जो पुनः प्रतिष्ठा दी, वह प्रशंसनीय है।

हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में आज राजपाल एण्ड सन्स को एक प्रमुख स्थान प्राप्त हो चुका है और इस फर्म के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सर्वत्र प्रशंसा हुई है। एक सुनियोजित योजना के अनुसार पुस्तकों के प्रकाशन में यह फर्म दूसरे प्रकाशकों से कई कदम आगे है। अब तक सैंकड़ों पुस्तकें इनके यहां से प्रकाशित हो चुकी हैं। पहले ये उर्दू और अंग्रेजी में भी प्रकाशित करते थे किन्तु आजकल केवल हिन्दी में ही पुस्तकें प्रकाशित करते हैं इनकी अनेक पुस्तकें विभिन्न राज्यों के पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत हैं। इनके अनेकों प्रकाशनों पर भारत सरकार और उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के प्रसिद्ध कवि दिनकर जी के ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' का प्रकाशन भी राजपाल एण्ड सन्स ने कुछ ही दिन पूर्व किया है। सर्वत्र इस प्रकाशन की मुक्त-कण्ठ से सराहना हुई हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार ने इस ग्रन्थ पर १२०० रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

इस प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित पं० रामनरेश त्रिपाठी की 'रामचरित मानस' की टीका भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। महात्मा गांधी ने भी इस टीका पर अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।

कई पुस्तक-मालाओं के अन्तर्गत बड़ी उपयोगी पुस्तकें राजपाल एण्ड सन्स ने प्रकाशित की हैं, जिनमें स्वदेश परिचय माला, सुगम अमर साहित्य, संस्कृत के ग्रंथों के सरल हिन्दी रूपान्तर, शेक्सपीयर के नाटक, आज के उर्दू शायर - जीवनी और संकलन, लोक कथाएं आदि पुस्तकमालाएं बड़ी लोकप्रिय हुई है।

किशोर साहित्य के प्रकाशन में तो राजपाल एण्ड सन्स का स्थान तो सर्वोपरि ही है प्रौढ़ साक्षरों और समाज शिक्षा सम्बन्धी साहित्य भी इन्होंने प्रचुर मात्रा में प्रकाशित किया है। सभी पुस्तकों का गेट-अप, छपाई कागज आदि अतीव आकर्षक होता है जो राजपाल एण्ड सन्स की अपनी विशेषता है।

जिन प्रसिद्ध लेखकों की कृतियां इनके यहां से प्रकाशित हो चुकी हैं उनमें से डाक्टर गांगेय राघव, डाक्टर भगवत शरण उपाध्याय; श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, डा० बच्चन, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री रामधारीसिंह दिनकर, श्री यादवचन्द्र जैन एम. ए., श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री सत्यकाम विद्यालंकार, श्री कृष्णचन्द्र एम. ए., श्री गुरुदत्त एम. ए. श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री सुदर्शन, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री उदयशंकर भट्ट, डा० दशरथ ओझा, श्री आनन्द कुमार, पं० सन्तराम बी. ए, पं० रामनरेश त्रिपाठी, डा० देवराज, श्री पाद दामोदर सातवलेकर, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी और डा० इन्द्रनाथ मदान के नाम उल्लेखनीय हैं।

अपने प्रकाशन के अतिरिक्त राजपाल एण्ड सन्स के यहां से हिन्दी साहित्य के सभी प्रकाशकों की पुस्तकें हर समय उपलब्ध रहती हैं। पुस्तकों का बहुत बड़ा स्टाक हर समय इनके प्रदर्शन-गृह में मौजूद रहता है।

हिन्दी साहित्य को कई अमूल्य ग्रन्थ "राजपाल एण्ड सन्स" से प्राप्त हुए हैं जिससे हिन्दी प्रकाशन-संसार में इन्हें गौरव का स्थान प्राप्त हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब और हिन्दी :

लेखक—

श्री यश जी एम. एल. सी.

प्रधान पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन

पंजाब को जहां यह गर्व प्राप्त है कि कठिन से कठिन और सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह हिन्दी के प्रचार आंदोलन में सदा सक्रिय और सजीव रहा, वहां उसका दुर्भाग्य भी है कि यहां हिन्दी-साहित्य विकास की सुविधा और साधनों से सदा वंचित रहा। उस का कारण यह नहीं है कि पंचनद प्रदेश ने साहित्य सेवियों को जन्म नहीं दिया। मां-भारती के चरणों में "पृथ्वीराज रासो" नाम का पहला महाकाव्य अर्पित करने वाले चन्द वरदाई इस धरती के बेटे थे। लाहौर हम से छिन गया, परन्तु लाहौर के चन्द-वरदाई का वरदान यह महाकाव्य हम से कोई छीन नहीं सकता। "हनुमन्नाटक" हिन्दी का सब से पहला नाटक समझा जाता हैं। इसके लेखक श्री हृदयराम जी पंजाब के ही रहने वाले थे। हिन्दी के सर्वप्रथम पत्रकार पंडित माधवप्रसाद जी भिवानी निवासी थे। भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र के साथ जिन्होंने हिन्दी को उसका वर्तमान रूप देते हुये चालीस से भी अधिक पुस्तकों की रचना की, वह श्री श्रद्धाराम जी फिलौर के रहने वाले थे। रहीम के दोहे घर-घर में घर ही नहीं कर गए, अपितु उन्होंने हिन्दी के कोष को भरपूर कर दिया है। महाकवि रहीम का जन्म जिला गुरदासपुर के एक नगर बहरामपुर में हुआ था। भक्ति और शक्ति के अमरगायक गुरु नानक और गुरु गोबिन्द की वाणी इन पांच नदियों की तरल तरंगों पर ही तरंगित होती रही। गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म यद्यपि बिहार में हुआ था, परन्तु "श्याम-कवि" के उपनाम से उन्होंने हिन्दी की सेवा पंजाब में रहते हुए ही की। पटियाला के स्वर्गीय श्री रामप्रसाद निरंजनी ने "भाषा-योग वासिष्ठ" की रचना यहीं पर की।

पंजाब के अभिमान का कारण केवल यह पुरानी कहानियां ही नहीं हैं, अपितु प्रत्येक युग में पंजाब के साहित्यकारों ने हिन्दी की सेवा की। साहित्य के प्रत्येक अंग के विकास में पंजाब के साहित्यकारों ने सहयोग दिया। जब मुन्शी प्रेमचन्द जी अपनी अनुपम कहानियों और सजीव उपन्यासों से हिन्दी की झोली भर रहे थे, तब पंडित सुदर्शन, कांगड़ा के पंडित चन्द्रधर गुलेरी और श्री योगेश्वर हिन्दी के कहानी साहित्य को एक नई करवट दे रहे थे। आज भी सर्व श्री यशपाल, रणवीर, उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त, अज्ञेय, पृथ्वीनाथ शर्मा करतार सिंह दुग्गल, सत्यवती मल्लिक, कृष्णा सोबती और अनेकों हिन्दी के चोटी के कहानीकार है। हिन्दी के कवियों में पंजाब के ही बेटा देवराज 'दिनेश', चिरंजीत, मदनलाल 'मधु', जयनाथ 'नलिन', विद्या भास्कर 'अरुण', शम्भुनाथ शेष, सुदर्शन आदि का प्रमुख स्थान है। हिन्दी के दो महान कवियों श्री हरिकृष्ण प्रेमी और श्री उदयशंकर भट्ट का जन्म स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि पंजाब नहीं हैं, परन्तु दोनों ने काव्य-सृजन इस धरती पर ही किया। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने गांव-गांव से गीत चुनकर हिन्दी का सुललित शृंगार सजा दिया। इतिहास, आलोचना, पत्र-कारिता, अनुसंधान और साहित्य के अन्य क्षेत्रों में श्री जयचन्द जी विद्यालंकार, महात्मा आनन्द स्वामी, डाक्टर सूर्य कान्त श्री रघुनन्दन शास्त्री, डाक्टर इन्द्र नाथ मदान, डाक्टर सरनदास भनोत, डाक्टर कैलाशनाथ भटनागर, श्री सत्यदेव विद्यालंकार, श्री सन्तराम, श्री राकेश, आचार्य विश्वबन्धु आदि की सतत साधना केवल अनुकरणीय ही नहीं अपितु समूचे भारत के लिये अभिमान का कारण भी है। पंजाब के इन और अन्य समस्त साहित्य सेवियों को मैं नत मस्तक प्रणाम करता हूँ।

इन सबके निरन्तर स्तुत्य प्रयत्नों के बावजूद यदि पंजाब में हिंदी साहित्य के विकास के लिये समुचित सुविधा और साधन जुट नहीं सके तो इसका उत्तरदायित्व दो उपकरणों पर है, भाषा वैमनस्य और जनता की उदासीनता। भाषा-वैमनस्य राजनैतिक और कूटनीतिक स्वार्थों की उपज है, जनता की उदासीनता विशेष ढंग की परिस्थितियों की प्रतिक्रिया। जब तक विदेशियों का शासन रहा, पंजाब में हिंदी उर्दू पर बलिदान होती रही। उर्दू का जन्म तो उत्तर-प्रदेश में हुआ था, परन्तु, उसे प्रश्रय पंजाब में मिला। केवल मुग़लों के समय में ही नहीं, सिक्खों और अंग्रेजों के राज्यकाल में भी उर्दू को राज्य दरबार में बड़ी बेगम का दर्जा प्राप्त रहा। चिरकाल तक हिन्दी-प्रेमी इतने दबे हुए रहे कि उन्हें अपने अधिकार और अभिमान का ध्यान तक नहीं आया। पंजाब में हिंदी के पुनरुत्थान का श्रेय आर्यसमाज को प्राप्त है, जिसके प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द ने गुजराती होते हुए भी अपने ग्रंथों की रचना हिंदी में की। पंजाब में आर्यसमाज की संस्थाओं के साथ हिंदी का नवजीवन भी प्रारम्भ हुआ। अन्धकार में एक दीपक जल उठा। धीरे-धीरे सनातन-धर्म, जैनी, देवसमाजी और अन्य संस्थाओं ने भी इस दीपक में तेल-सिंचन का काम शुरू कर दिया। परन्तु इसकी लौ अधिक ऊँची हो नहीं पाई।

इसका कारण था–विदेशी शासकों का भय। हिन्दी की भावना राष्ट्रीयता की भावना है। हिंदी की लोक प्रियता का अर्थ है, राष्ट्रीयता की प्रबलता। राष्ट्रीयता की प्रबलता में विदेशी-शासन का अन्त स्पष्ट अंकित था। इसलिये विदेशी-शासकों ने साम्प्रदायिकता की आड़ ली। विभिन्न सम्प्रदाय में केवल सरकारी नौकरियां, विधान सभाओं के स्थान और राजनैतिक अधिकार ही नहीं बांटे, अपितु भाषाएं भी बांट दी। उर्दू मुसलमानों की भाषा बन गई और हिंदी हिंदुओं की। जलयांवाला बाग़ हत्याकांड के बाद जैसे हिंदुओं और मुसलमानों के दंगे आम हो गए, वैसे ही हिंदी और उर्दू का झगड़ा भी होने लगा। एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन की तदबीरें होती थीं तो दूसरी ओर हिंदी को कुचलने की। सर सिकन्दर के यूनियनिस्ट मन्त्रिमण्डल ने हिंदी का गला घोंटने के लिये कोई कसर उठा नहीं रखी। ऐसी परिस्थितियों में यह कैसे सम्भव था कि हिंदी साहित्य का समुचित विकास हो पाता। सरकार का संरक्षण प्राप्त होने के कारण उर्दू ही प्रधान रही। इन परिस्थितियों का प्रभाव भी स्वाभाविक था। हिंदी के प्रति प्यार की भावना होते हुए भी जनता हिंदी के प्रति उदासीन रही। पंजाब में उर्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तो दर्जनों दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित होते थे, परन्तु हिंदी का एकमात्र दैनिक 'हिंदी मिलाप' ही प्रतिकूल वातावरण में जीवित रह सका। अनेकों अन्य हिंदी समाचार पत्रों ने जन्म तो लिया, परन्तु अधिक दिनों तक जी न सके।

आशा यह थी कि विदेशी-शासन के अन्त के साथ यह भाषा-वैमनस्य भी समाप्त हो जायेगा और जनता पूरी रुचि के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर ध्यान देगी। परन्तु दुर्भाग्य के दिन अभी शेष हैं। शेष भारत तो दोहरी साम्प्रदायिकता का शिकार था। केवल हिन्दुओं और मुसलमान के झगड़े थे। पंजाब तिहरी साम्प्रदायिकता का शिकार था। हिन्दुओं और मुसलमानों के अलावा सिक्खों के झगड़े भी थे। हिन्दी और उर्दू का झगड़ा निबटा तो हिन्दी और पंजाबी का बखेड़ा शुरू हो गया। मैं समझता हूँ, पंजाब के लिये उस दिन से अधिक बुरा दिन और कोई नहीं हो सकता, जिस दिन हिन्दी और पंजाबी विवाद उठा। किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाये, यह विवाद केवल नितांत अनावश्यक और सर्वथा अस्वाभाविक ही नहीं है, अपितु घोर हानिकर और अत्यन्त घिनौना भी। हिन्दी और पंजाबी में यदि मां और बेटी का रिश्ता मानने में किसी को आपत्ति हो भी तो कम से कम यह स्वीकार करने से किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि दोनों का उद्भव भाषाओं की भाषा संस्कृत से हुआ है। हिंदी अपने गुणों और स्वभाव के कारण समूचे देश में लोकप्रिय हो गई और पंजाबी अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तरह अपने प्रदेश में फलती-फूलती रही। हिंदी के प्रश्रय से पनपने वाली पंजाबी अकेली नहीं। अवधी, राजस्थानी, व्रजभाषा, बांगड़, डोगरी अनेकों भाषा ऐसी हैं, जो हिंदी के अटूट कोष से निरंतर रस-पान करती हुई समृद्ध होती रही है; इन भाषाओं की समृद्धि में ही हिन्दी की समृद्धि और सौन्दर्य हैं।

आज कुछ लोग भले ही भूल जाएं और हिन्दी और पंजाबी को अलग-२ भाषाएं समझ कर हिंदी और पंजाबी के नाम पर झगड़े खड़े करें, परन्तु मैं नहीं भूल सकता कि बटवारे से पहले हिंदी और पंजाबी के समर्थकों ने कन्धे से कन्धा भिड़ा कर सर सिकन्दर हयात खां की हिंदी-पंजाबी घातक नीति से लोहा लिया था। यदि भ्रमवश अथवा मिथ्या प्रचार के कारण मूर्खतावश यही समझ लिया जाये कि हिन्दी हिंदुओं की भाषा और पंजाबी सिक्खों की, तो इस वस्तुस्थिति को झुटलाया नहीं जा सकता कि हिंदुओं और सिक्खों के परस्पर सम्बन्ध वह नहीं जो हिंदुओं और मुसलमानों के थे। मुसलमान बाहिर से आकर बसे थे। सिक्ख हिंदुओं में परस्पर रिश्ते-नाते होते हैं। सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक किसी भी दृष्टिकोण से परख देखें, हिंदी और पंजाबी का झगड़ा अनावश्यक और अस्वाभाविक सिद्ध होगा।

परन्तु आवश्यक हो अथवा अनावश्यक, स्वाभाविक हो अथवा अस्वाभाविक, इस समय न केवल यह झगड़ा मौजूद है अपितु तीखे तनाव और कड़ी कटुता का कारण भी बन रहा है। मेरा विश्वास है कि आप मुझ से सहमत होंगे, जब तक यह तनाव और कटुता मौजूद है, तब तक न हिंदी की उन्नति हो सकती है और न पंजाबी की प्रगति। किसी भी भाषा का साहित्य हो, उसके विकास के लिये अनुकूल और निर्बन्ध-निर्मुक्त वातावरण की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा होती है। साहित्य के भवन का निर्माण वैमनस्य, कटुता और तनाव की नीवों पर नहीं हो सकता। पंजाब में हिन्दी साहित्य के विकास के लिये पहली शर्त यह है कि इस तनाव को खत्म किया जाय।

प्रश्न है,—इस तनाव का कारण क्या है ?

इस प्रश्न के समाधान के लिये हमें बटवारे के बाद की घटनाओं का विश्लेषण करना होगा। भारत स्वतन्त्र हुआ तो इसके दो टुकड़े हो गए। जिस-जिस क्षेत्र में मुसलमानों की बहुसंख्या थी, उन्हें काट कर एक अलग देश—पाकिस्तान बना दिया गया। स्वीकार करना चाहिये कि राष्ट्रीयता पर यह साम्प्रदायिकता की विजय थी। इस विजय से सिक्खों में मौजूद साम्प्रदायिक तत्वों को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने कहना आरम्भ किया, हिंदुओं को हिंदुस्तान मिल गया, मुसलमानों को पाकिस्तान, सिक्खों को क्या मिला ? इस विचारधारा की ही एक उपधारा पंजाबी का प्रश्न है। भारत के संविधान में सांप्रदायिकता की कोई गुन्जाइश नहीं। सांप्रदायिकता की आधार सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति का मूलोच्छेदन कर दिया गया। परन्तु, भाषा के नाम पर सांप्रदायिक दृष्टिकोण को पेश करने की सुविधा है। इस सुविधा का अधिक से अधिक दुरुपयोग करने के लिये सिक्खों के सांप्रदायिक तत्वों ने पंजाबी का मोर्चा बना दिया।

इस मोर्चे को आसानी से निरर्थक बनाया जा सकता था, परन्तु, उचित समय पर सही दृष्टिकोण न अपनाने से समस्या उलझती चली गई। १६४६ ई० में प्रिंसिपल जोधसिंह, सरदार उज्ज्वलसिंह और ज्ञानी करतारसिंह की ओर से यह पेशकश की गई कि देवनागरी अक्षरों में पंजाबी को समूचे पंजाब की प्रादेशिक भाषा स्वीकार कर लिया जाये। यह सुझाव स्वीकार नहीं किया गया। यदि यह पेशकश भाषा के रूप में किसी तनाव अथवा कटुता के बिना उन्नति की मंजिलें तय करती रहतीं। दोनों की लिपि एक होने के कारण भी और भाषा में नाम-मात्र अन्तर होने के कारण किसी को असुविधा भी न होती। तनाव का पहला कारण यह भूल थी। तनाव का दूसरा कारण पंजाबी समर्थकों का हठ था कि पंजाबी केवल गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जा सकती है। गुरुमुखी लिपि के साथ ही 'पंजाबी सूबे' का नारा भी लगा। इसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप पंजाबी बोलने वालों ने भी पंजाबी को अपनी मातृ-भाषा कहने से इन्कार कर दिया। १६४६-५१ की जन गणना के दिनों यह समस्या और उलझ गई। पंजाब के सभी हिंदुओं ने अपनी मातृ-भाषा हिंदी लिखाई और सभी सिक्खों ने, पंजाबी। भारत सरकार ने इन आंकड़ों को गलत मान कर प्रकाशित नहीं किया, परन्तु, इन अनेकों क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से भाषा वैमनस्य गम्भीरतम रूप धारण कर गया।

इन्हीं दिनों पंजाब सरकार ने एक भाषा-फार्मूला को जन्म दिया, जिस पर दिल्ली में १ अक्टूबर १६४६ को श्री भीमसेन सच्चर, डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, सरदार उज्ज्वल सिंह और ज्ञानी करतार सिंह ने हस्ताक्षर किये। यह फार्मूला तब के तनाव और कांग्रेस पार्टी में धड़ेबन्दी की उपज था। उस फार्मूले के अनुसार दोनों भाषाओं की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई, परन्तु शिक्षा-माध्यम चुनने का अधिकार विद्यार्थियों के संरक्षकों को दे दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दा अथवा दो से अधिक भाषाओं का ज्ञान बुरी बात नहीं। विशेषतया उस अवस्था में जबकि दूसरी भाषा हमारे ही प्रदेश की एक बोली हो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो पंजाबी को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। पंजाबी भाषा में एक अनोखी मिठास और अनोखा प्रवाह है। पंजाबी साहित्य में सौन्दर्य भी है और विचार-शीलता भी। जब प्रत्येक व्यक्ति के लिये राष्ट्रभाषा के अलावा एक प्रादेशिक भाषा का ज्ञान भी आवश्यक समझा जाता है तो पंजाब के लोग पंजाबी पढ़ने से झिझकते क्यों? परन्तु जिस पृष्ठभूमि और वातावरण में शिक्षा फार्मूला तैयार किया गया, वह सर्वथा अनुपयुक्त था। इसका परिणाम यह तनाव है, जो आज हिंदी और पंजाबी दोनों के विकास में बाधा बन रहा है। हिंदी-समर्थक यह समझते हैं कि हम पर गुरुमुखी ठोंसी जा रही है। पंजाबी-समर्थक यह समझते हैं कि हम पर हिंदी ठोंसी जा रही है और अकारण ही एक निरर्थक झगड़ा शुरू हो गया है। इस समय दोनों ओर संदेह और शंका की भावनाएं इतनी बढ़ गई हैं कि विवेक और तर्क असमर्थ हो गए हैं।

जब सन्देह गहरे हो जाएं तो तनाव का तीखा होना स्वाभाविक ही है। कोई भी फार्मूला क्यों न बना लिया जाये, काफी समय तक हिंदी और पंजाबी की एक दूसरे के प्रति मिथ्या भावना बनी रहेगी और जब तक यह तनाव मौजूद है, किसी भाषा की उन्नति सम्भव नहीं।

दूसरा प्रश्न—तनाव दूर कैसे हो सकता है?…

सारी समस्या और कुल परिस्थिति को यदि मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाने की चेष्टा की जाये तो यह काम अत्यन्त सहल है। तनाव का कारण यह है कि भाषा के प्रश्न को राजनैतिक दाव-पेचों में उलझा दिया गया है। भाषा की आड़ में सत्तालोलुप अपना खेल खेल रहे हैं। मिथ्या प्रचार और मिथ्या शंकाओं से ऐसी मनोवृत्ति पैदा कर दी गई है कि जन-साधारण वास्तविक प्रश्न को भूल कर पत्तों को जड़ समझने लगे हैं। इस मनोवृत्ति को बदलने के लिये आवश्यक है कि भाषा के ढाँचे की ओर ध्यान देने की बजाय भाषा की आत्मा साहित्य की ओर ध्यान दिया जाये। साहित्य समृद्ध हो जाये तो छोटे-छोटे झगड़े स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे। भाषा के प्रचार के लिये दो बातें की जाएं,—समूचे पंजाब में दोनों भाषाएं पढ़ने की तथा प्रत्येक स्तर पर दोनों भाषाएं प्रयोग लाने की पूरी-पूरी सुविधा हो यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ढंग से पंजाब की समस्या का हल हो जायेगा। परन्तु एक बात निश्चित है कि हिंदी भाषा राजनैतिक दलदल से निकल आएगी और साहित्य-सेवियों को साहित्य-सृजन का अवसर मिलेगा।

तनाव दूर करने पर मैं अधिक जोर देता हूँ क्योंकि यह तनाव हिंदी साहित्य के विकास में ही बाधा नहीं बन रहा, अपितु इससे राष्ट्रीयता का भारी अहित हो रहा है। राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा का चोली-दामन का साथ है। राष्ट्रभाषा की पकड़ जितनी ढीली होगी, राष्ट्रीयता उतनी ही दुर्बल होगी यदि यह कहा जाये कि राष्ट्रीयता राष्ट्र-भाषा के सांचों में ढलती है, तो गलत नहीं होगा। यही कारण है कि भारत की संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं के अनुरूप हिंदी को राष्ट्र-भाषा का स्थान दिया गया। हिंदी राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर तो बैठ गई, परन्तु, उस के विकास और उन्नति के लिये स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता है, जिसमें तनाव और कटुता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

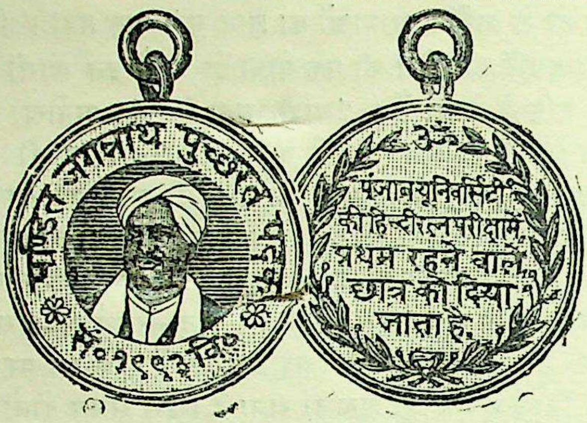

(श्री मन्त्री काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्राप्त करें)

पुच्छरत पदक

पंजाब के प्राचीन हिन्दी सेवी एवं हिन्दी परीक्षाओं के प्रचारक अमृतसर के प्रमुख साहित्यिक अनेक संस्थाओं के संस्थापक वयोवृद्ध ख्यातनामा श्री जगन्नाथ पुच्छरत जी सारस्वत साहित्य भूषण की चिरकालीन अनुपम (ठोस) निःस्वार्थ साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में श्री पुच्छरत जी के सम्मानार्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में पंजाब विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) की हिन्दी रत्न और हिन्दी प्रभाकर, परीक्षाओं में इस वर्ष प्रथम (फर्स्ट) उत्तीर्ण छात्र छात्रा अपना रोल नंबर प्राप्तांक और स्थानीय किसी प्रामाणिक संस्था के सभापति व मंत्री अथवा अन्य किसी प्रतिष्ठित उत्तरदायित्व पूर्ण भद्र व्यक्ति के समर्थन (अनुरोध पत्र) सहित श्री मन्त्री नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी (काशी, बनारस को निवेदन पत्र भेज पूर्व घोषित "पुच्छरत रजत पदक" प्राप्त करें।

भवदीय कृपापात्र—

विनीतः-श्री सोमनाथ पुच्छरत,

व्यवस्थापकः—साहित्य सदन, चावल मण्डी,

अमृतसर (पूर्वी पंजाब)

न हो। प्रादेशिक भाषाओं के लिये भी स्वस्थ वातावरण की शर्त अनिवार्य है। इस समय यदि यह तनाव दूर हो जाय तो हम राष्ट्रीयता के चरम-लक्ष्य राष्ट्र-लिपि को भी पा सकेंगे। समस्त राष्ट्रीय भारत उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जब प्रान्तों और प्रदेशों के भेदभाव मिट जाएंगे, इस देश की सभी प्रादेशिक भाषाएं राष्ट्र लिपि में लिखी जाने लगेंगी। इसके साथ ही संकीर्ण और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण खत्म हो जायेंगे और धीरे धीरे सभी लोग अनुभव करने लगेंगे कि भाषाओं का भेद भी मिट जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा :

लेखक—
श्री अमरनाथ जी विद्यालंकार
शिक्षा मन्त्री, पञ्जाब

श्री भीमसेन जी ने मुझे पंजाब में हिंदी के प्रसार के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखने को कहा है।

संस्मरण तो प्रायः बूढ़े लोग लिखा करते हैं। जब आगे के लिए कुछ करने को सामर्थ्य न रहे, तो मनुष्य अपनी पिछली कारगुजारी के किस्से सुनाने बैठता है। मैं अभी न इतना बूढ़ा हुआ हूं और न मेरा अनुभव ही इतना पका है कि पिछली कारगुजारियों पर समालोचनात्मक दृष्टिपात करूं। रात दिन तो आगे की बातें सोचने में व्यतीत होता है, पिछली बातें याद करने को भी अभी काफ़ी जीवन पड़ा है।

फिर भी भाई भीमसेन जी बूढ़ों में शुमार करना ही चाहते हैं, तो मजबूरन ही कुछ फुटकर 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' बटोर कर इस कहानी को जोड़ने का प्रयास करता हूं।

हिंदी के सम्बन्ध में पहिली याद बचपन की। हिंदी सीखी कैसे है पिताजी ने पढ़ाई उर्दू के 'बाप हुक्का पीता है' वाले कायदे से कराई। गुरुकुल जाने से पहले उर्दू लिख पढ़ लेता था। अंग्रेजी के भी एम ए एन मैन, यानी आदमी, इस तरह कुछ पढ़ लिख लेता था। उर्दू और अंग्रेजी दोनों से हिज्जों की रटना चलती थी और हिज्जे भूलने पर पिताजी से मार और डांट भी पड़ती थी। पिताजी थे तो घोर आर्यसमाजी, इतने घोर जो 'आर्य' को 'आर्य्य' संयुक्त 'य' के बिना नहीं लिखते थे। परन्तु अनेकों पुराने आर्यसमाजियों की भाँति वह भी हिंदी नहीं जानते थे। उर्दू के माध्यम से ही वेद का मन्त्र पढ़ने की बात किया करते थे।

परन्तु जब मैं गुरुकुल में दाखिल होने के लिये आया और पिताजी बड़ी श्रद्धापूर्वक आचार्य रामदेव जी से मिले तो उन्होंने साफ कह दिया कि यदि यह लड़का हिंदी में पास न हुआ तो गुरुकुल में नहीं लिया जा सकेगा। पिताजी की आशाओं पर घड़ों पानी पड़ गया। दाखले की परीक्षा में दस दिन बाकी थे।

गुरुकुल के एक मास्टर काशीराम जी पिताजी के पुराने मित्रों में से थे। वह आश्वासन देकर कहने लगे 'क्यों घबराते हो, भगत जी यह लड़का चार पांच दिन में हिंदी सीख जायगा, मैं घबराया मुझे अंग्रेजी और उर्दू के हिज्जे ग़लत होने पर जो मार और डांट पड़ती थी वह याद थी। मैंने सोचा अब दस दिन शामत के हैं। यह नये हिज्जे रटने पड़ेंगे।

मास्टर काशीराम ने मुझे अ, आ, इ, ई, क, ख, ग, पढ़ाना शुरू किया। लेकिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि अक्षरों की पहिचान कर लेने के बाद मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिज्जे याद ही न करने पड़े। मैं पढ़ने लग गया। लिखने का अभ्यास तो अभी दूर की बात थी, परन्तु एक हफ्ते के परिश्रम के पश्चात् में दाखले के इम्तिहान के काबिल हो गया।

दस दिन बाद जब दाखले का इम्तिहान हुआ तो मैंने किताब अच्छी तरह पढ़ कर सुनाई और मैं दाख़िल कर लिया गया।

मैं यह कभी नहीं भूला कि मेरे पास होने का श्रेय न मेरे मुझे पढ़ाने वाले मास्टर काशीराम जी को था, न मुझे, यह श्रेय नागरी वर्णमाला की वैज्ञानिकता को था।

मैं गुरुकुल से स्नातक होने के पश्चात् पंजाब में आया। जिस स्नातक मण्डली से मेरा परिचय था वह समस्त रूप से हिंदी भाषी और हिंदी पढ़ने वाली थी। मुझे ऐसा लगता था मानो उर्दू भाषा के एक विशाल रेगिस्तान में हिंदी बोलने वालों और हिंदी के समाचार-पत्र पढ़ने वालों की यह मंडली एक हरियाली वाटिका हो।

श्री टण्डन जी के इर्द-गिर्द हिन्दी वाले एकत्र होते थे। परन्तु टण्डन जी बड़े आदमी थे। सब लोग वहां इतने निःशंक भाव से तो गप्पें नहीं लड़ा सकते थे। श्री जयचन्द्र जी हिंदी साहित्य सम्मेलन पंजाब का रथ कुशलता से हांकते थे और स्वर्गीय श्री भगवतीचरण प्रायः हिंदी साहित्य सम्मेलन के हस्पताल रोड वाले दफ्तर और हिंदी श्रेणियों की देख-भाल करते थे।

परन्तु हिंदी वालों की श्रेणियां तो श्री भीमसेन जी के कार्यालय में लगती थीं। 'सत्यवादी' भीमसेन जी के हिंदी प्रचार के लिये श्रद्धा का मूर्त रूप था।

श्री भीमसेन जी के यहां गप्प लड़ाने की फीस प्रायः 'सत्यवादी' के लिये नोट लिखने या प्रूफ़ देखने के रूप में देनी पड़ती थी। इसी तरह वह स्वयं तो लगे ही रहते पर अपने दोस्तों को बेगारी बना कर किसी प्रकार हिंदी की अर्चना के कार्य को सम्पन्न करते थे।

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी को हिंदी बहुत अधिक नहीं आती थी। यूं वह अच्छा खासा लिख लेते थे हिंदी से उन्हें प्यार था पर हिंदी का जनून नहीं था। आज जो लोग हिंदी के ढिंढोरची बने हैं उस ज़माने में और विभाजन से पहिले हिंदी से ज़रा बच बच कर रहते थे। और हिंदी के पुजारियों को जनूनी समझते थे। उन नये ढिंढोरचियों को हिंदी का जनून तब चढ़ा है जब पुराने हिंदी के पुजारियों का जनून उतर गया है क्योंकि आज हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल चुका है। खैर···

खैर, स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी कहा करते थे, कि भाई तुम्हारी हिंदी में अगर कोई ऐसा सुधार हो जाय कि संयुक्त अक्षरों की शक्लें याद न करनी पड़ें तो नागरी लिपि का मुकाबला सुगमता में भी, कोई दूसरी लिपि नहीं कर सकेगी।

लाला जी अपनी सभी पुस्तकों के अनुवाद हिन्दी, में प्रकाशित कराना चाहते थे। उन्हें यह तरीका पसन्द न था कि ज़बरदस्ती संस्कृत के शब्द घुसेड़े जांय। उर्दू और दूसरी भाषाओं से लेकर शब्द भण्डार भर लेना उन्हें उचित और संगत लगता था। घरेलू बात चीत में वह पंजाबी बोलते थे और पंजाबी बोलना पसन्द करते थे। विविध भाषाओं में घनिष्ठता के वह पक्षपाती थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६३० में पंजाब केसरी के सम्पादन का भार मेरे निर्बल कन्धों पर पड़ा और लगभग ढाई साल तक रहा। १६३२ के लगभग नवम्बर दिसम्बर में यह पत्र सरकारी वार का शिकार हुआ। मुझे भी एक लेख के सिलसिले में जेल जाना पड़ा।

श्री टण्डन जी पत्र को दैनिक करना चाहते थे, परन्तु इस कार्य में धन का पर्याप्त व्यय था। यह श्रेय श्रद्धेय श्री खुशहाल चन्द जी (वर्तमान आनन्द स्वामी जी) को है जिन्होंने हजारों रुपये का निरन्तर घाटा सह कर भी 'हिंदी मिलाप' को जन्म दिया और उसे चालू रखा। मेरा अनुमान है अब 'हिंदी मिलाप' घाटे का सौदा नहीं रहा परन्तु मेरा अनुमान है 'मिलाप' परिवार ने हिंदी की साधना के लिये उर्दू 'मिलाप' की कमाई के लाखों रुपये 'हिंदी मिलाप' पर वार दिये हैं।

* * *

हिंदी के अनन्य साधक श्री स्वामी केशवानन्द जी को आज हिंदी क्षेत्र में हर कोई पहिचानता है। फ़िरोजपुर जिले के अबोहर क्षेत्र में तथा हरियाना के 'उर्दू प्रधान' क्षेत्र को 'हिंदी क्षेत्र' में परिवर्तित करने का श्रेय था तो स्वामी केशवानन्द जी को और या श्री बाबू ठाकुरदास भार्गव तथा लाला हरदेव सहाय जी को। इन महानुभावों ने हिंदी क्षेत्र को हिंदी द्वारा पढ़ाई कराने वाले स्कूलों से भर दिया और असंख्य विद्यार्थियों को हिन्दी और नागरी का उपासक बनाया। यह कार्य उस जमाने में हुआ जब यूनियनिस्ट पार्टी के शिक्षा-मन्त्री श्री अब्दुल हयी बड़े ज़ोर शोर से ऐलान करते थे कि पंजाब में हिंदी के लिये कोई स्थान नहीं पंजाब की भाषा उर्दू है, न पंजाबी है और न हिंदी। एक सच्चा साधक और रचनात्मक वृत्तियों में निष्ठा रखने वाला व्यक्ति किस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी ज़माने के रुख को पलटा सकता है इस का नमूना देखना हो तो आपको ऐसा साधक श्री स्वामी केशवानन्द के रूप में उपलब्ध होगा। श्री हरदेवसहाय जी हिंदी की साधना को छोड़ राजनीति और गोरक्षा के फेर में पढ़ गए परन्तु स्वामी केशवानन्द जी आज भी अपनी पुरानी साधना में लगे हैं।

* * *

ज़िलों के कुछ ग्रामीण मेरे पास आये और उन्होंने अत्यन्त निर्मल नागरी अक्षरों में शुद्ध हिंदी भाषा की अर्जियां भारत सरकार के सैनिक विभाग के पास भेजने के लिये मेरे हाथ में दीं। यह भाई आदमपुर तहसील के अवसर प्राप्त पेंशनर। सिक्ख सैनिक थे। मैंने समझा उन्होंने हिंदी की अर्जियां किसी से लिखवा कर पेश की हैं। परन्तु मेरे हर्ष और आश्चर्य का पारावार न रहा जब उन्होंने बतलाया कि ये अर्जियां उनके अपने हाथ की लिखी हुई हैं। उन्होंने बतलाया कि सब सैनिकों को फौज में अब रोमन की जगह राष्ट्र-भाषा हिंदी सिखाई जाती है। और पंजाब के हर गांव में काफी संख्या इन हिंदी सीखे हुए सैनिकों की है।

हिंदी की बदकिस्मती यह है कि हिंदी के तथाकथित ढिंढोरचियों ने आज उसे हिंदू धर्म और आर्यसमाज के साथ धार्मिक गठबन्धन में सीमित कर दिया है। हिंदी वालों की गणना करने के लिये सिक्खों को गणना में से निकाल दिया जाता है और सब हिंदू हिंदी वाले मान लिये जाते हैं। हांलांकि बहुत से हिंदू हिंदी नहीं जानते और बहुत से सिक्ख आज पंजाब में हिंदी पढ़े हुए हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हिंदी को धर्म की चार दीवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८६० ई० में मैंने हिन्दी कैसे सीखी !

लेखक—
दीवान अलखधारी जी, अम्बाला छावनी

मैंने हिन्दी पढ़ना व लिखना किसी पाठशाला में नहीं सीखा। मेरे पिता जी को तुलसी रामायण के पढ़ने का बहुत शौक था और प्रतिदिन वह तीसरे पहर कुछ समय के लिए रामायण पढ़ा करते थे। उस समय मेरी आयु ५, ६ वर्ष की थी। मैं उन के साथ बैठकर सुना करता और देखा करता। इस सत्संग और अध्ययन का यह परिणाम हुआ कि मुझको हिन्दी पढ़ना व लिखना आ गया। तुलसी कृत रामायण के बहुत से दोहे व चौपाइयां भी कण्ठस्थ हो गई।

एक दिन रामायण में माता सीता की सुन्दरता व शोभा का वर्णन करते हुए अन्त में सन्त तुलसी जी ने अमूक हो कर कहा :—

से आजाद करके राजनीति के दलदल से न निकाला गया तो हिंदी का प्रसार सीमित हो जायगा। आज हिंदी को सब भारतवासियों की राष्ट्र भाषा के सिंहासन से उतार कर एक धर्म वालों की एक धार्मिक भाषा के स्थान पर विठाने का उन्माद वाले महानुभावों की कमी नहीं है। भगवान् हिंदी को उसके तथाकथित दोस्तों से बचावे।

आज जब मैं आज से दस बीस बरस पहिले के ज़माने से मुकाबिला करता हूँ तो मुझे पंजाब हिंदीमय नजर आता है। हां अंग्रेजी का भूत सब पर सवार है। अंग्रेजी का मुकाबला हिंदी से सीधा है। हिंदी को अंग्रेजी का मुकाबला करने के लिये भारत की लोक भाषाओं की सहायता तथा सहयोग मिलना चाहिये। परन्तु हिंदी के कई तथाकथित समर्थक पंजाब में इसे पंजाबी से लड़ाने में ही अपना महत्व समझते हैं।

उर्दू से पंजाब में हिंदी का घोर संग्राम रहा। तब उर्दू के अखबार नवीसों ने सिवाय 'मिलाप' परिवार के हिंदी का साथ नहीं दिया। आज उर्दू से हिंदी का झगड़ा नहीं। यूँ देखा जाय तो उर्दू हिंदी का ही वह रूप है जो फारसी वर्णमाला का आश्रय लेता है। नागरी वर्णमाला में उर्दू लिखी जाने लगे तो हिंदी उर्दू का भेद ही खत्म हो जाय, परन्तु जो लोग घोर संस्कृतमय हिंदी को ही हिंदी मानते हैं, और उर्दू में प्रयोग होने वाले प्रचलित शब्दों पर भी नाँक भौं सिकोड़ते हैं वे हिंदी उर्दू का झगड़ा मिटने नहीं देते। पंजाब की हिंदी स्वाभाविक रूप से उर्दू के अनेक प्रचलित शब्दों को लिये हुए होगी। पंजाब की राष्ट्र भाषा के प्रवाह में उर्दू और पंजाबी के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग रहेगा। यह पंजाब के लिये स्वाभाविक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिय-शोभा किम जाय बखानी।
गिरा अनयन नयन बिन बानी॥

ऐसी विलक्षण उपमा मुझे किसी अन्य भाषा में देखने व पढ़ने को नहीं मिली।

१८६० या ६१ की बात है कि मा. दुर्गाप्रशाद जी लाहौर निवासी तथा प्रसिद्ध आर्य समाजी ने वेद मन्त्रों का एक संग्रह (छोटे २ गुटका) के रूप में, जिस में वेद मन्त्रों का अर्थ अंग्रेजी व हिन्दी में अनुवाद था; मुझे पढ़ने को दिया, उस से मेरी वेद वैदिक संस्कृति में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ गई। इसके बाद धीरे २ मेरा आर्यसमाज का साहित्य-सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि के स्वाध्याय से हिन्दी का और भी अभ्यास बढ़ गया। १८६८ ई० में बालगंगाधर तिलक लाहौर में पधारे, उस समय उन्होंने मेरी देश भक्ति व कांग्रेस अन्दोलन के लिये उत्साह को देख कर मुझ से अधिक स्नेह प्रकाशित किया। उन के सम्पर्क से भी मुझ में हिन्दी प्रेम जागृत हुआ. बाद में मैं उनके गीतारहस्य के हिन्दी व मराठी अनुवादों को मिलाकर ७ वर्ष तक निरन्तर पढ़ता रहा, जिस से मुझे अपने प्राचीन वैदिक शास्त्रों का ज्ञान व परिचय मिला।

१६०६ या ७ की बात है कि स्व. महात्मा हंसराज जी के निवास स्थान पर, सत्यार्थ प्रकाश की कथा प्रायः होती रहती थी, मैं उस में भी सम्मिलित होकर उनके उपदेशों से लाभ उठाता था, उस से मेरा और भी हिन्दी तथा आर्य समाज के सिद्धान्तों में श्रद्धा बढ़ती गई।

मेरठ निवासी स्वा० तुलसी राम जी एक वेद मंत्र के आधार पर प्रार्थना प्रायः कराया करते थे, उस समय मेरठ के कालिज में विद्या अध्ययन करता था, उनके सत्संग में आने का मुझे अवसर मिलता रहा, वह वेद मंत्र (आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्) है। इस से उन को बड़ा प्रेम था, मेरा भी इस से प्रेम हो गया। अब मैं निरन्तर इसी मंत्र से प्रभु से प्रार्थना किया करता हुँ।

४० वर्ष पूर्व अलवर राज्य में प्रधान मंत्री का पद रिक्त हुआ वेतन भी अच्छा था, और भी अनेक सुविधाएं थी। उस के लिए अन्य राज्यों के प्रतिष्ठित अधिकारियों ने प्रार्थना पत्र दिए। मैंने भी दिया। उन में मैं आयु में सबसे छोटा था। विद्या में भी मेरे पास कोई विशेष उपाधि न थी, सात दिन तक बात चीत चलती रही। उस चुनाव ने मुझे केवल हिन्दी प्रेम के कारण ही चुना गया, वे सनातन धर्म के महान् नेता थे, और मैं दृढ़ आर्य समाजी। इस पर उन्होंने कहा कि तुम आर्य समाज को छोड़ दो। इस शर्त को मैंने अस्वीकार कर दिया, वे विवश हो गए और मैं घर को चला आया। फिर छः मास के बाद मुझे उन्होंने फिर बुलाया और कहा कि मैं अपनी शर्त वापिस लेता हूं, तुम मेरे प्रधान मंत्री बनो, मैंने स्वीकार कर लिया, यह सब आर्य समाज की ही देन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरगोधा में हिन्दी का प्रचारात्मक कार्य :

लेखक—
श्री डा० विशेशर नाथ जी,
कच्चा बाजार पुल चमेली, अम्बाला छावनी

सरगोधा में हिन्दी प्रचार का श्रेय हिन्दी-महाविद्यालय के आचार्य श्री सावनमल प्रभाकर जी को है। आप ने सब से पहले हिन्दी साहित्य गोष्टी का निर्माण सन् १९४१ में किया। उसके अनन्तर सन् १९४२ में हिन्दी प्रचारिणी सभा सरगोधा स्थापित की। इस कार्य में इन के सहयोगी सीताराम जी शान्त, श्री रामसरन सखूजा, श्री बाबू जम्सूराम जी, श्रीमती चन्द्रप्रभा विद्यालंकृता थे। सभा स्थापना के एक वर्ष के अनन्तर जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन किया गया। समग्र पंजाब में यह पहला ज़िला हिन्दी सम्मेलन था। इस को देखकर आगे श्री प्रो० हंसराज जी अग्रवाल ने लायलपुर में ऐसा ही सम्मेलन किया। इस सम्मेलन की यह विशेषता थी कि एक प्रचारक लगभग दो महीने तक एक एक गांव में प्रचार करने के लिए भेजा गया। और ज़िला के बहुत से स्थानों पर हिन्दी प्रचारिणी सभायें स्थापित हुई जिनका सम्बन्ध जिला सम्मेलन के साथ हुआ, इस प्रकार १७ प्रतिशत की हिन्दू सिक्ख आबादी वाले ज़िले में हिन्दी का श्री गणेश हुआ। आगामी वर्षों में भी प्रति वर्ष जिला सम्मेलन होते रहे। इन सम्मेलनों में विराट कवि सम्मेलन नवयुवक सम्मेलन, महिला सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन आदि विशेष रूप से लोक प्रिय थे।

जिला सम्मेलन के अधिवेशनों का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। दुकानों के बोर्ड हिन्दी में लिखवाये जाने लगे, हिसाब-किताब व्यापारियों ने हिन्दी में रखना प्रारम्भ किया जनता की जागृत रुचि को देख कर स्थानीय सभा ने ४ प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किए जिस में सैंकड़ो व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। सभा का एक पुस्तकालय भी सभा कार्यालय ब्लाक नं० १८ में था। सभा ने रत्न, भूषण की निःशुल्क पढ़ाई की व्यवस्था की, और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की हिन्दी कोविद, हिन्दी परिचय परीक्षाओं का भी बहुत प्रचार किया। सभा और सम्मेलन के जन्म काल से उन्नति काल तक श्री प्रभाकर जी और सीताराम जी शान्त अनन्त परिश्रम करते रहे।

हिन्दी विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिए सम्मेलन रत्न, भूषण, प्रभाकर में सारे जिले भर में प्रथम आने वाले विद्यार्थियों को 'रजत पदक' दिया करता था।

स्थानीय सनातन धर्म हाई स्कूल ने हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने का प्रबंध सम्मेलन से प्रभावित हो कर ही किया था। पाकिस्तान बन जाने पर उसकी सारी सम्पत्ति वहीं रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में पहली बार जनक अरविन्द की नवीन रचना

भारत के आदिवासी

भारत के प्रमुख आदिवासियों का महत्त्वपूर्ण परिचय कराने वाली यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है। इस अध्ययनपूर्ण पुस्तक में प्रत्येक मानव समुदाय की उत्पत्तिकाल सम्बन्धी दन्त-कथाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उनकी जीवनचर्या, प्रकृति-स्वभाव के विषय का मनोरंजक विवरण दिया गया है। अपनी लायब्रेरी के लिए आज ही अपनी प्रति खरीदिए। इसके बिना वह अधूरी रहेगी। मूल्य सजिल्द ३ रुपये ५० नये पैसे

दृश्य-सरिता

लेखक—वीरदेव 'वीर'

प्राय: एकांकी वयस्क-मंच के लिए उपयुक्त होते हैं। इस प्रकाशन में ऐसे छः एकांकी नाट्यों का संकलन है जो सरल, सरस एवं शिक्षाप्रद होने के कारण शिक्षासंस्थाओं के मंच के लिए उपयुक्त हैं। मूल्य १ रुपया २५ नये पैसे

कलरव

श्री एम० बैनर्जी द्वारा लिखित यह राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत उपन्यास निःसंकोच युवक तथा युवतियों के हाथों में दिया जा सकता है। एक बार आरम्भ करने पर इसे पूरा समाप्त किये बिना नहीं रहा जाता, यही इसकी एक विशेषता है।

मूल्य ३ रु०

प्रकाशक :

दी इण्डियन पब्लिकेशन्स, अम्बाला छावनी।

नैतिक धरातल पर नये निर्माण की दिशा में

कहानी प्रतियोगिता

—का—

देशव्यापी अभूतपूर्व आयोजन

२०० रुपये का नकद पुरस्कार

टिकिट लगा लिफाफा भेजकर पूर्ण विवरण तुरन्त मंगायें :—

सम्पादक—अणुव्रत पाक्षिक, कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे सुरुचिपूर्ण और सुन्दर प्रकाशन

उपन्यास

जल-समाधि (सामाजिक)	गोबिन्दवल्लभ पन्त	४.००
पर्णा (ऐतिहासिक)	गोविन्दवल्लभ पन्त	४.००
डूबते मस्तूल (सामाजिक)	नरेश मेहता	४.५०
समाधान	रामावतार त्यागी	२.००
बुझते दीप (सामाजिक)	दयाशंकर मिश्र	३.००
परेड-ग्राउण्ड	हंसराज 'रहबर'	१.५०
अपराजिता (सामाजिक)	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	२.००
विद्रूप (सामाजिक)	पृथ्वीनाथ शर्मा	३.००
हृदय-मंथन	सीताचरण दीक्षित	५.००
हरिजन	सन्तोषनारायण नौटियाल	४.००
जर्जर हथौड़े (सामाजिक)	अरुण	६.००
युगपुरुष राम (सचित्र)	अक्षयकुमार जैन	५.००
शराबी (सामाजिक)	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३.५०
जी-जी-जी (सामाजिक)	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३.००
इन्सानियत फिर भी जीवित है	करुणेन्द्र	३.६६
भोर की किरणें (सामाजिक)	अरुण, एम० ए०	२.२५
बहके कदम (सामाजिक)	रामकृष्ण	२.२५
निशिकान्त (सामाजिक)	विष्णु प्रभाकर	५.५०
राधा-राजन (शहीदों की कहानी)	बलभद्र ठाकुर	४.५०
आत्मदान	विजयकुमार पुजारी	३.००
अधखिली (सचित्र व्यंगात्मक)	देवेश दास	४.००
पुनरुद्धार (ऐतिहासिक)	कंचनलता सब्बरवाल	३.५०
मानव की परख (सामाजिक)	देवीदयाल सेन	३.००
पांच बेंत	देवदूत विद्यार्थी-भारती विद्यार्थी	५.००
आखिरी चट्टान तक	मोहन राकेश	३.००
काली लड़की	रजनी पनिकर	३.००
अणु	अमृता प्रीतम	३.००

अनूदित उपन्यास

सिद्धार्थ	अनु० महावीर अधिकारी	३.००
चोर की प्रेमिका (सचित्र)	आर० कृष्णमूर्ति	४.५०
पाप की गली	अनु० महावीर अधिकारी	३.००
सौन्दर्य की रेखाएं	अनु० राम स्वरूप दुबे	५.००
चुनौती (सचित्र)	तकषी शिवशंकर पिल्लै	२.५०
दो सेर धान	तकषी शिवशंकर पिल्लै	२.००
हमराही	अनु० श्रीमती शारदा गोयल	२.००

कहानी

केसर के फूल	मोहनकृष्ण दर, भूमिका—श्री जवाहरलाल नेहरू	२.००
चिनार के पत्ते	मोहनकृष्ण दर	१.५०
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेश दास	६.००
अमृत और विष	अरुण, एम० ए०	२.५०
जीवन के मोड़	महावीर अधिकारी	३.००
कारावास	यशपाल	२.००

अन्य मनोरंजक पुस्तकें

शिवालक की घाटियों में (सचित्र)	श्री निधि	५.००
वनराज के राज में (सचित्र)	विराज एम० ए०	४.००
सचित्र गृह-विनोद	अरुण, एम० ए०	८.००
सचित्र व्यंग-विनोद	अरुण, एम० ए०	७.००
अजी सुनो (सचित्र हास्य कविताएं)	गोपालप्रसाद व्यास	५.००
आँखों देखा रूस	सत्येन्द्र मजूमदार	२.५०
पृथ्वी-परिक्रमा (सचित्र)	सेठ गोविन्ददास	१२.००
यूरोप के स्केच	रामकुमार	६.००
नेपाल की कहानी	काशी प्रसाद	८.००
मुगल-साम्राज्य की जीवन-संध्या (सचित्र)	राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	६७.००
राष्ट्रपति और राष्ट्रपति-भवन (सचित्र)	बाल्मीकि चौधरी	६.००
महापुरुषों के संस्मरण	अरुण, एम० ए०	३.५०
मैंने कहा (सचित्र हास्य-लेख)	गोपालप्रसाद व्यास	५.००
पारिवारिक समस्यायें	सावित्रीदेवी वर्मा	७.५०
बहन को सीख	मुकुटबिहारी वर्मा	२.००

आत्माराम एंड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* हिन्दी पुस्तकों का उत्कृष्टतम संग्रह * राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, पटना, मद्रास *

हिन्दी पुस्तकों का उत्कृष्टतम संग्रह * राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, पटना, मद्रास

हिन्दी पुस्तकों का उत्कृष्टतम संग्रह * राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, पटना, मद्रास

हिन्दी पुस्तकों

का

उत्कृष्टतम संग्रह

राजकमल प्रकाशन

प्राइवेट लिमिटेड

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१

हिमालय हाऊस, हार्नबी रोड
बम्बई-१

४२७-पिन्ट स्ट्रीट,
मद्रास-१

साइन्स कालेज के सामने
पटना-६

८ फ़ैज़ बाजार,
दिल्ली-७

* हिन्दी पुस्तकों का उत्कृष्टतम संग्रह * राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, पटना, मद्रास *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य के गौरव-ग्रंथ

हमारे कुछ उत्कृष्ट प्रकाशन

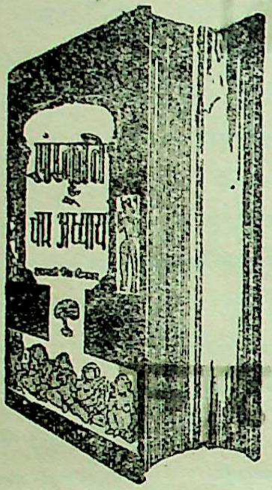

संस्कृति के चार अध्याय

मूल्य पन्द्रह रुपये

लेखक—श्री रामधारी सिंह दिनकर
भूमिका—पं० जवाहरलाल नेहरू

विश्व साहित्य की रूपरेखा

डा० भगवतशरण उपाध्याय
मूल्य बारह रुपये

आज का भारतीय साहित्य

(साहित्य अकादमी द्वारा सम्पादित 'कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद)
भूमिका—डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
अनुवादक—श्री प्रभाकर माचवे.
मूल्य सात रुपये.

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

विश्व के महान् नाटककार

शेक्सपियर

के नाटकों के हिन्दी अनुवाद
डा० रांगेय राघव

वेनिस का सौदागर
रोमियो जूलियट
जूलियस सीज़र
जैसा तुम चाहो
तिल का ताड़
बारहवीं रात
सम्राट् लियर
एक सपना
हैमलेट
मैकबेथ
ऑथेलो
तूफ़ान

प्रत्येक का मूल्य दो रुपये

राजपाल एण्ड संज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी हीरकजयन्ती के शुभ

अवसर पर

हम परम पिता परमात्मा और आप जनता जनार्दन

–का–

हार्दिक धन्यवाद करते हैं

आप अनुभव नहीं कर सकते कि आप इस परिवार के
विकास और समृद्धि में कितने सहायक रहे हैं

काश !

हमारे पास वह :—

मार्मिक शब्द होते

वह मनोरम पुष्प होते

–जिन्हें–

श्रद्धा और धन्यवाद सहित आपके चरणों पर अर्पित करते

संस्थापित : १८९७ ई०

हीरक जयन्ती वर्ष : १९५७ ई०

हरगोलाल एण्ड संस

Hargolal & Sons

वैज्ञानिक यन्त्र निर्माणशाला

The Science Apperatus Workshop

1897 AMBALA 1957

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ अनमोल प्रकाशन

पंजाब का इतिहास	(धर्मवीर एम. ए.)	५.५०
सवेरा और साया	(विद्याभास्कर अरुण)	१.५०
वैरागी	(परमानन्द शर्मा, एम. ए.)	२.००
प्यारा भारत	(प्यारेलाल, एम. ए.)	४.५०
उद्बोधिनी	(सन्तराम, बी. ए.)	३.००
रणभेरी	(बैकुण्ठ नाथ दुग्गल)	१.००
आधुनिक एकांकी	(,, ,, ,,)	१.७५
न्याय	(वीरदेव "वीर")	१.२५
भूख	(वीरदेव 'वीर')	१.००
उड़ते पत्ते	(देवीदयाल चतुर्वेदी)	२.५०
भीगी पलकें	(कु० कंचनलता)	१.००
आधुनिक योरुप का इतिहास [दो भाग]	(किशोरी सरन लाल)	१४.००
आचार शास्त्र	(कु० कंचनलता)	५.००
समाज शास्त्र	(,, ,,)	६.००
भारतीय मध्ययुग का इतिहास	(डा० ईश्वरी प्रसाद)	१०.००

विस्तृत जानकारी के लिए हमारा सूची पत्र मँगाए।

दी इण्डियन प्रैस (पब्लिकेशंस) लिमिटेड, अम्बाला छावनी

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

—का—

साहित्यिक कार्य-क्रम

रजत जयन्ती समारोह मनाने के साथ पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भविष्य के लिये निम्नलिखित कार्यक्रम नियत किया है:—

१. पंजाब में केन्द्रीय, जनपदीय तथा पंचायती हिन्दी पुस्तकालय स्थापित करना।
२. स्थान स्थान पर साहित्यिक गोष्ठियां चालू करना और यथा सम्भव हिन्दी रंग मंच को आकर्षक बनाना।
३. "हिन्दीसन्देश" त्रैमासिक को पंचनद निवासी साहित्यिकों का प्रतिनिधि पत्र बनाना।
४. हिन्दी देवनागरी में पंजाबी गुरुमुखी में उपलभ्यमान साहित्य को प्रकाशित तथा मुद्रित करना।
५. हिन्दी संस्कृत संस्कृत पंजाबी स्वयं शिक्षक चार भाग तथा।
६. हिन्दी संस्कृत पंजाबी व्यावहारिक कोष (कम से कम १० हजार शब्दों का) तैयार कराना।
७. हिन्दी साहित्यकारों को सन्मानार्थ तथा उत्साहित करने के लिये पुरस्कार देने की व्यवस्था करनी।
८. पंजाब के भिन्न २ नगरों तथा देहातों में सम्मेलन की स्थायी शाखाएँ स्थापित करना।

भीमसेन विद्यालंकार
प्रधान मन्त्री पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तकालय 3.4/10

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अङ्कित है । इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ६ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा ।

4 MAY 1977

36,052

R80,BHI-R

37751

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar